इस ग्रन्थ की दो लाख से अधिक प्रतियाँ निकल चुकी है।

बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

आरोग्य-प्रकाश

निरोग रहने के नियम, रोगों के निदान तथा चिकित्सा की सर्वोत्तम व्यावहारिक पुस्तक

(संशोधित, परिवर्द्धित और परिष्कृत उन्नीसवाँ संस्करण)

लेखक
पं० रामनारायण शर्मा, वैद्य
आयुर्वेदोपाध्याय

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
कलकत्ता : पटना : झाँसी : नागपुर : नैनी (इलाहाबाद)

१९ वाँ संस्करण, जनवरी १९७७
१५,००० प्रतियाँ

पिछले १८ संस्करणों में इसकी
२ लाख १० हजार प्रतियाँ निकल चुकी हैं

मूल्य ६-००

प्रकाशक :
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
ग्रेटनाग रोड, नागपुर-१०
(रजि० कार्यालय : १, गुप्तालेन, कलकत्ता-६)

मुद्रक :
शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.
ग्रेटनाग रोड,
नागपुर-१०

प्रस्तावना

श्री रामनारायण शर्मा वैद्य द्वारा लिखित "आरोग्य-प्रकाश" का स्वास्थ्य प्रकरण मेरे विचार से बहुत उपयोगी पुस्तक है। उन्होंने स्वास्थ्य-रक्षा पर और युक्ताहार-विहार के द्वारा रोगों से मुक्त रहने के मूल सिद्धान्तों का सुबोध विवेचन किया है। बड़ी मेहनत से उन्होंने आयुर्वेद के शास्त्रों से स्वास्थ्य का महत्त्व बताने वाले आरोग्य-प्राप्ति के साधन-सूचक श्लोक अपनी पुस्तक में दिये हैं और आधुनिक आहार-विज्ञान का अभ्यास करके अनेक खाद्य-पदार्थों की व्याख्या भी की है। साथ ही यह भी बताया है कि किस-किस खाने की वस्तु में से क्या-क्या पौष्टिक पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। शरीर-निर्माण और शरीर की मशीन को तन्दुरुस्त रखने के लिये प्रोटीन की आवश्यकता पर भी उन्होंने जोर दिया है और बताया है कि प्रोटीन दाल-सब्जी इत्यादि में से तो प्राप्त होते ही हैं, मगर अमुक मात्रा में इनके अलावा दूध, घी अथवा मांस-मछली और अण्डे इत्यादि से लेनी आवश्यक होती है। एक अण्डा एक पाव दूध के बराबर गुण-कारी होता है—ऐसा उन्होंने बताया है। सब्जी, फल आदि की आवश्यकता-अंकुरित चने, मूंग इत्यादि में से पौष्टिक तत्त्व प्राप्ति का महत्त्व, खाना सही प्रकार से तैयार करना ताकि पौष्टिक पदार्थ खो न जायें--इन सभी प्रश्नों के बारे में उन्होंने आवश्यक सलाह-मश्वरा दिया है। नशीली वस्तुओं से क्या नुकसान होता है यह भी उन्होंने समझाया है। आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य और संयम का स्वास्थ्य-रक्षा के साथ कितना निकट का सबंध है, इसका उन्होंने विशेष वर्णन किया है। साथ ही व्यायाम के कुछ तरीके भी बताये हैं। स्वास्थ्य के लिए शरीर, घर की और गली-मुहल्ले की सफाई कितनी आवश्यक है--इस पर भी अपनी पुस्तक में उन्होंने पर्याप्त ध्यान दिया है। स्वास्थ्य के लिये सदाचार पर विशेष बल देते हुए उन्होंने दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या का भी विवेचन किया है। स्त्री-स्वास्थ्य के साधनों पर भी पुस्तक में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

दो-चार बातें उनकी मेरी समझ में नहीं आईं। उन्होंने कहा है कि विषय-भोगी पुरुष शूर-वीर नहीं हो सकता, वह व्यापारी हो सकता है, धनी हो सकता है, किसी हद तक ईमानदार हो सकता है, त्यागी हो सकता है। मैं समझती हूँ कि विषय-भोगी पुरुष त्यागी नहीं हो सकता और ईमानदारी का पालन करना भी उसके लिये अत्यन्त कठिन होता है। इसी प्रकार उन्होंने लिखा है कि तेज-भूख और विषयेच्छा के वेग को रोकना स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं है। मैं समझती हूँ उनका विचार उन्होंने दूसरी जगह पर जहाँ संयम पर जोर दिया है, उसके साथ मेल नहीं खाता। ब्रह्मचर्य पालन के लिये उन्होंने लड़के-लड़कियों को साथ-साथ न पढ़ाने की सलाह दी है। मैं समझती हूँ कि जो लड़के-लड़कियाँ बचपन से साथ-साथ पढ़ते हों और शिक्षक उनका सही मार्ग-दर्शन करते हों, वे एक-दूसरे के प्रति सही व्यवहार सही तरीके से पालन कर सकते हैं। उनके गलत रास्ते पर चलने की संभावना कम होती है। सफाई के अध्याय में श्री रामनारायण जी ने लिखा है कि पाखाना करने के लिये सदा ही खुले मैदान में जाना अच्छा होता है। यह बात पुराने जमाने में, जब जनसंख्या कम और जमीन बहुत थी, शायद चल भी सकती मगर आज तो उसमें उल्टे नुकसान होता है। पंजाब और कई दूसरे प्रान्तों में खेतों में पाखाना जाने के कारण लगभग ४० प्रतिशत लोग हुक-वर्म के रोग से पीड़ित होते हैं। अच्छा तो यह है कि खुले मैदान में पाखाना न जाय, लेकिन यदि ऐसा करना ही पड़े तो पाखाना जानेवाला व्यक्ति अपने साथ एक खूर्पी रखे और खोद कर सूखी मिट्टी से मैले को ढक दे। श्री रामनारायणजी ने भी अपनी इस पुस्तक में अन्यत्र लिखा है कि खुले खेतों में चाहे जहाँ मल त्याग करने की आदत अच्छी नहीं। ग्रामों में बापू द्वारा बताई सफाई शौच व्यवस्था को वैद्य जी ने उपयोगी माना है। इसी प्रकार उन्होंने लिखा है कि बीच-बीच में एनिमा ले कर आँतों को साफ करते रहना चाहिए। मैं इसे बहुत उपयोगी नहीं समझती। बिना जरूरत के नियमित रूप से एनिमा लेते रहने से आँतें कमजोर पड़ सकती हैं। बीमारी में लेना अलग बात है, मगर एनिमा अस्वाभाविक है। स्वयं वैद्य जी ने भी एनिमा लेने का परामर्श खुश्की और कोष्ठवद्धता से पीड़ित लोगों के लिये दिया है। स्वस्थ मनुष्य को इसकी

आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इसी प्रकार हाईड्रोजन-पर-आक्साइड ऐसे ही कानों में नहीं डालते रहना चाहिए। खास आवश्यकता होने पर और सलाह दें तभी इसका इस्तेमाल करना चाहिए। नहाने में साबुन का उपयोग नहीं करना ही अच्छा है क्योंकि उससे त्वचा की स्वाभाविक स्निग्धता नष्ट हो जाती है, ऐसा इस पुस्तक में कहा गया है, मगर उसके स्थान पर क्या उपयोग हो सकता है, यह नहीं बताया। हर रोज नहीं तो दूसरे-चौथे दिन साबुन या किसी दूसरी ऐसी चीज से नहाना आवश्यक होता ही है जिससे शरीर साफ रह सके और चमड़ी के रोगों से व्यक्ति मुक्त रहे। घर की सफाई का जिक्र करते हुए वैद्य जी ने घर का कूड़ा-कर्कट गली-मुहल्ले में न डालने की सलाह दी है। यह अच्छी बात है। इसके लिये घर में कूड़े का एक बक्सा रहे तो अच्छा है। वैद्य जी ने भी लिखा है कि घर का कूड़ा-कर्कट और जूठन आदि डालने के लिये घर में एक नियमित स्थान बनाना चाहिए जो ढका रखा जा सके। कूड़े के बक्से को उठा कर मुनासिब जगह फेंकना आसान रहता है। उन्होंने लिखा है कि वर्षा ऋतु में हरी सब्जियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। मैं समझती हूँ कि यदि उसे अच्छी तरह साफ कर लिया जाय और लाल दवा के पानी से धो लिया जाय, तो उसके प्रयोग में कोई नुकसान नहीं है। इसी प्रकार वे कहते हैं कि बरसात में नदी या तालाब का पानी नहीं पीना चाहिए। मैं समझती हूँ कि नदी तालाब का पानी कभी भी नहीं पीना चाहिए और यदि पीना आवश्यक हो, तो उबाल कर पियें। क्षय रोग के थूक को राख या चूने से ढक देना चाहिए--ऐसा वैद्य जी ने लिखा है। क्षय रोग के कीटाणु कालरा के कीटाणुओं की तरह, आसानी से नहीं मरते। उनको समाप्त करने का सब से अछा तरीका यह है कि मरीज के थूक को तीन मिनट तक पानी में उबाल दिया जाय। मरीज एक छोटे-से सिगरेट के टीन या दूसरे बर्तन का थूकदान रखे उसमें पानी रहना चाहिए। सुबह-शाम जलते कोयलों पर रखकर उसे तीन मिनट तक उबाल लेना

चाहिए । इसमें कोई भी विशेष खर्च या मेहनत नहीं होती और हम कीटाणुओं से पूर्णतया सुरक्षित हो जाते हैं ।

मैं समझती हूँ कि वैद्य श्री रामनारायण जी की यह पुस्तक हर एक को पढ़नी चाहिए । स्त्री और पुरुष सभी को इसमें से ज्ञान मिल सकता है । मेरी दृष्टि में यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिये बहुत उपयोगी है। विद्यार्थी-जीवन से ही मनुष्य में स्वास्थ्य-रक्षा के संस्कार पड़ जावें, तो हमारी आगामी पीढ़ियों में आरोग्य-स्थापन में बड़ी सहायता हो सकती है । आशा है वैद्य जी की पुस्तक इस दिशा में उपयोगी सिद्ध होगी ।

नई दिल्ली
२६ जनवरी, १९६३

डॉ० सुशीला नायर
(केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री)

निवेदन

लगभग ५५ वर्ष पूर्व जब मैं यकृत् रोग से पीड़ित हुआ तो मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि खान-पान में जरा-सी भी अनियमितता का परिणाम कितना भयंकर होता है। उस पीड़ा से ४-५ वर्ष तक मैंने बड़ा कष्ट उठाया। स्वास्थ्यकर जलवायुवाले स्थान में निवास और काम-काज छोड़ कर पूर्ण विश्राम करने से, तथा यदा-कदा किसी औषध से कुछ समय तक लाभ मालूम होता था, स्थायी लाभ किसी दवा से नहीं हुआ। अन्ततः स्वास्थ्य-नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करने से ही मैं निरोग हुआ। उसके बाद, अपनी जैसी अवस्था के निरन्तर रोगी रहनेवाले अनेक व्यक्तियों को भी, औषध के साथ आयुर्वेदोक्त स्वास्थ्य-नियमों का पालन कराके मैंने देखा कि आश्चर्यजनक लाभ होता है। इसी अनुभव से मिली प्रेरणा ने 'आरोग्य-प्रकाश' लिखने को, मुझे सर्वाधिक प्रोत्साहन दिया।

निश्चय ही हमारे देश में आजकल स्वास्थ्य की स्थिति बड़ी चिन्तनीय है। पाश्चात्य सभ्यता के असीमित प्रसार और जीवन की हर दिशा में आधुनिकीकरण के अत्युत्साह ने जनता को स्वास्थ्य के प्रति निश्चेष्ट और पंगु-सा बना दिया है। स्वाभाविक रूप से स्वस्थ रहने के लिए जो कर्त्तव्य भाव और सुरुचि, हमारी परम्पराओं में विद्यमान थे, वे समाप्त-प्राय हो चले हैं और पाश्चात्य चिकित्सा के बहु-प्रचार से जन-जीवन दवाओं पर अधिक आश्रित हो गया है। इसके परिणामस्वरूप, आरोग्य का महत्त्व, लोगों की दृष्टि में उतना नहीं रहा, जितना कि रहना चाहिए।

जनता का स्वास्थ्य-स्तर जब तक उत्कृष्ट न हो तब तक किसी भी राष्ट्र की प्रगति और समृद्धि को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। हमारा विशाल देश जिस समृद्ध राष्ट्र-निर्माण की दिशा में लगा हुआ है, उसके लिए जन-जन का कठोर परिश्रम अपेक्षित है, और उसकी सफलता के लिए हर भारतीय नागरिक का पूर्ण स्वस्थ होना वांछनीय है। ऐसा पूर्ण स्वास्थ्य, चिकित्सा-साधनों के अपरिमित विस्तार से सुलभ नहीं हो सकता। उसके लिए जन-जीवन को नियम-संयमपूर्ण

बनाना नितान्त आवश्यक है। चिकित्सा-प्रसार से रोगों का अन्त और जन-जीवन सुखी नहीं हो सकता। उसका एकमात्र साधन आरोग्य-प्रचार है।

जनता में आरोग्य के प्रति कर्त्तव्य-बुद्धि की न्यूनता कुछ इस कारण भी है कि इस विषय की पूरी-पूरी जानकारी सर्वसामान्य को नहीं मिलती। हमारे देश में सार्वजनिक जनता को स्वास्थ्य और आरोग्य के विषय में वास्तविक ज्ञान देने का प्रबन्ध सुसंगठित नहीं है। शिक्षा-काल में विद्यार्थियों को जो थोड़ा-बहुत स्वास्थ्य के विषय में पढ़ाया जाता है, वह उनके अन्तर्मन में आरोग्य की भावना उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता। हिन्दी में स्वास्थ्य-विषयक साहित्य उत्कृष्ट और यथेष्ट नहीं। इस विषय पर जो पुस्तकें हैं, वे अधिकांश पाश्चात्य दृष्टि-कोण पर आधारित 'हेल्थ एण्ड हाईजिन' विषयों के अनुवाद मात्र हैं। यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान देने की है कि हमारा देश उष्ण जलवायु-प्रधान है, इसलिए यहाँ शीत-प्रधान पश्चिमी देशों के स्वास्थ्य नियम यथावत् कारगर नहीं हो सकते। हमारे देश की भौगोलिक और प्राकृतिक स्थिति तथा यहां के जीवन-दर्शन के अनुकूल भारतीय सिद्धान्त ही यहाँ की जनता के लिए हितकर, ग्राह्य एवं व्यावहारिक हो सकते हैं।

इस तथ्य पर ध्यान न देकर विदेशी शासनकाल में भारतीय स्वास्थ्य-परम्पराओं को नष्ट कर पाश्चात्य स्वास्थ्यसाधनों का प्रसार किया गया। यह भी प्रचारित किया गया कि प्राचीन भारतीय-साहित्य में स्वास्थ्य-विषयक ज्ञान विशेष है ही नहीं। इस धारणा से प्रभावित होकर भारतीय लेखकों का ध्यान भी उस ओर नहीं गया, और कदाचित् इसी कारण आधुनिक काल में हमारे यहाँ जो स्वास्थ्य-साहित्य लिखा गया, वह प्रायः पाश्चात्य से प्रभावित है। वस्तुतः वह सब का सब उपयोगी नहीं है। भारत में उसके अपने ही प्राचीन स्वास्थ्य-सिद्धान्त उपादेय हैं, और उनका पुनरुत्थान देश और जनता के लिए हितकर हो सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक की रचना इसी दृष्टिकोण से की गयी है। पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए, आयुर्वेद में जिन मूलभूत सिद्धान्तों पर बल दिया गया है, उनका ही विवेचन, मैंने आधुनिक प्रगति के प्रकाश में प्रस्तुत करने का प्रयास किया

है। जिससे वर्तमान जीवन-क्रम में वह सहज ग्राह्य हो सके।

इस पुस्तक के लिखने का मेरा मुख्य लक्ष्य यह है कि भारतीय जनता में वास्तविक स्वास्थ्य और आरोग्य के प्रति सुरुचि का संचार हो। लोग स्वास्थ्य का महत्त्व समझें, उसका ज्ञान मनन करें और तदर्थ सुगम-नियमों को जीवन के अभ्यास में उतारें। देश में आरोग्य-स्थापन का प्रयास तभी सफल हो सकता है जब लोग स्वाभाविक रूप से स्वस्थ रहने के अभ्यासी हों और केवल अनिवार्य होने पर ही औषध का प्रयोग किया करें। औषध-प्रयोग भी ऐसा हो, जो एक रोग को दबा कर प्रतिक्रिया-स्वरूप में अन्य कई रोग उत्पन्न करने वाला न हो। यह आयुर्वेद का उद्देश्य है।

"स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च"

पुस्तक का विषय-क्रम मैंने इसी आयुर्वेदोद्देश्य के अनुसार रक्खा है। पूर्वार्द्ध में स्वास्थ्य विवेचन के साथ पूर्ण स्वस्थ रहने के सभी आवश्यक और व्यावहारिक साधन और नियमों का विशद वर्णन दिया है। उत्तरार्द्ध में रोगों की उत्पत्ति के मूलभूत कारणों पर प्रकाश डाल कर चिकित्सा-प्रकरण में रोग-विवेचन के साथ मैंने उन आयुर्वेदीय शास्त्रोक्त एवं अन्य औषध-प्रयोगों को भी निर्माण-विधि सहित दे दिया है, जिन्हें अपने चिकित्सा-कार्य-काल में मैंने सर्वथा सफल एवं निरापद पाया।

"आरोग्य-प्रकाश" को वर्तमान स्वरूप में संशोधित-परिवर्द्धित और सम्पादित करने की इच्छा बहुत दिनों से थी। पहली बार लिखने के अनंतर अनुभव में आये नवीन विषयों को बढ़ाना भी आवश्यक था। इस कार्य में अपेक्षित से अधिक समय लग गया। समय-समय पर जिन स्नेही पाठकों और सहयोगियों ने अपने सत्परामर्श भेज कर मुझे उत्साहित किया, उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री माननीय डा० सुशीला नैय्यर ने पुस्तक के स्वास्थ्य-प्रकरण को बड़े मनोयोगपूर्वक पढ़ा और कृपापूर्वक अपनी प्रस्तावना लिख कर प्रदान की, अतएव, उनका मैं अत्यधिक आभारी हूँ। पुस्तक में आये कुछ प्रसंगों पर मेरे और उनके बीच मतैक्य नहीं; अतएव, प्रस्तावना में उन्होंने अपना मत

स्पष्टता से व्यक्त कर दिया है। जहाँ दो मत हों वहाँ ग्राह्य-अग्राह्य का विवेचन कृपालु पाठकों पर छोड़ता हूँ।

ग्रन्थ के नवीनीकरण में अपने मित्र डा० किशोरीलाल शर्मा से मुझे बहुत प्रेरणा मिली है, इसके लिए उनका तो आभारी हूँ ही, भाषा-सम्पादन में श्री द्वारिकेश जी मिश्र ने बड़ा श्रम किया है। मिश्र जी श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के कार्यकर्त्ता हैं, इसलिए नहीं, प्रत्युत वे आयु में मुझसे छोटे और हम दोनों ही भारतीय संस्कृति के अनुयायी हैं, इसलिए उनकी पीठ ठोकता हूँ।

इस नवीन संशोधित संस्करण को इस आशा से भारतीय जनता को समर्पित कर रहा हूँ कि मेरे भाई-बहन विशेषकर युवक-युवतियाँ स्वास्थ्य और आरोग्य के विषय में उचित ज्ञान के अर्जन और आचरण करने के लिए प्रेरित होंगे।

श्री धन्वन्तरी जयन्ती
२०३०, विक्रम

विनयावनत
पं० रामनारायण वैद्य

चिकित्सा प्रकरण का नवीनीकरण

मथुरा में श्री कृष्ण जन्मस्थान का पुनरुद्धार हो रहा है। इस महत्त्वपूर्ण निर्माण में मेरे व्यक्तिगत प्रयत्न और धन से विशाल आयुर्वेद भवन का निर्माण हुआ है, जिसके बाह्यकक्ष में प्रतिदिन २०० से अधिक रोगी आते हैं। अन्तःकक्ष में अभी १० शय्यायें हैं और १५ का स्थान बन रहा है। दो आयुर्वेदाचार्य वैद्य, १ वैद्या, ४ कम्पाउण्डर, १ मल-मूत्र आदि परीक्षक (पैथोलोजिस्ट), १ सेविका (नर्स) आदि सुशिक्षित सेवाभावी स्टाफ है। मैं स्वयं तीन घण्टा बैठता हूँ। मथुरा का यह चिकित्सा-कार्य ८ वर्ष से चल रहा है। गत ३ वर्ष से मेरा अधिक समय इसी चिकित्सा कार्य में लग रहा है। वृन्दावन में निवास स्थान बनाकर रह रहा हूँ। मैंने आयुर्वेद की शिक्षा समाप्त करके वैद्यनाथ धाम (बिहार) में चिकित्सा का कार्य प्रारम्भ किया था। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के प्रारम्भ में चिकित्सा ही करता था। वैद्यनाथ का बिक्री कार्य बढ़ने पर औषध निर्माण और व्यापार में रुचि लेनी आवश्यक थी। करीब ५० वर्ष के बाद फिर इसी चिकित्सा कार्य में आ गया हूँ। मथुरा जन्म स्थान के इस आयुर्वेद भवन में विशुद्ध आयुर्वेद भवन में विशुद्ध आयुर्वेदीय चिकित्सा होती है। सभी दवायें बैद्यनाथ की झांसी शाखा से बिना मूल्य आती हैं। चूर्ण, क्वाथ, अवलेह, घृत, तैल, वटी, रस-रसायन आदि चिकित्सोपयोगी दवाओं का अच्छा भण्डार होने पर भी आवश्यक दवायें काढ़ा, अर्क, चूर्ण आदि मथुरा के इस भवन में भी बनाई जाती हैं। इस चिकित्सा कार्य के अनुभव से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भविष्य में भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा आयुर्वेद-यूनानी ही होगी। इस समय की डाक्टरी दवायें बहुत तीक्ष्ण प्रभावशाली बन रही हैं। एन्टीबायोटिक्स, सल्फाड्रग्स आदि जो दवायें रोगियों को दी जा रही हैं उनसे अति शीघ्र लाभ दीखने पर भी रोग निःशेष नहीं होता बल्कि बहुत से रोगी तो इन उग्रवीर्य दवाओं के खाने से उल्टे रोगपीड़ित हो जाते हैं। डाक्टरी

चिकित्सक साधारण ज्वर में भी स्ट्रेप्टोमाइसीन दे रहे हैं उसके साथ और भी बहुत सी दवायें देते हैं जिससे रोग से अधिक हानि इन दवाओं से होती है। इन दवाओं का खर्च इतना अधिक है कि भारतवासी उसको कभी वहन नहीं कर सकता। राज्य अरबों रुपयों की चिकित्सा कार्य में सहायता देकर भी रोगों की बाढ़ को नहीं रोक सका। इसलिये वैद्य-हकीम बन्धुओं को डाक्टरी से पराजित मनोवृत्ति को छोड़कर सेवाभावना से चिकित्सावृत्ति करनी होगी। मोटर और बंगला की महत्त्वाकांक्षा से रहित होकर हमारे पूर्वज ऋषियों की तरह शरणागत रोगी की चिकित्सा को पुण्य और पवित्र कार्य समझकर चिकित्सा करने से बहुत अच्छी तरह से योगक्षेम होगा और निर्मल यश की प्राप्ति होगी।

हजार वर्ष की दासता के कारण वैद्यबन्धु यथार्थता से हटकर कैन्सर, हृदय रोग, कायाकल्प आदि की बड़ी २ बातें करते हैं। जो रोगी इस भवन के दवाखाने में चिकित्सा कराने आते हैं उन रोगों की संख्या पर विशेष ध्यान देने से मालूम होता है कि अम्लपित्त, यकृत्-विकृति, कब्जियत, आमपेचिश, पतले दस्त, संग्रहणी, बवासीर, साधारण बुखार, इन्फ्लुएंजा, सर्दी, जुखाम, खाँसी, श्वांस, वातरोग, सिर दर्द, चर्मरोग, स्त्री रोग, बालरोग आदि की संख्या सर्वाधिक होती हैं। इनकी शीघ्र लाभदायक चिकित्सा करने से वैद्य की अति-शीघ्र ख्याति हो जाती है। वर्तमान में वैद्यबन्धु रोग निर्णय से पहले दवा निश्चय करते हैं। शास्त्रोक्त विधि से रोग निर्णय करना बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है। उसके लिये 'वर्तमान विकृति विज्ञान' की सहायता से भी रोग निर्णय करना चाहिये। मथुरा के इस आयुर्वेद भवन में मलमूत्र, रक्त-कफ आदि की आधुनिक परीक्षा से जटिल रोग के निर्णय करने में बड़ी सहायता मिलती है। अमीबिका प्रवाहिका रोगी के मल परीक्षण में बहुत से रोगियों के मल में अंकुशकृमि (Gerdia) भी बहुत मिलता है जो रोगी का खून चूसता है। यह परीक्षण विधि कोई डाक्टरी की निजी सम्पत्ति नहीं है, सभी चिकित्सा पद्धतियों में उपयोगी हैं। कहने का सारांश यह है कि वैद्य बन्धुओं को आयुर्वेदीय दवाओं का पूरा भण्डार रखना चाहिये और पूर्ण रूप से रोग निर्णय करके रसादि

दवाओं के साथ क्वाथ आदि अपने यहाँ तैयार करके ही रसादि के अनुपान के रूप में देना चाहिये।

इस आयुर्वेद भवन में चिकित्सा करते हुए जो अनुभव हुए उनके ठोस आधार को सामने रखकर आरोग्य प्रकाश के चिकित्सा प्रकरण का नवीनीकरण किया गया है। इस नये संस्करण में बहुत बार के अनुभूत और सरलता से प्राप्त होने वाली दवाओं का ही वर्णन किया गया है। भाषा बहुत संक्षेप से इसीलिए लिखी गई कि ग्रन्थ विस्तार बहुत बड़ा न हो जाय। स्वर्गीय आचार्य यादवजी त्रिविक्रमजी के सिद्धयोग संग्रह से बहुत लिया गया है। उनके योग वास्तव में बहुत उपयोगी हैं। वे मेरे क्रियात्मक ज्ञान के गुरु थे। ग्रन्थ-विस्तार के भय से ही बहुत से सिद्धयोग संग्रह के योगों के नाम तथा पेज नं० दे दिये गये हैं। श्री आचार्य रघुवीरप्रसादजी त्रिवेदी ने भी इसमें बहुत से संशोधन किये थे, पर वे सम्पूर्ण न ले करके अत्युपयोगी मात्र लिये गये हैं। वैद्यराज श्री मोहनलाल चतुर्वेदी ने इस नवीनीकरण में बहुत सहायता की है। यद्यपि वे वैद्यनाथ के वेतनभोगी उच्चकर्मचारी हैं फिर भी मैं उनका आभार प्रकट करता हूँ। अन्त में सभी वैद्य बन्धुओं से प्रार्थना है कि इसमें जो भी त्रुटि आप देखें वह कृपा करके सूचित करें, वह भविष्य के संस्करण में सुधार दी जावेगी।

भद्रमभ्यस्तकर्माणाम्–भद्रं भद्राभिलाषिणाम्

मंगलाकांक्षी

पं० रामनारायण शर्मा वैद्य

रामनवमी
संवत् २०३०

प्रकाशकीय वक्तव्य

आरोग्य-प्रकाश का यह १९ वां संस्करण, स्वास्थ्य-साहित्य-प्रेमी पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए, हमें विशेष प्रसन्नता इसलिए है कि जिस परिवर्द्धित, संशोधित और सुसम्पादित स्वरूप में हम इसका नवीन संस्करण प्रकाशित करना चाहते थे, वह काफी प्रतीक्षा के अनन्तर अब पूरा हो सका है।

लगभग, दो लाख, १० हजार प्रतियाँ निकलने के बाद भी इस ग्रन्थ की माँग बहुत अधिक रही। यह इस ग्रन्थ की लोकप्रियता का परिचायक तो है ही, हमें यह देखकर बड़ा सन्तोष है कि जनता में स्वास्थ्य-विषयक साहित्य पढ़ने और मनन करने की सुरुचि बढ़ रही है। पाठ्य पुस्तकों को छोड़ कर कदाचित् ही कोई स्वास्थ्य-विषयक ऐसी पुस्तक होगी जो इतनी अधिक संख्या में बिकी हो जितना आरोग्य-प्रकाश। यह देखकर जहाँ हमे हर्ष होता है, वहां गौरव भी होता है कि स्वास्थ्य-साधन की भारतीय-परम्पराओं और आयुर्वेदीय सिद्धान्तों के प्रसार का हमारा लक्ष्य सफल हो रहा है।

इस संस्करण में आचार्य रघुवीरप्रसादजी त्रिवेदी ने अनेक नवीन बातों का समावेश किया है। आचार्य त्रिवेदी जी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के शोध-परामर्शदाता (रिसर्च-सलाहकार) हैं। आप आयुर्वेद जगत के जाने माने विद्वान हैं। अनेक ग्रन्थों के लेखक तथा अनेक आयुर्वेद पत्रों के सम्पादक हैं।

इस संस्करण से यह ग्रन्थ, एक प्रकार से नया ही हो गया है। पूर्वापेक्षा पृष्ठ संख्या अधिक हो गयी और कई उपयोगी विषयों को बढ़ाया गया है। फिर भी मूल्य के विषय में, जैसी कि बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की परम्परा है—इस सर्वजनोपयोगी ग्रन्थ का मूल्य लागतमात्र ही रखा गया है। पांच सौ साठ से ऊपर पृष्ठ संख्या की, स्वास्थ्य-विषयक पुस्तक, इतने कम मूल्य में दूसरी कोई नहीं है।

हमारा विश्वास है कि यह नवीन संस्करण पाठकों को अधिक रुचेगा और स्वास्थ्य-प्रचार की दिशा में हमारा प्रयास अग्रसर होगा।

व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग,

श्री बद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

प्रकरण-सूची

[वै]द्यराज
[पं]० रामनारायण शर्मा
आयुर्वेदोपाध्याय.
[सं]स्थापक व प्रधान प्रबन्ध
निर्देशक :-
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद
भवन लिमिटेड.

विषय पृष्ठ

आरोग्य-प्रकाश

स्वास्थ्य-प्रकरण

स्वास्थ्य की आवश्यकता

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥ --चरक

भारतीय संस्कृति में मनुष्य जीवन का सर्वोपरि उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है। इन चारों ही को पाने का वास्तविक साधन पूर्ण स्वास्थ्य है। अस्वस्थ मनुष्य न तो धर्म का यथावत् पालन कर सकता है, न धन कमा सकता है। काम का आनन्द भोगना उसके लिए सम्भव नहीं; और मोक्ष की तो बात ही जाने दीजिए। वस्तुतः जीवन की सार्थकता और सुख-प्राप्ति में स्वास्थ्य अर्थात् तन्दुरुस्ती का सबसे बड़ा उपयोग है। कहावत भी है 'एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत !' तन्दुरुस्ती एक तरफ और संसार के हजारों सुख एक तरफ। विद्या, बुद्धि, धन-वैभव, कीर्ति-सम्मान आदि सब तरह के सुख-साधन जिसको प्राप्त हैं वह यदि पूर्ण स्वस्थ नहीं है, तो उसके लिए वे साधन किस काम के ? तन्दुरुस्त भिखारी रोगी करोड़पति से अधिक सुखी रहता है। शरीर से चंगा गरीब आदमी, रूखा-सूखा जो कुछ भी मिले उसे सन्तोष से खा-पीकर पचा लेता है और मेहनत करके सुख की नींद सोता है; परन्तु रोगी धनवान बढ़िया से बढ़िया भोजन पाकर भी उसको खा ही नहीं सकता, क्योंकि पचा नहीं पाता। न तो वह अधिक चल-फिर सकता है, न अन्य श्रम कर सकता है, न सांसारिक भोगों को भोग सकता है और न सुख की नींद सो सकता है। इसलिए पूरे जीवन में सफलतापूर्वक संसारी सुख भोगने के लिए, विद्वत्ता, नेतृत्व, राजकार्य, व्यवसाय-नौकरी, धनोपार्जन, समाज और देश की सेवा, कीर्ति-अर्जन आदि सबके लिए सबसे पहली और अनिवार्य आवश्यकता तन्दुरुस्ती है। जीवन का सच्चा सार ही स्वास्थ्य है।

आयुर्वेद और स्वास्थ्य

सभ्यता के आरम्भ से ही हमारी जीवन-व्यवस्था में पूर्ण स्वास्थ्य और आरोग्य को ही प्राथमिक महत्त्व दिया गया है। हमारे पूर्वज पूर्ण स्वस्थ रहना मनुष्य का अनिवार्य धर्म मानते थे, इसलिए स्वास्थ्य-साधन के नियम भी धार्मिक आचरण का अंग बनकर, प्राचीन धार्मिक साहित्य में स्पष्ट मिलते हैं। भारतीय जीवन-विज्ञान--आयुर्वेद का तो उद्देश्य ही प्राथमिक रूप से स्वस्थों के स्वास्थ्य की रक्षा करना और द्वितीयतः रोगी की व्याधि का परिमोक्षण करना निर्धारित है--प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च।

वर्तमान काल में स्थिति बड़ी विचित्र और शोचनीय होती जा रही है। हर व्यक्ति को सुख प्राप्ति की स्वाभाविक कामना तो है, परन्तु सुख के यथार्थ आधार--स्वास्थ्य--के प्रति सुरुचि और सचेष्टता का प्रायः अभाव ही दिखाई देता है। लोगों का इतना ही कर्तव्य शरीर के प्रति रह गया है कि जब बीमार हो गये तब वैद्य-डाक्टर के पास भागे, और रोग को तुरन्त दमन करनेवाली दवा या इन्जेक्शन लेकर शरीर को काम चलाने लायक बना लिया। इस वृत्ति के परिणामस्वरूप जन-सामान्य की रोगक्षमता और जीवनी-शक्ति एकदम निर्बल होती जा रही है। मामूली कारणों से ही बात-की-बात में लोग बीमार पड़ने लगे हैं। अस्पतालों या वैद्य-डाक्टरों के यहाँ जहाँ भी देखिये, रोगियों की खासी भीड़ देखने को मिलती है। हमारी सरकार को करोड़ों-अरबों रुपए प्रतिवर्ष चिकित्सा के साधन बढ़ाने पर व्यय करने पड़ते हैं। फिर भी चिकित्सा-सुविधाएँ न के बराबर हो रही हैं। डाक्टरों की कमी को पूरा करने के लिए करोड़ों रुपयों की लागत के नये-नये मेडिकल कालेज खोले जा रहे हैं। सब तरह की दवाओं की खपत दिनों-दिन अधिक हो रही है और नित्य नई दवाओं का प्रचार बढ़ रहा है।

परन्तु इस तरह चिकित्सा के साधन बढ़ाते जाने से रोगों का अन्त और आरोग्य की स्थापना कभी नहीं हो सकती। ज्यों-ज्यों चिकित्सा-सुविधा बढ़ेगी, त्यों-त्यों मनुष्य स्वाभाविक स्वास्थ्य-साधन के प्रति उदासीन बनता जायगा।

रोग-निवारण हेतु चिकित्सा और औषध निश्चय ही आवश्यक हैं; परन्तु केवल रोगियों की रक्षा के लिए चिकित्सा-साधन विपुल बनाने मात्र पर सारी शक्ति लगा दी जावे और स्वस्थों की स्वास्थ्य-रक्षा पर उचित ध्यान न दिया जाय तो धीरे-धीरे वे भी रोगी होंगे, इस तरह रोगियों की संख्या बढ़ेगी और यह रोगों का कभी समाप्त न होने वाला क्रम बन जायगा।

वस्तुत: आवश्यकता यह है कि चिकित्सा-साधनों की आवश्यकता ही कम होती जावे। यह तभी हो सकता है कि लोग तन्दुरुस्ती का श्रेष्ठ महत्त्व समझें और दवाओं पर आश्रित रहने की अपेक्षा स्वाभाविक रूप से पूर्ण स्वस्थ रहने के प्रति सुरुचि-सम्पन्न, जागरूक और सचेष्ट हों।

पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों और सिद्धान्तों का ज्ञान हर व्यक्ति के लिए आवश्यक है। ज्ञान होने से भी अधिक अनिवार्य है उस ज्ञान का जीवन के आचरण-व्यवहार में सदुपयोग। स्वास्थ्य का महत्त्व हृदयंगम करके, उसके लिए तदनुकूल आचरण करने से ही स्वास्थ्य के स्थैर्य की प्राप्ति होगी। आचरण की प्रवृत्ति भावना-धारणा से होती है, इसलिए प्रत्येक मनुष्य को विद्यार्थी-जीवन से ही यह दृढ़ भावना बना लेनी चाहिए कि जीवन में पूर्ण स्वस्थ रहना सबसे बड़ी सफलता और समस्त सफलताओं का सुनिश्चित आधार है। स्वस्थ रहना उत्तम धर्म और रोगी होना सबसे बड़ा अपराध और महापाप है। रोग आरोग्य और कल्याण को नष्ट करते हैं।

सच्चे स्वास्थ्य की पहचान

बहुत लोग भारी-भरकम शरीर को ही स्वस्थ मान लेते हैं। कुछ लोग सोचते हैं कि जिसके शरीर में किसी रोग के कीटाणु न हों, वही स्वस्थ है; परन्तु यह दोनों बातें पूर्ण स्वास्थ्य की परिचायक नहीं हैं। आयुर्वेद में पूर्णत: स्वस्थ व्यक्ति की परिभाषा निम्न है :—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

अर्थात वही मनुष्य पूर्ण स्वस्थ है जिसके शरीर में वात अर्थात् स्नायुमण्डल

(Nervous system), पित्त अर्थात् पाचकाग्नि एवं रक्त-संवहन (Digestion and blood circulatory system) और कफ अर्थात् ओज (जीवनशक्ति) और मलोत्सर्ग (Vitality and Excretory system) यह तीनों ही निश्चित अवस्था में, बराबर-बराबर, एक समान हो और तीनों प्रणालियाँ यथावत् काम करती हों, जिसकी अग्नि सम हो अर्थात् तीव्र या मन्द न हो, जिससे खाये-पिये अन्नादि का पाचन ठीक से होता हो, समधातु, अर्थात् जिसकी रस, रक्त, मांस-मज्जा, आदि समस्त शरीर धातुएँ कम-बढ़ न हों, जिसकी मलक्रिया अर्थात् शरीरगत मलों को भीतर से बाहर निकालने वाली प्रणाली ठीक-ठीक कार्य करती हों, जिससे पाखाना, पेशाब, कफ और पसीना आदि मैल यथासमय नियमित निकलते रहते हों। इसके साथ ही जिसकी आत्मा, मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न एवं सन्तोषी रहें——वही स्थिति पूर्ण स्वास्थ्य की परिचायक है।

आयुर्वेद के मतानुसार मानव शरीर के रचानातत्त्वों में पंचमहाभूतों के अतिरिक्त आत्मा और मन को भी गिना जाता है। मानव शरीर मन प्रधान है, अतएव पूर्ण स्वास्थ्य में शरीर के साथ अन्तःकरण का स्वस्थ होना भी परम आवश्यक है। शरीर तो हृष्टपुष्ट और सर्वथा कीटाणुरहित हो; मुख्य घटक सम हों, शारीरिक क्रियायें भी नियमित हों, परन्तु अन्तःकरण यदि स्वस्थ और प्रसन्न नहीं है तो उस मनुष्य को पूर्ण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। ऊपर से स्वस्थ-सुखी दिखने वाला मनुष्य यदि भीतर से अशान्त एवं दुःखी है तो उसको यथार्थ में पूर्ण स्वस्थ कैसे माना जायगा ? पूर्ण स्वस्थ वही है जिसके निरोग और बलशाली शरीर में स्वस्थ और सशक्त मन का निवास है।

मानसिक स्वास्थ्य

पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा में मानसिक प्रसन्नता का सर्वोपरि महत्त्व है। अतएव स्वास्थ्य का ज्ञान करते हुए हमें सबसे पहले मानसिक स्वास्थ्य पर विचार करना चाहिए।

वायुः पित्तं कफश्चेति शारीरो दोष संग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च ॥

वात-पित्त-कफ यह शारीर दोष हैं। इसी प्रकार रज और तम मानस दोष

हैं। इन दोनों की वृद्धि से मानसिक अस्वास्थ्य उत्पन्न होता है। यद्यपि पश्चिमी देशों के मुकाबले हमारे देश में अभी भी मानसिक अस्वास्थ्य अधिक नहीं है तथापि हमारे नागरिक क्षेत्र के शिक्षित वर्ग में विशेषकर, अन्य मानसिक असन्तोष से उत्पन्न काम-क्रोध, भय, विषाद, उन्माद इत्यादि के रूप में विभिन्न मानसिक रोग पाये जाते हैं। भौतिक शिक्षा से काम-वासना, तृष्णा, लोभ और अति संग्रह की प्रवृत्ति से मानसिक असन्तुलन बढ़ता है, वही आधुनिक जीवन में मानसिक अस्वास्थ्य का प्रधान कारण है।

अति प्राचीन काल में ऋषि जीवन बिताने वाले भारतीय, यायावर स्थिति में रहा करते थे, अर्थात् किसी एक स्थान पर स्थिर न होकर पर्यटक की भांति यत्र-तत्र प्रवास करते थे। उनकी आवश्यकतायें सीमित थीं। अधिक सामग्री-संग्रह करने की न अपेक्षा थी, न सुविधा। इस प्रकार वे सन्तुष्ट और शान्त-मना रहा करते थे। कालान्तर में यायावर स्थिति को त्याग कर, वे समूह बना कर एक स्थान पर रहने लगे। धीरे-धीरे उनमें शालीनतापूर्वक रहने की इच्छायें जागृत हुई, इसलिए उन्होंने ग्राम और नगर बसाये। परिणामतः उनमें ग्राम्यदोष उत्पन्न हो गये। परिश्रम त्यागकर आलसी हो गये और संग्रहवृत्ति से उनमें मानसिक दोष उत्पन्न होने लगे। यायावर स्थिति में दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के लिये जो दैनिक परिश्रम करते थे, वह शालीनतापूर्वक रहने से समाप्त हो गया। उस नियमित श्रम के अभाव से शारीरिक गठन तो क्षीण हुआ ही, संग्रहवृत्ति से लोभ बढ़ा जिनसे उनका मन अस्वस्थ हुआ और यहीं से रोगों का श्रीगणेश हुआ। ऐसा विवरण चरक संहिता के विमान स्थान में दिया है।

आज के युग में मनुष्य का यायावर की भाँति रहना सभ्यता के प्रतिकूल समझा जाता है और वैसा जीवन संभव भी नहीं रहा। समूह के साथ गृहस्थी बनाकर रहना ही पड़ता है और जीवनोपयोगी वस्तुओं के संग्रह की प्रवृत्ति अपनानी पड़ती है, तथापि उपरोक्त विवरण मानस दोषों की उत्पत्ति के मूल कारण पर प्रकाश डालता है और यह स्पष्ट संकेत करता है कि जीवन की आवश्यकताओं को सीमित रखकर ही मनुष्य सदा मनोविकारों से बचा रह सकता है।

जब से हमारा नागरिक जीवन यूरोप की भाँति भौतिकता-प्रधान होता जा रहा है, तब से ही हमारे यहाँ मानसिक अस्वस्थता बढ़ रही है। निश्चय ही भौतिक विज्ञान की एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती। संसार की प्रगति से अपने को बिल्कुल ही अछूता बना कर तो हम रह नहीं सकते। तथापि हमें अन्धानुकरण से बचना चाहिए और पाश्चात्य सभ्यता की केवल उन्हीं बातों को ग्रहण करना चाहिए जो हमारे देश की स्थिति, जलवायु एवं परंपरा तथा सामाजिक जीवन से मेल खाती हों; जिससे कि हम मानसिक व्याधियों से बच सकें।

आत्मा की आवाज

मानसिक अस्वास्थ्य का मूल कारण है सुख-वासनावश अन्तरात्मा के विरुद्ध आचरण करना। मन, वचन और कर्म में जब विलगता एवं विपरीतता होती है, तब मनुष्य भीतर से अशान्त और दुखी रहने लगता है, अन्तरात्मा की इच्छा के प्रतिकूल, बाह्य परिस्थितिवश मनुष्य सोचता कुछ और है, कहता कुछ और है, और करता कुछ और है। आत्मा की आवाज को वह बिलकुल सुन नहीं पाता अथवा सुनकर भी उसकी अवहेलना करता है। अन्दर अचेतन उस अन्याय को अधिक सहन नहीं कर पाता, तो वह मनुष्य को चैन नहीं लेने देता। अन्तरात्मा प्रबल शक्ति-सम्पन्न है। उसके सशक्त प्रतिरोध के कारण मनुष्य के भीतर अन्तर्द्वन्द्व चलता है, उन सभी अनैतिक कार्यों के लिए दुःखी रहना पड़ता है, जिन्हें वह आत्मा की सदिच्छाओं के प्रतिकूल करता है। यह आन्तरिक दुःख, अशान्ति और असन्तोष ही मानसिक अस्वास्थ्य का मूल कारण है।

अत्यधिक आधिभौतिकवादी और तृष्णालु व्यक्तियों को सदा अन्तरात्मा के विपरीत कार्य करना पड़ता है, इसलिए वे भीतर से अहर्निश दुःखी रहते हैं। उनकी आत्मिक प्रसन्नता लुप्त हो जाती है, जिससे उनमें स्फूर्ति नहीं रहती और वे थकित, म्लान, अशान्त और पराजित से रहते हैं। आत्म-प्रसन्नता के बिना रहा भी नहीं जाता, इसलिए ऐसे लोग प्रसन्नता प्राप्ति के अन्य कृत्रिम प्रकारों से सुख प्राप्ति की चेष्टा करते हैं। यह चेष्टा ही व्यसन बन जाती है। दुःखी मन को बहलाने के लिए उपन्यासादि पढ़ना, नाटक, सिनेमादि देखना, व्यभिचार

करना, चाय, तम्बाखू, भंग और शराब आदि मादक द्रव्य पीना—यह सब कृत्रिम प्रसन्नता प्राप्त करने के अस्वाभाविक उपक्रम हैं। यह उपक्रम कभी मन को पूर्ण तुष्ट करने में सफल नहीं होते। इनसे धीरे-धीरे मन और भी अधिक अशान्त रहने लगता है, फलतः मनुष्य अति उद्विग्न रहने लगता है। उधर आत्मा की निरन्तर फटकार से वह स्वयं को दुःखी अनुभव करने लगता है। इन सब का परिणाम मानसिक विकारों की उत्पत्ति में होता है।

कुछ पाश्चात्य विचारक अतृप्त वासना को मानसिक विकारों का मूल कारण मानकर, वासना-तृप्ति को ही मानसिक स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य बताते हैं। इन पाश्चात्य विचारकों की यह धारणा है कि नारी के प्रति पुरुष या पुरुषके प्रति नारी के आकर्षण और 'अपोजिट सैक्स' में प्रेम का कारण काम-वासना मात्र है। इसी आधार पर बहन-भाई और माता-पुत्र के स्वाभाविक प्रेम में भी पाश्चात्य लोग काम-वासना को ही अन्तर्निहित आधार मानते हैं। यह धारणा बड़ी विचित्र है और हमारी सांस्कृतिक विचारधारा से एकदम उल्टी है। निश्चय ही पाश्चात्यों का यह निष्कर्ष सत्य नहीं है, क्योंकि समान योनि के भाई-भाई, पिता-पुत्र, माता-पुत्री और मित्रों में भी अविरल प्रेम होता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब कि समान योनि वाले एक-दूसरे के लिए प्राण देते देखे गये हैं। फिर यही कैसे मान लिया जाय कि विरोधी योनि वालों के पारस्परिक प्रेम का मूल कारण काम-वासना मात्र ही है।

मनोविकारों की जननी-कामवासना

आजकल के मनोवैज्ञानिक (Psychologists) अतृप्तवासना को ही मानसिक रोगों की उत्पत्ति में मूल कारण समझते हैं। नारी तथा पुरुष के पारस्परिक प्रेम का आधार वे कामवासना मानते हैं। माता-पुत्र, भाई-बहन के प्रेम में भी वे इसी को कारण समझते हैं। यह विचार भारतीय सिद्धान्तों तथा मान्यताओं के नितान्त विरुद्ध है। वात्सल्यस्नेह और भाई-बहन का स्नेह एक पवित्र मनोभाव है जबकि कामवासना एक मर्यादा में स्वीकृत अलग मनोभाव है जिसे सदा नियमित और संयमित रखने के लिए ही हिन्दू धर्मशास्त्रों में वैज्ञानिक

विवेचन किया गया है। अपोजिट सैक्स सदा ही कामवासना जनक है इसे भारतीय मनोविश्लेषक स्वीकार नहीं करते।

यह निश्चित है कि प्राणी मात्र में सुख प्राप्ति की कामना रहती है। सुखों में जननेन्द्रिय-सुख सर्वाधिक मधुर होता है। इसीलिए जननेन्द्रिय से मिलने वाला सुख सर्वोपरि आनन्ददायक होता है। आयुर्वेदीय विचारधारा में काम-वासना को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। वाजीकरण प्रयोगों में श्रेष्ठ स्त्री-संभोग भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह सब कुछ है, फिर भी केवल अतृप्ति काम-वासना मात्र को मानसिक विकारों का कारण और उसकी तृप्ति को ही उनका निवारण मानना सर्वथा सत्य नहीं है। काम-वासना ऐसी इच्छा है, जो निरन्तर संभोग से कभी तृप्त नहीं होती; दिन-दूना बढ़ती है और अन्ततः अति काम-संभोग ही मानसिक विकार एवं स्नायुदौर्बल्य का कारण बन जाता है। इसलिए मानसिक आरोग्य के लिए काम-वासना का सन्तुलन ही सर्वोपरि और यथार्थ साधन है। इच्छा का दमन अभिप्रेत नहीं, परन्तु ऐसी मनःस्थिति का निर्माण अभिप्रेत है जिसमें काम वासना प्रबल न हो।

आयुर्वेद के मतानुसार मानसिक रोगों की उत्पत्ति के प्रधान कारण रज और तम दोष हैं। इनसे उत्पन्न काम-क्रोध-लोभ-मोह-ईर्ष्या-भय-अति चिन्ता और मनो-दैन्य (दिमागी कमजोरी) है। इन विकारों का जनक मुख्यतः मनुष्यों का प्रज्ञापराध है। महर्षि चरक ने सत्य ही कहा है कि :—

प्रज्ञापराधो हि मूलं रोगाणाम्।

अर्थात्—मानव-बुद्धि की अनवधानता से होनें वाली भूलें ही रोगों का मूल कारण है। मानसिक रोगों का हेतु तो निश्चित रूप से प्रज्ञापराध ही है—

ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादयश्च ये।
मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः ॥

अर्थात्—जो भी मन के विकार हैं वे सब के सब प्रज्ञापराध से ही उत्पन्न होते हैं। अतएव मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रज्ञापराधों से बचना पहला कर्त्तव्य है।

मानसिक नीरोगता की प्राप्ति का सर्वोपरि उपाय यही है कि इच्छाओं में अधिक आसक्ति न रख कर जीवन की आवश्यकताओं को सीमित करें और

साधन-बहुलता एवं अतिसंग्रह की प्रवृत्ति से दूर रहें। निश्चय ही सन्तोष और संयम मानसिक प्रसन्नता के आवश्यक अंग हैं। कहा भी है।

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च सन्तुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥

मन के सन्तोष से करोड़पति और दरिद्र का भेद नहीं रहता। तृष्णायुक्त धनवान दरिद्र से बुरा और तृष्णाविरत निर्धन, धनवान से अधिक सुखी तथा स्वस्थ रहता है। सन्तोष का सम्बल बहुत बड़ी शक्ति है। मन सन्तोषी होगा तो उसमें विकार उत्पन्न होने का कारण ही नहीं।

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

विषयों पर ही निरन्तर ध्यान जमा रहने से वही मन में रम जाते हैं। मन और विषयों के इस संग-संयोग से काम-वासना उत्पन्न होती है; और उसमें किंचित् भी व्यवधान पड़ा कि क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से सम्मोह अर्थात् कर्तव्याकर्त्तव्य की अज्ञानता उत्पन्न होती है; उससे स्मृति का नाश हो जाता है। फिर यह ज्ञान नहीं रहता कि अमुक अहित आचरण से अमुक हानि हुई थी अथवा अमुक वस्तु खाने से अमुक दुःख हुआ था। इस प्रकार का ज्ञान न रहने से मनुष्य बार-बार भूलें करता है; उसे ही स्मृतिनाश कहते हैं। स्मृतिनाश से बुद्धिनाश हो जाता है और फिर सर्वनाश निश्चित ही है।

रागद्वेषविमुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

मनुष्य की बुद्धि राग-द्वेष से विमुक्त होकर विषयों का सेवन करे तो अन्तरात्मा में सन्तोष होता है, मनुष्य को स्वाभाविक शान्ति सुलभ रहती है। मनःशान्ति और बुद्धि-नियमन आहार-विहार में नियमित होने से प्राप्त होते हैं।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥ --योगसूत्र

आहार की शुद्धता अर्थात् खान-पान में नियमित रहने से सत्त्व (मन) शुद्धि होती है। सत्त्व शुद्धि से स्मृति अर्थात् बुद्धि सन्तुलित होती है। स्मृति शुद्धि से आत्मज्ञान बढ़ता है, जिससे मानसिक ग्रन्थियों (Complexes) का पराभव होता है।

आहार-नियम के अतिरिक्त मानसिक आरोग्य के लिए मनोनिग्रह का अभ्यास सर्वोपरि है। मनोनिग्रह विषयासक्ति से निश्चित छुटकारा दिलाता है।

मनोनिग्रह सात्त्विक आचरणों से सुगमतापूर्वक साध्य होता है। सात्त्विक आचरणों की भूमिका का निर्माण सन्ध्या-वन्दन, अग्निहोत्र, ध्यान, जप और दान आदि आदर्श प्रवृत्तियों से होता है।

शरीर और मन का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। शारीरिक क्षीणता से जब मस्तिष्क कमजोर होता है तो अनिद्रा, अस्थिरता, भ्रम, अशान्ति, भय, घबराहट आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं जो मानसिक उद्वेगों को बढ़ाते हैं। बाल्यकाल से ही आयुर्वेदीय स्वस्थवृत का अभ्यास रहे तो रात-दिन परिश्रम करने पर भी शारीरिक क्षीणता नहीं होती और जीवन में मानसिक आनन्द भी बना रहता है। छात्र जीवन आजकल कुछ विचित्र होता जा रहा है। शिक्षक गुरुओं के प्राचीन दायित्व से कतराते हैं और छात्रों का संग भी कुछ विकृत होता जा रहा है इस कारण बहुत पहले से ही बालक या तरुण का मानसिक और शारीरिक विकास यथोचित नहीं हो पा रहा है। इसलिए माता-पिता या अभिभावक को बालक के विकास की ओर विशेष सतर्कता बरतने की आवश्यकता होती है ताकि उससे प्रज्ञापराध न बन पावे।

मानसिक स्वास्थ्य हमारे शारीरिक स्वास्थ्य की आधारशिला है। स्वस्थ मन के बिना स्वस्थ शरीर की कल्पना ही गलत है। वस्तुत: शरीर की प्रमुख संचालिका गति-शक्ति मन ही तो है। मन ही मस्तिष्क है। शरीर उसका आवरण मात्र है। भीतर के तत्त्व का सीधा और प्रत्यक्ष प्रभाव आवरण पर होता है। मन की स्थिति का प्रतिबिम्ब शरीर पर निश्चित पड़ता है। यही कारण है कि क्रोधी, लोभी, कामी और ईर्ष्यालु मनःस्थिति वाले मनुष्यों की

आकृति एवं शारीरिक स्थिति में स्पष्ट विभिन्नता दिखाई देती है। क्रोधी व्यक्ति का शरीर सूखा---सा और मुखाकृति रूखी एवं कठोर देखने में आती है। जिसका अन्तःकरण स्वस्थ होगा, उसका शरीर निश्चित ही स्वस्थ होगा। मन तो बीज है। बीज के अनुरूप ही वृक्ष और फल होता है। अशक्त बीज से सशक्त वृक्ष और फल मिलता ही नहीं। इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य की उत्तमता के लिए मानसिक स्वास्थ्य की उत्कृष्टता निश्चित ही अनिवार्य है।

अतएव हमारा मन सदा स्वस्थ रहे, इसके लिए दैनिक जीवन में संयम-नियम, संतोष और मनोनिग्रह का अभ्यास निरन्तर रखना चाहिए। इस अभ्यास का सर्वोत्तम साधन अध्यात्म-भावनापूर्वक परमात्मा की उपासना करना है।

शारीरिक स्वास्थ्य

शरीर की कर्मेन्द्रियों का यथावत् पूर्ण सक्रिय, सशक्त और स्फूर्तिसम्पन्न रहना ही शारीरिक स्वास्थ्य है। शारीरिक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि और स्थैर्य वस्तुतः आचरण पर अधिक निर्भर है। इसीलिए आयुर्वेद में ज्ञान से भी प्रमुख महत्व आचरण को दिया गया है। जो सत्साहित्य एक बार पढ़ा जाय उसको दैनिक जीवन के अभ्यास में सम्मिलित कर लिया जाय, इससे ज्ञान परिपक्व होता है और फलदायी भी।

दैनिक कार्यों के परिश्रम से शरीर की शक्तियाँ और रसधातु आदि का जो व्यय होता है, उसकी पूर्ति के साथ ही अतिरिक्त शक्ति संचय का प्रयास शारीरिक स्वास्थ्य का साधन है।

शरीर एक स्वसंचालित मशीन के समान है। निरन्तर चलते रहने से जैसे मशीन के पुर्जे घिसते हैं, वैसे ही काम-काज के श्रम से हमारे देहाणु (Cells) भी घिसते टूटते हैं। जैसे मशीन की सुरक्षा के लिए उसमें यथासमय तेल देना और उसको बीच-बीच में बन्द रखना जरूरी है, वैसे ही शरीर-रूपी मशीन को भी आवश्यक खुराक स्निग्धता और विश्राम मिलना चाहिए। इनके अभाव में मशीन के समान मानव शरीर भी टूटने लगता है।

शारीरिक शक्ति-संचय और स्थैर्य ही शरीर स्वास्थ्य का लक्षण है। इसके लिए प्रातर्विधि, दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या का पालन स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाले आसात्म्य आहार–विहार का त्याग, सर्वत्र सर्वप्रकार से स्वच्छता का ध्यान–यह शारीरिक स्वास्थ्य की मूल भित्ति है।

मनुष्य संपर्क के दुर्गुणों से बचकर, देखा-देखी अहितकर आचरण न करे, क्षणिक और अस्वाभाविक आनन्द प्राप्ति के लोभ में मादक द्रव्यों का व्यसन न करे, शक्ति से अधिक श्रम न करे, भोग-विलास में अति न करे, आहार-विहार, विश्राम और संयम के नियमों पर दृढ़ रहकर, आयुर्वेदीय स्वास्थ्य सिद्धान्तों को दैनिक जीवन के व्यवहार में अपना ले तो प्रत्येक मनुष्य निश्चित रूप से पूर्ण स्वास्थ्य लाभ कर सकता है।

स्वास्थ्य के तीन उपस्तम्भ

भारतीय जीवन-विज्ञान—आयुर्वेद—में पूर्ण स्वास्थ्य के निश्चित स्थैर्य हेतु तीन मूल आधार माने गये हैं;

त्रयः उपस्तंभा इत्याहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति।
एभिस्त्रिभिर्युक्तियुक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैः शरीरम्।
बलवर्णोपचयोपचितमनुवर्तते यावदायुः संस्कारात्।

चरक संहिता के इस उद्धरणानुसार पूर्ण स्वस्थ मानव-शरीर तीन उपस्तम्भों (आधारों) पर निर्भर रहता है। **आहार** अर्थात संतुलित भोजन, **स्वप्न** (निद्रा) अर्थात पूर्ण विश्राम और **ब्रह्मचर्य** अर्थात संयम। इन तीनों उपस्तम्भों को युक्तियुक्त रखने से शरीर सदा ही पूर्ण स्वस्थ रहकर दीर्घायु होता है।

कितना सत्य और सुनिश्चित सिद्धांत है। जैसे तीन पायों की तिपाई तभी तक खड़ी रह सकती है, जब तक उसके तीनों पाये यथावत् रहें। एक भी पाया टूटा तो तिपायी गिर जायगी। यही स्थिति पूर्ण स्वस्थ शरीर-रूपी तिपायी की है।

तीन उपस्तम्भों पर आधारित पूर्ण स्वास्थ्य का यह आयुर्वेदीय सिद्धांत अवस्थानुसार बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब के लिए समान रूप से हितकर और व्यावहारिक हैं। स्वाभाविक रूप से पूर्ण स्वस्थ और दीर्घजीवी बनने के लिए

इन तीन उपस्तम्भों को समान रूप से सुदृढ़ रखना चाहिए। एक के बिगड़ते ही शेष दो स्वतः अशक्त हो जावेंगे। आहार अर्थात् भोजन में नियमित न रहें तो निद्रा और ब्रह्मचर्य कदापि यथावत् नहीं रह सकते। इसी प्रकार निद्रा (विश्राम) में नियमित न रहे तो आहार में अनियमितता अपने आप आ जायगी। आहार या विश्राम में असन्तुलन से ऐसी मनःस्थिति रह ही नहीं सकती जिसमें ब्रह्मचर्य (संयम) का यथोचित पालन हो सके।

निश्चित समय पर, नियमित भूख लगते ही, पाचन शक्ति के अनुकूल उचित मात्रा में संतुलित और पौष्टिक भोजन करना, शरीर थकने पर उचित विश्राम लेना और निश्चित समय पर सुख निद्रा में सोना, इन्द्रियों का सीमित और संतुलित उपभोग करते हुए ब्रह्मचर्य से रहना, ये तीन बातें पूर्ण स्वास्थ्य के मूल आधार हैं।

स्वास्थ्य-साधन के प्रसंग में ब्रह्मचर्य का अर्थ उचित मात्रा में, कामवासना की संतुष्टि हेतु भोग-विलास करते हुए, इन्द्रिय संयमपूर्वक जीवन रखना तो है ही, इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य से यहाँ उत्कृष्ट आचरण का भी संकेत है।

पहला उपस्तम्भ

आहार (भोजन)

पूर्ण स्वास्थ्य के तीन मूल आधारों में प्रथम स्थान आहार का है। मुख्य रूप से अन्न-पानादिक भोजन ही आहार की संज्ञा में गिने जाते हैं तथापि अन्नादि के अतिरिक्त जल और वायु भी शरीर के लिए अनिवार्य आहार हैं। शरीर की क्षतिपूर्ति और शक्त्यर्जन तो केवल भोजन से ही होता है। जल भोजन का प्रधान सहायक है, उससे भोजन के पाचन-प्रचूषण में सहायता मिलती है। शरीर के तीन अनिवार्य घटक हैं भोजन, जल और वायु—यह तीनों ही त्रय उपस्तम्भ में आहार के अन्तर्गत आ जाते हैं। अतएव इस अध्याय में हम भोजन के अतिरिक्त जल और वायु पर भी विचार करेंगे।

आहारः प्राणिनः सद्योबलकृद्देहधारकः ।
आयुस्तेजः समुत्साहः स्मृत्योजोऽग्निविवर्धनः ॥

आहार अर्थात् भोजन ही प्राणियों को नया बल और देह धारण करने की शक्ति देने वाला है। आहार से ही आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज (जीवशक्ति) तथा शरीराग्नि की वृद्धि होती है। अपने इन गुणों को 'सार्थक करने वाला भोजन किस प्रकार का होना चाहिए, इस संबन्ध में श्रीमद्भगवद्गीता में सात्विक भोजन कह कर वर्णन किया गया है।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकाः प्रियाः।

जो भोजन समस्त रसतत्वों वाला सुरस अर्थात स्वादिष्ट हो, स्निग्ध अर्थात् चिकनाई युक्त हो, शरीर को स्थैर्य देने की शक्ति रखता हो, हृदय, दिल और दिमाग को ताकत देने वाला हो, सुविधापूर्वक पचने वाला और प्रिय हो वह सात्त्विक आहार है।

आधुनिकों ने सन्तुलित भोजन (Balanced Diet) को सर्वोपरि माना है। वस्तुतः गीता में वर्णित उक्त सात्विक आहार ही सन्तुलित भोजन है। हमारे पूर्वजों ने संतुलित भोजन को मात्राहार और षट् रसयुक्त हित भोजन कहकर प्राचीन ग्रंथों में वर्णन किया है।

षट्त्रिंशतं सहस्राणि रात्रीणां हितभोजनः।
जीवत्यनातुरो जन्तुर्जितात्मा संमतः सताम्॥

हित भोजन अर्थात् सन्तुलित पथ्य भोजन ग्रहण करने वाला संयमी व्यक्ति छत्तीस हजार रात्रि अर्थात् सौ वर्ष तक पूर्ण निरोग अवस्था में जीवित रह सकता है।

भोजन के मुख्य कार्य

भोजन का मुख्य कार्य रस-रक्त आदि धातुओं को बढ़ाकर शरीर का विकास करना, क्षतिपूर्ति करना, अनिवार्य उष्णता और बल बनाये रखना तथा शरीर की जीवनी शक्ति को स्थिर करना है। आयुर्वेद का सिद्धान्त है। 'सामान्यं वृद्धि-कारणम्।' समान गुण-धर्म वाले पदार्थ से वृद्धि होती है। अतएव हमारे शरीर के निर्माण में जिन-जिन तत्त्वों का समावेश है, उन-उन तत्त्वों की क्षतिपूर्ति और बढ़ोत्तरी, उन ही तत्त्वों वाले अन्नादि पदार्थ खाने से हो सकती है। इस विचार से हम भोज्य पदार्थों के मुख्यतः चार भाग कर सकते हैं—

१. वे पदार्थ जिसमें रस-रक्तादि धातुओं और स्नायुओं की वृद्धि तथा शारीरिक क्षतिपूर्ति करने वाले तत्त्व हों जैसे दूध, अण्डा, मांस और दाल।

२. वे पदार्थ जो शरीर को आवश्यक उष्णता प्रदान करते हैं जैसे आटा, चावल, चीनी, आलू आदि।

३. वे पदार्थ जो शरीर को जीवशक्ति-सम्पन्न बनाकर शक्ति का कोष भी संचित करते हैं जैसे घी, मक्खन और तेल आदि स्नेह पदार्थ।

४. वे पदार्थ जो भोजन के पाचन-प्रचूषण में सहायता करते हैं, जैसे जल, पेय, खनिज पदार्थ, पाचकांश और विटामिनें।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने नवीन दृष्टिकोण से खोज करके यह निश्चित कर दिया है कि शरीर-निर्माण में कौन-कौन तत्त्व कितने अनुपात में सन्निहित हैं। तदनुसार उन्होंने यह भी निर्धारित कर दिया है कि शरीर-पोषण हेतु उन तत्त्वों में कौन-कौन कितने परिमाण में मनुष्य को अपने भोजन में ग्रहण करना चाहिए। आधुनिक विज्ञान के इस नवीन ज्ञान से अवश्य लाभ उठाना चाहिए। संसार के अन्य देशों ने नये ज्ञान से अपना भोजन स्तर उत्कृष्ट बना लिया है और हम भी अपना भोजन स्तर श्रेष्ठतर बना सकते हैं, क्योंकि १९६० में विश्व स्वास्थ्य-संगठन द्वारा सम्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय भोजन-स्तर जांच में हमारे देश का भोजनस्तर सबसे निकृष्ट सिद्ध हुआ। भारतवासियों को यह कलंक मिटाना चाहिए और अपना भोजन-स्तर उठाकर अधिक स्वस्थ एवं दीर्घायु बनना चाहिए।

भोजन का सांयोगिक संगठन

आधुनिक विज्ञान के मतानुसार मानव शरीर का सांयोगिक संगठन मुख्यत: प्रोभूजिन (Protiens), स्नेह (Fats), प्रांगोदीय (Carbohydrates), खनिज (Mineralas) और जल (Water) से हुआ है। इन्हीं तत्त्वों वाले संतुलित भोजन से शरीर का पोषण और अभिवृद्धि होती है।

किस भोज्य पदार्थ में कौन-कौन सांयोगिक तत्त्व कितनी-कितनी मात्रा में विद्यमान रहते हैं, इसका ज्ञान बड़ा उपयोगी है, अतएव हम आगे विभिन्न धान्यों और खाद्यों की एक संक्षिप्त सांयोगिक संगठन-तालिका दे रहे हैं।

अन्न

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदीय	प्रोटीन	स्नेह	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A — I U प्रति १०० ग्रामों में	खाद्योज B C — मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में
बाजरा (Bajra) या वज्रान्न	६७.१	११.६	५.०	१०२	२२०	३३३...
जव (Barley)	६९ ३	११.५	१ ३	९५		४५४...
ज्वार (Millet)	७४.०	१०.४	१.९	१०१	१३६	३४७...
मकई (Maize, Tender)	१५.१	४ ३	०.५	२३	४२	५०.६ ..
मकई सूखा (Maize, Dry)	६६.२	११.१	३.६	९७		१०१...
चावल घर के कुटे (Rice home pounded parboiled)	७७.४	८.५	०.६	९९	१५	३९४...
चावल मशीन के कुटे (Rice, milled parboiled)	७९.१	६.४	०.४	९८		२१३...
गेहूँ (Wheat, Whole)	७१.२	११.८	१.५	९८	१०८	६६०...
गेहूँ का आटा (Wheat flour, whole)	७२.२	१२.१	१.७	१००		
गेहूँ का मैदा (Wheat flour, refined)	७४.१	११.०	०.९	९९		१२१...

द्विदल वर्ग दालें
(Pulses)

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A	B	C
					I U प्रति १०० ग्राम में	मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में	
चना (Bengal Gram)	६१·२	१७·१	५·३	१०३	३१६	३०२	..
उर्द (Black Gram)	६०·३	२८·०	१·४	९९	६४	४२२	..
मूंग (Green Gram)	५६·६	२४·०	१·३	९५	१५८	४६५	..
अरहर की दाल (Red Gram)	५७·२	२२·३	१·७	९५	२२०	४५२	..
सूखे मटर (Peas, Dry)	५६·६	१९·७	१·१	९८	..	४५०	..
भूना मटर (Peas, Roasted)	६३·५	२२·९	१·४	१०२	..	..	..
मसूर (Lentil)	५९·७	२५·१	०·७	१००	४५०	४५०	..
सोयाबीन (Soya-bean)	२०·९	४३·२	१९·५	१२३	७१०	९०२	..
कुलथी (Hoarse Gram)	५७·३	२२·०	०·५	९१	११९	१.५	..

पत्तीदार साग

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A	B	C
बन्दगोभी (Cabbage)	६.३	१.८	०.१	९	२,०००	१८०	१२४
गाजर का पत्ता (Carrot leaves)	४.३	५.१	०.५	१६	..	..	०.४
हरा धनियाँ (Coriander)	६.५	३.३	०.६	१३	१३,०००	६१	१३५

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A I U प्रति १०० ग्रामों में	B मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में	C मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में
गंधला (Cyrry leaves)	१६·०	६·१	१·०	२८	१२,६००	२.३	४
सहजन (Drum Stick) या शिग्रु	१३·४	६·७	१·७	२७	११,३००	२११	२२०
मेथी (Fenugreek)	९·८	४·९	०·९	१९	३,९००	२११	..
पोदीना (Mint)	८·०	४·८	०·६	१६	२,७००	..	..
नीम (Neem)	२१·२	११·६	३·०	४५	४,६००	..	..
पालक (Spinach)	४·०	१·९	०·९	९	३,०००	२७०	४८
सोया का साग (Soya leaves)	१०·८	६·०	०·५	२०	...	१६०	..

कन्द—मूलादि

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	केलोरी प्रति औंस	A	B	C
चुकन्दर (Beet roots)	१३·६	१·७	०·१	१९	अत्यल्प	३००	८८
गाजर (Carrot)	१०·७	०·९	०·२	१३	३,०००	२००	३
प्याज (Onion)	११·६	१·२	०·१	१४	..	१३०	११
आलू (Potato)	२२·९	१·६	०·१	२८	४०	७१	१७
मूली (Radish)	४·२	०·७	०·१	६	३	२००	१५
शकरकंद (Sweet potato)	३१·०	१·२	०·३	३७	१०	४०	२४
जमीकंद (Yam, elephant)	१६·४	१·२	०·१	२२	४३४	१३०	अत्यल्प
रताल्रू (Yam, ordinary)	२७·०	१·४	०·१	३३	..	७२	अत्यल्प
अरवी (Colocasia)	२२.१	३·०	०.१	२९	४०	२७०	अत्यल्प

अन्य साग

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A I U प्रति १०० ग्रामों में	B मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में	C मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में
करेला (Bitter gourd)	४·२	१·६	०·२	७	२१०	१६२	८८
बैंगन (Brinjal)	६·४	१·३	०·३	१०	५	१३६	२३
लौकी (Calobash Cucumber)	२·९	४·५	०·१	४	अत्यल्प	१०	..
गोभी (Cauliflower)	५·३	३·५	०·४	११	३८	४११	६६
गौर की फली (Cluster beans)	९·९	३·७	०·२	१६	३३०	..	४९
काकरी (Cucumber)	२·८	०·४	०·१	४	अत्यल्प	९४	७
कटहल बीज (Jack-fruit seeds)	३८·४	६·६	०·४	५२	..	..	..
भिंडा (Okra)	७·७	२·२	०·२	१२	५८	६३	१६
विलायती लहसुन (Leeks)	१७·२	१·८	०·१	२२	३०	२२५	११
आम (Mango, green)	८·८	०·७	०·१	११	१५०	०.२	३
आमला (Nellikai)	१४·१	०·५	०·१	१७	..	..	६००
मटर (Peas, English)	१९·८	७·२	०·१	३१	३९	३७०	९
कद्दू (Pumpkin)	५·३	१·४	०·१	८	८४	१००	२
तोरई (Ridge gourd)	३·७	०·५	०·१	५	५६	६६	..

स्नेहल बीज तथा शुष्क फल

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A	B	C
					I U प्रति १०० ग्रामों में	मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में	
बादाम (Almond)	१०·५	२०·५	५८·९	१८६	अत्यल्प	२४२	..
काजू (Cashew-nut)	२२·३	२१·२	४६·९	१६९	१००	१९२	..
नारियल Cocoanut)	१३·०	४·५	४१·६	१२६	अत्यल्प	१४५	१
तिल (Gingeli seed)	२५·२	१८·३	४३·३	१६०	१००	४.४	..
मूंगफली (Ground nut)	२०·३	३६·७	४०·१	१५६	६३	१२१४	..
अलसी (Linseed seed)	२८·८	२०·३	३७·१	१५१	५०	.	..
राई (Mustard seed)	२३·८	२२·०	३९·७	१५१	२७०	४	अत्यल्प
पिस्ता (Pistachio-nut)	१६·२	१९·८	५३·५	१७८	२४०	१.४	..
अखरोट (Chestnut)	११·०	१५·६	६४·५	१९५	१०	४५०	..

फल

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A	B	C
सेव (Apple)	१३·४	०·३	० १	१६	अत्यल्प	१५०	२
केला (Plantain)	३६·४	१·३	०·२	४३	अत्यल्प	१८०	१
अंजीर (Fig)	१७·१	१·३	०·२	२१	२७०	५०	२
खजूर (Date, Persian)	६७·३	३·०	०·२	८०	६००	१२०	अत्यल्प

अंजीर (Fig)	१७·१	१·३	०·२	२१	२७०	५०	२
खजूर (Date, Persian)	६७·३	३·०	०·२	८०	६००	१२०	अत्यल्प

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	(स्नेह) वसा	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A I U प्रति १०० ग्रामों में	B मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में	C
अंगूर (Grapes, blue)	१०·२	०·८	०·१	१३	१५	१०·३	·३
कटहल (Jack fruit)	१८·९	१·९	०·१	४	५४०	०·४	१०
जामुन (Jambu fruit)	१९·७	०·७	०·१	२४	...	..	...
करौंदा (Kareanda, dry)	६७·१	२·३	९·६	१०३	...	...	...
नीबू (Lemon)	१०·९	१·५	१·०	१७	२६	०·१	६३ (रस)
कैरी (कच्चा आम) (Mango, green)	८·८	०·७	०·१	११	१५०	३०	३
आम (Mango, ripe)	११·८	०·६	०·१	१४	४,८००	५०	१३
तरबूज (Water Melon)	३·४	०·१	०·२	५	अत्यल्प	०·२	·१
नारंगी (Orange)	१०·६	०·९	०·३	१४	३०५	१८०	६८
पपीता (Papaya, ripe)	९·६	०·५	०·१	११	२,०२०	२५	४६
आड़ू (Peaches)	७·६	१·५	०·२	११	अत्यल्प	०·२	·१
अनन्नास (Pine-apple)	१२·०	०·६	०·१	१४	६०	१२०	६३
नासपाती (Pear, country)	११·५	०·२	०·१	१३	१४	३०	अत्यल्प
अनार (Pomegranate)	१४·६	१·६	०·१	१८	...	१०	१६
किशमिश (Raisin, preserved)	७७·३	२·०	०·२	९१	...	२२५	अत्यल्प
स्ट्राबेरी (Strawberry)	९·८	०·७	०·२	१२	...	...	५३

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	(स्नेह) वसा	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A	B	C
					I U प्रति १०० ग्रामों में	मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में	
टमाटर (Tomato, ripe)	३·९	१·०	०·१	६	३२०	१८०	३२
कैंथ (Wood apple)	१५·५	७·३	०·६	२८	...	१७०	...
इमली (Tamarind pulp)	६७·४	३·१	०·१	८२	१००	०·७	३
बेर (Plum)	१२·८	०·८	०·१	१६	७०	...	...
आमरूद (Guave, Country)	१४·५	१·५	०·२	१९	अत्यल्प	३०·२	१९९

मांस—गोश्त

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	(स्नेह) वसा	केलोरी प्रति औंस	A	B	C
बतक का अण्डा (Eggs, Duck's)	०·७	१३·५	१३·७	५१	२,१००	०·२	...
मुर्गी का अण्डा (Eggs, Fowl's)	...	१३·३	१३·३	४९	२,२००	अत्यल्प	...
मछली (Fish, Mangalor, big)	...	२२·६	०·६	२६	३५	२·०	...
कलेजी (Liver, Sheep)	१·४	१९·३	७·५	४३	२२,३००	२,०७६	२०
बकरी का गोश्त (Mutton muscle)	...	१८·५	१३·३	५५	३१	४५·६	...
सूअर का गोश्त (Pork muscle)	...	१८·७	४·४	३२	अत्यल्प	१९०	२
मुर्गा (Fowl)	...	२५·९	०·६	३१	...	...	...

मुर्गी (Fowl)	...	२५·९	०·६	३१	...	...	...

दूध-दही

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A	B	C
					I U प्रति १०० ग्रामों में	मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में	
गाय का दूध (Milk, Cow's)	४·८	३·३	३·६	१८	१८०	२५१	२
भैंस का दूध (Milk, Buffalo's)	५·१	४·३	८·८	३३	१६२	...	...
बकरी का दूध (Milk, Goat's)	४·७	३·७	५·६	२४	१८२	४०	...
स्त्री का दूध (Milk, Human)	७·०	१·०	३·९	१९	२·८	३०	...
दही (Curds)	३·३	२·९	२·९	१४	१३०	६०	...
मठा (Butter-milk)	०·५	०·८	१·१	४	अत्यल्प	...	...
पनीर (छेना) (Cheese)	६·३	२४·१	२५·१	९९	२७३	...	...
दूध का पाउडर (Skimmed milk powder)	१·०	३८·०	०·१	१०१	...	५७	...

संकीर्ण

पान (Betel leaves)	६·१	३.१	०·८	१२	९,६००	३१	५
नारियल,ताजा (Cocoanut tender)	६·१	०.९	१·४	११	...	...	२
नारियलका पानी (Cocoanut water)	४·०	०.१	०·१	५	..	...	...

खाद्य द्रव्य	प्रांगोदय (कार्बोज)	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	केलोरी प्रति औंस	खाद्योज A	B	C
					I U प्रति १०० ग्रामों में	मिलीग्राम प्रति १०० ग्रामों में	
मछली का तेल (Cod liver oil)	...	...	१००	२५६	६०,००० से २,००,०००	१·०	...
गुड़ (Jaggery)	९५	०·४	०·६	१०९	२८०	१·०	...
गन्ना, ईख (Sugarcane)	२०·५	०·१	०·१	२४	...		
ताड़ी (Toddy)	१·३	०·२	०·१	२	...	१५	...
खमीर (Yeast)	३९·१	३९·५	०·६	९१	११०	१०,०४०	...
मधु (Honey)	८०	...	...	९८	...	...	अत्यल्प

१ मिलीग्राम = $\frac{१}{१०००}$ ग्राम; २८·५ ग्राम = १ औंस।

I. U. = International Unit (खाद्योज A का असर I. U. से नापा जाता है।)

केलोरी = खुराक की ऊष्मा (शक्ति) प्रदान की क्षमता नापने का यूनिट (ईकाई), जो १,००० ग्राम (१५,००० ग्रेन) पानी को १५° से १६° सें० गरम करने की जितनी शक्ति का व्यय होता है, उसके बराबर है।

भोजन के पौष्टिक पदार्थ

दूध

क्षीरघृताभ्यासो रसायनानाम् श्रेष्ठतमः ।

आयुर्वेद के मतानुसार शरीर को परिपुष्ट और एक प्रकार से नया बना देने वाले रसायन तत्वों में दूध और घी सर्वश्रेष्ठ हैं। दूध में शरीर की क्षतिपूर्ति करके रस-रक्तादि धातुओं को विवर्द्धित कर अंग-प्रत्यंग का विकास करने वाले तत्त्व प्रभूत मात्रा में होते हैं।

विश्ववन्द्य महात्मा गांधी ने 'आरोग्य की कुंजी' नामक पुस्तक में दूध के विषय में लिखा है की–"मैं शाकाहार का पक्षपाती हूँ। मगर अनुभव से मुझे यह स्वीकार करना पड़ा है कि दूध और दूध से बनने वाले पदार्थ जैसे मक्खन, दही आदि के बिना मनुष्य शरीर पूरी तरह टिक नहीं सकता।.... मैं १९१७ में सख्त पेचिस का शिकार बना। शरीर हाड़-पंजर हो गया। मैंने हठपूर्वक दूध या छाछ लेने से इन्कार किया। शरीर किसी तरह बँधता ही नहीं था।.... जो भी हो बकरी का दूध तुरन्त आया और मैंने वह लिया। लेते ही मुझमें नया चेतन आया। शरीर में शक्ति आयी। मैं खाट पर से उठा। इस तरह से और ऐसे अनेक अनुभवों से मैं लाचार होकर दूध का पक्षपाती बना हूँ।"

दूध वस्तुतः पूर्ण आहार है। जन्म से ही केवल माता का दूध पीकर बालक स्वस्थ रहकर विकास पाता है। यह दूध के पूर्ण आहार होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है। पर्याप्त मात्रा में केवल दूध लेकर मनुष्य आनन्द से पूरा जीवन बिता सकता है। केवल दूध पर निर्भर रहने के लिए उसकी मात्रा अधिक होनी चाहिए। थोड़ा भी अन्न साथ लेने से दूध की मात्रा कम ही चल सकती है। युवा अवस्था का व्यक्ति यदि केवल दूध दिन भर में तीन सेर से कम लेवे तो उसका वजन घटने लगेगा, परन्तु दस तोला ही अन्न एक सेर दूध के साथ लेते रहने से शरीर का वजन और शक्ति यथावत बनी रहेगी। दूध को आम के रस में मिला कर लेने से शरीर की उत्तम पुष्टि होती है इसी प्रकार दही के साथ केले का प्रयोग भी शरीर का

१ गांधीजी के विचार से दूध शाकाहार न होकर प्राणिज भोजन है।

वजन बढ़ाने में अद्वितीय है। केवल आम या केला से कुछ नहीं होता, जब कि दूध या दही अकेला ही पर्याप्त मात्रा में लेने पर वजन बढ़ा सकता है।

दूध सदा ही स्वस्थ पशु का लेना चाहिए। बीमार पशु का दूध लेने से मनुष्य का रोगी हो जाना निश्चित है, क्योंकि अन्य आहारीय पदार्थों की अपेक्षा दूध में जीवाणु-पोषक शक्ति सर्वाधिक होती है। रोगी पशु के दूध में उसके रोग-कीटाणु अधिक सशक्त होते है. इसलिए उससे जीवाणुजन्य रोग होने की अधिक संभावना रहती है। दूध से उत्पन्न होने वाले रोग का आरम्भ तत्काल होता है और दूध का सेवन बन्द करते ही एकदम रोग बन्द हो जाता है।

जिसका बच्चा जीवित हो ऐसी स्वस्थ गाय का दूध अमृत समान है। स्वच्छ पात्र में दुहा हुआ धारोष्ण दूध यदि तुरन्त ही स्वच्छ वस्त्र से छानकर पिया जाय तो वह सर्वोत्तम होता है। दुहने के बाद यदि १०–१५ मिनट भी दूध रक्खा रहे तो वह विकृत हो जाता है। दूध को एक उफान देकर गर्म कर लेने से उसके रोगाणु नष्ट हो जाते है। अधिक देर आग पर रखने से भी दूध के उत्तम गुण क्षीण हो जाते है, और पचने में गरिष्ट भी हो जाता है। इसलिए दूध को एक उफान आने पर आग से उतार कर, शीतोष्ण करके पी लेना चाहिए। आज-कल वैज्ञानिक पद्धती से डेरीयों में ताजा दूध शुद्ध बोतलों में १००° सेण्टीग्रेड तक उबाल कर और ०° सेन्टीग्रेड तक ठण्डा करके भरा जाता है इसे दूध का पाश्चुरीकरण कहते है। इस विधि से दूध जीवाणु रहित हो जाता हैं, और उसे सीधा बिना उबाले लिया जा सकता है।

बाजारू दूध विश्वास योग्य नहीं होता और वह लाभ के स्थान पर हानि ही करता है। इसलिए किसी पूर्ण विश्वस्त ग्वाले या अच्छे डेरी फार्म का ही दूध लेना चाहिए। वैसे सबसे अच्छा तो यह है कि अपने घर में ही एक गौ रक्खें। इससे उत्तम दूध तो मिलेगा ही, गोबर के रूप में जलाने के लिए ईंधन या खेती-बारी अथवा बागवानी के लिए उत्तम खाद भी प्राप्त होगा। गाय न रख सके तो स्वस्थ बकरी ही रक्खें। इस से कम दैनिक व्यय में ही एक सेर शुद्ध दूध मिलेगा। बकरी का दूध अधिक हल्का, सुपाच्य और गुणदायक

होता है । गाय का उससे कम और भैंस का दूध तो इन दोनों की अपेक्षा पचने में गरिष्ट और बुद्धिनाशक होता है; क्योंकि भैंस स्वयं बुद्धिहीन पशु है । नीचे तालिका दी जा रही है ।

विविध प्राणियों के दुग्धों की संगठन तालिका

नाम प्राणी का दूध	जल %	वसा %	शर्करा %	प्रोटीन %	राख %	आयुर्वेदीय गुण
ऊँटनी	८६·५	३·१	५·६	४·०	०·८	
कुतिया	७५·४	९ ६	३·१	११·२	०·७	
गधी	९०·०	१·३	६·५	१·७	०·५	
गाय	८७·३५	३·७५	४·७५	३·४	०·७५	
घोड़ी	८९·१	१·६	६·१	२·७	०·५	
बकरी	८६·०	४·६	४·२	४·४	०·८	
भेड़	७९·४	८·६	४·३	६·७	१·००	
भैंस	८०·९	७·९	४·५	५·९	०·८	
सुअरिया	८९·६	४·८	३·४	१·३	०·९	
स्त्री	८८·२	३·४	६·४	१·७	०·३	
हथिनी	६७·८	१९·६	८·८	३·१	०·७	

दूध को पूर्णाहार की संज्ञा दी जाती है । इसमें जैसा कि तालिका से प्रकट है आहार के सभी घटक अच्छी मात्रा में पाये जाते है । दूध की प्रोटीनें बहुत उच्च प्रकार की होती है । इसमें केसीनोजन, लैक्टैल्ब्यूमिन तथा लैक्टोग्लो-ब्यूलिन नामक प्रोटीनें होती हैं । कार्बोजों में लैक्टोज मिलता है जो आँतों में ग्लूकोज तथा गैलेक्टोज में विभक्त हो जाता है । लैक्टोज लैक्टिक एसिड में बदल कर आन्त्र की सड़नक्रिया करने वाले जीवाणुओं को नष्ट कर देता है । दूध में घी बहुत सूक्ष्म बिन्दुकों के रूप में होने से बड़ी जल्दी पच जाता है । दूध में कई खनिज लवण जैसे--कैल्शियम, फास्फोरस पोटैशियम और सोडियम अच्छी मात्रा में होते हैं । वास्तव में दूध ही कैल्शियम प्राप्ति का सामान्य भारतीयों के लिए एक प्रमुख साधन है । दूध में विटामीन ए, बी, रीबोफ्लेवीन

तथा सी मिलते है । डी की मात्रा कम होती है । दूध के उबालने से विटामिन सी की मात्रा बहुत कम हो जाती है पर पाश्चुरीकरण से उसको कोई हानि नहीं होती । दूध को तेज रोशनी में खुला रखने से उसकी रीबोफ्लेवीन नामक विटामिन नष्ट हो जाती है ।

अन्य उच्चवर्गीय प्रोटीनों की अपेक्षा दूध की एक बड़ी विशेषता है । इसकी राख का क्षारीय होना जब कि मांस और मछली की राख अम्लीय होती है । इससे दूध पीने से शरीर का क्षारीय स्राव बढ़ता है । दूध के द्वारा अन्वस्थ् जीवांश (इंटेंस्टीनल फ्लोरा) का संरक्षण होता है जो मानव स्वास्थ्य एवं विटामिन उत्पादन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है ।

दूध के अतिरिक्त उससे बनने वाले अन्य पदार्थ भी स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभकर होते है । कमजोर हाजमे वालों या पेट के रोगियों के लिए दूध से बना दही, छाछ, मट्ठा और छेना आदि दूध से अधिक हितकारक होते है, क्योंकि इनमें चिकनाई का अंश कम रहता है, इसलिये हजम करने में शरीर को अधिक श्रम नहीं करना पड़ता । जिन्हें दूध कठिनाई से पचता हो, पेट में वायु करता हो या दस्त लगता हो, उन्हें दूध के स्थान पर दही लेना चाहिए । गर्म जलवायु वाले स्थानों और विशेषकर ग्रीष्म ऋतु में सर्वत्र दही का उपयोग ही उचित होता है ।

शरीर में दही की क्रिया अच्छा प्रभाव डालती है, क्योंकि दही के रस से आँतों में रहने वाले हानिकर कीटाणु नष्ट हो जाते है । शास्त्रों में भी दही को दीर्घ जीवन देने वाला माना गया है ।

दही को मथकर उसमें से घी निकाल लेने के बाद जो मट्ठा (छाछ) बचता है, उसको कुछ लोग फेंक दिया करते हैं या पशुओं को पिला देते है । ऐसा करना बड़ा अज्ञान है । घी निकाला हुआ मट्ठा और मक्खन निकाला हुआ दूध यदि एक सेर लिया जाय तो वह भी एक पाव असली दूध के बराबर पुष्टई करता है । मन्दाग्नि अर्थात् कमजोर हाजमे वालों के लिए यह बहुत ही काम का होता है, क्योंकि पचने में काफी सुगम होता है । उसमें घी के अतिरिक्त शेष सभी तत्व

रहते है । मट्ठा या तक्र की तुलना भावमिश्र ने अमृत से की है। तक्र देकर ठीक किये रोग फिर उत्पन्न नहीं होते । लिखा है :

यथा सुराणाममृतं हिताय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ।

दूध से बनने वाले पदार्थों में मक्खन बहुत हल्का होता है। उसका समुचा भाग आँतों में प्रचूषित हो जाता है । विशेषकर बच्चों के लिए मक्खन ही अधिक हितकारक होता है । दूध से ही पनीर या छेना बनाया जाता है। इनमें छेना तो कुछ हलका होता है, परन्तु पनीर में २० प्रतिशत प्रोभूजिन, २५ प्रतिशत स्नेह और ६ प्रतिशत लवण होता है । स्नेह की अधिकता से यह पचनें में कठिन होता है, फिर भी जिन्हें पचता हो उनके लिए पनीर बहुत पौष्टिक खाद्य है। पौष्टिकता के विचार से पनीर मांस से दो गुना अधिक पुष्टिकारक होता है ।

अण्डा

दूध की भाँति अण्डा भी पूर्ण आहार है। यह सस्ता भी पड़ता है। मुर्गी या जल-मुर्गी रखने में अधिक खर्च नहीं होता । देखा जाय तो मुर्गी और बकरी पाल कर ही हमारे देश के निर्धन वर्गीय मुसलमान और हरिजन भाई अपने शरीर को पुष्ट रखते है। सवर्ण हिन्दू धार्मिक भावनावश अण्डे को असात्त्विक और घृणित मान कर नही खाते । शाकाहार की नई परिभाषा में आजकल अण्डा भी शाकाहार में सम्मिलित किया जा रहा है ।

अण्डे के विषय में महात्मा गांधीजी ने लिखा है : "अण्डे सामान्यतः मांसाहार में गिने जाते हैं, मगर दरअसल वे मांस नहीं है । आजकल तो अण्डे ऐसे तरीके से पैदा किए जाते है कि मुर्गी-मुर्गे को देखे बिना ही अण्डे देते हैं। इन अण्डों में चूजा (जीव) कभी बनता ही नहीं। इसलिए जिन्हें दूध पीने में कोई संकोच नहीं, उन्हें इस प्रकार के अण्डे खाने में भी कोई सकोच नहीं होना चाहिए ।"

शीघ्र पुष्टई देने वाले पदार्थों मे अण्डा उत्तम है । आयुर्वेद में भी अण्डे को सुपाच्य, मधुर, दाह न करने वाला और तुरन्त बल देने वाला कहा गया हैं ।

क्षीणरेतःसु कासेषु हृद्रोगेषु क्षतेषु च ।
अण्डानि हितानि ।

अर्थात शारीरिक धातुक्षय के अनेक रोगों में अण्डा बहुत उपयोगी है; क्योंकि यह अत्यन्त धातु-पुष्टकर खाद्य है। क्षीण गर्भाशय वाली स्त्रियों के लिए अण्डा बहुत ही लाभकर है।

एक अण्डा एक पाव दूध के बराबर गुणकारी होता है। अण्डा में अयस खनिज दूध से भी अधिक होता है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह बहुत सुपाच्च होता है। अण्डा का ९५ प्रतिशत भाग अन्त्र में ही प्रचूषित हो जाता है। केवल पाँच प्रतिशत का मल बनता है। इतनी सात्मीकरणता अन्य किसी भी खाद्य में नहीं हैं। खून की कमी, मन्दाग्नि, यक्ष्मा और पाण्डु से पीड़ित रोगियों के लिए अण्डा बहुत अच्छा पथ्य हैं। नीरस होने के कारण कच्चा अण्डा पाचक रसों को उत्तेजित नहीं कर पाता, इसलिए ही उसका पाचन आमाशय में न होकर आन्त्र में हुआ करता है। उबाला हुआ अण्डा प्रोभूजिन जम जाने से कुछ दुष्पाच्य हो जाता है।

अण्डा में किसी प्रकार की मिलावट की सम्भावना तो नहीं है, फिर भी खाने के लिए केवल ताजा अण्डा ही लेना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में तो वासी अण्डा प्रायः सड़ जाता है। अण्डे के विषय में आधुनिक आहार शास्त्रियों ने बहुत अध्ययन किया है। इसके अनुसार मुर्गी के अण्डे के विविध भागों का औसत संगठन निम्न प्रकार का होता है :

	जल	प्रोटीन	वसा	राख
पूर्ण अण्डा	७४%	१३%	११%	१·०%
अण्डे की सफेदी	८८%	१०·५%	स्वल्प	०·८%
अण्डे की जर्दी	४९%	१७%	३१·५%	१·४%

अण्डे की जर्दी कुल अण्डे की एक तिहाई और सफेदी दो तिहाई होती है।

अण्डे की वसा में प्रायः लेसिथिन की मात्रा अधिक होती है।

स्नेह पदार्थ (घी और तेल)

दूध और अण्डा के बाद भोजन के पौष्टिक पदार्थों में घी बहुत महत्वपूर्ण है। बल-वीर्य और आयु की वृद्धि तथा मस्तिष्क के स्नायु मण्डल को शक्ति पहुँचाने

में घी के बराबर शक्तिशाली दूसरा पदार्थ नहीं। विशेषकर अण्डा और मांस आदि से परहेज रखने वाले भारतीयों के भोजन में पोषक तत्व के रूप में घी का रहना नितान्त आवश्यक है।

दैनिक भोजन में एक छटांक घी लेते रहने से शरीर को पूर्ण चिकनाई और पौष्टिक तत्व मिल जाते है। घी में सौ प्रतिशत स्नेह होता है। प्रोभूजिनयुक्त दाल आदि खाद्य पदार्थ यदि घी सहित थोड़े परिणाम में भी खाये जावें तो उनसे शरीर की क्षतिपूर्ति होती है। बिना घी के प्रोभूजिनयुक्त पदार्थ अधिक मात्रा में लेने पर भी उतना लाभ नहीं करते।

उष्णताजनन करनेवाले स्नेह तथा उदांगारतत्व शरीर में आवश्यक गर्मी और पाचकाग्नि को ठीक रखते हैं। घी में उत्तम पौष्टिकता के अतिरिक्त सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह शरीर में उष्णताजनन का कार्य बहुत सफलतापूर्वक करता है। एक तोला मांस या चीनी खाने से जितनी उष्णता उत्पन्न होती है, उससे ढाई गुनी एक तोला घी खाने से होती है। इससे ही भोजन में घी के महत्व का अन्दाज लगाया जा सकता हैं।

स्नेह द्वारा उष्णताजनन का कार्य, यों तो तेल खाने से भी हो सकता है; परन्तु घी, मक्खन आदि प्राणिज स्नेह, तेल की अपेक्षा पचनीय और जीवतीक्ति (विटामीन) युक्त होते हैं। उष्णताजनन के अतिरिक्त वे ऊर्जोत्पादन, धातु-वृंहण, शरीर की क्षतिपूर्ति, स्थैर्य और शक्ति का कोष संचित करने में भी सहायक होते हैं।

तथापि, आजकल बाजार में दूध-दही से भी अधिक, असली घी का मिलना कठिन हो गया है। पूरी निश्चिन्तता के साथ शुद्ध घी उसको ही कहा जा सकता है, जो घर में ही, या अपने सामने ही निकाला गया हो। गावों से आने वाले देशी घी को भी सहसा पूर्ण शुद्ध नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ग्रामीणों ने घी में मिलावट करने के ऐसे बढ़िया तरीके अब सीख लिए हैं, कि आश्चर्य होता है। दूध में वनस्पति तेल मिला कर दही जमाते हैं और उससे निकाला हुआ मिलावटी घी, शुद्ध देशी के नाम से मँहगा बेचते है। ऐसे मिलावटी घी पर पैसा खर्च

करना बुद्धिमानी नहीं है। विश्वस्त और पूर्ण शुद्ध घी न मिले तो उसके स्थान पर शुद्ध और ताजा तेल खाना ही अधिक हितकर है।

शुद्ध घी गौ या भैंस के मक्खन से बनाया जाता है। गौ का घी रंग में कुछ पीला और भैंस का सफेद होता है। शुद्ध घी की परीक्षा करने का ढंग यह है। कि थोड़े घी में थोड़ा-सा नमक का तेजाब ड़ालना चाहिए। यदि उसमें वेजिटेबल घी मिला होगा, तो उसका रंग कुछ लाल हो जायगा।

आजकल बाजार में मिलने वाले जिस पदार्थ को लोग वनस्पति घी कहते है, वह वास्तव में तेल का जमाया हुआ रूप है, जो कि तेल से भी निकृष्ट होता है। तेल को जमाकर उसको घी का रंग-रूप देने में जो क्रिया करनी पड़ती है, उससे तेल के बहुत-से गुण नष्ट हो जाते हैं और अनेक विपरीत अवगुण आ जाते हैं। जमा हुआ होने से यह पहचानना भी कठिन है कि यह किस चीज का तेल है और कितना पुराना है। वस्तुत: उसमें शुद्ध और ताजे तेल के भी गुण नहीं होते। इस तथाकथित बनावटी वनस्पती घी की इतनी खराबियाँ सिद्ध हो चुकी हैं कि यदि शुद्ध और ताजा तेल भी न मिले तो रूखा-सूखा ही भोजन अच्छा परन्तु यह नकली और बनावटी घी नहीं बरतना चाहिए।

खाने के लिए तेल भी सर्वथा शुद्ध और ताजा लेना चाहिए। तिल का तेल सर्वोपरि होता है। उसके बाद सरसों और मूँगफली का तेल भी खाने के काम में लाया जाता है। गुजरात में शींगदाणा के नाम से मूँगफली का तेल खूब इस्तेमाल किया जाता है।

मांस-मछली

भोजन के रूप में संसार में माँस-मछली का उपयोग किया जाता है। यह पर्याप्त पुष्टीकारक पदार्थ है। संसार की बहुत बड़ी जन संख्या मांस-मछली खाकर ही शक्ति प्राप्त करती है। तथापि हमारे देश में धार्मिक भावना के कारण इसका प्रचार कम है।

आयुर्वेद में मांसाहार को शरीरवृद्धि के लिए उपयोगी माना गया है।

शरीरबृंहणो नान्यत्खाद्यं मांसाद्विशिष्यते। —चरक
न हि मांससमं किंचिदन्यद् देहबृहत्वकृत्। —वागभट्ट

मांस में शरीर को बढ़ाने की अनुपम शक्ति है, क्योंकि मांस अत्यन्त पौष्टिक और सुपाच्य खाद्य है। खाये हुए मांस का केवल १५ प्रतिशत् व्यर्थ जाता है और लगभग ८५ प्रतिशत भाग आँतों में प्रचूषित होकर सीधा रस-रक्त में मिल जाता है। कच्चा मांस दो घण्टे में, आधा उबाला ढाई घण्टे में और पूरा उबाला तीन घण्टे में पचता है। इसी प्रकार आधा भुना मांस तीन घण्टे में और पूरा भुना चार घण्टे में पचता है। मांस की यह पचनीयता और पौष्टिकता उसके पकाने की विधि पर निर्भर करती है। इसलिए मांस को उतना ही पकाना चाहिए जितने से उसमें व्याप्त संक्रामक रोगों के कीटाणु नष्ट हो जावें और उसका जलीय अंश कम हो जावे। जिस मांस में स्नेह (चर्बी) अधिक होता है, वह पचने में उतना ही अधिक कठिन होता है।

खाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न पशुओं का मांस प्रयोग में लाया जाता है। भेड़, बकरी, जंगली सुअर और मुर्गी का मांस अधिक सुस्वादु और पौष्टिक होता है। वैसे शिकार किये हुए मृग, चीतल, बारहसिंघा, आदि जंगली जानवरों और भैंस, घोड़ा आदि पालतू पशुओं का मांस भी कुछ लोग खाते हैं।

मांसाहार में मछली काफी पौष्टिक खाद्य है, इसका लगभग १५ प्रतिशत भाग आंतों में प्रचूषित हो जाता है। दुर्बल मनुष्यों के लिए विशेष शक्तिवर्धक होती है। हमारे देश में समुद्र या नदी तट वाले स्थानों में मछली का उपयोग बहुतायत से होता है। बंगाल, उड़ीसा आदि में मत्स्याहार प्रधान है।

यद्यपि मांस-मछली पौष्टिक खाद्य है, परन्तु असावधानी से पकाने और असात्म्य ढंग से खाने पर इनसे अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। मांस बहुत जल्दी सड़ने वाला पदार्थ है। इसलिए बासी या अधिक देर का रखा मांस नहीं लेना चाहिए। विकृत होने पर मांस का रंग काला हो जाता है।

यहाँ पौष्टिक खाद्यों में मांस-मछली का उल्लेख हमें मुख्यतः इस कारण करना पड़ा कि हमारे देश में कुछ लोग तो इसका व्यवहार करते ही हैं। जो व्यवहार करते हैं उन्हें मांस-विषयक ज्ञान स्वास्थ्य-साहित्य में मिलना ही चाहिए जिससे अज्ञानतावश हानि न उठावें। दूसरी बात सर्वोत्कृष्ट पौष्टिकतत्त्व—घी

दूध—का देश में निरन्तर अभाव-सा होता जा रहा है। राज्य घी-दूध का उत्पादन बढ़ाने को समुचित प्रोत्साहन नहीं दे रहा। दुधारू पशुओं के पालन-हेतु लोगों की रुचि कम होती जा रही है। इन कारणों से सर्वथा शुद्ध-दूध-घी शहरों में तो मिलता ही नहीं। इस कारण लोग यदि मांसाहार की ओर आकृष्ट होते हैं तो अस्वाभाविक नहीं।

सत्य तो यह है कि हमारे देश की स्थिति और जलवायु को देखते हुए मांसाहार आवश्यक नहीं है। मांस में जो पौष्टिकता है वह अन्य कई शाकाहारी पदार्थों में भी है। उष्णताजनन, पुष्टि एवं शक्ति का संचय मांस की अपेक्षा शुद्ध घी से अधिक होता है। मांस के प्रायः सभी तत्त्व दालों में होते हैं। मांस में २९ प्रतिशत प्रोटीन होते हैं। जब कि दालों में ३० प्रतिशत तक प्रोटीन रहते हैं। इसलिए जिन्हें रुचता न हो उन्हें देखा-देखी या केवल पौष्टिकता के लोभवश मांसाहारी नहीं बनना चाहिए, क्योंकि उत्तम और संतुलित शाकाहारी भोजन भी पूर्ण पौष्टिक होता है।

दालें

दालें आहार-पूर्ति भी करती हैं और पौष्टिक भी होती हैं, इसलिए भोजन में दाल का विशेष महत्त्व है। अच्छी प्रकार से बनायी गयी दाल, रोटी या चावल के साथ लेने से उनको सुस्वादु बनाती है। चना, अरहर, मूंग, मसूर, मोटे उड़द, सोयाबीन आदि दालों में मांस से अधिक प्रोभूजिन या प्रोटीन होते हैं।

दालों के कणों पर एक विशेष झिल्ली होती है, जिसको शरीर के पाचक रस आसानी से नहीं गला पाते, इसलिए वे दुष्पाच्य होती हैं; परन्तु दालों को पर्याप्त पानी में डालकर दो घण्टे तक पकाया जाय फिर मथनी से दही की भाँति मथकर छौंक दिया जाय, तो कणों की झिल्ली हट जाती है और दाल पाचक बन जाती है, खाने के लिए दाल को खूब पतला बनाना चाहिए। खूब पकी दाल को दो-तीन तोला घी या तेल डालकर रोटी या भात के साथ खाने पर वह सन्तुलित भोजन हो जाता है और उससे उतनी ही पौष्टिकता मिलती है, जितनी कि मांस, मछली, अण्डा आदि असात्त्विक भोजन से प्राप्त होती है।

अन्न

भोजन में अन्न मुख्य आहार है। आयुर्वेद में अन्न को ही प्राणियों का प्राण कहा गया है और लोकभाषा में अन्न को ही भोजन कहा जाता है।

शाकाहारी भोजन अन्नप्रधान होता है। अन्नों में विशेषकर गेहूँ, चावल, चना, ज्वार, बाजरा, मकई और जौ आदि धान्यों का प्रयोग होता है। इन धान्यों में शरीर-पोषक प्रोभूजिन, ऊष्मा आदि पदार्थ विभिन्न मात्रा में विद्यमान रहते हैं।

हमारे देश में जो दैनिक आहार ग्रहण किया जाता है उसमें गेहूँ, दाल और चावल की प्रधानता रहती है। गरीबों के भोजन में ज्वार, बाजरा मक्का और दाल की अधिकता रहती है। इनमें गेहूँ या ज्वार-बाजरा की रोटी तथा दाल, अथवा चावल और दाल खायी जाती है। जो लोग चावल अधिक खाते हैं, वे स्वास्थ्य की दृष्टि से निर्बल होते हैं। चावल के साथ थोड़ी चिकनाई मिलाकर पर्याप्त मात्रा में दाल भी खायी जावे, तो वह किसी प्रकार संतुलित भोजन हो सकता है। स्नेह और दूध साथ में लेने से ही अन्नाहार पौष्टिक भोजन माना जाता है।

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे देश में ही विभिन्न प्रदेशों के भोजन और स्वास्थ्य-स्थिति में देखा जा सकता है। हमारे देश में सबसे अच्छा भोजन पंजाब वाले करते हैं। खमीर उठाकर बनाई हुई गेहूँ की रोटी, उड़द की दाल और पर्याप्त घी-दूध उनका प्रधान भोजन होता है। वे मांस-भोजी भी होते हैं। वस्तुतः अपने पूर्ण आहार में काफी घी-दूध और दही लेने के कारण ही पंजाबी भाई काफी स्वस्थ लम्बे और तगड़े होते हैं। राजस्थान की जलवायु पंजाब से कम स्वास्थ्यकर नहीं है, परन्तु भोजन-स्तर उत्तम न होने के कारण राजपूताना निवासी उतने लम्बे-तगड़े और सबल नहीं होते, जितने पंजाबी। जलवायु तथा भोजन की दृष्टि से उत्तरप्रदेश को दूसरे नम्बर पर गिना जा सकता है। वहाँ का भोजन रुचिकर तो बहुत होता है, परन्तु दुग्ध या दुग्धकृति की कमी के कारण, उसे पूर्ण पुष्टिकर नहीं कह सकते। इसलिए उत्तरप्रदेश-वासी भी पंजाबवासियों से

शरीर में दूसरे नंबर के होते हैं। बिहार का जलवायु बहुत अच्छा है, परन्तु आहार की दृष्टि से हीन होने के कारण वहाँ के निवासियों का स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं होता। जिनको पूर्ण खुराक मिलती है, वे बिहारी भी पंजाब के मुकाबले के तन्दुरूस्त होते हैं। बंगाली मद्रासी, असमी आदि केवल चावल खाने वालों के भोजन में तो घी-दूध बहुत आवश्यक है। गुजरात और महाराष्ट्र में चाय के बहुतायत प्रचार ने दूध-घी खाने की सुरुचि को नष्ट कर रखा है, फलतः इन प्रदेशवासियों का स्वास्थ्य सामान्यतः गिरा हुआ है।

पौष्टिकता के विचार से चावल से अच्छा ज्वार-बाजरा और इनसे भी उत्तम गेहूँ होता है। संसार में गेहूँ की खपत सबसे अधिक है। ८-१० घण्टा बैठ कर दिमागी काम करने वालों के लिए धान्यों में गेहूँ सर्वोपरि है। थोड़ा चना साथ मिलाकर खाने से गेहूँ स्वादिष्ट, पाचक और अधिक पौष्टिक हो जाता है। गेहूँ के बराबर स्वास्थ्यकारक तत्त्व चावल में नहीं होते। रस-धातुओं को पुष्ट एवं विवर्द्धित करने की शक्ति चावल में बहुत कम होती है। प्रधानतः वह उष्णताजनन का ही काम करता है। इसलिए गेहूँ के साथ स्वाद बदलने के लिए, थोड़ी मात्रा में ही चावल खाना चाहिए।

काजू और पोषण

काजू (Cashew) एक शक्तिप्रद मेवा (nut) है। इसकी तुलना में अन्य मेवाओं का ठहरना कठिन है। काजू गिरी का विश्लेषण करने पर इसमें निम्न-लिखित पदार्थ मिलते हैं :—

स्निग्ध पदार्थ (फैट्स) ४८ प्रतिशत
शिम्बीतत्व (प्रोटीनें) २१ प्रतिशत
शर्करावर्गीयतत्व (कार्बोहाइड्रेट्स) २२·३ प्रतिशत
कैल्शियम ·५ प्रतिशत
पानी ५·९ प्रतिशत
खनिज पदार्थ २ प्रतिशत
लौह ·५ प्रतिशत
फास्फोरस ·४ प्रतिशत

कैलोरी मान ५९६ प्रति १०० ग्राम

काजू के फल में बहुत अधिक पोषणतत्व मिलते है। इसमें प्रोटीन, फैट्स, कार्बोहाईड्रेट्स, कैल्शियम, फास्फोरस और लोहा रहता है। इसके १०० ग्राम रस में २६१.५ मि० ग्रा० विटामिन सी तथा कुछ केसेटीन मिलती है।

काजू से भी सस्ता और गुणकारी मेवा अखरोट है। अखरोट को तोड़कर ताजा गिरी खायी जाती है यह बादाम से भी अधिक पौष्टिक है तथा काजू से अधिक गुणकारी और सस्ती है। मूंगफली भी बहुत गुणकारी है।

भोजन के सहायक पदार्थ

मीठा

शरीर में उष्णता और शक्ति उत्पन्न करने के लिए जितने प्रोगोदीय या कार्बोहाईड्रेट्स की अपेक्षा होती है, वे चावल, गेहूँ, दाल और घी आदि से मिल जाते है। फिर भी मीठा इसलिए भोजन का सहायक पदार्थ है कि उससे उत्पन्न उष्णता से पाचकाग्नि भी बढ़ती है। उचित मात्रा में मीठा खाना हितकर है, परन्तु आजकल शहरों में जिस प्रकार अधिक मीठा खाया जाता है, वह स्वास्थ्य को नष्ट करने वाला होता है।

दूध-मिठाई आदि में कुल मिलाकर अधिक-से-अधिक एक छटांक मीठा प्रतिदिन खाना चाहिए। मीठे में सबसे उत्तम तो मधु (शहद) होता है; परन्तु वह आजकल सबको विशुद्ध नहीं मिलता। उसके बाद गुड़ उपयोगी है, उसमें मिश्रित पीला पदार्थ विशेष लाभदायक होता है। चीनी (शक्कर) में वह नहीं होता, इसलिए चीनी गुड़ के बराबर गुणकारी नहीं होती।

ईख (गन्ने) से बने गुड़ की अपेक्षा ताड़ या खजूर का गुड़ अधिक उपयोगी होता है, क्योंकि उसमें बहुत बड़ी मात्रा में ग्लूकोज विद्यमान रहता है। बंगाल-बिहार में ताड़ का गुड़ काफी बनता है।

मीठे के स्थान पर विशेषकर पेयों में सेकरिन नामक जो पदार्थ दूकानदार प्रयोग करते है, वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है।

खनिज द्रव्य

खनिज द्रव्यों से शरीर की अस्थि, रक्त आदि धातुयें बनने और पुष्ट होने में

मदद मिलती है। अन्नादि के पाचन एवं सात्मीकरण में भी खनिज सहायक होते है। खनिजों में नमक प्रधान है। कुल मिलाकर ड़ेढ़ तोला खनिज दैनिक भोजन में होना चाहिए अन्य खनिज तो रोटी, दाल, शाक, चावल, दूध और माँस आदि से उचित अनुपात में मिल जाते हैं; परन्तु नमक इन पदार्थों में कम होता है, इसलिए ऊपर से मिलाकर खाना पड़ता है। मांस में स्वाभाविक ही काफी नमक होता है, इसलिए मांसाहारियों को अतिरिक्त नमक कम लगता है। परन्तु शाकाहारी भोजन में लगभग आधा तोला नमक दाल, शाकों और आटा में मिलाकर नित्य खाना चाहिए। नमक बिलकुल न खाने से कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते है।

अन्य मिर्च-मसाले और अचार-चटनी-मुरब्बा आदि स्वास्थ्य-पुष्टि की दृष्टि से बिलकुल आवश्यक नहीं। इनका उपयोग केवल रुचि उत्पन्न करने (भोजन में स्वाद बढ़ाने) के लिए किया जाता है। इन्हें आवश्यकता होने पर कम मात्रा में ही खाना चाहिए, क्योंकि इनसे उत्पन्न रुचि स्वाभाविक नहीं होती, और अन्ततः यह हानि करते है। बहुत मिर्च-मसाले और चाट-पकौड़ी खाने वाले कभी स्वस्थ नहीं रह सकते।

विटामिन्स (जीवतिक्तियाँ)

भोजन के साथ अल्प मात्रा में विटामिन (जीवतिक्ति) नामक तत्त्वों का लेना हितकर है। दुर्भाग्यवश हमारे देश में, आधुनिक लोगों के अत्यधिक प्रचार से आजकल विटामिन्स खाने में अत्युत्साह पाया जाता है।

मांस में विटामिन्स कम रहते है, इसलिए मांसाहारियों को अलग से हरे साग-सब्जी, फल आदि खाकर विटामिन्स की पूर्ति करना आवश्यक है। केवल मांसाहार पर आश्रित पश्चिमी देशों में आजकल इसी कारण शाकाहार को भोजन में सम्मिलित करने पर जोर दिया जा रहा है। शाकाहार में ही हरीपत्ती, फल-अन्न आदि है।

परन्तु हमारे देश में, जहाँ का भोजन ही शाकाहार प्रधान है, वहाँ फलाहार के अधिक प्रचार की कोई अपेक्षा नहीं। शाकाहार में विटामिन्स स्वयमेव ही बहुतायत से विद्यमान रहते है, इस कारण अतिरिक्त लेने की आवश्यकता नहीं।

इतना ही पर्याप्त है कि प्याज, टमाटर, लूनी, हरा धनिया, पोदीना, मूली की पत्तियाँ तथा सलाद, अमरूद, ककड़ी आदि में से कुछ को लेकर भली-भाँति धोकर बारीक काट लें। उसमें नमक, नीबू का रस और अल्प मात्रा में हरी मिर्च मिलाकर चटनी या कचूमर बना लें और बहुत थोड़ा-सा भोजन के साथ ले लें। शाकाहारी भोजन में इतने से ही अपेक्षित विटामिन्स की पूर्ति हो जाती है।

विटामिन्स प्राप्ति के लिए आधुनिक लोग अधिक मात्रा में सब्जी और फल खानें पर बहुत जोर देते है। परन्तु केवल शाक-सब्जी-फल खाकर स्वस्थ रहने की कल्पना गलत है। विटामिन्स से ही शरीर पुष्ट होता है और वही भोजन का सार है--यह बड़ा भारी भ्रम हमारी जनता में फैल गया है। आधुनिक पढ़े-लिखे युवक इस प्रचार से बहुत गुमराह हो रहे है। एक बार मेरे एक भतीजे ने कहीं पढ़ लिया कि पपीता पेट के रोगों पर अचूक है। उसके पेट में खराबी थी। बस, पन्द्रह दिन तक उबाले हुए पपीता पर ही वह रहा। मुझे पता लगते ही अन्नाहार शुरू कराया। परन्तु पपीता तब तक काफी 'गुण' कर चुका था। उस समय उसकी जो पपीता खाने से अग्नि मन्द हुई, वह आज कई वर्ष बीतने पर भी बनी हुई है।

सारांश यह है कि हमारे देश में विटामिन्स का अति प्रचार करके सब्जी और पत्तियों को बहुत खाने का अभ्यास कराना कदापि युक्ति-युक्त नहीं है। भिण्डी, बैंगन, तोरई, कद्दू, लौकी (घिया) फूलगोभी, पत्तागोभी, गाँठगोभी, सेम तथा सहजिन की फली आदि के साग यदा-कदा रुचि बदलने के लिए खाना चाहिए। शाकों में आलू का बहुत प्रयोग होता है। मांसाहारियों के लिए आलू आवश्यक है, परन्तु शाकाहारियों के लिए यह कुछ भी उपयोगी नहीं। इससे अच्छा केला है जिसमें स्टार्च के साथ कुछ लोहा भी है।

फल

फल खाने से भी अपेक्षित विटामिन्स की पूर्ति होती है। फलों में आँवला और कागजी नीबू सर्वश्रेष्ठ गुणदायी फल हैं। आम, अंगूर, अनार, सेव, सन्तरा, मौसमी, अनन्नास आदि भी स्वास्थ्यकर फल हैं। कच्चे खाने योग्य फलों में ककड़ी, खीरा, अमरूद उत्तम फल हैं। इनमें अमरूद सर्वाधिक उपयोगी है।

उसको भारत का सेव कहा जा सकता है। केला वैसे साधारण फल है, परन्तु दही के साथ खाने पर लाभदायक है। कन्दों में प्याज बहुत बढ़िया कन्द है। शकरकन्द, आलू आदि निकृष्ट कन्द हैं।

सूखे फल और मेवे जैसे बादाम, पिश्ता, काजू, खुमानी, अखरोट, चिलगोजा चिरौंजी, किसमिस और मूंगफली आदि भी पौष्टिक होते हैं। इनमें मूंगफली सबसे सस्ता और पुष्टिकारक मेवा है। इसको चीनी बादाम भी कहते हैं। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ने झाँसी में लक्ष्मी व्यायाम मंदिर नामक संस्था में जो पौष्टिक खाद्य का परीक्षण किया था, उसमें मूंगफली बहुत उपयोगी सिद्ध हुई। एक छटाँक मूँगफली का बीज, एक छटाँक पानी में भिगोए अंकुरित चने, आधी छटाँक गुड़ के साथ अथवा तलकर नमकीन बनाकर नित्य नाश्ते में लेने से पर्याप्त पौष्टिक खाद्य शरीर को मिल जाता है। युवकों के लिए यह अच्छा शक्तियुक्त नाश्ता है। किस आहार द्रव्य में कौन-कौन सी और कितनी विटामिनें हैं इसे पीछे तालिकाओं में दिया गया है।

भोजन बनाना

वैसे तो शरीर रूपी स्वसंचालित मशीन की यह विशेषता है कि इसे जो कुछ मिल जाता है, उससे ही अपना काम चला लेती है। केवल बाजरा, जौ, या ज्वार-मक्का की रोटी चटनी से खाकर अथवा नमक-सत्तू लेकर ही लाखों गरीब भारतीय स्वस्थ रहते हैं और परिश्रम करते हैं; परन्तु बुद्धिजीवी मनुष्य पौष्टिक तत्त्व रहित भोजन से केवल पेट भर सकता है, पूर्ण स्वस्थ एवं दीर्घायु नहीं हो सकता। विशेषकर बुद्धिजीवियों के लिए तो स्नेह-रहित भोजन एकदम व्यर्थ और अहितकर है। सामान्यतः हरएक के भोजन में अपेक्षित पौष्टिक तत्त्व रहना, स्वास्थ्योन्नति की पहली शर्त है।

परन्तु, भोजन के पौष्टिक तत्त्वों का लाभ तभी हो सकता है जबकि भोजन को विधिपूर्वक बनाया जाय। बढ़िया भोजन बनाना एक कला है। भोज्य पदार्थों के सदुपयोग-हेतु उसकी जानकारी आवश्यक है।

महात्मा गाँधी ने लिखा है—"अनाज को साफ करके चक्की में पीसकर, बिना छाने इस्तेमाल करना चाहिए। अनाज की भूसी में सत्त्व और क्षार रहते

हैं। यह दोनों पदार्थ बहुत उपयोगी होते हैं। इनके अतिरिक्त भूसी में एक ऐसा पदार्थ भी होता है जो बिना पचे निकल जाता है और मल को भी निकालता है। चावल का दाना नाजुक होने से ईश्वर ने उसके ऊपर एक छिलका भी बनाया है, जो खाने के काम नहीं होता, इसलिए उसको कूटना पड़ता है। कुटाई उतनी ही करनी चाहिए जिससे चावल (धान) के ऊपर का छिलका निकल जाय। मशीन से चावल के छिलके के अलावा उसकी भूसी भी निकल जाती हैं। इसका कारण यह है कि भूसी रक्खी जाय तो उसमें सुरारी या कीड़ा पड़ जायगा। कारण कि चावल की भूसी में बहुत मिठास रहती है। गेहूँ और चावल की यह भूसी निकाल दें तो बाकी केवल निशाश्ता (स्टार्च-कार्बोहाइड्रेट्स) रह जाता है और भुसी में अनाज का कीमती हिस्सा निकल जाता है।"

भूसी के साथ दाने के ऊपर का गुणकारी कण छँट जाने से ही गेहूँ का मैदा और मिल का पालिशदार चावल खाने से कई रोग भी होते हैं। बेरी-बेरी नामक रोग, पालिशदार चावल का भात खाने वालों को बहुतायत से होता है।

धान को हाथ से कूटकर निकाले गये चावलों में सब तत्त्व सुरक्षित रहते हैं। उसको अधिक मात्रा में कूट कर रक्खा नहीं जा सकता, नहीं तो कीड़ा खा जायगा। जब खाना होगा तभी कूटना पड़ेगा, इससे दैनिक व्यायाम भी होगा। और अन्न की बचत भी होगी। यही बात आटे के विषय में है। मशीन की चक्की से पिसे बहुत महीन आटे की मुलायम रोटी स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं। गेहूँ का दलिया कब्जियत में इसीलिए लाभ करता है कि वह चोकरयुक्त होता है। रोटी भी हाथ की चक्की से पिसे चोकरयुक्त आटे की ही खानी चाहिए।

भोजन में मैदा का प्रयोग हानिकर है। आजकल नाश्ते में जो मैदा की डबल रोटी और बिस्कुट खाते हैं, वह स्वास्थ्यनाशक होती है। आगे चलकर उससे पाचन-संस्थान पर बहुत खराब प्रभाव पड़ता है। आटे की (ब्रेड) और ताजी डबल रोटी बहुत ठीक होती है। मैदा की अन्य वस्तुयें भी पाचन को खराब करती हैं।

सभी खाद्य वस्तुओं को इस प्रकार पकाना चाहिए कि वे अधिक स्वास्थ्य-कारक हों। आटे को माँड़ कर थोड़ा पानी डालकर तीन चार घण्टे रखने से

उसमें स्वतः खमीर उठ आता है और उसमें सोडा-बाई-कार्ब जैसा पाचक गुण बढ़ जाता है। ऐसे खमीर उठे आटे को खूब गूंद कर पतले-पतले फुलके (चपातियाँ) बनाकर पहले तवे पर सेंकें फिर अँगारों पर खूब सेंक कर फुला लिया जाय। यह ध्यान रहे कि तेज आँच से वह जले नहीं और कम आँच में कच्ची न रह जाय। ऐसी रोटी अच्छी होती है।

तन्दूर की बनी रोटी सब से उत्तम पाचक होती है। अँग्रेजी ढंग से बनी आटे की पावरोटी में भी यही गुण होता है। आजकल कुकर में जो भोजन पकाया जाता है वह भाप में पकने के कारण बहुत स्वास्थ्यकर होता है, क्योंकि उसमें खाद्य पदार्थ के सम्पूर्ण तत्त्व भोजन में सुरक्षित रहते हैं।

किसी भी खाद्य वस्तु को पानी में पकाकर या उबालकर उसका पानी फेंक देना मूर्खतापूर्ण है। पालक, मेथी, बथुआ, गाजर आदि पत्तियों वाले शाकों को, उबाल कर उनका पानी निचोड़ कर छौंकना, बहुत गलत हैं। उबले हुए उस पानी के साथ शाक के विटामिन और खनिज तत्त्व सब निकल जाते हैं। सार-हीन फोक बचता है उसको घी-तेल में छौंक कर साग के नाम से खाने से क्या लाभ ? इसी प्रकार लोग चावल पकाते हैं तो उसका माँड़ फेंक देते हैं। उस माँड़ में ही चावल का सार तत्त्व निकल जाता है। दवा का काढ़ा फेंककर जड़ी बूटी खाना जैसा है वैसा ही कोरा भात बचता है। इसलिए चावल को उतना ही पानी डालकर पकाना चाहिए कि वह भली-भाँति पक जाय और पानी भी न फेंकना पड़े।

अधिक पकाने और उबालने से कोई चीज सुपच बन जाती है और कोई चीज उलटी दुष्पच हो जाती है। गेहूँ या दाल अधिक पकाने से सुपच बनते हैं, परन्तु दूध और सब्जियाँ अधिक आग पर रखने से निश्चित दुष्पच एवं गुणहीन हो जाती हैं।

भोजन में रुचि का बहुत महत्त्व है। उत्तम रीति से पकाया हुआ भोजन सुपाच्य के अतिरिक्त, इतना स्वादिष्ट और दर्शनीय होता है कि उसके देखते ही रुचि बढ़ती है। वास्तविक रुचि तो निश्चित समय पर लगने वाली कड़ाके की भूख से होती है। नकली रुचि अचार-चटनी से उत्पन्न होती है, किन्तु अधिक

प्रयोग हानिकर होता है । कागजी नीबू और दही उत्तम, निर्दोष एवं रुचिवर्द्धक होते हैं । लाभकारी भी होते हैं ।

भोजन बनाने के लिए रसोई घर और भोजन बनाने-खाने के सभी बर्तन बहुत साफ-सुथरे होने चाहिए ।

दाल, भात, रोटी, साग, दूध, दही, मीठा आदि सभी खाद्य वस्तुओं को सदा ढककर रखना चाहिए जिससे मक्खी-मच्छर, चींटी, चूहा आदि उन्हें दूषित न कर सकें । खुले भोजन में हवा के साथ उड़ने वाले धूलिकण और रोगाणु मिल जाते हैं । मक्खी विशेषकर खुली चीजों पर बैठकर असंख्य रोगों के कीटाणु खाद्य-पदार्थों में मिला देती है, जिससे अनेक घातक छूत के रोग फैलते हैं ।

भोजन निर्माता तथा परोसने वाला भी बहुत साफ-सुथरा, सुरुचिपूर्ण और मृदुल स्वभाव वाला होना चाहिए । भोजन की उत्तमता में रसोइया का महत्त्व कदापि कम नहीं होता । स्त्रियों के द्वारा यह कार्य बहुत अच्छा होता है ।

भोजन करने की विधि

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैनमकुत्सयन् ।
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः ।।

— मनुस्मृति

भोजन कितना भी सुस्वादु, पौष्टिक और सुपाच्य हो, परन्तु भोजन के समय खाने वाला ईर्ष्या, क्रोधादि विकारों से ग्रस्त है तो वह उत्तम भोजन भी व्यर्थ जायगा और शरीर को नहीं लगेगा । भोजन के समय मानसिक प्रसन्नता अनिवार्य है । ऊपर के श्लोक में मनु ने कहा है कि भोजन का पूजन करके खाना चाहिए । भगवान के पूजन में जैसी पवित्रता और स्वच्छता का ध्यान रक्खा जाता है, वैसा ही भोजन के प्रति रखना चाहिए । आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि व्याकुल चित्त से खाया गया पौष्टिक भोजन भी हानि करता है । इसलिए भोजन के समय क्रोध, भय, विषाद, घृणा आदि विकार मन में नहीं रखना चाहिए । जो कुछ भी सामने आवे उसको भगवान का प्रसाद मान कर खाना चाहिए और कभी भोजन की निन्दा नहीं करना चाहिए ।

भोजन करने में हाथ बहुत लगते है । उनमें गंदगी या रोगाणु रहने से वे

भोजन के साथ पेट में चले जाते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं। इसलिए भोजन पर बैठने से पूर्व भली-भाँति हाथ-पैर धोकर कुल्ली करनी चाहिए। स्वयं सर्वथा स्वच्छ होकर, भोज्य-पदार्थों को स्वच्छ पात्रों में रखकर, स्वच्छ आसन पर बैठकर भोजन करना चाहिए।

अंग्रेजी की कहावत है कि 'पेट में दाँत नहीं होते।' इसका मतलब है भोजन को चबाने का काम पेट के भीतर नहीं हो सकता। जो लोग बे-मन से बिना भली भाँति चबाये जल्दबाजी में भोजन को पेट में ठूंसते हैं, उनको भोजन का पूरा लाभ तो मिलता ही नहीं, मन्दाग्नि का रोग भी हो जाता है। क्योंकि आँतों पर अधिक परिश्रम पड़ने से वे कमजोर हो जाती हैं। इसलिए हर कौर को दाँतों और दाढ़ों से खूब चबाकर बारीक करके ही निगलना चाहिए।

मुंह में ही भोजन को देर तक चबा लेने से दो लाभ होते हैं, एक यह कि खाया हुआ पदार्थ छोटे-छोटे बारीक कणों में विभक्त हो जाता है, दूसरा यह कि चबाने की क्रिया द्वारा मुख की ग्रन्थियों से लार नामक एक विशेष रस निकल कर भोजन में मिल जाता है। यह रस बहुत पाचक होता है और जितनी अधिक मात्रा में भोजन के साथ मुंह में मिल जाता है उतना ही भोजन सुपाच्य होकर उसका अधिकतम सार भाग हमारे शरीर को प्राप्त होता है। असली स्वाद भी अधिक चबाने में आता है। चाहे जितना स्वादिष्ट भोजन हो, बिना खूब चबाये निगलते जाने से कुछ भी स्वाद नही आयेगा। महात्मा गांधी ने लिखा है-- 'वस्तुतः भोजन को खूब चबा-चबा कर ही खाना चाहिए। ऐसा करने से थोड़ी खुराक में भी हम अधिक से अधिक सत्व ग्रहण कर सकेंगे।'

व्यर्थ की बातों और विनोद में तो घण्टों बर्बाद करें और जीवन के प्रधान आधार भोजन में इतनी जल्दी करें, जैसे आफत टाल रहे हो--यह महान अज्ञान है। खूब चबाकर मुंह का कौर पतला होकर आसानी से गले में उतरने लायक हो जावे और उसमें कुछ मिठास आ जावे, तब ही निगलना चाहिए। पानी के सहारे कौर निगलना हानिकारक होता है।

भोजन से उठकर भली-भाँति कुल्ली करनी चाहिए जिससे दाँत में अन्न के कण फँसे न रहें। गरारा करके कंठ भी साफ करना चाहिए। कुल्ली, गरारा

की प्राचीन प्रथा त्यागने से ही आजकल पायरिया आदि दन्तरोग और टान्सिल बढ़ने की बीमारी बहुत होती है ।

भोजनोपरान्त ताम्बूल सेवन उपयोगी है । उसमें देशी पान का एक बीड़ा खाने से मुख-शुद्ध होता है, गला साफ होता है और भोजन का पाक भली-भाँति होता है । अधिक पान खाना दाँतों को खराब करता है ।

जो लोग भोजन के तुरन्त बाद लिखा-पढ़ी के काम में लग जाते हैं या दफ्तर, दूकान अथवा स्कूल को दौड़ पड़ते हैं, वे अन्ततः निश्चय ही बीमार पड़ते हैं । शरीर का एक स्पष्ट नियम है कि जिस समय जो शरीरांग कार्यरत हो उस समय उसीको विशेष मात्रा में हृदय रक्त भेजता है । भोजनोपरान्त भोजन पचाने वाले अंगों को तेजी से अपने काम पर लग जाना पड़ता है, इसलिए उनकी ओर ही रक्त का संचार बढ़ जाता है । ऐसी स्थिति में यदि भोजन के तुरन्त बाद कोई दिमागी या शारीरिक परिश्रम का काम करने लगे तो हृदय को विवश हो कर पाचन-संस्थान की ओर से रक्त-संचार रोक कर अन्य काम में लगे अंगों को रक्त भेजना पड़ेगा । परिणामतः पाचन-संस्थान को रक्त कम मिलेगा तो वह अपना काम यथावत कैसे कर सकता है ? शरीर के सभी अंगों को कार्य की शक्ति रक्त से ही मिलती है । इसलिए भोजन के बाद लगभग आधे घण्टे तक कोई भी शारीरिक या दिमागी काम नहीं करना चाहिए और विश्राम करना चाहिए । विश्राम का अभिप्राय सो जाना नहीं है । भोजनोपरान्त ही सो जाने से भी आहार का पाचन ठीक नहीं होता । भोजन के बाद कम-से-कम एक घण्टे तक सोना भी हितकर नहीं ।

यही बात परिश्रम के तुरन्त बाद भोजन करने से होती है । जब तक व्यायाम या परिश्रम में थके अंगों की थकान दूर नहीं हो जाती तब तक रक्त का संचार उन अंगों की ओर ही रहता है । इसलिए व्यायाम या थकान से कम-से-कम एक घण्टा बाद भोजन और भोजन के कम-से-कम एक घण्टा बाद ही कोई अन्य परिश्रम का काम करना चाहिए । व्यायाम तो भोजन के तीन घण्टा बाद ही करना चाहिए ।

जब जी न चाहे और भूख कच्ची हो तब तो भोजन करना ही नहीं चाहिए;

महीने में दो-तीन पूरे समय या आधे समय का उपवास कर लेना हितकर होता है। हम लोग सप्ताह में एक दिन की छुट्टी मनाते है, जिसमें आराम करने से शरीर और मन ताजगी का अनुभव करता है। वैसे ही भोजन पचाने वाले अंगों को बीच-बीच में विश्राम देना उचित ही है। महीने में दो बार एक आहार का उपवास करना चाहिए।

जिन भोजन में पूरे पोषक तत्त्व न हों अथवा जो भली-भाँति न बनाने से कच्चा रह गया हो या जल गया हो; बासी हो, बदबूदार हो, या अन्य प्रकार से विकृत हो गया हो, ऐसा अहितकर भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए। बासी और ठंडा भोजन तो अहितकर होता ही है, अधिक गर्म खाने से भी हानि होती है इसलिए भोजन को मन्दोष्ण अवस्था में खाना चाहिए। बासी भोजन तामस, अधिक उष्ण राजस और मन्दोष्ण सात्त्विक होता है।

जिस रस की अधिक आकांक्षा हो वही भोजन में लेना चाहिए। अभिलषित रस शरीर के पाचक रसों के अनुकूल होता है इसलिए आहार शीघ्र पचाता है। स्वादवश आपात भद्र, अर्थात् जो तत्काल अच्छा लगे परन्तु जिसका परिणाम अच्छा न हो ऐसा खाद्य नहीं खाना चाहिए।

नित्य नियत समय पर भोजन करने का अभ्यास आवश्यक है। इससे भोजन परिपाक ठीक होता है और निश्चित समय पर अपने-आप भूख लगती है। नियत समय से पूर्व या देर से भोजन करने से अनेक व्याधियाँ हो जाती हैं।

एक बार किया हुआ पूर्ण भोजन लगभग ६ से ८ घण्टे में पच जाता है। इसलिए दो भोजनों के मध्य ६ से ८ घण्टे का अन्तर होना ही चाहिए। आयुर्वेद में भोजन कब करना चाहिए इसका एक सुन्दर सूत्र निम्न शब्दों में दिया गया है—

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत्।
याममध्ये रसोद्वेगः युग्मेऽतीते बलक्षयः ॥

अर्थात् एक बार भोजन करने के ३ घण्टे के अन्दर कुछ भी सेवन न करना चाहिए, तथा ६ घण्टे से ऊपर बिना भोजन नहीं रहना चाहिए, क्योंकि ३ घण्टे के भीतर भोजन से रस का उद्वेग हो जाता है तथा ६ घण्टे तक भोजन न करने से शरीर बल घट जाता है। हमारे देश की जलवायु के विचार से छात्र जीवन

में तीन बार, युवावस्था में दो बार और वृद्धावस्था में एक बार दैनिक भोजन करना चाहिए। भोजन के लिए अपने कार्य और व्यवसाय की सुविधा से ही लोगों को समय निश्चित करना पड़ता है, फिर भी अंग्रेजों की नकल करके दिन में कई बार खाने की आदत अच्छी नहीं। असन्तुलित और अनियमित भोजन के कारण ही हमारे देश में दिमागी काम करने वाले अधिकतर बीमार पड़ते हैं, क्योंकि उन्हें शारीरिक श्रम करना नहीं पड़ता, फिर कई बार का खाया भोजन पचे कैसे ?

आयुर्वेद में हितकर भोजन को हिताशन, नियत समय के भोजन को नियताशन, उचित मात्रा में भोजन को मिताशन कहा जाता है। इसी प्रकार असात्म्य भोजन को अहिताशन, असमय खाने को विषमाशन और जल्दी-जल्दी दो तीन घण्टा से खाने को अध्यशन कहते हैं। भोजन में इन सबका ध्यान रखना चाहिए।

भोजन की मात्रा

कितनी मात्रा में भोजन किया जाय, इसका ज्ञान रखना बहुत आवश्यक है। कम खाने से शरीर का वजन, बल और कांति आदि घटते है। पेट में वायु हो जाती है, बुद्धि में प्रखरता नहीं रहती और निद्रा कम हो जाती है। इसी प्रकार अधिक भोजन करने से रोगों का प्रधान कारण अजीर्ण गले पड़ जाता हैं। आमाशय, यकृत् (लीवर) तथा आंते कमजोर होकर रुग्ण हो जाती हैं। जब तक एक बार खाया पूरी तरह पच न जाय तब तक पाचन के अंगो को बराबर परिश्रम करना पड़ता है, इस कारण वे अशक्त होते हैं। इसलिए खुराक के विषय में न कम, न अधिक का मध्यम मार्ग श्रेयस्कर है।

प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या हिनस्त्यसून्।

अर्थात् अन्न प्राणियों का प्राण है, परन्तु अयुक्तिपूर्वक सेवन करने से वही प्राणघातक हो जाता है। इसलिए भोजन की मात्रा का निश्चय हर व्यक्ति को अपनी पाचन शक्ति के अनुसार करना चाहिए। आयुर्वेद के मतानुसार भोजन की मात्रा वही श्रेष्ठ है, जो भली-भाँति पच जावे।

मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावत् विजीर्यते।

जो सुखपूर्वक विजीर्ण (हजम) हो जाय और जिसका रस बन जावे वही भोजन की उपयुक्त मात्रा है।

अपने शरीर की बनावट (वजन और लम्बाई), अवस्था (उम्र, कर्त्तव्य-कार्य) (जिस प्रकार के परिश्रम का काम करना पड़ता हो) तथा ऋतु और जलवायु का विचार करके भोजन की मात्रा स्वयं ही निर्धारित करनी चाहिए। २२-२५ वर्ष की आयु तक शरीर का विकास जारी रहता है। छात्र जीवन में खेल-कूद में शक्ति भी अधिक खर्च होती है, इसलिए प्रतिदिन आधा लिटर दूध या एक अण्डा, सामान्य भोजन के अतिरिक्त, शरीर-पुष्टि के लिए, इस आयु में अवश्य लेना चाहिए।

सामान्यत: तौल या माप में इतना भोजन खाना चाहिए कि आमाशय की कुल जगह का आधा भाग अन्न से और चौथाई भाग पेय से भरा जावे। पेय में जल और दूध आदि सभी पेयों का समावेश है। आमाशय का शेष चौथाई भाग वायु के लिए खाली छोड़ना चाहिए। पेय रूप में दिन के भोजन के अन्त में थोड़ा छाँछ (मट्ठा) और रात्रि भोजन के अन्त में दूध पीना उत्तम होता है। स्वास्थ्य के लिये भोजन के पश्चात् छाँछ (मट्ठा) लेना बहुत लाभदायी है। महाराष्ट्र और गुजरात में यह नियम है।

हलवा, पूरी, कचौड़ी, खीर आदि भारी चीजें कम मात्रा में खानी चाहिए, हल्की चीजों से भी अतितृप्ति करके भोजन न करना चाहिए। चपाती (फुलका), दाल, साग, चावल, फल आदि से भी उतना पेट नहीं भरना चाहिए जिससे वह भारी हो जाय; पेट की वायु विचरण न करके गुम हो जाय और साँस लेने में भी कठिनाई हो, चलने-फिरने की हिम्मत न हो और शरीर को आलस्य घेर ले।

भोजन का ठीक-ठीक पाचन हुआ या नहीं, इसकी पहचान के लिए महात्मा गांधी ने लिखा है कि, जो मनुष्य पचने योग्य भोजन करता है, उसका दस्त थोड़ा बँधा हुआ कुछ कालिमा लिए हुए तथा दुर्गन्धरहित होता है। जिसे ऐसा दस्त नहीं होता, उसे समझना चाहिए कि उसने अयोग्य तथा अधिक भोजन किया है और भोज्यवस्तुओं को अच्छी तरह चबा-चबाकर नहीं खाया। इस तरह मनुष्य अपने दस्त से भी जान सकता है कि उसने अधिक खाया है या कम। अधिक

खाने वाले को सोते समय बेचैनी रहती है, स्वप्न आते हैं तथा प्रातःकाल उसकी जीभ बिगड़ी हुई और मलावृत रहती है । जो प्रवाही (द्रव) अधिक पीता है, उसे रात को पेशाब करने के लिए कई बार उठना पड़ता है (जिससे नींद पूरी नहीं होती) कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनके श्वास से बदबू आती है, इससे यह समझना चाहिए कि उन्हें भोजन ठीक हजम नहीं होता । कितनी ही बार देखा गया है कि अधिक भोजन करने वालों के शरीर में फोड़े फुंसियाँ निकल आती हैं, पर वे इन कष्टों की परवाह नहीं करते और अज्ञानवश अधिक खाने की बुरी आदत को नहीं छोड़ते । कितने ही व्यक्तियों को डकारें आया करती हैं, तथा कितने ही व्यक्तियों को दुर्गन्धयुक्त अपान वायु निकलती है । इन सब बातों का यही अर्थ हुआ कि हमारा पेट पाखाना हो गया और हम पाखाने की पेटी को साथ-साथ लिये फिरते हैं ।

यद्यपि आधुनिकों ने विभिन्न भोज्य संयोगों के विचार से यह भी निश्चित कर दिया है कि भोजन में कौन-कौन पदार्थ कितने-कितने परिमाण में लेना चाहिए, परन्तु सब के लिए एक समान मात्रा कैसे चल सकती है ?

फिर भी हम आगे मात्रानुसार भोजन की छः विभिन्न तालिकायें दे रहे हैं जिनमें भिन्न भिन्न पदार्थों के संयोग से संतुलित एवं पौष्टिक भोजन की मात्रा निर्धारित हैं । यह भोजन-मात्रा युवा अवस्था के स्वस्थ मनुष्यों का स्वास्थ्य-बल बढ़ाने में उपयुक्त है । विभिन्न युवा मनुष्य अपनी पाचन शक्ति, आयु और जलवायु का विचार कर इनमें से किसी को ग्रहण कर सकते हैं ।

दैनिक भोजन-तालिका

भोजन नं० १

नाम	वजन	नाम	वजन
चावल	६ छटाँक	गुड़	१ छटाँक
आटा	१ पाव	आलू या अरवी	१ छटाँक
दाल	२ छटाँक	हरे साग	१ पाव
नारियल का तेल या और कोई तेल	१ छटाँक	छाँछ	८ छटाँक
		मूंगफली	२ छटाँक
		नमक	आधा तोला

नाम	वजन
भोजन नं० २	
आटा (गेहूँ, जौ, बाजरा)	१० छटाँक
सोयाबीन	२ "
दाल	१ "
छाछ	६ "
गुड़	१ "
तेल (सरसों, तिल, मुँगफली)	१ "
हरे साग	४ "
आलू	१ "
नमक	आधा तोला
भोजन नं० ३	
चावल	८ छटाँक
सोयाबीन	२ "
दाल	१ "
छाछ	६ "
गुड़	२ तोला
तेल	१ छटाँक
आलू अरवी	१ "
हरे साग	४ "
नमक	आधा तोला
भोजन नं० ४	
आटा	आधा सेर
भींगा चना	आधा पाव
गुड़	२ तोला

नाम	वजन
प्याज	१ तोला
छाछ	आधा सेर
तेल	१ छटाँक
हरे साग	१ पाव
केला	२ अदद
नमक	आधा तोला
भोजन नं० ५	
आटा	८ छटाँक
दूध	८ "
तेल या घी	१ "
दाल	१ "
आलू	१ "
साग	३ "
केला	२ अदद
नमक	आधा तोला
भोजन नं० ६	
आटा	८ छटाँक
माँस	२ "
अण्डे	२ अदद
तेल या घी	१ छटाँक
दाल	१ "
आलू	१ "
साग	१ पाव
नमक	आधा तोला

वक्तव्य :– यह ध्यान रहे कि १ तोला = १२ ग्राम होते हैं : इस हिसाब से १ छटाँक=६० ग्राम; १ पाव =२४० ग्राम; आधा सेर = ४८० ग्राम होते हैं।

पेय-पदार्थ

मुख्यतः तीन प्रकार के पेय पदार्थ प्रचलित हैं। **जलवर्ग, चायवर्ग** और **मद्यवर्ग।**

साधारण जल के अतिरिक्त आजकल कुछ संघटकों को मिलाकर विभिन्न कृत्रिम जल बनाये जाते हैं; जिनमें वातेरित जल (Aerated water), लेमनेड, जिन्जर, सोडावाटर, कोका-कोला आदि प्रसिद्ध हैं। लोग इनको स्वाद, ठंडक और हाजमा के लिए यह सोचकर पीते हैं कि बोतल में कोई दोष नहीं होता, यह बड़ा भ्रम है। यह कृत्रिम जल यदि उबाले हुए, तिर्यक पातित या निथारित पानी से न बनाया हो तो अच्छा नहीं होता क्योंकि केवल हैजा के कीटाणु छोड़कर शेष सभी रोगों के रोगाणु इसमें रहकर वृद्धि कर सकते हैं और अनेक संक्रामक रोगों के कारण बन सकते हैं। अधिकांश बनानेवाले इन्हें विधिवत नहीं बनाते।

सर्वोत्तम पेय

शुद्ध जल तो सब से बढ़िया प्राकृतिक पेय है; दूध और दूध से बने पेय जैसे दही की लस्सी, छाछ और मट्ठा भी स्वास्थ्यकारक पेय हैं। ताड़ या खजूर से निसृत रस नीरा बहुत ही उपयोगी पेय है, लेकिन वह तब तक ही पीने योग्य है जब तक कि उसमें खट्टापन न आये और संधान न होकर मादकता उत्पन्न न हो। बिना झाग आये नीरा पीना चाहिए। गन्ने का रस बड़ा पोषक है, उत्तम पेय है और दूध के साथ मिलाकर पीने से अनेक रोगों में लाभ करता है। नीबू, सन्तरा, मौसमी, अनन्नास आदि फलों का ताजा और निर्दोष रस भी पेय रूप में लेना हितकर होता है।

मादक पेय पदार्थ

जितने भी मादक पदार्थ हैं वे एक बार आरंभ करने पर आदत में बस जाते हैं और फिर उनका छोड़ना कठिन हो जाता है। आरम्भ में उपयोग करने पर ऐसा लगता है कि वे थकान मिटाकर शरीर को स्फूर्ति और मन को प्रसन्नता देने वाले हैं; परन्तु उनका यह गुण स्थायी नहीं रहता, ज्यों-ज्यों वे शरीर के अभ्यास में आते हैं त्यों-त्यों उनमें आराम देने की क्षमता कम होती जाती है। इसलिए मादक पदार्थों की मात्रा भी धीरे-धीरे बढ़ानी ही पड़ती है। यह दुर्गुण सब तरह के मादक पदार्थों में है।

चाय

प्रचार के बल पर क्या हो सकता है, इसका उदाहरण भारत में चाय के प्रचार से बढ़कर दूसरा शायद ही कोई मिले। अब तो चाय का प्रचार इतना अधिक होने लगा है कि उसका निषेध सरल नहीं रहा। शहरों में और गाँवों में शायद ही कोई घर हो जिसमें चाय न पी जाती हो। गाँवों में भी चाय का प्रसार तेजी से बढ़ रहा है।

चाय में हल्का नशा होता है। इसमें विद्यमान टैनिन नामक पदार्थ बहुत हानिकर होता है। इसीसे अधिक चाय के प्रयोग से पाचन संस्थान खराब होता है। कोष्ठबद्धता के अतिरिक्त यह स्नायुमण्डल पर भार डालती है और नींद का हरण करती है।

चाय की हानियों से बचने के लिए उसके बनाने में सावधानी रखनी चाहिए। पहले जल को उबाला जाय, फिर खौलते जल को आग से उतार कर उसमें उत्तम चाय की पत्ती डालकर पाँच मिनट से अधिक न रक्खा जाय। फिर अलग पात्र में घोल को छानकर पर्याप्त दूध और चीनी मिलाकर पिया जाय। खौलते पानी में पाँच मिनट से अधिक पत्ती रहने से उसका टैनिन नामक हानिकारक पदार्थ घोल में आ जाता है। चाय, दूध, शक्कर, पानी सबको एक साथ पानी में मिलाकर खौलाने की बजारू क्रिया अत्यन्त हानिकारक है।

यद्यपि उत्तेजक पदार्थ होने के कारण चाय क्षणिक स्फूर्ति और क्षणिक विचार-शक्ति बढ़ाती है, मूत्र-निःसारक होने से यह शरीर के विषों को भी बाहर निकालती है, तथापि स्वास्थ्य के विचार से चाय निश्चय ही हानिकारक पेय है। प्रारंभिक आयु में चाय का प्रयोग करने से बच्चों का कोमल पाचनसंस्थान सदा के लिए अशक्त और रोगी हो जाता है।

काफी

यह भी चाय वर्ग का पेय है। यह उत्तेजक होने पर भी हृदय को बल देती है। हृदय की धड़कन बढ़ जाती है और नींद कम हो जाती है। फिर भी काफी के साथ दूध अधिक मात्रा में लेना पड़ता है, इसलिए वह चाय से कम हानिकर और स्फूर्ति देने वाला पौष्टिक पेय हो जाती है। एक प्याला काफी से ४० कैलोरी शक्ति मिलती है।

मद्य (शराब)

मादक पेयों में सर्वाधिक निकृष्ट,हानिकारक और घृणित आचरण बनाने वाला द्रव्य शराब है। प्राचीन समय में औषध रूप में इसका आरम्भ हुआ था। जब कभी अत्यल्प मात्रा में दवा की तरह लेने से यह उत्तेजक औषधि की भांति शरीर में शक्ति और स्फूर्ति उत्पन्न करती है। परन्तु एक बार जितनी मात्रा पीने से जितनी उत्तेजना प्राप्त होती है; आगे उतनी ही मात्रा में उतनी उत्तेजना नहीं मिलती, इसलिए मात्रा बढ़ानी पड़ती है। इसी प्रकार धीरे-धीरे मात्रा बढ़ती ही जाती है जो अन्त में विनाश और रोगों का कारण बनती है।

अधिक परिमाण में अथवा अधिक दिनों तक निरन्तर शराब पीने से पाचन-कला विकृत हो जाती है। यह सभी जानते हैं कि चमडी पर स्प्रिट लगाने से वह कड़ी पड़ जाती है। शराब में भी स्प्रिट होती है जिससे वह भीतर पहुँचकर आमाशय इत्यादि कोमल अंगों को एकदम जलाकर कड़ा और काला कर देती है, जिससे उनकी रस छोड़ने की कार्यशक्ति क्षीण हो जाती है। आमाशय में दस प्रतिशत मद्य हो जाने से पाचन-कार्य स्थगित हो जाता है। इसलिये मद्यपी को मन्दाग्नि हो जाती है। यकृत् (लीवर) पर तो शराब का वहुत ही दुष्प्रभाव पड़ता है। प्रारंभिक रूप में इससे मस्तिष्क उत्तेजित होता है, परन्तु बाद में यह स्नायुमंडल को इतना निर्बल कर देती है कि विचार शक्ति ही नष्ट हो जाती है।

निरन्तर शराब पीने वालों की शक्ति और रोग-निवारण शक्ति निश्चित ही कम हो जाती है। कुछ लोग कहते हैं कि विचार-सम्बन्धी कठिन श्रम करने वाले को एक औंस मद्य प्रतिदिन प्रयोग करने से शान्ति मिलती है। भारत जैसे उष्ण जलवायु वाले देश के लिए यह बात कदापि सत्य नहीं। आयुर्वेद में मद्य के अति प्रयोग से अनेक भीषण दुष्परिणाम और रोग होना बताया गया है।

मद्ये मोहो भयः शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रितः।
सोन्मादमदमूर्च्छाद्याः सापस्मारापतानकाः॥
निवृत्तो यस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत्।
विकारैः स्पृश्यते जातु न स शारीरमानसैः॥

अर्थात् मद्यपान से मोह, भय, शोक, क्रोध और मृत्यु होती है। पागलपन, नशा, मूर्च्छा, मृगी, धनुर्वात रोग पैदा होते हैं। जो मनुष्य मद्यपान से मुक्त रहता है उसको शारीरिक और मानसिक रोग नहीं होते।

आजकल विशेषकर धनी लोगों में मद्य के अतिप्रयोग से अनेक मानसिक विकार बढ़ रहे हैं। निर्धन और मजदूर वर्ग में भी आर्थिक और शारीरिक हीनता का बड़ा कारण मद्य-पान है। मद्य निश्चित ही आचरण- भ्रष्टता की ओर ले जाता है। इसका दुष्प्रभाव सन्तति पर भी पड़ता है। हमारे देश में ऐसे अगणित उदाहरण हैं कि मद्यपान के फलस्वरूप अच्छे-से-अच्छे धनसम्पन्न और वीरक्षत्रिय परिवार नष्ट हो गये। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हर क्षेत्र में मद्यपान का त्याग किया जाय।

नशा के लिए अफीम, भंग, गाँजा, चरस आदि पदार्थों का भी प्रयोग करते हैं। ये सभी शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए नितान्त अहितकर हैं। सब का ही प्रभाव हृदय, मस्तिष्क, आमाशय आदि कोमल अंगों पर बुरा पड़ता है और मादक द्रव्यों के अतिसेवन से ये अंग बहुत जल्द बेकाम हो जाते हैं। स्वस्थ रहने की इच्छा रखने वाले को इन सबसे निश्चय ही दूर रहना चाहिए। भाँग से बहुत लोग पागल होते हैं वे किसी चिकित्सा से अच्छे नहीं होते।

तम्बाखू

तम्बाखू में निकोटिन नामक एक इतना विषैला पदार्थ होता है कि उसकी केवल दो बूंदों से कुत्ता और आठ बूंदों से घोड़ा मर सकता है। यह विष मनुष्य-शरीर में धीरे-धीरे रक्त में मिलकर अनेक भयंकर रोगों का कारण बनता है। तम्बाखू में मादक तत्त्व होते हैं, इसलिए वह भी कुछ दिन लेने से आदत में बन जाती है।

खाने के तम्बाखू के साथ सुपारी होने से दाँत खराब होते ही हैं, भीतर आमाशय भी विकृत हो जाता है। अग्निमाँद्य तथा कोष्ठबद्धता आदि पाचन के रोग निश्चित बढ़ते हैं।

धूम्रपान के रूप में तम्बाखू का उपयोग भी कम हानिकारक नहीं है। दुर्भाग्य-

वश आजकल धूम्रपान नयी सभ्यता का चिह्न बन गया है। बचपन से ही हमारे बालक और युवक देखा-देखी बीड़ी-सिगरेट पीने लगते हैं। यह सामाजिक दोष है।

हुक्का, चूरट, सिगार, सिगरेट, बीड़ी आदि किसी भी रूप में तम्बाखू पीने से फेफड़े रोगी हो जाते हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने खोज करके यह सिद्ध कर दिया है कि कैंसर जैसा भयंकर मृत्युकारक रोग धूम्रपान से होता है। अमेरिका आदि देशों में सिगरेट की डिबिया पर लिखा रहता है कि इसके पीने से कैंसर हो सकता है फिर भी जो पीते हैं वह मनुष्य कैसे कहे जायेंगे ?

फेफड़ों का मुख्य काम रक्त की सफाई करना है। हृदय से चलकर रक्त सारे शरीर में दौड़ कर अंग-प्रत्यंग का मैल बटोर कर फेफड़ों में लौट आता है। फेफड़े रक्त को साफ करके उसमें व्याप्त विषाक्त तत्त्व, निश्वास मार्ग से (कार्बन डाइ ऑक्साइड के रूप में) बाहर निकालते हैं। जिन फेफड़ों का प्रधान काम ही कार्बन को बाहर निकालना है, उन्हें हम धूम्रपान करके कार्बन से भरें यह कितना बड़ा उल्टा काम है ? तम्बाखू के धुएँ में सब से अधिक कार्बन डाइ ऑक्साइड होता है। वह भीतर पहुँच कर फेफड़ों को जलाता है और उनके चारों ओर कालिख की तह जमा कर उन्हें बेकाम कर देता है। इसलिए कदापि धूम्रपान की आदत नहीं डालनी चाहिए।

सब तरह के मादक पदार्थों में न्यूनाधिक परिमाण में विष के ही गुण-प्रभाव होते हैं। इसलिए उनका परिणाम भी विष के ही समान होता है। अतएव पूर्ण स्वास्थ्य की कामना रखनेवालों को सभी प्रकार के मादक द्रव्यों से बचना चाहिए।

जल (पानी)

पानी जीवन और शरीर का प्राणवायु के पश्चात् अत्यन्त अनिवार्य घटक है। शरीर का तीन चौथाई भाग पानी ही है। पीने तथा शरीर, सामान और स्थानों की स्वच्छता में तो पानी का अनिवार्य उपयोग है ही, आजकल उद्योगों का भी यह एक आवश्यक साधन हो गया है।

स्वास्थ्य-प्रसंग में पीने और नहाने-धोने के काम आने वाले पानी के विषय

में विशेष ज्ञान करना हर व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। हमारे देश में लगभग ८० प्रतिशत पेट के रोग, चमड़ी के और अन्य कई संक्रामक रोग पानी के दोषों से फैलते हैं। विकृत जल के दोषों के प्रति अज्ञानता और असावधानी इन रोगों का कारण है।

पानी का उपयोग

पीने के लिए पानी की मात्रा मौसम के अनुसार घटती-बढ़ती है। सामान्यतः मनुष्य-शरीर के भीतर चौबीस घण्टों में तीन से चार सेर तक पानी की आवश्यकता होती है। इसमें लगभग तीस प्रतिशत खाद्य द्रव्यों द्वारा भीतर पहुँचता है, आठ प्रतिशत पाचन क्रिया से भीतर ही उत्पादित होता है। शेष मात्रा की पूर्ति ऊपर से पानी और अन्य पेय पदार्थों से होती है। जितना पानी शरीर के भीतर पहुँचता है, लगभग उतना ही बाहर निकलता है। ३५ प्रतिशत त्वचा द्वारा, २० प्रतिशत प्रश्वास द्वारा, ३ प्रतिशत मल और थूक द्वारा और ४० प्रतिशत मूत्र (पेशाब) द्वारा। यह अनुपात सामान्य स्वस्थ स्थिति का है।

जल की सहायता से शरीर के भीतर पाचन-प्रचूषण होता है। भीतरी कोष्ठों की सफाई होती है और मल बाहर निकलता है। रक्त तरल रहता है। रसोत्पादक ग्रन्थियाँ जल की मदद से ही अपना काम करती हैं, इस प्रकार पीने के पानी का स्वास्थ्य के साथ बड़ा महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है।

अनुपान द्रव्यों में भी स्वच्छ जल सर्वोत्तम होता है। अधिक गर्म या अधिक ठंडा पानी भीतरी शरीरांगों को हानि पहुँचाता है। बर्फ मिश्रित पानी से आँतों और आमाशय को तो हानि होती ही है; गला भी खराब होता है और दाँतों की जड़े कमजोर होती हैं। उससे प्यास की यथार्थ शान्ति भी नहीं होती।

सामान्यतः दिन-रात में जब भी प्यास लगे तब पानी पीना चाहिए। जब खूब भूख लगी हो, तब पानी नहीं पीना चाहिए। भोजन के मध्य भी थोड़ा ही पानी पीना चाहिए। भोजनोपरान्त एक दो घण्टा बाद जब प्यास-लगती है तब यथेच्छ पानी पिया जा सकता है सदा ही पानी घूंट-घूंट करके धीरे-धीरे शान्त भाव से पीना चाहिए। इससे पानी के साथ मुंह का लार-रस मिल जाने से वह पाचक और स्वादिष्ट बन जाता है, तथा यथार्थ प्यास बुझती है।

नहाने-धोने, कपड़े, बर्तन और घर आदि की सफाई में भी पानी का बहुत उपयोग होता है। बर्तन व कपड़े धोने और नहाने के लिए विशेष रूप से स्वच्छ एवं कीटाणुरहित पानी का ही उपयोग करना चाहिए। गन्दे पानी में स्नान से चमड़ी के रोग होते हैं।

पीने का पानी

पीने के लिए बिल्कुल शुद्ध और स्वच्छ जल का ही प्रयोग करना चाहिए सर्वथा शुद्ध जल में कोई गंध, रंग या स्वाद नहीं होता। उसमें एक विशेष प्रकार की चमक होती है और वह पारदर्शक होता है जिसमें से एक ओर से दूसरी ओर की हर वस्तु एकदम साफ दिखाई देती है। जिसमें ठोस पदार्थों की मात्रा अधिक न हो, भूयाति (नाइट्रोजन) मिश्रित सेन्द्रिय पदार्थ, कण रेशें या जीवाणु कतई न हों–ऐसा पानी पीने के योग्य होता है।

अपने उपयोग के लिए हम मुख्यतः तीन साधनों से पानी प्राप्त करते हैं– आकाश से वर्षा द्वारा, पृथ्वी पर नदी-तालाब या बाँधों द्वारा और भूमि के भीतर से झरनों और कुओं द्वारा। पीने के विचार से आकाश से प्राप्त जल सर्वोत्तम, भूमि तल से प्राप्त मध्यम और पृथ्वी से ऊपर का जल निकृष्ट होता है।

वर्षा का जल

वर्षा से प्राप्त जल निर्मल, हल्का, पथ्यकर और वायु मिश्रित होने से रुचिकर होता है। वैसे सब जगह का वर्षाजल एक-सा ही होता है, परन्तु वायु-मण्डल की स्थिति के अनुसार उसमें कभी-कभी, कहीं-कहीं कुछ अन्तर हो जाता है।

जहाँ अधिक कल-कारखाने, मिले अथवा गुम्मे या चूने के भट्ठे होते हैं वहाँ के आकाशी वातावरण (वायुमण्डल) में व्याप्त भाप, धूलिकण, रेशे और जहरीली गैसें, पहले-पहल बरसने वाले वर्षा जल में मिल जाती हैं। इसलिए कभी भी आकाश से बरसने वाले पानी के प्रारंभिक अंश को पीने के काम में नहीं लेना चाहिए। एटमबम तथा हाइड्रोजन बम के विस्फोट के कारण वातावरण बहुत दूषित हो जाता है।

वर्षाजल की सर्वोपरि शुद्धता की विशेषता उसमें तब तक ही रहती है जब तक कि वह भूमि पर नहीं बिखरता। मकानों के छप्पर और छतों पर गिरते

ही वर्षाजल में भी धूल कूड़ा-कर्कट और मैल मिल जाता है। उसको ऊपर ही ऊपर खुले स्थान में कोई पात्र रखकर एकत्र किया जा सके तो वह अमृत समान होता है। राजस्थान के मरुभूमि एवं जलाभाव वाले अन्य क्षेत्रों में कुछ लोग साफ छतों का वर्षा का पानी भूमितल में पक्का कुण्ड बनाकर एकत्र करके पीने के उपयोग में लाते हैं।

परन्तु ऐसा करना सर्वत्र व्यावहारिक नहीं, इसलिए वर्षा का जल अधिकांश बहकर तालाबों और नदियों में इकट्ठा हो जाता है। पीने के बजाय घरों में वर्षा-जल ऋतुकाल में नहाने-धोने मात्र के उपयोग में आता है।

नदी-तालाब का जल

पृथ्वी पर बहने वाली नदियाँ, तालाब, बांध या अन्य जलागार, जल प्राप्ति का दूसरा सदासुलभ साधन हैं।

तालाबों में प्रवाह नहीं होता और खुले रहने से उनमें धूल, कूड़ा, मैल मिलता रहता है। स्वस्थ और रोगी, सब तरह के स्त्री-पुरुष-बच्चे तालाब के पानी में नहाते हैं, गन्दे कपड़े धोते हैं जिनका विषैला मैल तालाब में ही मिलता रहता है। किनारे शौच करके लोग गन्दे हाथ भी तालाबों में धोते हैं। पशुओं को पानी पिलाने और नहलाने में भी तालाबों का उपयोग होता है। वर्षा के दिनों में आस-पास का सारा मैल पानी के बहाव से तालाबों में एकत्र होता है। ऐसे कितने ही कारणों से तालाबों का पानी गन्दा और विषैला होता है जिसके पीने से कई तरह के रोग फैलना निश्चित है।

यही स्थिति नदियों के पानी की है। तालाबों की भाँति नदी-जल को भी लोग गन्दा करते हैं। अधिकतर श्मशान नदियों के किनारे होते हैं जिनसे मुर्दों की राख और कभी-कभी जानवरों तथा मनुष्यों की लाशें तक नदी में प्रवाहित की जाती हैं जो उसमें ही सड़गल जाती हैं। आस-पास के गांववाले सर्वत्र ही नदी किनारे शौच कर उसी के पानी में आबदस्त लेते हैं। वर्षा में जब नदियों में अधिक पानी उमड़ता है तब किनारों का मल, कूड़ा-कर्कट और घास-फूस बहकर नदी में ही सिमट आता है।

बड़ी-बड़ी नदियों में तेल और भाप की नावें चलने से उनका पानी गन्दा

होता रहता है। नदियों के किनारे बसे नगरों के मल-मूत्र के नाले और कल-कारखानों के कचरे भी नदियों में ही छोड़े जाते हैं।

इस प्रकार छोटी बड़ी सभी नदियों का पानी उपरोक्त विभिन्न कारणों से अत्यधिक गन्दा होता है; जो बिना साफ किये कदापि पीने लायक नहीं होता। नगरों में नदियों का पानी ही बाँधों और जलागारों में इकट्ठा करके नलों द्वारा मुहल्लों और घरों तक पहुँचाया जाता है, नलों का पानी रासायनिक या यान्त्रिक क्रिया से साफ करके भेजा जाता है, इसलिए पीने के लिए वह निरापद होता है।

ऐसी नदी जो अधिकांश पहाड़ों और पथरीले मार्ग में होकर बहती हो, जिसमें बारहों मास प्रवाह रहता हो और जिसके किनारे बस्तियाँ न हों उसका पानी पीने के काम में लाया जा सकता है।

झरने और कुएँ का पानी

जल प्राप्ति का तीसरा साधन भूमि के गर्भ से निकलने वाले स्रोत, झरने, प्रपात और भूमि पर खोदे हुए कुएँ है।

गहराई से निकलने वाले झरने का पानी साफ और चमकीला होता है। भूमि के भीतर विभिन्न खनिज स्थिति होने से कहीं झरनों का जल भारी, कहीं हल्का होता है। पथरीले क्षेत्र के झरने के जल में पत्थर के बहुत महीन कण मिले रहते हैं, जिसे पीने से पेट के रोग होते हैं। बद्रीनाथ आदि पर्वतीय तीर्थों के यात्री वहाँ के झरनों का जल पीने से इसी कारण उदर रोग से बहुधा पीडित हो जाते हैं। सामान्यतः झरनों का जल दूषित नहीं होता और भारी न हो तो पीने के लिए बड़ा उपयोगी है। परन्तु वह सर्वत्र सब के लिए, सदा सुलभ नहीं होता।

कुएँ का पानी हमारे देश को बहुसंख्यक जनता पीती है। यद्यपि वह शुद्ध और स्वास्थ्यकर नहीं होता है। कम गहरे, कच्चे तथा खुले कुओं का पानी तो बहुत कम पीने योग्य होता है। बावड़ी का पानी भी पीने के काम में नहीं लेना चाहिए। ऊपर से घास-पत्ती, पक्षी आदि गिरने से कुआँ गन्दा होता है। प्राय कुएँ से पानी भरने वाले अपने बर्तन कुएँ के पनघट पर ही माँजते हैं, इससे

कुएँ का पानी गन्दा होता रहता है ।

पीने के पानी का कुआँ पक्का और चारों ओर से ऊँचे घाट वाला होना चाहिए, जिससे बाहर का गन्दा पानी या छींटे कुएँ में न गिर सकें । वह भीतर से भी सीमेंट की चिकनी छाब से पक्का होना चाहिए जिससे आसपास का गन्दा पानी रिसकर उसमें न आवे । भीतर कहीं छेद, आले या ऐसी संधे नहीं होनी चाहिए जिनमें पक्षी घोंसले बनाकर बसेरा करें । ऐसा होने से पक्षी कुएँ में ही बीट करते हैं, घोंसलों की घास बिखरती हैं, अण्डे गिरते हैं और कभी-कभी पक्षी भी मर कर कुएँ में गिरते और सड़ते हैं । इनसे पानी विषाक्त होता है । ऊपर से टीन या सीमेंट के सायबान से कुआँ छायादार होना चाहिए और कुएँ के आस-पास कोई गन्दा नाला, पोखर या पानी इकट्ठा होने का गड्ढा नहीं होना चाहिए । ऐसे कुएँ का जल स्वच्छ और पीने योग्य हो सकता है । उसे छान कर पीना चाहिए ।

पेय जल-एक समस्या

हमारे देश में पीने के लिए जनता को सर्वत्र शुद्ध पानी मिलने का प्रबन्ध निश्चय ही एक बड़ी समस्या है । नगरों में तो अधिकांश व्यवस्था हो गई है, परन्तु गाँवों में अभी कुछ नहीं हुआ है ।

प्राणिज विकृत अर्थात् रोगाणुयुक्त जल सबसे अधिक खराब होता है और अभाग्यवश वही हमारे देश की अधिकांश जनता को पीना पड़ता है । परिणामत: जल-दोष से आन्त्रिक और पेट के रोग–विशेष करके अमेविक प्रवाहिका रोग होता है जो बहुत खराब होता है; आयुर्वेद की लम्बी चिकित्सा से जाता है–– भारत में बहुतायत से होते हैं । इसलिए जन रक्षा-हेतु शुद्ध पेय जल का सर्वत्र उपयोग अत्यन्त वांछनीय हैं । हमारी सरकार पांचवी पंचवर्षीय योजना में विशाल पैमाने पर यह प्रयास कर रही है कि सर्वत्र शहरी और ग्रामीण जनता को शुद्ध पेय जल दिया जा सके । इस पुण्य कार्य में सरकार के साथ जन-जन को अधिकाधिक सहयोग करना चाहिए, जिससे शुद्ध पेय जल की राष्ट्रीय समस्या यथाशीघ्र हल हो सके ।

हर गाँव में ग्रामवासियों को मिलकर ऊपर बताये हुए प्रकार का एक-एक

पक्का छायादार बड़ा कुआँ अवश्य बनाना चाहिए। आवश्यकतानुसार एक से अधिक बन सकें तो उपयुक्त होगा। इस तरह जब तक सरकारी योजना पूर्ण नहीं होती, तब तक काम चलाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त हर नागरिक को तालाब और नदियों के पानी को छानने, फिल्टर करने या रासायनिक क्रिया से, शुद्ध करने पर ही उपयोग में लाना चाहिये इसलिए पानी को छानने, फिल्टर करने या रासायनिक क्रिया से, शुद्ध करने पर ही उपयोग में लाने का अनिवार्य अभ्यास बना लेना चाहिए। शुद्ध पेय जल की राष्ट्रव्यापी रोग-समस्या का यह सर्वोपरि व्यावहारिक हल है।

दूषित पानी

दूषित जल के तीन प्रकार हैं; खनिज वानस्पतिक और प्राणिज। खनिज दूषित, अर्थात् चूना, पत्थर, लोहा, अभ्रक आदि के कण मिला हुआ जल रंग-रूप में शुद्ध जल जैसा ही होता है, परन्तु स्वाद में थोड़ा भिन्न अवगत होता है। इससे प्रवाहिका, मलावरोध और अग्निमांद्य आदि रोग होते हैं।

वनस्पति से दूषित अर्थात् घास-फूस, पत्ते, वनस्पति, काई-सीवार आदि से विकृत जल रंग-रूप में कुछ हरा मा मटमैला होता है। सड़ने से उसका स्वाद बदबूदार होता है। इससे मितली, वमन, प्रवाहिका और मरोड आदि रोग होते हैं।

प्राणिज दूषित जल सबसे अधिक घातक और दुःखदायी रोगों का कारण होता है। इसमें दिखने, न दिखने वाले छोटे-छोटे रोगाणु, तृणाणु या कृमि के अण्डे मिले रहते हैं। ऐसा पानी पीने से अतिसार, संग्रहणी, आंत्रिक रोग विसूचिका विविध कृमि रोग और भयंकर संक्रामक रोग उत्पन्न होते हैं और फैलते हैं। जल में प्राणिज दूष्यता, अधिकांशतः रोगियों के मल-मूत्र सने या अन्य कपड़े धोने से, जल में ही या उसके किनारे मल-मूत्र त्यागने, थूकने, रोगी मनुष्य या जानवरों को नहलाने आदि से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार थोड़े-से लोगों की नादानी और अज्ञान कभी-कभी जनपद-विध्वंसक रोगों का कारण बन जाता है।

जल-शुद्धि के उपाय

यद्यपि सूर्य की किरणों, हवा, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण और प्रवाहगति के नैसर्गिक साधनों से जल स्वयं शुद्ध होता रहता है। परन्तु जलशुद्धि के नैसर्गिक साधनों की अपेक्षा, प्राणियों द्वारा पानी को गन्दा करने की स्थिति अधिक है। इसलिए, सर्वत्र बिल्कुल शुद्ध पानी मिलना प्रायः असम्भव ही मानना चाहिए और यदि कुएँ या नदी का पानी ही पीना पड़े तो, उसको शुद्ध करके ही पीना चाहिए अन्यथा रोगी होने की पूरी आशंका है।

पानी को कपड़े की दो तहों में छानकर पीना जलशुद्धि का सबसे सहज उपाय है। अति प्राचीनकाल से जैनधर्मावलम्बी सदा ही छानकर पानी पीने की परम्परा अपनाये हुए हैं। वे इसे धार्मिक कृत्य मानते हैं। वस्तुतः स्वास्थ्य के लिए यह अभ्यास सब के लिए अत्युपयोगी है।

पानी को दोष-रहित बनाने के अनेक उपाय हैं, जिनमें कुछ बहुत मँहगे हैं, कुछ सुलभ भी हैं। एक तिपाई फिल्टर का ढंग गृहस्थों के लिए अच्छा है। इनमें चार खाने वाली लकड़ी की तिपाई बनायी जाती है। सबसे नीचे खाने में खाली घड़ा उससे ऊपरवाले में बालू से भरा घड़ा, उससे भी ऊपर वाले खाने में कोयला का चूरा भरा घड़ा और सबसे ऊपरवाले खाने में पानी भरकर घड़ा रखा जाता है। ऊपर के तीन अर्थात् पानी, कोयले का चूरा और बालू भरे घड़ों की तली में छोटे-छोटे छेद किये जाते हैं, जिनसे पानी छनकर चूता रहे। सबसे ऊपर के घड़े में भरा पानी, कोयले का चूरा और बालू भरे दो घड़ों में से छनकर सबसे नीचे के खाली घडे में एकत्र हो जाता है। पानी की सब अशुद्धियाँ बालू और कोयले में रह जाती हैं, और कैसा भी अशुद्ध जल इस तरह फिल्टर करने से पीने लायक शुद्ध हो जाता है। कुछ वर्ष तक इस तरह की तिपाइयाँ छोटे स्टेशनों पर रखी दिखाई देती थीं।

कुछ रासायनिक तत्त्वों के मिश्रण से पानी शुद्ध किया जाता है। इनमें फिटकरी डालकर पानी शुद्ध करना अच्छा है। फिटकरी से वर्षाजल या दूसरे अशुद्ध पानी के दूषित तत्त्व तली में बैठ जाते हैं। निर्मली से भी जल शुद्ध होता है। सामूहिक प्रयोग के लिए पोटेशियम परमेंगनेट (पिनकी) डालकर कुएँ का जल शुद्ध

करना अच्छा है। पानी साफ करने के लिए कुओं, तालाबों और जलाशयों में पिनकी ही डाली जाती है। शहरों में नलों द्वारा जो पानी घर-घर भेजा जाता है, वह अधिकतर यान्त्रिक साधनों तथा रासायनिक द्रव्यों से शुद्ध किया जाता है।

जल शुद्धि के सभी उपायों में पानी को छानकर पीना सबसे बढ़िया है। सदा ऐसा अभ्यास रखना चाहिए। जहाँ कोई संक्रामक रोग फैला हो या फैलने की आशंका हो, वहाँ सदैव पानी को औंटाकर ही पीना चाहिए। खौला लेने से पानी हल्का और दोष-रहित हो जाता है, परन्तु खौले हुए पानी का स्वाद कुछ मीठा और अरुचिकर होता है। खौला कर दूध की भांति फेटकर ठंडा कर लेने सें औंटा हुआ पानी सुस्वादु हो जाता है।

वायु (हवा)

वायु (हवा) शरीर का एक मुख्य घटक और प्राकृतिक आहार है। भोजन के बिना कुछ दिनों और पानी के बिना कुछ घण्टों मनुष्य जीवित रह सकता है; परन्तु हवा के बिना कुछ क्षण भी जीवित रहना संभव नहीं। वस्तुत: वायु ही तो प्राण है।

पृथ्वी के चतुर्दिक् सौ मील की ऊँचाई तक वायु का आवरण है जिनमें अनेक तत्व मिश्रित हैं। मुख्यत: प्राणवायु (ऑक्सीजन), भूयाति (नाइट्रोजन) और प्रांगार द्विजारेय (कार्बन डाइ आक्साइड) इन तीन तत्त्वों के अलावा भाप, धूल, सेन्द्रिय और खनिज द्रव्यों के कण तथा कुछ गैस भी वायु में रहती है।

वायु के संघटक तत्त्व

खुले वायु मण्डल की हवा में लगभग $\frac{१}{५}$ भाग प्राणवायु, $\frac{४}{५}$ भाग भूयाति, और प्रति दस हजार भाग में ३-४ भाग प्रांगार द्विजारेय रहता है। इन तत्त्वों में प्राणवायु मनुष्य के लिए परम उपयोगी, भूयाति निरुपयोगी और प्रांगार द्विजारेज अत्यन्त हानिकर होता है।

अधिक मात्रा में प्राणवायु मिश्रित हवा को शुद्ध और प्रांगार द्विजारेय मिश्रित को अशुद्ध हवा कहते हैं। शुद्ध हवा में कोई रंग, रूप, गंध या स्वाद नहीं होता, क्योंकि वायु के अन्य तत्त्व निर्गन्ध और नि:स्वाद होते हैं, परन्तु प्रांगार द्विजारेय खट्टे स्वादवाला, दुर्गन्धयुक्त एवं वजनदार होता है। भारी

होने से ही वह खड्डों में, गहरे जलहीन कुओं में और आठ-दस फीट की ऊँचाई तक भूमि तल में अधिक मात्रा में रहता है। प्राणवायु ज्वलनशील होता है, परन्तु प्रांगार द्विजारेय ज्वलनशील और जीवन का पोषक नहीं होता। इसलिए जहां प्रांगार-द्विजारेय वायु अधिक हो, वहाँ दीपक बुझ जाता है। ऐसी अशुद्ध हवा में मनुष्य भी जीवित नहीं रह सकता।

वायुमंडल में प्रांगार द्विजारेय की मात्रा मनुष्य की निःश्वास से अधिक बढ़ती है। जब हम श्वास द्वारा हवा शरीर के भीतर ले जाते हैं तो वायु के तत्त्व निम्न परिमाण में भीतर पहुँचते हैं :—

प्राणवायु (ऑक्सीजन)	२०.९६ प्रतिशत
प्रागार द्विजारेय (कार्बन डि आक्साइड)	०.०४ ,,
भूयाति (नाइट्रोजन)	७९.०० ,,

प्रश्वास द्वारा बाहर निकलने वाली वायु शरीर के भीतर का मैल बटोर लाती है, इसलिए उसमें प्राणवायु की मात्रा कम, और प्रांगार द्विजारेय की मात्रा लगभग सौ गुना बढ़कर निकलती है। निःश्वसित हवा में निम्न तत्त्व होते हैं :—

प्राणवायु	१६.४० प्रतिशत
भूयाति	७९.१९ प्रतिशत
प्रांगार द्विजारेय	४.४१ प्रतिशत

इनके अतिरिक्त निःश्वास से बाहर आनेवाली वायु में कुछ भाप और अन्य मैल भी रहते हैं।

अशुद्ध हवा

जिस जगह में गंदगी हो, नमी या सीलन रहती हो, मकान में धूप और साफ हवा आने के लिए पर्याप्त खिड़कियाँ और दरवाजे न हों, चीजें सड़ती हों और बदबू फैलती हो बहुत सवारी और घनी बस्ती हो, कम जगह में अधिक प्राणी रहते हों, जहां कल-कारखाने हों और धुआं, धूल के कण, रुई या रेशम के रेशे उड़ते हैं। ऐसी जगहों में वायु में गंदगी और प्रांगार द्विजारेय (अशुद्ध हवा) की मात्रा बढ़ जाती है।

अँधेरे और तंग स्थान में अथवा जहां बहुत-से व्यक्ति बैठे या लेटे हों, जैसे

सिनेमा आदि में वहाँ की वायु अधिक अशुद्ध होती है। रात में चारों ओर से किवाड़ खिड़की बन्द करके कई आदमी सोवें तो उनकी प्रश्वास द्वारा निकली अशुद्ध वायु से कमरे का वातावरण जहरीला हो जाता है। कमरा बन्द करके अँगीठी या मिट्टी के तेल का दीपक जलता छोड़ दें तो कमरे के वातावरण में व्याप्त प्राणवायु नष्ट हो जायगी और प्रांगार द्विजारेय (अशुद्ध हवा) बढ़ जायगा, क्योंकि दीपक या आग प्राणवायु खाकर ही जलते हैं और उनकी ज्वलन क्रिया से प्रांगार द्विजारेय उत्पन्न होता है। कोई चीज जल रही हो और बाहर से हवा आने का मार्ग बन्द हो ऐसे स्थान पर ठहरने वाला व्यक्ति, वहाँ अशुद्ध वायु की अधिकता से अंततः मर जायगा।

कस्बों और बड़े नगरों में कोल गैस और मिट्टी का तेल अधिक जलाने से, कल-कारखानों के धुएँ से, सकरी गलियों की गंदगी और अधिक आबादी तथा घनी बस्तियों से वहाँ के वायुमंडल में अशुद्ध वायु की मात्रा बढ़ती है।

गाँवों में खुला वातावरण होने से वायु-मण्डल में पर्याप्त प्राणवायु रहती है, परन्तु उस प्राकृतिक सुविधा का लाभ, हमारे ग्रामवासी अज्ञानतावश नहीं उठाते। प्रायः सर्वत्र ही गाँवों में छोटे-छोटे, नीचे-नीचे, कच्चे और बिना खिड़कियों के मकान होते हैं, जिनमें धुप और शुद्ध हवा काफी नहीं आ-जा पाती। उस पर भी अधिकांश गाँव वाले रहने के मकान में ही गाय-भैंस आदि पशुओं को रखते हैं, जिससे सारे मकान में पशुओं के मल-मूत्र का कीचड़, सीलन, सड़ाँद और गंदगी भरी रहती हैं। कुछ लोग तो खाद के लिए गोबर, कूड़ा-कर्कट अपने आँगन में ही या मकान के बहुत निकट इकट्ठा करते हैं। ग्रामवासियों के लिये पशु, गोबर कूड़ा आदि खेत के खाद देने के लिए अत्यावश्यक हैं। खाद गड्ढे बनाकर डालने से वह अधिक उपयोगी हो जाती है तथा गाँव भी स्वच्छ रहता है खाद का गड्ढा गाँव से दूर होना चाहिए। इन कारणों से ही गाँव का वातावरण अशुद्ध और अस्वास्थ्यकर होता है। अभ्यस्त हो जाने से वह गाँव वालों को स्वयं नहीं अखरता, परन्तु सत्य यह है कि इस अज्ञानता से गाँव की बस्ती और घरों के वायुमण्डल में अशुद्ध वायु की मात्रा बढ़ती है और रोग फैलते हैं।

गाँवों में अधिकांश खेतों पर काम करने वाले स्त्री-पुरुषों को तो उचित

मात्रा में शुद्ध हवा भी मिल जाती है, परन्तु ज्यादातर घर के भीतर रहने वाले बालकों और वधुओं के स्वास्थ्य पर घरों की उस गंदगी और संकीर्णता का बुरा प्रभाव निश्चित पड़ता है।

अशुद्ध हवा अर्थात् वायु का विषाक्त तत्त्व—प्रांगार द्विजारेय जहाँ मनुष्यों से लिए अत्यन्त घातक है वहाँ पेड़-पौधों की वही खुराक है। सूर्य के प्रकाश में पौधे अशुद्ध वायु को खाते हैं और प्राणवायु छोड़ते हैं। यह क्रिया रात में उल्टी हो जाती है। रात में पौधे प्राणवायु खाकर अशुद्ध वायु उगलते हैं। इसलिए रात के समय पेड़-पौधों के नीचे मनुष्य को नहीं सोना चाहिए। बड़, पीपल ऐसा नहीं करते।

वायु में अशुद्ध हवा बढ़ जाने से श्वास लेने में कठिनाई होती है। जी घबराता है या मिचलाता है और कै होने लगती है। आदमी बेहोश हो जाता है दम घुट कर मर तक जाता है।

प्रांगार द्विजारेययुक्त अशुद्ध वायु के अतिरिक्त सीलन वाले वातावरण की नम हवा भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। उसकी अपेक्षा खुश्क हवा हितकर होती है। शरीर का मैल और जहर जो पसीना आदि के रूप में बाहर निकलता है, उसे आसानी से सोखने की शक्ति खुश्क हवा में ही होती है। उससे शरीर के भीतर की क्रियायें दुरुस्त रहती हैं। मैल को भीतर से बाहर निकालने की जितनी क्षमता खुश्क हवा में है, उतनी नम हवा में नहीं होती।

शुद्ध हवा (प्राणवायु)

वायु के तत्त्वों में प्राणवायु ही जीवन और शरीर के लिए उपयोगी है। श्वास द्वारा भीतर पहुँचकर शरीर का मैल बाहर निकालने का काम प्राणवायु ही भली-भांति करती है। वह रक्तसंचार को यथावत् रखती है और उसे शुद्ध करती है। रक्त में लाली और चमकीलापन प्राणवायु (ऑक्सीजन) से ही होता है, उसके अभाव से रक्त में कुछ मटमैलापन आ जाता है।

ज्वलनशील पदार्थ होने के कारण प्राणवायु ही जीवनदीपन को जलाने वाली है। वह पाचन क्रिया को ठीक रखती है और भूख बढ़ाती है। उससे मस्तिष्क को नयी शक्ति प्राप्त होती है। जो लोग अध्ययन या चिन्तन का काम करते हैं,

उन्हें पूरी मात्रा में प्राणवायु न मिले तो उनकी स्मरण-शक्ति और विचार-क्षमता कमजोर हो जाती है।

प्राणवायु प्राप्ति के साधन

पर्याप्त मात्रा में प्राणवायु प्राप्त होती रहे इसके लिए सुबह-शाम खुले मैदान में घूमना हितकर है। खुली हवा में अधिकतर गहरी सांस लेना चाहिए जिससे फेफड़े पूरी तरह फैलने-सिकुड़ने की क्रिया कर सकें। भली-भाँति साँस लेने-छोड़ने का काम फेंफड़ों की सुरक्षा पर निर्भर है। इसके लिए विशेषकर भारत-वासियों को अपने बैठने का ढंग सुधारना चाहिए। प्राय: थोड़ा-सा झुककर बैठा करते हैं, यह दोषपूर्ण है। बैठक ऐसी हो जिससे पीठ सीधी और सीना उभरा हुआ रहे, जिससे फेफड़े पूरी तरह फैले रहा करें और पूरी मात्रा में प्राणवायु ग्रहण किया करें।

श्वास द्वारा अच्छी मात्रा में प्राणवायु ग्रहण करना साँस लेने के ढंग पर भी निर्भर करता है। साँस सदा नाक से ही लेनी चाहिए। नाक की बनावट ऐसी है कि उसमें होकर भीतर जाने वाली हवा की गंदगी नाक में छन जाती है और कुछ गर्म होकर हवा भीतर पहुँचती है। मुँह से साँस लेने से दूषित और रोगाणुयुक्त वायु बिना साफ हुए सीधी भीतर पहुँच सकती है। कोई बहुत दिनों तक मुँह से साँस लेता रहे तो उसका चेहरा भी असुन्दर और भद्दा-सा हो जाता है। इसलिए मुँह से साँस लेने की बुरी आदत को बचपन से ही रोकना चाहिए।

रात में हवादार स्थान में सोना चाहिए। जाड़े के दिनों में भी कमरे की खिड़कियाँ और दरवाजे बिलकुल बन्द करके नहीं सोना चाहिए। किसी भी ऋतु में मुँह ढक कर कदापि नहीं सोना चाहिए। इससे हमारी नि:श्वास से निकली सौगुनी अशुद्ध वायु फिर शरीर के भीतर पहुँच कर निश्चय हानि करती है। इसलिए जाड़ों में भी मुँह ढक कर नहीं सोना चाहिए। केवल गर्दन तक शरीर को कपड़ों से ढकना काफी है। यदि शीत लगने का भय हो तो सिर पर कोई वस्त्र बाँधकर या कन्टोप ओढ़कर सोना चाहिए। हर दशा में नाक खुली रखना आवश्यक है।

वायु से डरना एक प्रकार का अज्ञान है। खुले आकाश के नीचे या बरामदे में सदा सोने का अभ्यास हानि नहीं करता। रोगी को भी थोड़ी आड़ से घूमकर पहुँचने वाली सौम्य हवा कोई नुकसान नहीं पहुँचाती। रोगी को तेज हवा का झोंका सीधा न लगे, इतना ही ध्यान रखना पर्याप्त है।

वैसे तो प्रकृति ने ऐसा नियम बना रखा है कि प्रायः सर्वत्र ही आवश्यक मात्रा में प्राणवायु प्रचुर मात्रा में व्याप्त रहती है, परन्तु विभिन्न प्रकार की मनुष्यकृत गंदगी उसको अशुद्ध बना देती है। फिर भी हवादार मकान और साफ-सुथरे खुले मुहल्ले में रहें तो पर्याप्त प्राणवायु श्वास द्वारा शरीर को प्राप्त हो सकती है।

मनुष्यों की प्रश्वास से अधिकतर वायु दूषित होती है इसलिए अधिक भीड़-भाड़ वाले बन्द स्थान में ज्यादा देर नहीं ठहरना चाहिए। साधारणतः किसी भी मनुष्य से इतना सट कर नहीं बैठना चाहिए कि उसके निःश्वास से निकली हवा हमारी श्वास में मिल जावे। सटकर लेटना और सोना तो चाहिए ही नहीं, छोटे कमरे में कई लोगों को एक साथ नहीं सोना चाहिए और न ही छोटे स्थान में बहुत लोगों को बैठना-बिठाना चाहिए। स्त्री-पुरुष (दम्पत्ति) को यदि एक शैय्या पर सोना हो तो मुँह विपरीत दिशा में करके सोना उचित है। सिनेमा तो निश्चय ही हानिकारक है। बहुत लोगों के निःश्वास में वायु का गन्दापन वहाँ अवश्य होता है।

रोगी मनुष्यों की प्रश्वास से उनके रोग-कीटाणु आस-पास ही हवा में फैल जाते हैं और निकट बैठे हुए लोगों की श्वास द्वारा उनके भीतर पहुँचकर उन्हें भी रोगी बना देते हैं। तपेदिक, कुकर खाँसी, जुकाम, प्रतिश्याय (इन्फलुएजा) आदि इसी प्रकार निःश्वास वायु के संक्रमण से फैलते हैं। इसलिए इन रोगों से पीड़ित मनुष्यों से कम-से-कम इतना दूर अवश्य बैठना चाहिए कि उनकी निःश्वास से निकली वायु हमारी साँस में मिलकर हमारे भीतर न पहुँच जावे। जहाँ रोगी लेटा हो वह स्थान यदि खुला और बहुत हवादार नहीं है तो वहाँ सोना, लेटना या बैठना निश्चित हानिकर है।

चेष्टा पूर्वक श्वास द्वारा अधिक मात्रा में प्राणवायु ग्रहण करना और अशुद्ध

वायु से यथासंभव दूर रहना पूर्ण स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए आवश्यक आचरण है।

दूसरा उपस्तम्भ
निद्रा अर्थात् पूर्ण विश्राम

उत्तम स्वास्थ्य और सशक्त शरीर-विकास के लिए अनिवार्य तीन उपस्तंभों में दूसरा स्थान **निद्रा** अर्थात् **विश्राम** का है ।

वस्तुत: निद्रा किसे कहते हैं ? यह समझने की बात है । जिस अवस्था में शरीर की अन्य सब इन्द्रियाँ शान्त हों, किन्तु मन कार्य-रत हो, उसे 'स्वप्न' कहते हैं और जब सम्पूर्ण इन्द्रियाँ तथा मन भी काम में न लगा हो उस अवस्था को निद्रा कहते हैं, इस प्रकार मन सहित इन्द्रियों का पूर्ण विश्राम लेना ही निद्रा है । स्वास्थ्य-प्रसंग में निद्रा का अभिप्राय केवल सो जाने से नहीं है, मूल भाव है परिश्रम से क्लान्त शरीरांगों को पूर्ण विश्राम देना । मन सहित इन्द्रियों को ऐसा पूर्ण विश्राम का सुख निद्रा में ही प्राप्त होता है, इसलिए "त्रय उपस्तम्भा" में निद्रा शब्द का प्रयोग किया गया है ।

जब भी कार्य करते-करते मन क्लान्त हो और शरीर में थकावट प्रतीत हो, तब ही सीधे चित्त लेट जाइए और सारे शरीर को एकदम शिथिल कर डाल दीजिए, मन में कुछ भी मत सोचिए और यों ही थोड़ी देर पड़े रहिये । कुछ देर बाद उठने पर आप स्फूर्ति और ताजगी का अनुभव करेंगे । पूर्ण विश्राम का यही छोटा-सा उदाहरण है ।

सामान्यत: किसी भी प्रकार का श्रम करने वाले व्यक्ति को प्रति चार घण्टे के बाद थोड़ा विश्राम मिलना चाहिए ।

कार्य में रुचि-परिवर्तन शरीरांगों को विश्राम देने का एक मनोवैज्ञानिक साधन है । सात-आठ घण्टे तक जो मनुष्य एक प्रकार का काम करता रहे, उसके उपरान्त कोई दूसरे प्रकार का काम करने लगे तो भी उसके शरीर के वे अंग जो पहले प्रकार के काम में थकित हुए हैं, कार्य-परिवर्तन से विश्राम और शान्ति पाते हैं । जैसे जो व्यक्ति लगातार आठ घण्टा तक अध्ययन या लिखा-पढ़ी जैसा मस्तिष्क का काम करता है, वह संध्या समय बागवानी आदि कोई भिन्न

रुचि का कार्य करे तो उसके मस्तिष्क को यथोचित विश्राम मिल जायगा और उसकी मानसिक क्लान्ति कम होकर उत्साह जागृत होगा।

स्वास्थ्य-प्रसंग में पूर्ण विश्राम के लिए निद्रा का महत्त्व इसलिए विशेष है कि निद्रा से बढ़ कर पूर्ण विश्राम (Complete Rest) का दूसरा कोई सर्वोपरि और सर्वसुलभ साधन नहीं है। यदि मनुष्य को नियमित रूप से प्रतिदिन उचित समय की निद्रा प्राप्त हो तो फिर वह दिन भर बिना विश्राम लिए बखूबी काम कर सकता है। दैनिक कार्य के बाद पूर्ण विश्राम प्राप्ति का उचित साधन रात्रि की निद्रा ही है।

निद्रा मस्तिष्क का अनिवार्य पौष्टिक भोजन है और चित्त की एक निश्चित वृत्ति है। विश्राम का एक सहज और प्राकृतिक उपाय सुख-निद्रा है।

यदा तु मनसि क्लांते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥ —चरक

अर्थात्—अन्तःकरण और मन के थक जाने पर तथा इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय कार्यों से श्रमित हो जाती हैं, तब मनुष्य को निद्रा आती है।

काम करने, उठने-बैठने, चलने-फिरने, पढ़ने-लिखने, यहाँ तक कि कुछ सोचने-विचारने में भी शरीर और मन की शक्ति खर्च होकर क्षीण होती है। शरीर के घटकों और रस-रक्तादि धातुओं की इस निरन्तर होने वाली कमी को पूरा करने के लिए प्रकृति ने ऐसी व्यवस्था की है कि आहार और निद्रा से काम में क्षय हुई शारीरिक और मानसिक शक्तियों की पूर्ति होती रहे और नयी स्फूर्ति मिलती रहे।

इस सत्य का हम सदा अनुभव भी करते है कि भोजन से हमें शक्ति प्राप्त होती है और नींद से मन और मस्तिष्क को ताजगी तथा प्रेरणा मिलती है। उचित आहार मिलने पर भी यदि नींद नहीं आती तो शरीर का स्वास्थ्य तथा मन गड़बड़ा जाता है। चूंकि नींद थके हुए मन और मस्तिष्क को ताजगी देने वाली है, अतः मोटर के इंजिन का उदाहरण इसके लिए अधिक उपयुक्त होगा। कुशल, समझदार ड्राइवर २०-३० मील के सफर के बाद इंजिन की गर्मी को दूर करने के लिए, ५-७ मिनट का उसे विश्राम देना जरूरी समझता है। इस जरा-से

विश्राम से ही इंजिन की अनावश्यक गर्मी शान्त होकर मशीन को नई ताकत मिल जाती है। इससे वह इंजिन काम भी ज्यादा समय तक देता है और जल्द खराब भी नहीं होता। किन्तु, जो ड्राइवर ऐसा नहीं करते, बीच-बीच में इंजिन को विश्राम नहीं देते, उनकी मशीन जल्द ही अपना जीवन समाप्त कर देती है और बार-बार उसे सफाई तथा मरम्मत के लिए भेजना पड़ता है। जबकि एक निर्जीव यन्त्र के लिए इतनी सावधानी, इतने विश्राम की आवश्यकता है, तब मानव-शरीर तो एक सजीव यन्त्र है, जिसे काम करने के साथ-साथ सोचना भी पड़ता है।

नींद से सुख और शान्ति

'निद्रायत्तं सुखम्' (निद्रा पर सुख निर्भर है), महर्षि चरक का यह कथन पूर्णरूप से सत्य है। शरीर और मन के निर्विकार रहने पर ही जीवन-यात्रा का सुख अवलम्बित है और इसके लिए नींद एक प्रधान साधन है। सुखी जीवन में शान्ति रहती है, सुख के पास ही सत्य, शिव और सौन्दर्य का निवास है। अतः 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की दृष्टि से भी नींद एक प्रधान वस्तु है।

नींद से बच्चों का विकास

शरीर-शास्त्रियों का यह विश्वास है कि बच्चों के शरीर की वृद्धि नींद से ही होती है। माता के अमृतोपम दूध से बच्चे का जितना विकास होता है, उतना ही नींद से भी। स्वस्थ बच्चे प्रायः सोते ही रहते हैं। जन्मकाल के बाद शुरू-शुरू में तो उनकी नींद २०-२२ घण्टे तक रहती है और जिस अवस्था तक उनका विकास होता है, उस अवस्था तक उन्हें अधिक मात्रा में नींद आती है। कोमल अङ्गों का विकास नींद बड़ी सफलता से करती रहती है और जब कभी बच्चे की नींद गड़बडा जाती है, तभी उसका स्वास्थ्य गिरने लगता है।

नींद से रोग शान्ति

सभी कुशल चिकित्सक अपने रोगी के हित के लिए नींद लाने का उपाय करते हैं। रोगी को नींद का आना एक शुभ चिन्ह इसलिए तो माना जाता है कि इससे रोगी के मस्तिष्क पर छाया हुआ रोग का आवरण दूर होकर, उसे नई जीवन-शक्ति प्राप्त होती है।

नींद के द्वारा रोगाणुओं का असर दूर होता है और शरीर की प्राकृतिक रोग-क्षमता-शक्ति को बल मिलता है। सन्निपात, गठिया, उन्माद जैसे कठिन रोगों में रोगी को नींद लाने का प्रत्यक्ष प्रभाव इस रूप में सामने आता है कि थोड़ी नींद आने से ही रोगी का प्रकोप कम हो जाता है। उन्माद, कामज्वर-जैसे रोगों के लिए तो एक मात्र औषधि ही है। उचित समय पर, उचित नींद का आना, इस बात का भी सूचक होता है कि शरीर अब रोगों के प्रभाव से मुक्त होकर नीरोग दशा को प्राप्त हो रहा है।

निद्रा का प्रभाव

रात्रि में भूतधात्री या रात्रि-स्वभाव प्रभवा निद्रा लेने से शरीर की क्रियाओं में निम्नलिखित परिवर्तन आते हैं :—

१. हृदय की गति मन्द हो जाती है;
२. रक्तदाब (ब्लडप्रैशर) कुछ घट जाता है;
३. श्वसनगति घट जाती है;
४. रक्त में कार्बन डाई आक्साइड की कुछ मात्रा बढ़ जाती है;
५. वृक्कों से आम्लिक पदार्थों का अधिक मात्रा में विसर्जन होता है;
६. शरीर का तापमान कुछ (स्वल्प) घट जाता है;

इन सबका मुख्य कारण मस्तिष्क बाह्यक (सैरिब्रल कार्टेक्स) की क्रियाओं का घट जाना है। उस पर अवरोधक प्रक्रिया (inhibitory process)) का सर्वत्र प्रसार हो जाता है।

नींद से जख्म भरता है

महायुद्ध के दिनों में वैज्ञानिकों को इस आयुर्वेदिक सत्य का पता चला कि नींद से मांस बढ़ता है और मांस बढता है, इसलिए जख्म भी भरते है। अब तो जख्म भरने वाली दवाओं में नींद भी एक दवा के रूपमें ही शामिल हो गई है। जंगली जानवरों के जख्म प्रकृति और नींद के द्वारा ही भरते है, इस तथ्य ने भी वैज्ञानिकों की इस धारणा को पुष्ट किया है। दुर्बल-पतले शरीर को मोटा ताजा बनाने के लिए आयुर्वेद में यह स्पष्ट निर्देश है कि ऐसे व्यक्ति को स्निग्ध आहार के साथ पर्याप्त नींद का सेवन करना चाहिए। दिन-रात आँखों

के सामने आने वाले मेदस्वी—मोटे थुलथुल—स्त्री-पुरुषों के मुटापे के कारणों की खोज करने पर हमें यह भी ज्ञान होता है कि माल मलीदे खाने, आराम से पड़े रहने के अलावा ज्यादा सोना भी उनके मुटापे का एक खास कारण है। और इसी कारण कृश व्यक्ति को पुष्ट बनाने में नींद एक खास कारगर उपाय है।

नींद के प्रकार

आयुर्वेद में निद्रा के निम्नलिखिन रूप स्वीकार किये गये हैं :—

१. तमोभवा या तामसी निद्रा—यह पाप-मूलक मानी जाती है—तमोभवा-माहुरघस्य मूलम्।
२. श्लेष्मसमुद्भवा निद्रा यह कफ प्रकृति के व्यक्तियों में या कफ या श्लेष्मा की वृद्धि के कारण होती है।
३. मानसिकश्रमजन्य निद्रा—यह अधिक दिमागी परिश्रम करने के कारण विद्यार्थियों, वकीलों और गणकों (accountants) अथवा प्राध्यापकों को आती है।
४. शारीरिकश्रमजन्य निद्रा—यह शारीरिक परिश्रम अधिक करने के कारण किसानों तथा मजदूरों को आती है।
५. आगन्तुकी निद्रा—यह निद्राजनक विष लेने या मक्खी के काटने से आती है। अफ्रीका की ऐसी ही मक्खी के काटने से निद्रारोग (sleeping sickness) हो जाता है। अफीम लेने या बार्बीट्यूरेट्स या ब्रोमाइड्स का अतिशय प्रयोग करने या स्लीपिंग पिल्स लेने से भी यह निद्रा आती है।
६. व्याध्यनुवर्तिनी निद्रा—व्याधि के बाद प्रायः रोग से मुक्त व्यक्ति अधिककाल तक सोकर अपने शरीर की क्षीणता को पूरा करता है।
७. रात्रिस्वभावप्रभवा निद्रा—रात होने के साथ ही प्राणी को नींद आने लगती है उसके मस्तिष्क में पहुँचने वाली संज्ञाओं के प्रति वह उत्सुकता और चैतन्यता उच्च मस्तिष्क के केन्द्रों में नहीं रहती और प्राणी सो जाता है। रूसी विद्वानों ने प्रयोग करके यह निर्णय लिया है कि ऐसे लोग जो रात की शिफ्ट में काम करते और दिन की शिफ्ट में सोते हैं उनमें भी

रात्रि होने के साथ ही साथ निद्रा की इच्छा जागृत हो जाती है। उनकी शरीर की क्रियाओं में भी निद्रा के परिवर्तन पाये जाते हैं :—

"In persons who work night shifts the pulse rate, blood pressure and content of the carbon dioxide in the alveolar air show changes similar to those observed during sleep."—Text Book of Phyiology edited by Bykov.

इस निद्रा को भूतधात्री कहा जाता है अर्थात् प्राणी का पालन करने वाली आधुनिक भी इसको रौल प्रौटैक्टिव (सुरक्षात्मक) मानते हैं। रात्रिस्वभावप्रभवा मता या तां भूतधात्रीं प्रवदन्ति निद्राम्। —चरक

नींद का उचित रूप

आहार की तरह ही नींद के उचित तरीके और उसकी मात्रा के विषय में भी आवश्यक जानकारी रखना जरूरी है। शरीर के लिए आवश्यक होते हुए भी जिस तरह आहार के रूप और मात्रा के सम्बन्ध में सही ज्ञान न रखने से अजीर्ण, अपच आदि गड़बड़ियाँ हो जाती हैं, ठीक उसी तरह नींद भी सुख के साथ दुःख और बल के साथ कमजोरी पैदा करती है।

इसलिये वाग्भट्ट में कहा गया है—

'निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्य बलाबलम्।'

अर्थात्—सुख और दुःख, पुष्टि और कृशता, बल और अबल निद्रा के अधीन है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि यदि नींद का उचित सेवन किया जाता है, ठीक वक्त पर ठीक रूप में, ठीक मात्रा में, नींद ली जाती है, तो सुख, पुष्टि और बल की प्राप्ति होती है और अगर इसके तौर तरीके में रद्दोबदल करके बेवक्त-गलत रूप में, कम या अधिक मात्रा में, नींद ली जाती है, तो दुःख, कृशता और दुर्बलता की प्राप्ति होती है।

इस चीज को और भी स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें एक ऐसे सिनेमा-प्रेमी धनी युवक के जीवन की ओर दृष्टिपात करना चाहिए, जो रोज रात के १-२ बजे तक तो सिनेमा में ऐयाशी में डूबा रहता है और सुबह ९-१० बजे तक चारपाई पर पड़ा रहकर अलसाई आँखों से उठता है। खाने-पीने में अच्छे-अच्छे

पौष्टिक पदार्थ होने पर भी बेवक्त के भोजन के कारण उसकी दिनचर्या इतनी अस्त-व्यस्त रहती है कि उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता और उसके जीवन का रस सूख जाता है। ऐसा इसी कारण तो होता है कि पौष्टिक भोजन भी उसे पुष्ट नहीं करते और घण्टों तक शय्या पर पड़े रहने पर भी उसे सुबह की प्रफुल्लता नहीं मिलती। क्योंकि सोने के वक्त तो वह जागता है और जागने के वक्त सोता रहता है।

इसीलिये आयुर्वेद में कहा है--

अकालेऽतिप्रसंगाच्च न च निद्रा निषेविता
सुखायुषी पराकुर्यात् कालरात्रिरिवापरा। --चरक संहिता

अर्थात्—सुख चाहनेवाले व्यक्ति अकाल शयन, अधिक शयन और अत्यन्त शयन त्याग दें, क्योंकि यह निद्रा सुख और जीवन को नष्ट कर देती है। जैसे कालरात्रि जीवन को नष्ट कर देती है।

सैव युक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा।
पुरुषं योगिनं सिद्धया सत्या बुद्धिरिवागता। --चरक

उचित रूप में सेवन की गई नींद उसी प्रकार सुख और जीवन देती है, जिस प्रकार यथार्थ सिद्धि से योगी को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है।

नींद का समय

दिन काम करने के लिये है और रात्रि सोने के लिये। स्वयं प्रकृति ने ऐसा विधान बना रखा है। पशु-पक्षी दिन छिपते ही अपने घोंसले में जाकर नींद की गोद में लेट जाते हैं और फिर पौ फटते ही कार्यक्षेत्र में निकल पड़ते हैं। विवेकशील मनुष्य के लिये भी यही नियम उचित है।

नींद चूंकि तमोगुण का रूप है और रात में तम का राज्य रहता है; अतः शरीर को शक्ति देने का उद्देश्य रात में सोने से ही पूरा होता है। उषा की लालिमा में मिलनेवाला आनन्द रात की पर्याप्त नींद के बाद ही मिलता है।

नींद की मात्रा

स्वस्थ व्यक्ति को कितने समय तक सोना चाहिये, इस प्रश्न का सीधा उत्तर यह है कि अपने शरीर और काम-धन्धे के लिहाज से सोने का समय निश्चित

करना चाहिए। यों तो वयस्क व्यक्ति के लिए ८ घण्टे की नींद काफी होती है; किन्तु, कड़ी मेहनत करने वाले मजदूर-किसानों के लिए कुछ अधिक समय तक सोने की जरूरत है, जब कि बुद्धिजीवी लोगों के लिए कम सोने से भी काम चल सकता है।

अवस्था के हिसाब से भी नींद की मात्रा स्वत: कम हो जाती है, यह एक प्राकृतिक सत्य है। छोटे बच्चे को नींद की जितनी जरूरत है, उतनी बूढ़े आदमी को नहीं; और यही कारण है जो बुढापे में हमारी नींद कम हो जाती है। मोटी बात यह है कि ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती है, त्यों-त्यों नींद की मात्रा भी कम होती जाती है। अवस्था बढ़ने के अनुपात से चिन्ता की मात्रा बढ़ती है और नींद की मात्रा कम होती है। नींद चूंकि शरीर के विकास के साथ भी सम्बन्ध रखती है; अत: जब तक स्त्री-पुरुष का पूर्ण विकास नहीं हो जाता—अङ्ग-प्रत्यङ्ग में पूरा यौवन नहीं आ जाता, तब तक उसकी कुछ अधिक जरूरत रहती है। नवयौवन के बाद ज्यों-ज्यों उम्र ढलने लगती है, नींद की जरूरत भी कम होती जाती है।

अनिद्रा : एक महारोग

विलासिता के इस मशीन-युग में अन्य महारोगों की तरह अनिद्रा का भी एक महारोग फैल गया है। काम-क्रोध, लोभ, असंतोष आदि मानसिक विकारों का ताण्डव आज मनुष्य से मस्तिष्क को इतना अशान्त बना चुका है कि उसे प्रकृति के एक स्वाभाविक अवदान, नींद के लिए भी लालायित रहना पड़ता है। इतना ही नहीं, इसके लिए उसे कृत्रिम उपायों का भी अवलम्बन करना पड़ रहा है।

आज अकेले अमेरिका में ६० लाख ऐसे व्यक्ति हैं, जो नींद की दवा खाकर चारपाई पर पहुँचते हैं। हमारे अपने देश में भी (सही आँकड़ों के उपलब्ध न होने पर भी) यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हजारों ही नहीं लाखों की संख्या में ऐसे धनी व शिक्षित व्यक्ति हैं, जिन्हें नींद न आने की शिकायत रहती है और आधी रात तक तारे गिनने के बाद बेचारों को कहीं थोड़ी-बहुत नींद आ पाती है।

नींद चूंकि शरीर की एक स्वाभाविक माँग है; अतः जब कभी नींद में विघ्न

पड़ जाता है वक्त पर नींद नहीं आती या अपेक्षित मात्रा में नींद नहीं आती, तो अविलम्ब ही शरीर और मन पर इसकी प्रतिक्रिया होने लगती है। जिस तरह उचित समय पर उचित आहार नहीं मिलता, तो शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर उसका असर तत्काल होने लगता है, ठीक उसी तरह नींद की कमी का असर भी तत्काल ही होता है इसलिए आयुर्वेद में नींद को एक स्वाभाविक देन भी माना गया है और इस वेग को रोकने से होने वाली हानियों की चर्चा भी स्पष्ट शब्दों में की गई है। वाग्भट ने बताया है—

निद्राया मोह मूर्धाक्षिगौरवालस्य जृम्भिका।
अंगमर्दश्च .... ॥

अर्थात्—नींद के अभाव से मन में मोह, मस्तक और आँखों में भारीपन, सारे शरीर में आलस्य, जँभाई और शरीर के टूटने-जैसी खराबियाँ होने लगती हैं। इसी ग्रन्थ में यह भी कहा गया है—

'जाड्यं ग्लानिर्भ्रमात्पक्ति तन्द्रा रोगाश्च वातजाः'।

अर्थात्—शारीरिक जड़ता के साथ मानसिक ग्लानि होने लगती है, मस्तिष्क की विचार-शक्ति में भ्रम होने लगता, पेट की पाचन-शक्ति अव्यवस्थित होने लगती, तन्द्रा बनी रहती और वात-सम्बन्धी अनेक रोगों की उत्पत्ति की भूमिका तैयार होने लगती है। शरीर को रूखा करने वाले कारणों में एक प्रधान कारण रात्रि-जागरण भी है, और नींद न आने के साथ ही शरीर में रूखापन भी आने लगता है। स्पष्ट सत्य तो यह है, और अपने जीवन में हमें इसका अनुभव भी बराबर ही होता है कि एक दिन की अनिद्रा भी हमारे लिए एक कठिन समस्या तैयार कर देती है। एक दिन की पूरी नींद तो क्या, आधी नींद भी गड़बड़ा जाती है, तो माथे में भारीपन आ जाता और भोजन में अरुचि होने के साथ आलस्य बना रहता है, जिससे कोई भी काम ठीक से नहीं हो पाता, और जब तक उस नींद की कमी की पूर्ति नहीं हो जाती, तब तक यही स्थिति बनी रहती है।

ठीक वक्त पर ठीक-ठीक नींद न लेने वालों, आधी-आधी रात तक सिनेमा देखने वालों या इधर-उधर रास-रंग में रुचि रखने वालों की जिन्दगी हमारे लिए इस बात का सजीव उदाहरण है कि नींद की खराबी से शरीर और मन पर कौन-

कौन विकार पैदा होते हैं। ऐसे व्यक्ति हमेशा, प्रातःकालीन ताजगी से, जो उचित निद्रा के बाद मनुष्यों को ही नहीं, पशु-पक्षियों को भी मिलती है, वंचित रहते हैं। वक्त पर शौच नहीं होता, भूख के लिये प्रतीक्षा करनी पड़ती है, किसी काम में रुचि नहीं रहती और उनका जीवन रसहीन-सा प्रतीत होने लगता है।

कब्ज, प्रमेह, भूख की कमी, निरुत्साह, थकान, खून के विकार, सिर-दर्द आदि बीमारियाँ ऐसे लोगों का पल्ला पकड़ लेती है।

धन-दौलत और बुद्धि-वैभव से दुनिया की आँखों में चकाचौंध पैदा करने वाले धनियों, उद्योगपतियों, वकील-बैरिस्टरों तथा बड़े-बड़े बुद्धि-जीवियों की तरफ से आजकल अक्सर यह प्रश्न उठता है कि हमे नींद क्यों नहीं आती ?

सचमुच है भी यह एक विचित्र प्रश्न ! जब कि नींद एक कुदरती देन है, शरीर की स्वाभाविक माँग है, तो क्या वजह है कि आहार-शास्त्र की दृष्टि से अपर्याप्त पौष्टिक भोजन पाने वाले मजदूर तो सख्त जमीन पर भी तत्काल नींद की गोद में आराम पा जाता है और दिन-भर नये-नये प्रकार के माल-मलीदे खाने वाला और गुदगुदे गद्दों पर, बिजली के पंखों की हवा के नीचे सोनेवाला अमीर या बुद्धिजीवी, घंटों नींद की प्रतीक्षा में बेचैन रहता है ? छोटे-छोटें बच्चे खेलते-खेलते ही सो जाते हैं, पढ़ने वाला छात्र पुस्तक को हाथ में लिए हुए मीठी नींद का आनन्द लेने लगता है और ये धनी-मानी निद्रा-देवी की बाट देखते-देखते थक जाते हैं।

इस प्रश्न के सीधे और खरे उत्तर के लिए एक छोटा-सा वाक्य 'अप्राकृतिक जीवन' ही पर्याप्त है। हमारे जीवन के खान-पान और विचार धारा में जो अस्वाभाविकता और गन्दगी आ गई है, वही इस अनिद्रा-रोग के लिए जिम्मेदार है। 'सादा जीवन और उच्च विचार' का सिद्धान्त जब से हमने छोड़ा है और जीभ तथा मन के अधीन होकर खान-पान, संयम आदि की लगाम को ढीला कर दिया है, तभी से हमारा स्वास्थ्य, हमारी विचार-धारा, हमारी भूख-प्यास और हमारी नींद, सभी कुछ गड़बड़ा गई है। नींद में बाधा डालनेवाले कारणों में आजकल लोभ, ईर्ष्या-भय और संयोग-सम्बन्धी चिन्तन ही अधिक पाया जाता है। दूसरे की उन्नति या पराए की दौलत को देख कर ईर्ष्या की आग में

जलते रहने से दिमाग में जो बौखलाहट होती है, वह नींद को ही नहीं, भोजन को भी हराम कर देती है। आर्थिक या परिवारिक-समस्या का हौआ भी निद्रादेवी को भगा देता है। मानसिक मैथुन, विपरीत योनि वाले व्यक्ति के सहवास का चिन्तन तो निद्रा-रोग ही नहीं, उन्माद भी उत्पन्न कर देता है।

आजकल के कामोत्तेजक सिनेमा, रंगीले उपन्यास और अश्लील कहानियों की पत्रिकाएँ, हमारे नौजवानों की नींद को गड़बड़ाने के विशेष कारण हैं। इन चीजों के द्वारा जो मानसिक विकृति होती है, वह प्रमेह जैसी बिमारियाँ ही पैदा नहीं करती, निद्रादेवी को भी कोसों दूर भगा देती है। कब्ज-जैसी पेट की बीमारियाँ भी नींद में रुकावट पैदा करती हैं। स्नायु-दौर्बल्य भी आजकल जोरों पर है,—और इससे भी नींद में भारी बाधा पड़ती है। अनिद्रा का कारण—स्नायु-दौर्बल्य भी है। आयुर्वेद में अनिद्रा के लिए नीचे लिखे कारण बताये गये है।

कायस्य शिरसश्चैव विरेकश्छर्दनं भयम् ।
चिन्ताक्रोधस्तथा धूमो व्यायामो रक्तमोक्षणम् ॥
उपवासोऽसुखा शय्या सत्वौदार्यं तमोजयः ।
निद्राप्रसंगमहितं वारयन्ति समुत्थितम् ॥
एत एव च विज्ञेया निद्रानाशस्य हेतवः ।
कार्यकालो विकारश्च प्रकृतिर्वायुरेव च ॥ —चरक संहिता

अर्थात्—शरीर या शिर का विरेचन, वमन, भय, चिन्ता, क्रोध, आँखों में धुआँ घुसना, ज्यादा कसरत या खून निकलना (खून की कमी) उपवास, दुःख-दायी शय्या, सत्त्वगुण की अधिकता, तमोगुण पर विजय, कार्य में विशेष व्यस्त होना, किसी विशेष परिवारिक या सामाजिक या राजनैतिक घटना के कारण पैदा हुआ विशेष स्थितिपूर्ण समय; बुढ़ापा, शरीर या मन का कोई विकार, शूल-वेदना या और कोई विशेष रोग ये सब कारण नींद को नहीं आने देते।

नींद कैसे आये ?

दुर्भाग्य से निद्रादेवी आपसे असंतुष्ट हो गई हों, ठीक वक्त पर, ठीक रूप में उनका आगमन नहीं होता हो, तो आपको थोड़ी समझदारी से काम लेकर रूठी हुई निद्रादेवी को मना लेना चाहिए। पुराने और नये चिकित्सा-शास्त्र तथा

अनुभवी विद्वानों ने निद्रादेवी को प्रसन्न करने के लिए जो साधन निश्चित किये हैं, उनका निष्कर्ष यह है कि "आफिस, दुकान या काम से लौटते समय, अपनी सब प्रकार की चिन्ताओं को बाहर रखकर प्रसन्न चित्त से घर में प्रवेश कीजिये। घर की लक्ष्मी और आँगन की शोभा स्वरूप अपने बच्चों के साथ थोड़ा दिल बहलाइए, समय पर खाना खाइए, थोड़ा टहलिये और उचित समय पर शान्त मन से चारपाई पर लेट जाइए।"

अपने जीवन को सादा रखिये। सादा भोजन और उच्च विचार रखने पर नींद को बुलाने की जरूरत नहीं होगी, वह स्वयं आकर उपस्थित हो जायगी।

दिनचर्या के सभी काम—सोना, उठना, नहाना-धोना, आफिस जाना आदि नियमित और व्यवस्थित होने चाहिए।

सोने के कम-से-कम १-१॥ घंटा पहले भोजन कर लीजिए और शय्या पर पहुँचने के समय प्रसन्न मन रहिए। अपने दिमाग से इस बात को दूर भगा दीजिए कि नींद नहीं आयेगी, बल्कि यह समझिए कि नींद स्वयं आपकी प्रतीक्षा कर रही है। दिमाग को एकदम शान्त रख कर आप ईश्वर का स्मरण करते हुए सो जाइए।

शरीर को ढीला छोड़ने से भी नींद जल्दी आती है—पैरों के पंजों से लेकर घटने, जाँघ, पेट, पीठ, गर्दन तक, सभी अंगों को ढीला रखिए। आराम से साँस लेना शुरू कर दीजिए; कान, नाक, आँख और मस्तक की नसों को पूरी तरह ढीला कर दीजिए और शान्ति के साथ आँखें बन्द कर लीजिए।

दिमाग में उठने वाले तूफानों को हिम्मत के साथ भगाइए। मन-ही-मन रामनाम जपने या ईश्वर का चिन्तन करने से नींद जल्दी आती है, यह एक परीक्षित सत्य है।

पैरों के तलवों में सरसों के तेल की धीमी-धीमी मालिश भी नींद को जल्द बुला देती है।

नियमित रूप से सन्ध्या-गायत्री के मन्त्र का जप करने से विचारों की शुद्धि होकर मीठी नींद आने लगती है।

नींद के लिए शारीरिक श्रम—व्यायाम भी आवश्यक है। यों तो शारीरिक परिश्रम, स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, जीवन के लिए भी आवश्यक है। फिर भी

अनिद्रा के रोगियों के लिए तो इसकी बहुत ही अधिक जरूरत होती है ।

शरीर की मांसपेशियों की हरकत अपने आप में ही एक सुन्दर कला है । यह शरीर को सुन्दर, स्वस्थ, बलवान और स्फूर्तिशील बनाती है । व्यायाम के द्वारा—चाहे वह कसरत के रूप में हो, या कबड्डी-क्रिकेट-फुटबॉल अथवा तैरने-दौड़ने या तेजी से घूमने के रूप में हो- जहाँ ठीक भूख लगती है, फुर्ती आती है, जहाँ शरीर में ऐसी मीठी हल्की थकान भी आती है कि नींद आने में बड़ी मदद मिल जाती है । यही वजह है कि शरीर से श्रम करने वाले किसान या मजदूर को रात होते ही निद्रा का निमन्त्रण अपने-आप मिल जाता है । व्यायाम का सबसे बड़ा असर तो यह होता है कि दिमाग में उठने वाले मानसिक-विकार अपने आप ही दूर भाग जाते हैं, जिससे हल्के दिमाग पर नींद का असर अपने आप, ठीक समय पर होने लगता है ।

नींद के लिए मन का प्रफुल्लित रहना अत्यावश्यक है । सदा प्रसन्न रहना अपने मन और मस्तिष्क पर दुनिया के वायुमण्डल, लोभ, काम, क्रोध, चिन्ता, भय आदि का असर न होने देना कोई बहुत कठिन चीज नहीं है । कुछ दिनों की साधना और थोड़े-से परिश्रम से ही मनुष्य अपने आपको ऐसी मस्ती की स्थिति में ला सकता है कि वह सदा प्रसन्न बना रहे और निद्रा देवी बिना बुलाये उसके पास हाज़िर हो जाएँ । हमारे कुछ पाठक पूछ सकते हैं कि क्या यह सम्भव है ? इसका सीधा-सा उत्तर यही है कि दुनिया में असम्भव कुछ भी नहीं है । नेपोलियन युद्ध के मैदान में घोड़े की पीठ पर नींद ले सकता था और महात्मा गांधी गम्भीर राजनैतिक चर्चा में भीं १५-२० मिनट के लिए नींद ले लेते थे,तो यह क्या मुश्किल है कि इच्छा करने पर भी आप प्रसन्न न रह सकें ? हाँ, इसके लिए इतना जरूर करना होगा कि अपने व्यक्तित्व में प्रकृति, ईश्वर-भक्ति, सत्य, ईमानदारी, उपकार आदि जरूरी चीजों को आप शामिल करलें और एक भले आदमी की तरह अपनी दिनचर्या बना लें ।

अपने दैनिक कार्यों में संलग्न रहते हुए भी परम पिता के अस्तित्व को मानकर उसके आगे आत्म-निवेदन करना, प्रफुल्लित रहने का एक सुपरीक्षित उपाय है । संसार हमारी इच्छा से नहीं चलता है, उसको चलानेवाली महाशक्ति है ।

विचारों की शुद्धि, संयमित जीवन, परिश्रम, मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य

बनाता है और ऐसी दशा में मानसिक प्रफुल्लता अपने-आप ही बनी रहती है। फिर न तो अनिद्रा का डर रहता है, न मानसिक विकारों का और न बेईमानी या पाप का। अतः ठीक से नींद लेने के लिए अपने आपको प्रसन्न निश्चय रखने का अभ्यास डालना ही चाहिए।

नींद के लिए नशा-सेवन ठीक नहीं

कुछ व्यक्ति नींद के लिए भाँग, अफीम, शराब-जैसी नशीली चीजों का सेवन करने लगते हैं और धीरे-धीरे उसके आदी भी हो जाते हैं। स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, नींद के लिए भी यह तरीका बहुत हानिकारक है।

नशीली चीजे शुरू-शुरू में जरूर अपना काम करती हैं; किन्तु धीरे-धीरे शरीर इनका इतना अधिक अभ्यस्त हो जाता है कि इनके बिना नींद तो दूर, भूख भी नहीं लगती, किसी काम में रुचि नहीं होती और मनुष्य की हालत बहुत ही दयनीय हो जाती है, स्नायुदौर्बल्य बढ़ता है यहां तक कि उसका जीवन ही निकम्मा हो जाता है। अतः नींद के लिए भूलकर भी नशीली चीजों का सेवन नहीं करना चाहिए।

नशीली चीजों की एक भयानक प्रतिक्रिया यह भी होती है कि स्वयं नींद का स्वरूप विकृत हो जाता है। ऐसी नींद से ताजगी के बजाय बेचैनी बढ़ती है और मानसिक प्रसन्नता कोसों दूर भाग जाती है।

नींद लाने का आयुर्वेदिक उपाय

'अभ्यङ्गोत्सादनं स्नानं ग्राम्यानूपौदका रसाः।
शाल्यन्नं सदधिक्षीरं स्नेहो मद्यं मनःसुखम्॥
मनसोऽनुगुणा गंधाः शब्दाः संवाहनानि च।
चक्षुषोस्तर्पणं लेपः शिरसो वदनस्य च॥
स्वास्तीर्णं शयनं वेश्म सुखं कालस्तथोचितः।
आनयन्त्यचिरान्निद्रां प्रणष्टा या निमित्ततः॥ —चरक-संहिता

अर्थात्—तेल की मालिश सारे शरीर में की जाय, मस्तक पर अच्छी तरह तेल रमाया जाय, उबटन लगाकर सांगोपाग स्नान किया जाय। चावल, दही, दूध, घी का सेवन किया जाय, मांसभोजियों को ग्राम्य, आनूप या जलचर जीवों का मांस-

रस खिलाया जाय। हल्की मात्रा में शराब पिलायी जाय। मनपसन्द चीजें सामने रक्खी जाएँ। मन को अच्छे लगने वाले फूल, इत्र की सुगन्ध ली जाय और तबीयत खुश करने वाला संगीत सुनाया जाय। हल्के हाथों से शरीर में सुगन्धित पदार्थों का लेपन, सुन्दर और गुदगुदी शय्या तथा मन को प्रसन्न रखनेवाला वायुमण्डल नींद में सहायक होता है। जो निद्रा कारणवश (जो पहले कहे गये हैं) नष्ट हो जाय वह इन उपायों से फिर आ जाती है। कुछ विशेष नियम नीचे दिये जाते हैं—

(१) नींद के कारण ही मनुष्य को सुख-दुःख पुष्टि-कृशता, बल-दुर्बलता, धातुपुष्टि-नपुंसकता, ज्ञान-अज्ञान, जीवन-मरण प्राप्त होते हैं।

(२) असमय सोने से, ज्यादा सोने से या न सोने से सुख और आयु नष्ट होती है।

(३) ग्रीष्म ऋतु में छोटी रात्रि होने के कारण, आदान काल के कारण, वायु संचय के कारण और खुश्की ज्यादे होने के कारण दिन में सोना फायदेमन्द है। ग्रीष्म-ऋतु के अलावा और पाँच ऋतुओं में दिन में सोना कफ और पित्त को बढ़ाने वाला है।

(४) नीचे लिखे आदमी सब ऋतुओं में दिन में भी सोएँ तो बजाय नुकसान के फायदा ही होता है——भाषण देनेवाला, सवारी करनेवाला, पैदल चलने वाला, स्त्री-संभोग का प्रेमी, बोझा ढोनेवाला, क्रोध-शोक या भय से युक्त, थका हुआ, श्वास, हिचकी, दस्त लगनेवाला, बालक, बूढ़ा, कमजोर, घाव, तपेदिक, प्यास, दर्द, अजीर्ण और उन्माद रोग का रोगी तथा जिन की दिन में सोने की आदत हो, ये लोग दिन में सोने से पुष्ट होते हैं। इन लोगों को लाभ के सिवा नुकसान नहीं होता।

(५) असमय में सोने से मोह, ज्वर, शरीर का स्तब्ध होना, जुकाम, सिरदर्द, शोथ, हृल्लास, स्रोतों का रोध और अग्निमांद्य पैदा हो जाते हैं।

(६) विष के रोगी और कंठ के रोगी को रात में भी न सोने देना चाहिए।

(७) बिना आदत जागने पर दिन में सुबह बिना खाये सोकर खुमारी मिटानी चाहिए।

(८) नींद के लिये सबसे युक्तियुक्त विधान आदत पर निर्भर करता है। सोने की जैसी आदत पड़ जाय और तन्दुरुस्ती को नुकसान न पहुँचे वही श्रेष्ठ हैं। आदत पड़ जाने पर और मुफीद होने पर रात को जागना और दिन को सोना कुछ नुकसान नहीं करता।

(९) तेज नस्य, तेज अंजन, नावन, उपवास, चिन्ता, मैथुन, शोक, भय और क्रोध से नींद का ज्यादे आना कम हो जाता है।

(१०) नींद न आवे या बहुत कम आवे तो आदमी को नीचे लिखे रोग पैदा हो जाते हैं--अङ्ग-अङ्ग में दर्द, सिर का भारी होना, जम्हाई, जड़ता, चित्त में ग्लानि, वहम, बदहजमी और तन्द्रा।

यदि किसी को बिलकुल ही नींद न आवे तो समझना चाहिए कि वह व्यक्ति पागल हो जायगा क्योंकि अनिद्रा का सर्वाधिक दुष्प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। दूध-दही का सेवन, उबटन, सिर और कान में उत्तम तेल डालना और मन को संतुष्ट-शान्त बनाना नींद की कमी मिटाता है।

स्वाभाविक सुख-निद्रा के लिए संयम का अभ्यास अत्यन्त हितकारक है। वाग्भट का कथन है—

ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्यसुखनिस्पृहचेतसः।
निद्रासन्तोषतृप्तस्य स्वं कालं नातिवर्तते॥

अर्थात् ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले, इन्द्रियों के अत्यन्त प्रिय विषयों से निस्पृहता और सन्तोष से सन्तुष्ट व्यक्ति को नियत समय पर बिना किसीं प्रयत्न के आनन्ददायिनी निद्रा अपने आप आ जाती है।

अनिद्रा के प्रसार का कारण और उसकी दवा

नीतिशास्त्र में कहा है कि असंतोषःश्रियःमूलम्---धनसम्पत्ति प्राप्ति के लिये असंतोष चाहिए। वर्तमान समय में समस्त संसार में असंतोष फैला हुआ है सबसे अधिक असंतोष अमेरिका में है जो संसार का सबसे अधिक साधन-संपन्न और धनी राष्ट्र है। ये लोग धन के लिये पागल हो रहे हैं।

भारत में भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद धन संग्रह की चाह बहुत बढ़ रही है। अर्थ और काम को मर्यादा में रखने का काम धर्म का है सो लोग धर्म का त्याग करके अर्थ और काम के लिये तेजी से बढ़ रहे हैं। इन्द्रियाँ संभोग से संतुष्ट नहीं होती जैसे अग्नि में घृत डालने से वह नहीं बुझती है वैसे ही इन्द्रियों को भोग देने से संतुष्ट न होकर उल्टी भोग इच्छा अधिक बढ़ती है। वर्तमान काल में यह इन्द्रिय-तृप्ति की लालसा बड़ी तेजी से बढ़ रही है। इस असन्तोष के कारण अनिद्रा रोग भी बढ़ रहा है। असंतोष को नष्ट करने के लिये परिश्रम और ईमानदारी से प्राप्त धन को धर्मपूर्वक भोगना चाहिये।

संतोषामृततृप्तानां यत् सुखं शान्तिरेव च।
नहि तद् धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

संतोष रूपी अमृत से संतुष्ट मनुष्य को सुख और शान्ति प्राप्त होती है वह धनी लोभी को प्राप्त नहीं होती जो दिन रात धन के लिये दौड़ता है। तुलसीदासजी ने विनय पत्रिका में कहा है—

कबहू मन विश्राम न मान्यो,
निशि दिन भ्रमत बिसार सहज सुख जहं तहं इन्द्रियन तान्यो।

सारांश यह है हि असन्तोष से अनिद्रा रोग की उत्पत्ति होती है और संतोष उसकी असली दवा है।

तीसरा उपस्तम्भ
ब्रह्मचर्य अर्थात् संयम

आहार और निद्रा के बाद पूर्ण स्वास्थ्य का तीसरा आधार ब्रह्मचर्य (संयम) है।

आयुर्वेदोक्त स्वास्थ्य-प्रसंग में ब्रह्मचर्य का अभिप्राय यह नहीं है कि काम-वासना का एकदम ही दमन कर दिया जाय। स्वास्थ्य-रक्षा के विचार से काम-वासना का उचित और सम्यक् उपयोग भी ब्रह्मचर्य ही माना जाता है। काम-वासना की अति सर्वथा ही स्वास्थ्य का नाश करनेवाली है।

जन्म से पच्चीस वर्ष की आयु तक के समय में सर्वरूपेण शरीर का विकास होता है और शरीर की रस, रक्तादि धातुयें परिपक्व होती हैं। इस विकास काल में ही यदि शरीर के तत्त्वों का खर्च होना आरम्भ हो जाय तो विकासक्रम तो अवरुद्ध हो ही जाता है, शरीर की धातुयें भी परिपक्व नहीं हो पाती, जिससे

फिर जीवन भर पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति कठिन हो जाती है; इसलिए पच्चीस वर्ष की आयु तक तो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन सर्वथा अनिवार्य है।

इस अवस्था के बाद मानसिक आनन्द के लिए उचित और थोड़ी मात्रा में काम-वासना का उपभोग किया जाय तो वह हानिकारक नहीं होता। आयुर्वेद ने अन्य वेगों की भाँति कामेच्छा के वेग को रोकना भी अनुचित बताया है।

इसलिए हमारा उद्देश्य यहाँ इन्द्रिय-दमन का उपदेश करना नहीं है, प्रत्युत इस तथ्य को ही स्पष्ट करना है कि शारीरिक स्वास्थ्य और आरोग्य की रक्षा के लिए काम-वासना का उपयोग कम से कम ही करना चाहिए। इस प्रकार का ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य-साधन का सब से मुख्य अंग है।

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" के अनुसार ब्रह्मचर्य मृत्यु पर भी विजय करनेवाला होता है। मानसिक सुख-शान्ति और दीर्घजीवन का सर्वोपरि साधन ब्रह्मचर्य ही है। एक प्रकार से पूर्ण स्वास्थ्य की नींव ही ब्रह्मचर्य है। उसके बिना स्वस्थ रहने की कल्पना ही व्यर्थ है।

विद्याध्ययन में सफलता के लिए जिस बौद्धिक तेजस्विता की आवश्यकता होती है, वह ब्रह्मचर्य के बिना कदापि संभव नहीं। आजकल प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि पढ़ने की आयु में ब्रह्मचर्य का पालन न करने वाले विद्यार्थी एकदम तेजहीन, दुबलें-पतले, निर्बल, निरुत्साही, भुलक्कड़ और प्रतिभाहीन दिखाई देते हैं। इसलिए विद्यार्थी अवस्था में ब्रह्मचर्य का सर्वथा पालन करना नितान्त आवश्यक है। ब्रह्मचर्य से बुद्धि प्रखर होती है। एक बार पढ़ा हुआ कभी भूलता नहीं कठिन से कठिन विषय को समझने में देर नहीं लगती और आनन-फानन में प्रश्नों का हल करने की शक्ति प्राप्त होती है। ब्रह्मचर्य से ही आकर्षक व्यक्तित्व और सुन्दर शरीर का निर्माण होता है।

ब्रह्मचर्य पालन से असीम कार्यशक्ति बढ़ती है, इसका उदाहरण वर्तमान युग के महात्मा गांधी, नेहरूजी, विनोबा भावे, राजर्षि टण्डन जी आदि महापुरुषों के जीवन में देखा जा सकता है।

ब्रह्मचर्य और महात्मा गांधी

वर्तमान युग के महापुरुष महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तिका 'आरोग्य की कुंजी'

में लिखा है--

"आरोग्य की बहुत-सी कुंजियाँ है और उनकी आवश्यकता है; परंतु उन सब में 'ब्रह्मचर्य' मुख्य है। अच्छी हवा, अच्छी खुराक और अच्छे पानी से हम थोड़ा-बहुत आरोग्य-सम्पादन करते है; परन्तु जिस भाँति हम जितना पैसा कमावें, उतना ही खर्च कर दें, तो फिर हमारे पास क्या बच सकता है।" मेरा अपना अनुभव भी इसी प्रकार है। एक रत्ती-भर रति (सम्भोग-सुख) के लिए हम एक मन भर से विशेष अपना बल एक पल में खो बैठते हैं। तब हम निस्सत्त्व हो जाते हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल हमारा शरीर भारी रहता है। हमें चैन नहीं पड़ता, हमारा शरीर शिथिल हो जाता है। मन ठिकाने नहीं रहता।

ब्रह्मचर्य पर संत विनोबा

आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ सन्त और नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री विनोबा भावे ने ब्रह्मचर्य पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है--

"हिन्दू-धर्म ने विशिष्ट आचार के लिए ऐसा शब्द बनाया है, जो अन्य दूसरे धर्मों में नहीं देख पड़ता है। वह है--'ब्रह्मचर्य'। ब्रह्मचर्याश्रम की व्यवस्था हिन्दू-धर्म की विशेषता है। अंग्रेजी में ब्रह्मचर्य के लिए शब्द ही नहीं है। लेकिन उस भाषा में शब्द नहीं है-- इसका मतलब यह नहीं है कि उन लोगों में कोई संयम हुआ ही नहीं। ईसामसीह स्वयं ब्रह्मचारी थे। वैसे वहाँ भी अच्छे-अच्छे लोग संयमी जीवन बिताते हैं। लेकिन ब्रह्मचर्याश्रम की वह कल्पना उन लोगों में नही है, जो हिन्दू-धर्म में पायी जाती है। ब्रह्मचर्याश्रम का लक्ष्य यह है कि मनुष्य-जीवन को प्रारम्भ से ही अच्छा खाद मिले। जैसे वृक्ष को जब वह छोटा रहता है, तब खाद की अधिक आवश्यकता होती है बड़ा हो जाने के बाद खाद देने से जितना लाभ है, उससे अधिक लाभ जब वह छोटा रहता है, तब देने से होता है। यही मनुष्य-जीवन का हाल है। यह खाद अगर अन्त तक मिलता रहे, तो अच्छा ही है; लेकिन बराबर नही मिले, तो कम-से-कम बचपन में तो बहुत आवश्यक है। हम बच्चों को दूध देते हैं। उन्हें वह अन्त तक मिलता रहे, तो अच्छा ही है; लेकिन बराबर नही मिले, तो कम-से-कम बचपन में तो

मिलना ही चाहिए। शरीर की तरह आत्मा और बुद्धि को भी जीवन के आरम्भ काल में अच्छी खुराक मिलनी चाहिए; इसलिए ब्रह्मचर्याश्रम की कल्पना है।"

"विषयवासना मत रखो--यह ब्रह्मचर्य का 'निगेटिव' या अभावात्मक रूप हुआ। सब इन्द्रियों की शक्ति आत्मा की सेवा में खर्च करो, यह उसका भावात्मक रूप है। 'ब्रह्म' यानी कोई बृहत् कल्पना। अगर मैं चाहता हूँ कि इस छोटी-सी देह के सहारे दुनिया की सेवा करूँ; उसके ही काम में अपनी सब शक्ति खर्च करूँ तो यह एक विशाल कल्पना हुई। विशाल कल्पना रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन हो जाता है।"

"इन्द्रियों का निग्रह करना" यही एक विचार हमारे सामने हो, तो हम गिनती करने लग जायेंगे कि इतने दिन हुए और अभी तक कुछ फल नही हुआ; लेकिन किसी बृहत् कल्पना के लिए हम इन्द्रिय-निग्रह करते है; तो हम करते हैं ऐसा 'कर्तरी प्रयोग' नही रहता; 'निग्रह किया जाता हैं' ऐसा कर्मणि प्रयोग हो जाता है, या यों कहिए कि निग्रह हमें करना हैं। भीष्म पितामह के मन में एक कल्पना आ गयी कि पिता के सन्तोष के लिए मुझे संयम करना है। बस पिता का सन्तोष ही उनका ब्रह्म हो गया और उससे वह आदर्श ब्रह्मचारी बन गये। ऐसे ब्रह्मचारी पाश्चात्यों में भी हुए हैं। एक साइन्टिस्ट के बारे में कहा जाता है कि वह दिन-रात प्रयोग में मग्न रहता था। उसकी एक बहन थी। भाई प्रयोग में लगा रहता। उसकी सेवा करने के लिए कोई नहीं है, यह देखकर ब्रह्मचारिणी रहकर भाई के ही पास रही और उसकी सेवा करती रही। उस बहन के लिए 'बन्धु-सेवा' ही ब्रह्म की सेवा हो गई।"

"अध्ययन करने में अगर हम मग्न हो जाय, तो इस दशा में विषय-वासना कहाँ से रहेगी ? मेरी माता काम करते-करते भजन गाया करती थी। रसोई में कभी-कभी भूल से नमक दुबारा पड़ जाता था, लेकिन वह चिन्तन में इतना मग्न रहती थी कि उसको इसका पता हीं नहीं चलता था।"

"वेदाध्ययन करते समय मैंने अनुभव किया कि देह मानो हैं ही नहीं। कोई लाश पड़ी हैं– ऐसी भावना उस समय हो जाती थी। इसलिए ऋषियों ने कहा है कि बचपन से वेदाध्ययन करो।' मैने अध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य रखा

उसके बाद देश की सेवा करता रहा। वहाँ भी इन्द्रिय-निग्रह की आवश्यकता थी। लेकिन बचपन में इन्द्रिय-निग्रह का अभ्यास हो गया था; इसलिए बाद में वह कठिन नहीं मालूम हुआ। मैं नहीं कहता कि ब्रह्मचर्य आसान चीज है। हाँ, विशाल कल्पना मन में रखोगे, तो आसान है। ऊँचा आदर्श सामने रखना और उसके लिए संयमी-जीवन का आचरण करना, इसको मैं ब्रह्मचर्य कहता हूँ।"

"यह हुई एक बात। अब एक दूसरी बात है। किसी एक विषय का संयम और बाकी के विषयों का भोग यह ब्रह्मचर्य नहीं है। बोलने में, रहन-सहन में हरएक बात में संयम की आवश्यकता है। मिट्टी के बर्तन में छोटा-सा छिद्र हो, तो क्या उसमें पानी भरेंगे? एक भी छिद्र घड़े में है, तो वह पानी भरने के लिए बेकार ही है। ठीक उसी तरह जीवन का हाल है। जीवन में एक भी छिद्र नहीं रहना चाहिए। चाहे जैसा भी जीवन बिताते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे, यह मिथ्या आकांक्षा है। बात-चीत, भोजन, स्वाध्याय सभी बातों में संयम रखना चाहिए।"

आधुनिक शिक्षित और संयम

आधुनिक शिक्षित कहते हैं कि इस प्रकार के कठिन ब्रह्मचर्य का पालन भला कैसे हो सकता? यह केवल आदर्शवादियों की एक कल्पना मात्र हैं। ऐसे कठिन ब्रह्मचर्य के पालन से यदि कोई विशिष्ट लाभ है, तो उसकी प्राप्ति के लिए आजकल कोई प्रयत्न क्यों नहीं करता? इसी प्रकार की और भी अनेक शंकाएँ ये लोग करते हैं। ऐसी शंकाओं के कारण, हमारा गलत शिक्षण है। ऐसा गलत शिक्षण हमें शताब्दियों से दिया जा रहा है, जिससे हममें गुलामी कीं भावना पनपती रहे। हम शरीर से दुर्बल, निस्तेज, मन से दुखी, दब्बू और निरुत्साही बने रहे। उसी शिक्षण का फल है कि ब्रह्मचर्य जैसे प्रत्यक्ष फलप्रद साधन पर भी हमें विश्वास नहीं है।

पाश्चात्य देशों में मांस-मदिरा आदि उत्तेजक और वृष्य-आहार का सेवन अधिक होता है। उसमें पारलौकिक भावना भी नहीं है; अतः वे भले ही ब्रह्मचर्य की आवश्यकता न समझते हों, तथा वहाँ के कुछ डाक्टर औषधियों के व्यवसाय को आगे बढ़ाने के लिए लोगों को ब्रह्मचर्य से विमुख रखने की बात कहतें

हों, परन्तु इस सत्य को छिपाने की शक्ति उनमें भी नहीं है।

भारतीय शास्त्रों और वेदों के अध्ययन से पता चलता है कि भारत के महान् पुरुषों ने ब्रह्मचर्य का महत्त्व समझकर मनुष्य मात्र के लिए जन्म से पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक बताया था। ब्रह्मचर्य के बल से उन्होंने न केवल स्वास्थ्य-लाभ ही किया था, अकाल-मृत्यु को भी जीता "ब्रह्मचर्येण **तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।**" उसी का वह फल था कि हनुमान, लक्ष्मण, मेघनाद, भीष्म, शंकराचार्य, श्रीगुरु नानकदेव, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी और विनोबा भावे जैसे विश्व-विख्यात महापुरुषों की परम्परा ने ब्रह्मचर्य के प्रभाव में शारीरिक और मानसिक शक्ति बढ़ाकर समाज का कल्याण और देश की रक्षा की।

इसके विरुद्ध विलासी जीवन व्यतीत करनेवालों में भी एक-दो का इतिहास देख लीजिए। इनमें सर्वप्रथम स्थान चन्द्रमा का है। विलासी जीवन के कारण उनको क्षय हुआ। रघुवंश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण भी बहुत स्त्री-लम्पट थे, उनको भी यही रोग हुआ; इसी को ब्रह्मचर्य का अभाव कहते हैं। सिक्खों के गुरुओं ने सिक्खों में ब्रह्मचर्य अर्थात् संयमी जीवन का प्रचार किया, जिससे सिक्ख जाति बहादुरी में प्रसिद्ध हो गई। थोड़े-से सिक्खों ने सारे पंजाब पर राज्य किया। किन्तु इसी जाति में भोग-लिप्सा के बढ़ते ही जो दुष्परिणाम हुआ, वह हम सभी लोगों के सामने है।

इतिहास की बात को छोड़कर प्रत्यक्ष उदाहरण देखे तो भारत के साधु-समाज को देख लें। साधारण भिक्षा करके वे लोग नित्य घी-दूध खानेवाले गृहस्थों से नीरोग, मजबूत और हट्टे-कट्टे रहते है। यह एक मात्र उनके संयम का फल है। स्त्रियों में भी विधवाओं को देख सकते हैं—गृहस्थ जीवन में सदा रुग्ण-रहनेवाली स्त्रियाँ भी वैधव्य जीवन में बिना दवा के रोगमुक्त होकर तन्दुरुस्त हो जाती हैं। मन्दाग्नि और संग्रहणी जैसे भयानक रोगों के शिकार व्यक्ति भी केवल संयम से अच्छे होते देखे जाते हैं, जब कि दूसरे लोग बहुत-सी कीमती दवाओं का सेवन करके भी अच्छे नहीं होते। श्री ब्रह्मानन्दजी स्वामी वैद्यनाथ-धाम में पेट के रोगों के प्रसिद्ध सफल चिकित्सक थे। मैंने स्वयं उनसे चिकित्सा

करायी और देखा कि पथ्य में वह ब्रह्मचर्य के पालन पर ही विशेष जोर देते थे। इससे उन्हे अपनी चिकित्सा में शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त होती थी। इस प्रकार सब तरह यही सिद्ध होता है कि स्वस्थ, सबल और दीर्घजीवी होने के लिए संयमी जीवन का—ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है।

संयम की उपेक्षा क्यों ?

अब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्वास्थ्य के लिए ब्रह्मचर्य यदि इतना जरूरी है, तो ब्रह्मचर्य के पालन में लोगों की अपने-आप प्रवृत्ति क्यों नहीं होती ? यह ठीक है कि जीवन की इस प्रकार की विलक्षणताओं को देखकर यद्यपि मनुष्य को स्वयं विचार करना चाहिए कि संयमी और विलासी जीवन के परिणामों में कितना अन्तर है और उसको कैसा जीवन बिताना है, किन्तु उसके सामने कुछ ऐसी अड़चनें रहती हैं, जो उसे ऐसा नहीं करने देतीं। उन्हें दूर करने के लिए मनुष्य को उपदेश की–गुरु-प्रेरणा की आवश्यकता है। उसकी पूर्ति के लिए ऋषियों ने शास्त्रों में ब्रह्मचर्य के पालन का उपदेश दिया है। उनका यह उपदेश हजारों पर परीक्षित है——आप्त-वचन है; इसलिए विश्वास के योग्य है। हजारों वर्षों की लम्बी दासता के कारण भारतीय आर्यजाति एक जीर्ण रोगी के समान बल, वीर्य, तेज और उत्साह से हीन हो गई है। ऐसी अवस्था में ब्रह्मचर्य एक महारसायन औषध के समान है। यह हमारी अतिहीन मनोवृत्ति की निशानी है कि हम ब्रह्मचर्य जैसी स्वास्थ्यकर वस्तु को व्यवहार में लाना असम्भव समझने लगे हैं। यह कार्य असम्भव नहीं, कुछ कठिन अवश्य हैं, सो भी उसके लिए, जिसके सामने कोई बड़ा लक्ष्य नहीं हैं। श्रेष्ठ कामों में चित्त लगाकर जुट जाने से भी ब्रह्मचर्य का पालन आसानी से हो जाता है।

भारत के गाँवों में आज भी लाखों की संख्या में ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले किसान मजदूर हैं। यद्यपि वे लोग अज्ञानता-पूर्वक और रूढ़ि-रूप में इसका पालन करते हैं। फिर भी वे ब्रह्मचर्य का महत्व समझते हैं। बहुत छोटी उम्र में विवाह करने पर भी वहाँ स्त्री-पुरुष का मिलन पूर्ण अवस्था में होता है। माता-पिता सावधानी-पूर्वक इसकी देख-रेख रखते हैं। अपढ़ और बेवकूफ समझे जानेवाले भारतीय देहाती वीर्य के महत्त्व को पूर्ण रूप से जानते है।

समय-समय पर अपनी सन्तान को भी अपनी भाषा में इसका उपदेश करते हैं। भगवत्-कृपा से अब तक भी हमारे गाँवों में भारतीयता जीवित है, साहित्य और शिक्षा के नाम पर मिलनेवाली कामुकता का अभाव है। कामवासना की उत्तेजना के अभाव में स्वाभाविक जीवन में जो धीरता-वीरता और कार्य-शीलता एवं शीलता स्वयं आती है, वह भारतीय देहातियों में पूर्ण रूप से वर्तमान है। वे दिन-भर कठिन परिश्रम कर सकते हैं। जंगली-हिंसक जानवरों और चोर-डाकुओं से आत्मरक्षा करते हैं। धातु-स्राव, शीघ्र-पतन, नपुंसकता, मन्दाग्नि और अनिद्रा आदि से रोगी वहाँ मुश्किल से मिलते हैं। मैं स्वयं छोटे-से गाँव का जन्मा और पला हुआ हूँ। साल में दो-एक मास वहाँ अब भी मैं रहता हूँ। मेरा गाँव, स्टेशन से २६ मील दूर, ठेठ देहात में है। यहां के लोग धातु-सम्बन्धी रोगों को तो जानते भी नहीं हैं। यद्यपि अपढ़ और रूढ़िवादी हैं, फिर भी ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझते हैं। उनकी खुराक शहरवालों से रूखी होती है। दूध से घी निकालकर बेच देते हैं। किन्तु रूखा अन्न खाकर भी केवल ब्रह्मचर्य के प्रभाव में वे कठिन शारीरिक परिश्रम करते हैं। आजकल के शहरियों की तरह यदि वे लोग भी काम-वासना में अनुरक्त हो जायँ, तो दो-एक पीढ़ी में ही उनकी सामर्थ्य समाप्त हो जाय, किन्तु उन्होंने ब्रह्मचर्य के प्रभाव से अपने को विनष्ट होने से बचा रखा है।

संयम आज अधिक आवश्यक है

ब्रह्मचर्य का पालन, पहले की अपेक्षा हमारे लिए आज अधिक आवश्यक है,; क्योंकि अब हमारा देश स्वतन्त्र है। किन्तु, हमें यह स्वतन्त्रता ऐसी रुग्ण और कमजोर हालत में मिली है कि अपने पैरों पर खड़ा होने की हममें शक्ति नहीं है। इतनी निर्बलता में एकमात्र संयमशील जीवन व्यतीत करना ही वह अमोघ औषध है, जिससे देश सबल, स्वस्थ और सुखी होगा। स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए बल और बुद्धि की आवश्यकता है। यह दोनों शक्तियाँ ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त होती है; इसलिए ब्रह्मचर्य हमारे लिये पहले की अपेक्षा आज अधिक आवश्यक है।

हमारी प्राकृतिक स्थिति

भारत में गर्मी अधिक पड़ती है। दस-बारह वर्ष में यहाँ की लड़कियों और पन्द्रह-सोलह वर्ष में लड़कों में यौवन के जो चिन्ह प्रगट हो जाते हैं, वह शीत-प्रधान देशों की लड़कियों तथा लड़कों में बहुत पीछे दिखाई देते हैं। गरम देश में अनियमित सम्भोग जैसा हानिकर होता है, वैसा ठण्ड़े देशों में नहीं होता। स्त्री-सम्भोग प्रकरण के एक वचन से इस बात की पुष्टि होती है—

सेवेत कामतः कामं तृप्तो वाजीकृतैर्हिमे ।
त्र्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वर्षानिदाघयोः ॥

वाग्भटाचार्य ने ऋतुओं के अनुसार, स्त्री-सम्भोग का यह नियम बताया है। हेमन्त और शिशर ऋतु में (यह कड़ाके की सर्दियों के दिन हैं) स्त्री-सम्भोग के लिए छूट है; अर्थात् अमुक दिन छोड़कर ऐसी शर्त नहीं है। किन्तु नित्य वीर्यवर्द्धक पदार्थों के सेवन की शर्त जरूर है। तात्पर्य यह है कि यदि वीर्यवर्द्धक पदार्थों का पुष्कल सेवन किया जाय, तो गहरी सरदी के दिनों में प्रतिदिन स्त्री-सम्भोग करके भी मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। बसन्त और शरद ऋतु में तीन-तीन दिन छोड़कर एवं वर्षा तथा ग्रीष्म ऋतु में पन्द्रह दिन के बाद स्वस्थ पुरुष स्त्री-सम्भोग कर सकता है। वीर्यवर्द्धक पदार्थों के सेवन की शर्त सब के साथ है। इस वचन से यह व्यक्त होता है कि जैसे अधिक सरदी के दिनों में वैसे ही अधिक ठण्डे देश में भी स्त्री-सम्भोग के लिए छूट है। तब यूरोप के ठण्डे देशों ने यदि इन्द्रिय-संयम को महत्त्व नहीं दिया तो क्या हानि है? हानि तो यहाँ भारत में है, जहाँ वर्ष में दस महिने गरमी पड़ती है। फिर पाश्चात्य लोग अच्छे वीर्यवर्द्धक पदार्थों का सेवन भी खूब करते हैं। ऐसी स्थिति में रहन-सहन और आचार विचार में हमारी-उनकी क्या तुलना? हमें अपने देश की जलवायु के अनुसार रहकर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी है। एक तो हमारा देश उष्ण है, जहाँ दस मास गरमी रहती है, दूसरे हमें खुराक श्रेष्ठ नहीं मिलती, तो इन सिद्धान्तों की चर्चा में हमारा-उनका मेल क्या! हमारा तो एकमात्र इन्द्रिय-संयम ही स्वास्थ्य का आधार है।

ब्रह्मचर्य एक दिव्य शक्ति है

ब्रह्मचर्य से सचमुच ही मनुष्य में दिव्य-शक्तियों का संचार होता है। जब कभी हम विनोबा भावे को देखते हैं तो हमें ब्रह्मचर्य की दिव्य-शक्तियों का दर्शन होता है, क्योंकि उनमें ब्रह्मचर्य के सिवा किसी अन्य ताकत का प्रवेश ही नहीं है। बदाम-पिस्ता ,दूध-घी, मांस-मछली आदि शक्तिप्रद चीजों का सेवन उन्होंने आज तक नहीं किया। बहुत सस्ता और सादा भोजन वे करते हैं। कभी पहलवानों जैसी कसरत नहीं की है और शरीर भी बहुत हल्का मिला है; किन्तु ताकत में वे किसी अच्छे तगड़े शरीर वाले से कम नहीं हैं। जब कभी अपनी नित्य की चाल से चलने लगते हैं तो एक तगड़े आदमी की क्या मजाल, जो उनके साथ चले। यह चीज मैंने अपनी आँखों देखी है। गांधींजी के बारे में भी ऐसा ही सुना जाता है। मनोबल भी दोनों का आश्चर्यजनक है ही। बड़े-बड़े अंग्रेज गांधीजी के मनोबल से प्रभावित थे। संत विनोबा ने अपने मनोबल के आधार पर ही भूदान यज्ञ में कल्पनातीत सफलता प्राप्त की है। यह सब ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव है।

ब्रह्मचर्य के बाधक कारण

१–अष्टविध मैथुन

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति विचक्षणाः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥

(१) स्मरण—पूर्व देखे-सुने मैथुन का ध्यान आना, सम्भोग-योग्य व्यक्ति का ध्यान आना।

(२) कीर्तन—मैथुन की बातें करना, अश्लील कहानी, नाटक उपन्यास अथवा अन्य कोई पुस्तक, जिससे मैथुन करने की इच्छा को प्रोत्साहन मिले, पढ़ना। अश्लील गाने—जैसे आजकल सिनेमा, रेडियो और होली जैसे त्योहारों पर गाये जाते हैं—गान, अश्लील-गालियाँ बकना आदि सब मैथुन है।

(३) केलि—काम क्रीड़ा, मखौल-मजाक में हाथापाई करना, चिकोटी

काटना, ऐसे ही अन्य प्रकार की छेड़-छाड़ करना और हाथ, पाँव, भौं, आँख-मुंह से गन्दे इशारे करना भी केलि में शामिल हैं। यह सब मैथुन में सहायक होने से मैथुन हैं।

(४) **प्रेक्षण**--जिससे विषय-भोग की इच्छा उत्पन्न हो अथवा बढ़े इस प्रकार किसी को छिपकर अथवा सामने आकर देखना, यह भी मैथुन में सहायक होने के कारण मैथुन है।

(५) **गुह्यभाषण**--मैथुन-सम्बन्धी गुप्त बातें करना अथवा स्त्री-पुरुष का कहीं छिपकर बात-चीत करना; कीर्तन से इसमें छिपने मात्र का भेद है।

(६) **संकल्प**--मैथुन करूँ ऐसी तरंग मन में उठना।

(७) **अध्यवसाय**--मैथुन करने का उपाय करना—जैसे मैथुन करने के लिए पैसे देकर राजी करना अथवा नौकरी देना, अपराध-मुक्त करना या अन्य कोई सहायता देना, गलियों में चक्कर लगाना या इस प्रकार के अन्य उद्योग करना।

(८) **क्रिया-निवृत्ति**--जानबूझ कर लिंगेन्द्रिय से वीर्यपात क्रिया करना। यह तो साक्षात् मैथुन ही है। यह आठ प्रकार का मैथुन ब्रह्मचर्य का नाशक है। इससे बचना ब्रह्मचर्य है।

२–सिनेमा

हमें सिनेमा से इसलिए बचना है कि इनके जरिये बहुत दिनों से जो सामग्री हमें दी जा रही है, वह हमारे स्वास्थ्य और सामयिक आवश्यकता, दोनों के विपरीत हैं। मनोरंजन के नाम पर स्त्रियों के सुन्दर-मृदु और अर्धनग्न अंगों को दिखाकर, विद्यार्थियों और नवयुवक-नवयुवतियों के मन में जिन इच्छाओं को जन्म दिया जाता है अथवा बढ़ाया जाता है, वह उन्हें कामोपयोगी-लम्पट बनाकर उनके स्वास्थ्य का सर्वथा नाश करता है। झूंसी-निवासी प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी लिखते हैं कि "सब से बड़ा विष तो सिनेमाघरों में बोया जाता है। यह मनोविनोद नहीं है। चरित्र के पतन और ब्रह्मचर्य के विनाश का खुला द्वार है। छात्रावस्था में सिनेमा देखने का बहुत व्यापक, घातक प्रभाव होता है। युवक-युवतियों के मन को चंचल कर वीर्य अपने स्थान से चलित हो जाता है।

आजकल से नवयुवक, जो ९० प्रतिशत वीर्य-विकार से पीड़ित है, उसका कारण सिनेमा है।" अतः सिनेमा देखना स्वाथ्य के लिए घातक है। सिनेमा के धार्मिक चित्रों में भी अर्धनग्न दृश्य या श्रृंगार रस के गानें गाये जाते हैं। अतः सिनेमा के बुरे प्रभावों से बचने के लिए उनका न देखना ही श्रेयस्कर है।

३–अश्लील साहित्य

अश्लील साहित्य, जिसमें कामवासनाओं को जगाने की सामग्री का अधिक वर्णन होता है, विद्यार्थियों के लिए किसी समय भी पढ़ना अच्छा नहीं है। गृहस्थों की देखा-देखी विद्यार्थी भी रेल के सफर में, रविवार की छुट्टियों के समय बिताने के लिए अश्लील कहानी, उपन्यास, नाटक आदि पढ़ने लगते हैं। ऐसे साहित्य के पढ़ने से मन में सम्भोग की इच्छा पैदा होती है। कामदेव जागता है। उसका नाम 'मनोभव' और 'मनोमथ' है। वह मन से पैदा होता है और मन को मथ (विलो) डालता है। गन्दे साहित्य के पढ़ने से मन में गन्दापन अवश्य आता है। कोई प्रच्छन्न पाप करने की प्रवृति पैदा होती है, जिससे विद्यार्थी 'हस्तमैथुन जैसी बुरी आदतों के शिकार बन जाते हैं। उससे स्नायु जाल ढीला हो जाता है। धातु-स्राव, स्वप्न-दोष, इन्द्रिय-दौर्बल्य, सिर में चक्कर, कमर-दर्द भूख की कमी, पेचिश, संग्रहणी तथा वीर्य-विकार से पैदा होनेवाली व्याधियों के सिलसिले बँध जाते हैं। इन बुरे परिणामों की जड़ हैं मन में बुरे भावों की उत्पत्ति होना। इससे बचने के लिए अश्लील साहित्य और गन्दे चित्रों से परहेज करना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है।

४–पूर्ण अवस्था के पहले सम्भोग

युवावस्था में स्त्री का मन पुरुष की ओर पुरुष का मन स्त्री की ओर आकृष्ट होता है। यह आकर्षण स्वाभाविक है और मिलने के योग्य अवस्था अर्थात् स्त्री की सोलह वर्ष और पुरुष की पच्चीस वर्ष की अवस्था होने से पहले ही इस आकर्षण का प्रभाव दोनों के मन में पड़ने लगता है। ऐसी कच्ची अवस्था में मिलन होने से पुरुषों में प्रमेह, स्वप्न में वीर्य-स्राव, नपुंसकता, शीघ्रपतन आदि रोग और स्त्री में प्रदर, सोम, व्योनिव्यापत्, मासिकधर्म की अनियमितता और कृच्छ्रता आदि रोग पैदा होते हैं। इसलिए इस कच्ची अवस्था में पुरुष को स्त्री के

मिलन से बचाना परमावश्यक है। परस्पर दर्शन, परस्परालाप, परस्पर मनोविनोद की बातें और अधिक सहचार से मिलने की इच्छाओं की वृद्धि होती है। इसलिए विद्यार्थी कच्ची अवस्था में अर्थात् पच्चीस वर्ष से पहले दोनों को इस प्रकार की स्थितियों से बचना आवश्यक है।

५—सह-शिक्षा

नवयुवक और नवयुवतियों को महाविद्यालय में एक साथ शिक्षा देना स्वास्थ्य-सिद्धान्त के विपरीत है। अध्ययन काल में अष्टविध मैथुन का परिहार करना आवश्यक है। सह-शिक्षा में उससे परहेज होना असम्भव है। सह-शिक्षा के दुष्परिणाम दूसरे देशों में, जहाँ वह पहले से चली आ रही है, अति प्रसिद्ध हैं। भारत में भी, जब से यह आरम्भ हुई है, वही परिणाम होने लगे हैं। यह स्वाभाविक बात है—

घृतकुम्भसमा नारी तप्तांगारसमः पुमान्।
तस्मात् घृतं च वन्हि च नैकत्र स्थापयेद्बुधः।

घी भरे बर्तन को प्रज्वलित अग्नि के पास रखकर देखें। जो स्वाभाविक परिणाम होगा वह स्त्री और पुरुष के एक साथ रहने से कैसे रुकेगा? ऐसे दुष्परिणामों से बचने के लिए सह-शिक्षा को बन्द ही करना होगा।

६—घरों का वातावरण

यदि हम चाहते हैं कि विद्यार्थियों को घर में रखकर ही विद्याभ्यास करावें तो उनका शरीर, मन, बुद्धि रखने के लिए घर का वातावरण शुद्ध रखना होगा। घर के वातावरण और नित्य के व्यवहार का हृदय पर बड़ा असर पड़ता है। आजकल के साधारण पुरुषों के घर को देखें—उनमें मन को उत्तेजित करने की सामग्री भरपूर मिलेगी। रेडियो के अश्लील-गीत, सुन्दर युवतियों के हावभाव भरे चित्र, गन्दे साहित्य का अध्ययन, रङ्गबिरंगे वस्त्रों से बनावटी सजावट यह सारा मानसिक स्वास्थ्य का विरोधी वातावरण है। ऐसे वातावरण में रहा हुआ विद्यार्थी वैसा ही होगा जैसा वैसे घर में रहा हुआ होना चाहिए। बचपन के जीवन में तो यह सिद्धान्त शत-प्रतिशत लागू होता है। इसलिए बच्चों को

घरों में रख कर ही यदि हमें पढ़ाना है तो पहले घरों के वातावरण को शुद्ध करना चाहिए। हमारा स्वयं का रहन-सहन पूर्ण भारतीय होना चाहिये।

७–कुसंगति : बुरों की दोस्ती

कुसंगति अच्छे मनुष्य को भी बुरे मार्ग पर घसीट ले जाती है। जुआ, चोरी व्यभिचार इसी प्रकार के और भी बड़े-बड़े पापों में जहाँ अकेले मनुष्य की प्रवृत्ति संकोच या भयवश नहीं होती, कुसंगति हौसला देकर भीरु को भी आगे बढ़ा देती है। छोटेपन में बच्चों को सिगरेट पीने, जुआ खेलने, स्कूल में ऊधम करने, हाथ से इन्द्रिय को रगड़कर वीर्य निकालने और आपस में व्यभिचार (नाजायज ताल्लुक) तथा अन्य सभी बुरी हरकतें कुसंगति से ही आती हैं। देश को अब पढ़े-लिखे बीमारों और बदमाशों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब यह स्वतन्त्र देशों की श्रेणी में पहुँच गया है। अब स्वस्थ, सच्चे और सदाचारियों की इसे आवश्यकता है। इसलिए माता-पिता और मास्टरों का ध्यान पढ़ाने-लिखाने के साथ ही बच्चों को कुसंगति से बचाने की ओर विशेष होना चाहिए। अब छात्रों का ध्यान भी इस ओर विशेष होना चाहिए, क्योंकि वे भी अब स्वतन्त्र देश के बालक हैं। अपने देश में १२ वर्ष से १९ वर्ष तक के बालक बालिकाओं की शिक्षा के साथ विद्यालय के शिक्षकों और प्रबन्धकों का यह भी कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे देखें कि उनमें बुरी आदतें तो नहीं पनप रहीं। दुर्भाग्यवश इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति इस पर विशेष जोर देती रही है।

८–वीर्य-सम्बन्धी ज्ञान का अभाव

आजकल विद्यार्थी उचित अवस्था होने तक भी वीर्य-रक्षा का महत्त्व नहीं जानते। इसका बुरा फल हमारे सामने हैं। जब तक विद्यार्थियों को वीर्य-सम्बन्धी उचित शिक्षा प्राप्त नहीं होती, तब तक समाज अथवा व्यक्ति स्वस्थ नहीं बनाया जा सकता। बड़ी अड़चन यह हैं कि गुरु, माता-पिता आदि जिनको वीर्य-सम्बन्धी उचित शिक्षा देने का अधिकार है वे लोग छोटे विद्यार्थियों के सामने 'वीर्य' शब्द का उच्चारण करने में भी लज्जा का अनुभव करते हैं, जैसे वे कोई पाप करने लगे हों। फिर विद्यार्थियों को वीर्य-रक्षा कौन सिखायेगा?

वीर्य रक्षा में उनकी प्रवृत्ति कैसी होगी ? वे स्वस्थ कैसे बनेंगे ? उन्हें दोष क्यों दिया जा सकेगा ? प्रकृति के नियम तोड़ने से उसका दण्ड बिमारी अथवा शीघ्र मौत के रूप में भोगना ही पड़ेगा । इन आपत्तियों से बचने के लिए वीर्य-सम्बन्धी ज्ञान छात्र के अभिभावकों को कराना चाहिए । वीर्य सब धातुओं का सार है, रक्त से ६ गुना अधिक महत्त्व रखता है । दस-बीस बूंद रक्त गिरने से हम घबरा जाते हैं, फिर वीर्य तो रक्त से बहुत महत्त्वपूर्ण है । दूध में घी और ईख में रस की तरह वीर्य सारे शरीर में व्याप्त रहता है । मैथुन के समय वह धातुओं में से छनकर बाहर आता है । उत्तरोत्तर एक-एक धातु के बनने में पहली-पहली धातु का नियत समय तक परिपाक होता है । वीर्य सातवीं धातु है । पहली ६ धातुओं के क्रमिक परिपाक से उसकी उत्पत्ति होती है । शरीर में धातुओं के सत रूप में बहुत थोड़ा-सा है । उसको व्यर्थ खोना भारी गलती है । व्यर्थ खोने से क्षय, पेचिश, मन्दाग्नि, अपस्मार और पक्षाघात आदि भयानक रोग होते हैं । इनसे बचने के लिए प्रत्येक मनुष्य को वीर्य का महत्त्व समझना आवश्यक है ।

९—अनियमितता

आजकल, अच्छे नियमों को भी तोड़कर, अनियमित रहने को ही कुछ लोग स्वतन्त्रता समझते हैं । ऐसी स्वतन्त्रता अर्थात् उच्छृङ्खलता मनुष्य को बे-लगाम घोड़े के मानिन्द गड्ढे में ले गिरती है । वह जल्द ही बीमार हो जाता है । इसलिए अपने नित्य प्रति के सब कामों में——शौच, स्नान, सन्ध्या, भोजन-विश्राम, कार—व्योहार, खेल—कूद, सोना और जागना में अनियमितता हटानी चाहिए । ऐसा करने से कोई रोग नहीं होगा । ब्रह्मचर्य पालन में सहायता होती है ।

१०—साइकिल की सवारी

सस्ती होने के कारण, आजकल साइकिल की सवारी बहुत बढ़ती जा रही है । पर इससे बड़े नुकसान होते हैं । स्त्री-पुरुष दोनों की जननेन्द्रिय पर इसका सीधा प्रभाव होता है । शीघ्र वीर्यपात का रोग साइकिल से होता है । फेफड़ों की बीमारी और दिल की धड़कन साइकिल सवारी से बढ़ती है, पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है । रोटी कमाने में साईकिल की सहायता मत लो, ऐसा निषेध

हम नहीं करते; पर इसका अधिक उपयोग हानिकर है। यह कहते हैं यह साथी है। जो नुकसान दे, वह साथी क्या? छोटी आयु के बालकों का स्वास्थ्य रिक्षा चलाने से बिगड़ जाता है इसका ध्यान देकर ही स्वायत्तशास्त्री संस्थाओं को आयु निर्धारित करनी चाहिए।

११—शृंगार

शृंगार औरतों का आभूषण है; वह भी अपने पति को प्रसन्न रखने के लिए। दूसरे को आकृष्ट करने की प्रवृति से व्यभिचार को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। विदेशी शिक्षा ने भारतीयों को सबसे अधिक यही सिखाया है। अँग्रेजी भाषा-शिक्षित जन एक छोटासा हैंड-बेग अपने साथ रखते हैं, जिसमें कंघा और शीशा रहता है। बार-बार चेहरे को देखना, झाड़ना-पोंछना, स्नो-पाउडर लगाना बहुत बढ़ रहा है। इसका उद्देश्य दूसरों को आकृष्ट करना है। 'नाकामी मण्डनप्रिय:' काम-वासना के बिना शृंगार प्रिय नहीं होता। अपने को सुसज्जित देखकर प्रसन्न होना, इतने छोटे दायरे में शृंगार करने की इच्छा नहीं समाती। कपड़े आदि से सजे-सजाये बालक को उठाकर प्यार करने की इच्छा पैदा होती है। लेकिन सजिले युवक और सजीली युवतियों में परस्पर देखकर आकर्षण उत्पन्न होता है। मिलन का अवसर न मिलने पर, दोनों के खून और वीर्य में उबाल आता है। शरीर की उष्णता (Temperature) बढकर वीर्य को पतला और स्थान से चलित कर देती है। वह वीर्य शरीर में रुक नहीं सकता। सोते समय, स्त्री-सम्भोग के स्वप्न आकर, वीर्यपात हो जाता है। जागते में, पेशाब के आगे-पीछे या साथ में वीर्य निकल जाता है। इसीसे स्वप्नदोष और धातु-स्राव की बीमारी होती है। इससे शीघ्रपतन, नसों की कमजोरी (Nervous weakness), नपुंसकता होना स्वाभाविक है। आजकल के नवशिक्षित स्त्री-पुरुष में शीघ्रपतन का दोष बहुत है। यह शृंगार का दुष्परिणाम है। शृंगार-प्रिय मनुष्य के मन में निरन्तर काम-वासना ही बसी रहती है। उनका दिमाग कमजोर हो जाता है। छोटे-छोटे कामों में भूल और व्यग्रता होती हैं। दिमाग सही और मन पर काबू नहीं रहता है। वीर्य शीघ्र स्खलित होने से सम्भोग में इच्छित सुख नहीं मिलता। वह तब अफीम आदि नशीली चीजों का सहारा

लेता है। उससे आरम्भ में तो कुछ सहारा मिलने से सुख प्राप्त होता है; किन्तु थोड़े दिन के बाद पहले से भी बदतर बन जाता है। नशीली-खुश्क चीजों से शरीर का वीर्य बिलकुल सूख जाता है ' इस दुःखान्त नाटक से जो बचना चाहें, उन्हें ब्रह्मचर्य की शरण में आना ही पड़ेगा। हमारे पूर्वजों ने विद्यार्थी-जीवन को जो कठिन जीवन बिताना कहा है, वह शृंगार के दुष्परिणामों से बचकर स्वस्थ रखने के लिए ही कहा है।

१२—कठिन ब्रह्मचर्य के बिना भावी जीवन दुःखमय

विद्यार्थी-जीवन में ब्रह्मचर्य नष्ट करके जो लोग गृहस्थी में प्रवेश करते हैं, उनका जीवन अत्यन्त दुःखपूर्ण होता है। शीघ्रपतन और स्नायु-मण्डल की शिथिलता से स्त्री को तृप्त न कर सकने के कारण, स्त्री के सामने आने में ऐसे लोगों को अति संकोच और लज्जा का अनुभव होता है। स्त्री को हर समय उन्मनी देखकर वह कमजोर मनुष्य या तो आत्महत्या की अथवा कहीं भाग निकलने की बात सोचने लगता है। ऐसी दशा में कोई दवा नहीं, जो उसको ब्रह्मचारी के समान शरीर और मन से स्वस्थ बना दे। इस प्रकार की निराशा और दुःखों से रक्षा करके, गृहस्थी का पूर्ण आनन्द प्राप्त कराने के लिए विद्यार्थी को कठोर ब्रह्मचर्य पालन करने की प्रेरणा देते हैं। हमारा अभिप्राय कदापि यह नहीं कि एक स्वस्थ मनुष्य स्त्री-सम्भोग का आनन्द प्राप्त न करे। कठोर ब्रह्मचर्य केवल विद्यार्थियों के लिए और नियमित स्त्री-सम्भोग गृहस्थों के लिए स्वास्थ्यजनक है। इसलिए हम दो प्रकार के ब्रह्मचर्य का निर्देश करते हैं। ब्रह्मचारी अध्ययनकाल में ब्रह्मचर्य का कठोरता से पालन नहीं करता तो गृहस्थी में दुःख ही दुःख भोगता है। गृहस्थ आदि इन्द्रियसंयम न करके स्त्री-सम्भोग करता हैं, तो दुःख ही दुःख भोगता है। इसलिए हमें उचित है कि ब्रह्मचर्य का नाश न करे।

१३—शक्ति के खर्च पर नियन्त्रण

ब्रह्मचर्याश्रम या विद्यार्थी-जीवन शक्ति-संचय करने की अवस्था है। गृहस्थाश्रम शक्ति के खर्च का आश्रम है। सावधानी की जितनी आवश्यकता शक्ति के संचय-काल में है; खर्च में उससे भी अधिक सावधानी की आवश्यकता है। शक्ति

का खर्च केवल उपस्थ इन्द्रिय से ही नहीं, मन, वाणी और कर्म--तीनों से होता है। लौकिक पदार्थों के अधिक चिन्तन से, ज्यादा बोलने से तथा मात्रा से अधिक काम करने से शक्ति नष्ट होती है। यह बात अनुभव करके देखी गई हैं कि आत्म-चिन्तन या ईश्वर-चिन्तन से शक्ति नष्ट नहीं होती, किन्तु लौकिक वस्तुओं के चिन्तन से शक्ति नष्ट हो जाती है। अधिक बोलने से तो शक्ति का बहुत ही अपव्यय होता है। इन सबका संयम रखने से शक्ति संचित होती है इसलिये 'ब्रह्मचर्य' शब्द से हम सब इन्द्रियों के संयम को ग्रहण करते हैं; केवल उपस्थ के संयम का ही नहीं। विद्यार्थी जीवन में अधिक बोलना या सांसारिक पदार्थों का अधिक संग्रह करने की वृत्ति ग्रहण करना, वीर्यपात करना--जीवन नष्ट करना ही है। गृहस्थ को भी मन, वाणी और इन्द्रियों का संयम करना चाहिए। इससे ब्रह्मचारी और गृहस्थ दोनों का स्वास्थ्य बढ़ता है।

ब्रह्मचर्य रक्षा के सरल उपाय

१--ईश्वर-परायणता

ईश्वर-परायणता से हम ब्रह्मचर्य का पालन बहुत आसानी से कर सकते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक है। मन से इसका चिन्तन करें। वाणी से इसका वर्णन करें। शरीर में भी इसी के लिए कर्म करें तो विषय-वासनाओं के लिए सोचने का, बात करने का और प्रयत्न करने का अवसर ही नहीं मिलता। हर समय ईश्वर की व्यापकता सामने रहती है। 'उससे हम भला या बुरा कोई कर्म छिपा नहीं सकते' यह भावना दृढ़ होती है। ईश्वर की व्यापकता में पूर्ण विश्वास होने के बाद हम स्वयं ही सब पापों से निवृत्त हो जाते हैं। इस प्रकार ईश्वर-परायणता से हम बड़ी आसानी से संयम-सुखी और स्वस्थ हो जाते हैं। जिस प्रकार ईश्वर-परायणता है, उसी प्रकार ईश्वर-भक्ति, मोक्ष-प्राप्ति, आत्म-ज्ञान आदि महान् ध्येय हैं, जिसकी सिद्धि में लगकर आसानी से ब्रह्मचर्य का पालन और स्वास्थ्य-लाभ कर सकते हैं। पारलौकिक कार्यों में लगने की अभिरुचि जिनमें नहीं, ऐसे लोग विद्या-प्राप्ति, देश-सेवा, परोपकार, महत्वपूर्ण नई खोज आदि विषयों को ब्रह्मचर्य-व्रत का लक्ष्य बना सकते हैं। उससे आसानी से इन्द्रिय संयम करके वे स्वस्थ बन सकते हैं।

२—राम नाम का जप

गांधीजी लिखते हैं कि "विषय वासना को जीतने के लिए राम-बाण तो राम नाम का जप है।" इसी प्रकार का कोई भी मन्त्र जपा जा सकता है। मन की शुद्धि के लिए गायत्री-मन्त्र का जप बहुत श्रेष्ठ है। जो श्रद्धा-भक्तिपूर्वक तन्मयता से किसी मन्त्र का जप करता है, उसको सिद्धि अवश्य होती है। मन्त्र के जप से मन स्वस्थ होता है। मन के स्वास्थ्य से शरीर भी स्वस्थ होता है। आजकल की मानसिक चिकित्सा और योगशास्त्र के प्रयोगों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मन्त्र जप से ब्रह्मचर्य में आसानी होती है; उनसे मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य से शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

३—सात्त्विक भोजन

शारीरिक और मानसिक उत्तेजना तथा तज्जन्य विकारों को नष्ट करने के लिए सात्त्विक भोजन का अति महत्त्व है। मन आहार से बनता है। आहार की शुद्धि से मन की शुद्धि होती है। दूध, फल, जौ, गेहूँ, मूंग, चावल और साँवक आदि हल्के और सौम्य अन्न शुद्ध और सात्त्विक गिने जाते हैं। इसका अधिगम प्राप्ति का मार्ग अर्थात् कमाई का रास्ता भी शुद्ध और सात्त्विक होना चाहिए। अन्यथा यही अन्न अशुद्ध-तामस हो जायेंगे। जुआ, चोरी, हिंसा आदि पापकर्म से आये हुए सात्त्विक अन्न भी तामस हो जाते हैं। जैसे देर तक अग्नि पर पकाया हुआ दूध गाढ़ा और भारी हो जाता है। अन्न से ही मन बनता है; जैसा अन्न होगा, वैसा मन बनेगा। "अन्नमयं हि सौम्य मनः" जो लोग अन्न की स्वच्छता इसलिए चाहते हैं कि संयमी जीवन व्यतीत करके सुखी, स्वस्थ और विजयी बनें; उन्हें सात्त्विक कमाई से पैदा किया हुआ सात्त्विक अन्न खाना चाहिए। उससे संयम में सरलता हो जाती है। संयम से शरीर स्वस्थ होता है।

४—सदा स्वस्थ रहने की दृढ़ कामना

दृढ़ कामना—उत्कट इच्छा से बड़े काम भी आसान लगते हैं। दृढ़ कामना सतत प्रवृत्ति का मूल है। सतत प्रवृत्ति से सिद्धि होती है। यदि हम आरम्भ से सदा स्वस्थ रहने की दृढ़ कामना कर लें तो ब्रह्मचर्य बड़ा आसान लगने लग जाय। स्वस्थ रहने की दृढ़कामना से मनुष्य सात्त्विक भोजन, व्यायाम

और अपनी शक्ति को सुरक्षित रखने का सदा ध्यान रखता है; क्योंकि वह जानता है कि **शक्ति का संचय किये बिना स्वास्थ्य-रक्षा नहीं हो सकती**, ठीक उसी प्रकार जैसे हृदय को नष्ट करके जीवन-रक्षा नहीं हो सकती। इस प्रकार स्वस्थ रहने की दृढ़ कामना से ब्रह्मचर्य-पालन आसान लगने लगता है।

५—महान् ध्येय

किसी महान् ध्येय; जैसे विद्या-प्राप्ति, देश की उन्नति, समाज का उत्थान, महत्त्वपूर्ण विषय की नई खोज, नया निर्माण, आत्म-प्राप्ति, ईश्वराधिगम आदि लौकिक और पारलौकिक महान् कार्यों में से किसी एक को सिद्ध करने में यदि हम तन-मन से जुट जायें तो हमारा मन किसी दूसरी ओर जायगा ही नहीं। तब हम आपही ब्रह्मचारी हो जायेंगे। विषय-भोग की इच्छाएँ उन्हीं के मन में पैदा होतीं है, जिनके सामने किसी महान् ध्येय की पूर्ति का प्रश्न नहीं रहता। ब्रह्मचर्य को सरल बनाने का यह सबसे आसान और सुपरीक्षित उपाय है कि तन-मन से विद्याध्ययन, देशोन्नति और समाजोत्थान आदि लौकिक अथवा आत्म-प्राप्ति और ईश्वराधिगम जैसे अलौकिक कार्यों में जुट जाएँ।

६—विद्या-प्राप्ति एक महान् ध्येय है

विद्या-प्राप्ति एक ऐसा अत्यावश्यक महान् कार्य है कि छोटी अवस्था से ही इसमें सभी को लगना पड़ता है। किन्तु इतने आवश्यक कार्य में भी इने-गिने ही क्यों सफल होते हैं ? जो इसे पूर्ण ध्येय मानकर मन का पूरा योग उसमें देते हैं, **वे अवश्य सफल होते हैं** ऐसे लोग ही आगे ऊँचे कार्य करने योग्य बनते हैं। इस ध्येय से जैसे और अच्छे कार्यों में सफलता है। इसलिए हमें सबसे पहले विद्या-प्राप्ति को ही अपना महान् ध्येय बनाना चाहिए।

७—कार्य-व्यस्तता

मन बड़ा शैतान है; किन्तु हर समय अच्छे कामों में लगाये रहने से वह देवता हो जाता है। सुना है, देवता सदा स्वस्थ और अमर होते हैं। यदि आप सदा स्वस्थ और पूर्ण वायु चाहते हैं तो हर समय अपने मन को कार्य-व्यस्त अर्थात् अच्छे कामों में लगाये रखें। फिर मन कोई बुरा चिन्तन नहीं करेगा, अर्थात् ब्रह्मचारी हो जायगा। तब उसकी शक्ति कायम रहेगी। यही सदा स्वस्थ

और अमर होने का सरल उपाय है ।

८—सादगी से रहना

आप जितने सादे रहेंगे, उतना ही आपका मन सरल और शुद्ध रहेगा । अतः सादा भोजन करें; सादे कपड़े पहनें, रहने के मकान को स्वच्छ और सादा रखें तो विषय-वासना एकाध बार आकर भी लौट जायगी; जैसे——भिक्षा न मिलने पर मकान से भिखारी लौट जाता है और बार-बार निराश हो लौटने से फिर आता ही नहीं । इसी प्रकार विषय-वासना सादगी के कारण स्वयं नष्ट हो जायगी । इसी को पूर्ण ब्रह्मचर्य कहते हैं ।

हमारी वर्तमान स्थिति

वर्तमान समय में हम भारतीय लोगों की स्थिति बड़ी विचित्र हो रही है । हजारों वर्ष की गुलामी के कारण हमारे श्रेष्ठ गुण सब नष्ट हो गये हैं । इतनी लम्बी गुलामी में यह स्वाभाविक ही था । गुलाम को श्रेष्ठ गुण सिखाकर कौन अपने पैरों में अपने हाथों कुल्हाड़ी मारे ? दुनिया के सामने बुद्धू कौन बने ? किन्तु ईश्वर-कृपासे, हमारे त्यागी और तपस्वी नेताओं के सतत प्रयत्न से यह कुल्हाड़ी लगनी ही थी । दुनिया की दृष्टि में उन्हें बुद्धू बनना ही था ।

परन्तु हमें जिस दशा में हमारे दोस्त छोड़ गये हैं, वह दशा अति दयनीय है । स्वास्थ्य, विद्या, आविष्कार, उत्पादन, व्यापार, रक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध——गर्ज यह कि वे हमें सब दिशाओं में निर्बल करके छोड़ गये हैं । हाँ विषयभोग में हम बहुत प्रगति कर गये हैं । विषयों का अधिक उपभोग ही सारे दोषों का मूल है । विषयभोगी मनुष्य अत्यन्त दरिद्र के समान सदा नित-नई आवश्यकताओं से घिरा रहता है । परमार्थ में लगने का उसे अवसर नहीं मिलता । इसके बिना संतोष, सुख और शान्ति कहाँ ? वे स्वयं इन सब दोषों के शिकार थे । किन्तु जिन गुणों में वह अग्रगण्य थे, उनमें से हमें एक भी नहीं सिखा गये ।

विषयभोगी पुरुष शूर-वीर नहीं हो सकता—यह व्यापारी हो सकता है, धनी हो सकता है, किसी हद तक ईमानदार हो सकता है, त्यागी हो सकता है; पर शूर-वीर नहीं हो सकता । शूर-वीर होने का तो वह ढोंग भी नहीं निभा

सकता। वह निर्बुद्धि, निस्तेज, निरुत्साह और निर्वीर्य होता है। स्वतन्त्रता के क्षेत्र में उसके पैर सदा डगमगाते रहते हैं, क्योंकि वद स्वस्थ और सबल नहीं होता, इसलिए तथा चिकित्सा-शास्त्र कीं परम्परा के अनुरोध से भी सद्गुणों के मूल कारण 'स्वास्थ्य' को ही अपने विचार का लक्ष्य बनाया है। हमारे भारतीय आयुर्वेद में स्वास्थ्य के तीन स्तम्भ बताये गये हैं--**आहार, स्वप्न और ब्रह्मचर्य**। इनमें एक स्तम्भ हमें आवश्यक प्रतीत हुआ--**व्यायाम**। जिस समय हमारे आयुर्वेद-संहिता-ग्रन्थों की रचना हुई, सम्भव है तब इस स्तम्भ के उपदेश की इतनी आवश्यकता न हो। सभी लोग परिश्रमी होते थे। परीश्रमी के लिये व्यायाम के उपदेश का उतना ही महत्त्व है जितना जंगल में रहने वाले किसी तपस्वी के लिए खुली हवा में रहने का उपदेश। परन्तु आज जब बड़े-बड़े नगरों की संख्या बढ़ गई है, तब व्यायाम को भी स्वास्थ्य का एक अत्यावश्यक अंग स्वीकार करना ही पड़ेगा। यह देखकर स्वास्थ्य के तीन अंगों के साथ **एक चौथा अंग व्यायाम भी हमने जोड़ दिया है।**

महत्त्वपूर्ण सभी दृष्टियों से इस समय हमें शरीर में स्वस्थ-सबल और बुद्धि में गम्भीर होने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए एकमात्र ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ उपाय है, ऐसा हमारा ध्यान है। यद्यपि आहार और व्यायाम भी महत्त्व रखते हैं, किन्तु आहार की दशा सुधारनें में हमारी सरकार तेजी के साथ काम कर रही है। ब्रह्मचर्य, व्यायाम और उचित निद्रा के लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं। हाँ ब्रह्मचर्य के बाधक सिनेमा, रेडिओ तथा विकास की अत्यधिक सामग्री पर प्रतिबन्ध लगाने का ध्यान सरकार को अवश्य देना है; जिससे हमारे देश की निर्बल जनता ब्रह्मचर्य का पालन करके सबल बन सके।

कुछ लोग शायद इस प्रयत्न का यह अर्थ लगावें कि हम सब के हाथ में दण्ड-कमण्डल देकर सब को बाबाजी ही बनाना चाहते हैं। गृहस्थ-आश्रम के सुख को नष्ट ही कर देना चाहते हैं। यह सर्वथा भ्रान्त धारणा होगी। हमारा वैसा अभिप्राय कदापि नहीं। हम तो गृहस्थाश्रमरूपी सुन्दर महल की नींव को पुख्ता रखना चाहते हैं, जिससे उस सुन्दर महल को कोई शत्रु क्षति न पहुँचा सके। किसी महल की नींव को पुख्ता करनेवाले पर उस मकान को उखाड़

फेंकने का मिथ्या आरोप कितना अन्यायपूर्ण होगा, यह आरोप करनेवाले स्वयं सोचें। विद्यार्थी अवस्था के कठोर ब्रह्मचर्य से गृहस्थाश्रम की सुख-समृद्धि बढती है। सुख-समृद्धि से पागल होकर उसे लुटा देना या लूटने देना हमें अभिप्रेत नहीं; उसका उचित उपभोग हो, यही हम चाहते हैं।

हमने ब्रह्मचर्य के दो रूप बताये हैं--पहला विद्यार्थी-अवस्था का ब्रह्मचर्य दूसरा गृहस्थ अवस्था का ब्रह्मचर्य। पहले में अष्टविध मैथुन का निषेध किया है; किन्तु दूसरे में स्त्री-सम्भोग का निषेध नहीं है। केवल अनियमित स्त्री-सम्भोग का निषेध है। उसका अभिप्राय भी अपने स्वास्थ्य की रक्षा के साथ ही अपनी स्त्री के स्वास्थ्य की रक्षा और अपने बच्चे के स्वास्थ्य की रक्षा है। २०-२५ वर्ष से पहले पुरुष और १५-१६ वर्ष से पहले स्त्री-सम्भोग योग्य नहीं होता। उस समय दोनों का वीर्य कच्चा होता है। उससे स्वस्थ सन्तान उत्पन्न नहीं होती; इसलिए उस समय कठोर ब्रह्मचर्य रखना ही श्रेयस्कर है। इसके अतिरिक्त जब स्त्री-पुरुष दोनों या दोनों में से कोई बीमार हो, अत्यन्त कृश हो, अप्रसन्न हो, अन्यमनस्क हो, क्रुद्ध, उद्विग्न, भयभीत शोकाकुल हो या अत्यन्त अशक्त हो, स्त्री गर्भिणी हो, रजस्वला हो, बालक उसका दूध पीता हो, १६ वर्ष से कम और पचास वर्ष से अधिक हो, औपसर्गिक रोग से पीड़ित हो, जननेन्द्रिय के रोग से ग्रस्त हो, ऐसे ही पुरुष भी २५ वर्ष से कम हो, छूत के रोग से पीड़ित हो अथवा उपदंश आदि जननेन्द्रिय के रोग से ग्रस्त हो तो गृहस्थ को भी सम्भोग नहीं करना चाहिए। भोजन के बाद जब तक भोजन का परिपाक न हो, सम्भोग नहीं करना चाहिए। ऐसे कुअवसर में ही गृहस्थ को स्त्री सम्भोग का निषेध किया है। इसके अतिरिक्त जब दोनों स्वस्थ हों, समय अनुकूल हो बाजीकरण औषधियों के सेवन से शरीर में वीर्य की खूब वृद्धि हो तो गृहस्थ को स्त्री-सम्भोग अवश्य करना चाहिए।

इस प्रकार ब्रह्मचारी और गृहस्थों के लिए अलग-अलग प्रकार का ब्रह्मचर्य हमने यहाँ बताया है। इसका पालन करने से स्त्री-पुरुष और बच्चे सभी स्वस्थ-सुखी रह सकेंगे और तभी राष्ट्र तथा समाज का कल्याण होकर भारत सुख-समृद्धि से पूर्ण होगा।

स्त्री-संगम के लिये आयुर्वेद नियम

(१) पुरुष को २५ वर्ष से कम अवस्था में* और स्त्री को १६ वर्ष से कम अवस्था में सम्भोग न करना चाहिए।

(२) निम्नलिखित स्त्रियों से सम्भोग न करना चाहिए :--१. वेश्या, २. रजस्वला, ३. अपने मन पसन्द न हो ४. इच्छा के विरुद्ध आचरण करनेवाली, ५. दुष्ट और संकीर्ण योनिवाली, ६. बहुत मोटी, ७. बहुत पतली, ८. बच्चे होने के बाद छः महिने तक, ९. गर्भवती, १०. दूसरे की स्त्री, ११. संन्यासिनीं, १२. अन्य जाति की और १३. अधिक उम्रवाली--इन स्त्रियों से विषयभोग करने से मनुष्य की आरोग्यता नष्ट होती है।

(३) निम्नलिखित स्थान में विषयभोग नहीं करना चाहिये। १. गुरु, व राजा के स्थान में, २. श्मशान घाट में, ३. चौराहे में, ४. जल के ऊपर या भीतर, ५. त्यौहार के दिन, ६. दिन में, ७. किसी के देखे जानेवाले स्थान में।

(४) निम्नलिखित पुरुष को भोग न करना चाहिये :--१. भूखा, २. प्यासा, ३. बिना धैर्यवाला, ४. ज्यादा खाया हुआ, ५. बेचैनी हालतवाला, ६. कम उम्र वाला, ७. बूढ़ा, ८. किसी वेग से पीड़ित जैसे पेशाब, टट्टी आदि का वेगवाला रोगी।

(५) १. शीतकाल में वीर्यवर्द्धक भोजन और औषधि सेवन करके मनुष्य को इच्छानुसार स्त्री-सम्भोग करना चाहिए। २. बसन्त और शरद ऋतु में ३ दिन छोड़कर स्त्री-सम्भोग करना चाहिए। ३. गर्मी के मौसम में स्त्री-सम्भोग न करना चाहिए। अत्यावश्यक होने पर १५ दिन में स्त्री-सम्भोग करना उचित हैं।

(६) नियम-विरुद्ध या अधिक सम्भोग करने से निम्नलिखित रोग उत्पन्न होते हैं :--१. श्रम, २. थकावट, ३. पैरों की कमजोरी, ४. बल का क्षय, ५. धातु का क्षय, ६. इन्द्रियों का क्षय, ७. अकाल मृत्यु।

(७) स्त्री-सम्भोग में संयम रखनेवाले या नियमानुसार संगम करने वालों

---

*शास्त्र की आज्ञा तो २५ वर्ष की है। लेकिन २५ वर्ष तक किसी से ब्रह्मचर्य पालन न हों, तो कम से कम २० वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन अवश्य करना ही चाहिये।

को निम्नलिखित लाभ होते हैं——१. स्मृति की वृद्धि २. मेधा की वृद्धि, ३. आरोग्यता की वृद्धि, ४. आयु की वृद्धि, ५. शरीर की पुष्टता, ६. इन्द्रियों की कार्यक्षमता, ७. यश की वृद्धि, ८. बल की वृद्धि, ९. बुढ़ापे का न आना।

(८) विषय के बाद पालन करने योग्य नियम :——१. कामेन्द्रियों का ताजा जल से साफ करना, २. सम्भव हो तो स्नान करना, ३. सुगन्धित द्रव्य चन्दनादि का लेप करना, ४. ठण्डा जल पीना, ५. पान खाना, ६. दूध पीना, ७. मांस या रस पीना, ८. उत्तम मद्य पीना, ९. शान्तिपूर्वक सो जाना।

स्वास्थ्य-साधन-१

कसरत : व्यायाम

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्द्धिनी देहव्यायामसंज्ञा। —चरक

जिस चेष्टा से शरीर को स्थैर्य और बल प्राप्त हो उस चेष्टा को व्यायाम (कसरत) कहा है। जिन्दगी के लिए जिस प्रकार भोजन करना जरूरी है, ठीक उसी प्रकार तन्दुरुस्ती के लिए कसरत करना भी अनिवार्य है। जिस अंग से जितना अधिक परिश्रम करने का अभ्यास किया जायगा, वह अंग उतना ही मजबूत और ताकतवर होगा। दाहिने हाथ से ज्यादा काम करने के कारण ही उसमें बायें हाथ की अपेक्षा जादा शक्ति रहती है।

कसरत से लाभ

वाग्भट ने लिखा है।

लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते॥

अर्थात् कसरत करने से शरीर हलका रहता है, जो कुछ भी अंट-संट खाया जाय ठीक से पच जाता है, काम करने की शक्ति बढ़ती है, शरीर सुन्दर और मजबूत हो जाता है, दोषों का नाश हो जाता है और किसी रोग के होने का भय नहीं रहता। इसलिए प्रत्येक समझदार आदमी को किसी न किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम जरूर करना चाहिए, नहीं तो जल्दी ही तन्दुरुस्ती खराब

हो जायगी, क्योंकि बैठे-बैठे लिखा-पढ़ी आदि काम करने वाले बिना कसरत के जल्दी ही रोगी हो जाते हैं।

प्राचीन काल में लोग जंगलों में रहते थे वहाँ बाघ, सिंह आदि हिंस्र पशुओं से आत्म-रक्षा करने तथा भोजन प्राप्त करने के लिए शिकार या खेतीबाड़ी के कामों में उनको बराबर कठिन परिश्रम करना पड़ता था। इस प्रकार उनके दैनिक जीवन में स्वाभाविक रूप से ही काफी व्यायाम हो जाता था। इसके बाद उन्हें अलग से कृत्रिम व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं रह जाती थी। परन्तु अब स्थिति बदल गई है। लोग जंगलों और देहातों से आकर बड़े-बड़े शहरों में बस गये हैं। अब राज्य पर जनता की रक्षा का भार है और रुपये के बल पर घर बैठे ही जीवन-सामग्री मिल जाती है। परिस्थितिवश स्वाभाविक व्यायाम छूट जाने के कारण अच्छा आहार करने पर भी हमारे नवयुवकों का स्वास्थ्य समुन्नत नहीं है। यह सत्य है कि बिना उत्तम भोजन के मनुष्य स्वस्थ और बलवान् नहीं रह सकता। साथ-साथ यह भी सत्य है कि उत्तम भोजन के साथ यदि मनुष्य व्यायाम न करे, तो वह भी स्वस्थ नहीं रह सकता। हम सब प्रत्यक्ष देखते हैं कि जिनको अच्छा भोजन मिलता है, वे भी व्यायाम के अभाव में स्वस्थ और बलवान् नहीं रहते। खासकर बड़े शहरों में रहनेवाले सम्पन्न लोगों की स्थिति व्यायाम के अभाव में दयनीय है। इसलिये व्यायाम का नियमित अभ्यास करना स्वास्थ्य के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि सन्तुलित भोजन।

व्यायाम और भारतवर्ष

भारतवर्ष में व्यायाम की परम्परा बहुत प्राचीन है और अभी तक उस परम्परा की रक्षा यहाँ की जाती है; अतः आज भी भारतवर्ष के पहलवान संसार में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। कुश्ती, हॉकी और पोलो के खेल में भारतवर्ष अब भी विश्व-विजयी है। इसका एकमात्र कारण यही है कि भारतीय व्यायाम का ढंग अन्य देशों की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ है। समय के अभाव से उसमें कुछ दोष अवश्य आ गये हैं; जिससे पहलवानों की आयु कम और बुद्धि मन्द हो जाती है। यह दोष प्रोफ़ेसर राममूर्ति के ध्यान में आया था और उनके प्रयत्न से अब

वह करीब-करीब दूर भी हो गया है।

व्यायाम का वैज्ञानिक आधार

शुद्ध रक्त ही स्वास्थ्य का प्रधान आधार है। जिस व्यक्ति के शरीर में जितना ही अधिक शुद्ध रक्त बनता हैं, वह उतना ही अधिक स्वस्थ और सबल होता है। भोजन से रस और रस से रक्त की उत्पत्ति होती है। रक्त सारे शरीर में भ्रमण करता है। इस भ्रमण-काल में शरीर के मृत कोष (सेल्स) उसमें मिलते हैं और वह अशुद्ध हो जाता है। अशुद्ध रक्त की शुद्धि प्राणवायु की सहायता से फेफड़े और हृदय करते हैं और रक्त में जो दोष होता है, वह निःश्वास के द्वारा विषैले वायु (कार्बन डाइआक्साइड) के रूप में बाहर निकल जाता है। जब हम व्यायाम करते हैं, तो हमारे रक्त की गति बढ जाती है, और रक्त तेजी के साथ फेफड़ों में पहुँचने लगता है। इससे श्वास-प्रश्वास की गति भी बढ़ जातो है, जिससे रक्त में प्राणवायु का अधिक मिश्रण और विषैले वायु का अधिक निष्कासन होता है। परिश्रम के कारण जो पसीना आता है, उससे भी रक्त का बहुत कुछ मैल बाहर निकल जाता है। व्यायाम के द्वारा हमारे भीतर के संस्थान भी शुद्ध और सबल हो जाते हैं। यकृत् ठीक से पित्त-स्राव करता है और आँतें भी अपना काम बहुत अच्छी तरह करती हैं। गुर्दे भी पेशाब बनाने का काम बहुत ठीक से करते हैं। इन सब यथावत् कामों से भीतरी अंगों को निरन्तर सफाई होती है। कोई विकृत पदार्थ शरीर में एकत्रित होकर अपने विष से रक्त को दूषित नहीं कर सकता। जो लोग नियमित व्यायाम नहीं करते, उनकी अँतडियाँ कमजोर हो जाती हैं फलस्वरूप उनमें बहुत-सा मल जमा हो जाता है। वह मल सड़ता रहता है, जिससे रक्त दूषित हो जाता हैं, और मनुष्य रोगी तथा कमजोर होने लगता हैं। शरीर की दृढ़ता और सबलता के लिए मांस-पेशियाँ प्रधान रूप से काम करती हैं। वे मांस पेशियाँ छोटे-छोटे तन्तुओं (टिस्यूज) से बनी होती हैं। उन तन्तुओं के मूल होते हैं कोष (सेल्स)। ये कोष रक्त के द्वारा बनते हैं और जो कोष नष्ट होते हैं. वे रक्त में मिलते जाते हैं। इन कोषों (सेल्स) की उत्पत्ति और स्थिरता प्राणवायु से होती है। यह प्राणवायु व्यायाम के द्वारा प्रचुर मात्रा में हमको मिलता है। शरीर के

नष्ट हुए कोष विषैले वायु (कार्बनडाइ आक्साइड) के रूप में बाहर निकाल दिये जाते हैं।

व्यायाम का स्वास्थ्य से सम्बन्ध

हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि शरीर के जिस अंग से विशेष काम लिया जाता है वह सुदृढ़ शक्तिशाली हो जाता है। दाहिने हाथ से अधिक काम लेने के कारण वह बाएँ हाथ की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है। पहाड़ी लोग एक साथ बहुत-सा वजन लेकर पहाड़ों पर चढ़ते हैं, जिसमें उनको पैरों से अधिक काम लेना पड़ता है। फलस्वरूप उनके पैर बड़े शक्तिशाली एवं सुदृढ़ होते हैं। इसी प्रकार लोहार के हाथ भी बहुत मजबूत होते हैं। कोई व्यक्ति यदि शरीर के किसी अंग को पुष्ट करना चाहे, तो यह व्यायाम के द्वारा ही सम्भव है। इस तरह व्यायाम और स्वास्थ्य का सीधा सम्बन्ध है। यदि शरीर से काम न लिया जाय, तो वह निश्चय ही निर्बल हो जायगा। बीमारी के कारण महीने-दो-महिने खाट पर पड़े रहने वाले रोगी को जब पहले-पहले खड़ा किया जाता है तब उसके पैर कांपने लगते हैं। इसी प्रकार जिस मशीन से काम नहीं लिया जाता, उस पर भी जंग चढ़ जाता है। सैनिकों से यदि दैनिक व्यायाम (कवाद) न कराया जाय, तो वे बलवान और फुर्तीले नहीं हो सकते। हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि हमारे देश के धनी लड़के पुष्टिकारक भोजन बेफिक्री के साथ करके भी स्वस्थ और सबल नहीं हैं; जबकि नित्य व्यायाम करने वाला साधारण श्रेणी का युवक स्वस्थ, सुन्दर और बलिष्ठ है। इसलिए यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि भोजन, विश्राम और संयम की तरह व्यायाम भी स्वास्थ्य का एक प्रधान आधार है। जो लोग अज्ञानवश या आलस्यवश नियमित व्यायाम नहीं करते वे बहुत जल्दी अपने स्वास्थ्य को नष्ट कर देते हैं। शरीर के किसी भी अवयव से यदि काम न लिया जाय, तो वह उस अवयव का हीन योग हुआ। इससे उस अवयव का क्षय होगा।

कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्याऽतिमात्रकः।
सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम्॥

ऐसे ही क्षय को पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र में (Atrophy due to disease) कहते हैं।

भारतवर्ष गर्म देश है। यहाँ ८–१० महीने गर्मी पड़ती है। यह गर्मी हमारे शरीर और विशेष कर स्नायुमण्डल को दुर्बल बनाती है, जिससे स्नायु-दौर्बल्य, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि रोग पैदा होते हैं। पाचन-शक्ति को कमजोर करती है, जिससे कब्जियत या पतले दस्त की बीमारी हो जाती है तथा कई तरह के चर्मरोग एवं अन्य बीमारियां भी पैदा कर देती है। इनसे बचने का एकमात्र उपाय नियमित व्यायाम है। नियमित व्यायाम करनेवाले व्यक्ति को न तो स्नायु संबंधी और न ही मन्दाग्निमूलक रोग होते हैं।

नियमित व्यायाम करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि वह शक्ति से अधिक न किया जाय। अति मात्रा में शरीर के अवयवों से काम लेने से पहले उनकी कुछ वृद्धि होती है, किन्तु बाद में क्षय होने लगता है। इसको पाश्चात्य चिकित्साविद् Hypertrophic Atrophy कहते हैं। क्षय के निदान-चतुष्क में इसका उल्लेख इसीलिए आता है।

व्यायाम और सुन्दरता

सुन्दर देखने की लालसा सभी व्यक्तियों में होती है। वर्तमान काल में शरीर को सुन्दर प्रदर्शित करने के लिए लोग बहुत ही प्रयत्न करते हैं। स्त्री और पुरुष-समाज में एक होड़सी लगी हुई है कि वे किसी तरह अपने को अधिक से अधिक सुन्दर प्रदर्शित करें। रंग-बिरंगे वस्त्रों द्वारा बनी हुई आधुनिक पोशाक, केशों का सजाव-बनाव और केश विन्यास एवं साबुन, तेल, स्नो, पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक आदि शृंगार-सामग्रियों का व्यवहार अपने को सुन्दर प्रदर्शित करने के लिए ही किया जाता है। लेकिन यह सुन्दरता दिखावटी मात्र है। शरीर का वास्तविक सौन्दर्य इससे सम्भव नहीं है। किसी स्त्री या पुरुष की सुन्दरता का वर्णन-उसके अंग-प्रत्यंग और रूप-लावण्य से किया जाता है। भगवान् श्री रामचन्द्रजी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए आदि-कवि वाल्मीकिजी ने कहा है :—

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ।
महोरस्को महेष्वासो गूढ़जत्रुररिन्दमः ।
आजानुबाहुः सुशिरः सुललाटः सुविक्रमः ।
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
पीनवक्षः विशालाक्षो लक्ष्मीवान् शुभलक्षणः ।

अर्थात्—भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऊँचे कंधेवाले, लम्बी भुजावाले, शंख समान गर्दनवाले, बड़ी ठोडीवाले, विशाल वक्षस्थलवाले, बड़े धनुष को धारण करनेवाले, गूढ़जत्रू (मांस में छिपी हुई हैं दोनों हंसली जिनकी) शत्रुओं का दमन करनेवाले, जानुपर्यन्त लम्बी भुजावाले, सुन्दर सिर और सुन्दर ललाटवाले, श्रेष्ठ पराक्रमयुक्त, सम (न छोटे और न अधिक लम्बे कद के), समुचित रूप से अंगों के विभागवाले, स्निग्ध वर्ण वाले, प्रतापी, पीन (मांसल) वक्षस्थलवाले, बडी आंखोंवाले, लक्ष्मीवान्, सब प्रकार की शारीरिक शोभा से युक्त और सब शुभ लक्षणों से युक्त हैं।

शुद्ध रक्त और सुगठित मांस-पेशियां ही सुन्दरता का मूल हैं। कितना ही सुन्दर मनुष्य या सुन्दरी स्त्री हो, उसका रक्त या मांस कम कर दिया जाय या निकाल दिया जाय तो उसकी सारी सुन्दरता नष्ट हो जाती है। वह अस्थिपंजर मात्र रह जाता है और अति भयावह मालूम होता है।

हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं कि जिनका शरीर सुगठित और पुष्ट होता है; उनको देखकर सभी लोग प्रभावित होते हैं और वैसा ही सुन्दर शरीर बनाने की लालसा रखते हैं। इस बात में तो कोई विवाद ही नहीं कि इस तरह का सुन्दर और सुगठित शरीर व्यायाम के बिना नहीं हो सकता। व्यायाम के द्वारा मनुष्य के कद में भी वृद्धि होती है और वजन में भी। वजन बढ़ने से शरीर भर जाता है, उसकी कोमलता बढ़ जाती है। यदि गौर वर्ण हो, तो कहना ही क्या ! कृष्ण वर्ण भी बहुत सुन्दर लगता है। इस प्रकार का सुन्दर शरीर ही बहुत बड़ा प्रदर्शन है। उसको सजाने की क्या आवश्यकता है ? इसलिए शरीर को कृत्रिम उपायों से सुन्दर बनाने की अपेक्षा व्यायाम द्वारा सुन्दर बनाना बुद्धिमानी का काम है। आजकल के नवयुवक जिस प्रकार की सुन्दरता की रचना

करते है, वह पुरुषोचित नहीं है। उनका यह बनाव-शृंगार स्त्रियों जैसा है। स्त्रियों की कोमलता और पुरुषों की कोमलता में अन्तर है और यह तो स्पष्ट ही है कि घोर मूर्ख नवयुवक भी अबलाजनोचित सौन्दर्य पसन्द न करेगा।

व्यायाम और पौरुष

स्त्री का पुरुष के प्रति और पुरुष का स्त्री के प्रति आकर्षण सृष्टि का नियम है। यह आकर्षण असमानलिंगी होने के कारण ही नहीं, बल्कि बहुत अंशों में पुरुष के पौरुष और स्त्री के स्त्रीत्व पर भी निर्भर है। केवल पुरुष होना ही स्त्री के आकर्षण का प्रधान कारण नहीं है पौरुष का अर्थ है स्वस्थ और बलिष्ठ शरीर। यह तो विज्ञान से सिद्ध हो चुका है कि जिस पुरुष में पुरुषत्व नहीं होता या उसकी कमी होती है, वह चाहे जितना गुणी या जितना धनी हो, अपनी स्त्री को प्रसन्न नहीं रख सकता। दाम्पत्य जीवन के लिए पुरुषत्व का होना आवश्यक है। अपने शरीर को बहुत सजाने, स्त्री की सुख-सामग्री इकट्ठा करने और बहुत प्रेम की बातें करने से स्त्री आकर्षित नहीं होती। वह पुरुषत्व से आकर्षित होती है। स्वस्थ बलिष्ठ शरीर ही पुरुषत्व का प्रधान लक्षण है। कुछ लोग केवल दवाओं के द्वारा शरीर को पुरुषत्वयुक्त बनाना चाहते हैं। यह बिलकुल उलटी बात है। इन स्तम्भक-दवाओं में अफीम, भांग आदि मादक चीजें होती हैं, जो कुछ समय तक शीघ्रपतन को रोकती हैं, लेकिन कुछ समय के बाद वे मनुष्य को नपुंसक बना देती हैं। इसलिए पुरुषत्व-प्राप्ति का निश्चित और वैज्ञानिक मार्ग यही है कि मनुष्य व्यायाम का अभ्यास करे। व्यायाम के द्वारा स्नायु-दौर्बल्य निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है और पुरुषत्व की प्राप्ति होती है।

प्रतिकूल परिस्थिति

भारतवासियों का पुराना रहन-सहन प्रायः बदल चुका है, और जो कुछ शेष है, वह भी बड़ी तेजी से बदल रहा है, जिनमें बुद्धिजीवियों की संख्या अधिक है। सरकारी कर्मचारी, विद्यार्थी, अध्यापक, व्यापारी, मुनीम, दुकानदार, डाक्टर, वकील, दफ्तरों के क्लर्क, आफिसर, जज, बैरिस्टर आदि का एक ऐसा वर्ग तैयार हो गया है, जो केवल बुद्धि से काम लेता है, शरीर से काम नहीं लेता और शरीर से श्रम करना निकृष्ट या अनावश्यक समझता है। वे लोग व्यायाम

प्राय: नहीं करते। स्त्रियाँ तो कतई व्यायाम नहीं करतीं। दिन-भर छोटे-से कमरे में बन्द रहती हैं। ऐसे परिवार का स्वास्थ्य हमेशा खराब रहता है और इनको अन्य खर्चों के साथ-साथ चिकित्सा पर भी नियमित खर्च करना पड़ता है। एक विश्वविद्यालय के स्थान पर दस हजार छात्रों के स्वास्थ्य की जांच की गई, तो उनमें से चालीस प्रतिशत छात्र रोगी निकले। बाकी आठ प्रतिशत छात्रों को हम रोग-रहित कह सकते हैं, पर पूर्ण स्वस्थ नहीं कह सकते। ऐसी बदली हुई प्रतिकूल परिस्थिति में व्यायाम का प्रचार अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग केवल बुद्धिजीवी हैं, उनके लिए तो यह उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवन के लिए हृदय की धड़कन।

छात्रों के लिये ब्रह्मचर्य अत्यावश्यक क्यों ? स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षितों की संख्या बहुत बढ़ी है और बढ़ रही है। बहुत प्रयत्न और सिफारिश के बाद भी सरकारी नौकरी नहीं मिलती। एक बाबू की आवश्यकता पर सैकड़ों बाबू उपस्थित होते हैं। मजदूर या घर का नौकर खोजने से भी नहीं मिलता, शिक्षित बेकार मारे-मारे फिर रहे हैं। इस जटिल परिस्थिति का सामना वही छात्र आसानी से कर सकता है जो शरीर और मन से पूर्ण उन्नत है। शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए छात्रावस्था में पूर्ण ब्रह्मचर्य अत्यावश्यक है। छात्रावस्था में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला व्यक्ति खेती, बागवानी, फार्म, व्यापार, उद्योग-धन्धा आदि स्वतन्त्र कार्य भी बड़े आनन्द से कर सकता है, क्योंकि वह मानसिक तथा शारीरिक स्थिति से दृढ़ है।

आपदां कथित: पन्था:, इन्द्रियाणामसंयम:,
तज्जय: सम्पदां मार्गो यथेष्टं तेन गम्यताम् ।

इन्द्रियसुख-भोग का मार्ग आपत्तियों का मार्ग है। इन्द्रियों को वश में रखना सम्पदा का मार्ग है। मनुष्य यथेष्ट मार्ग में जाने के लिये स्वतन्त्र है।

शारीरिक व्यायाम-प्रणाली

संसार में बहुत तरह के व्यायाम प्रचलित हैं। इन व्यायाम-प्रणालियों पर बहुत-सी पुस्तकें भी हैं। अनेक संस्थाएँ भी हैं, जो व्यायाम का प्रचार करती हैं और इसकी उपयोगिता बतलाती है। हर गांव या शहर में अखाड़े भी हैं जो सभी

जाति और धर्म के लोगों को समान भाव से शारीरिक-बल प्राप्ति के उपाय सिखलाते हैं। इन अखाड़ों में ब्राह्मण, शूद्र, मुसलमान, मेहतर आदि का कोई भेद नहीं होता। राष्ट्रीय स्वयं-सेवक-संघ नाम की संस्था को लोग प्रायः जानते हैं। इसने भारतीय विद्यार्थियों में व्यायाम का प्रचार किया है। यह संस्था बिना उपकरण वाले देशी खेलों के द्वारा बहुत उत्तम व्यायाम कराती है। इसके व्यायाम की एक विशेषता यह भी है कि इससे शारीरिक विकास के साथ-साथ बौद्धिक विकास भी होता है। भारतीय अखाड़ों में शरीर का विकास तो अवश्य होता है; परन्तु बुद्धि का विकास नहीं होता। इसके दो कारण बतलाये गए हैं। पहला कारण है श्वास-प्रश्वास पर ध्यान न देना, श्वास खींच कर व्यायाम करना; और दूसरा है गर्दन पर आघात होना। पर इन दोनों दोषों को दूर किया जा सकता है। पहले बताया है कि जो शारीरिक प्रचेष्टा शरीर को स्थिर और दृढ़ बनाये, उसी का नाम व्यायाम है। बालक जन्म से ही व्यायाम करता है। रोकर या प्रसन्न होकर जोर-जोर से बच्चा हाथ-पैरों को जो चलाता है, वह उसका व्यायाम ही है। फिर दौड़ना, कूदना और अपने साथियों के साथ खेलना उसका स्वाभाविक व्यायाम है। इस स्वाभाविक व्यायाम के लिए नगरपालिकाएँ बच्चों के खेलने-कूदने के लिये पार्क बनाती हैं। स्कूलों में जो ड्रिल (कवायद) होती है, वह भी एक अच्छा व्यायाम है। अब तो सरकार ने कॉलेज के लड़कों के लिए सैनिक-शिक्षा अनिवार्य कर दी है। सैनिक शिक्षा एक उत्तम व्यायाम है। सभी खेल एक प्रकार के व्यायाम ही हैं। हल जोतना, फावड़ा चलाना, लकड़ी काटना, बागवानी करना आदि व्यायाम दोहरे प्रयोजन से करने चाहिए। श्रमसम्भव कामों को नियमित रूप में करने से शारीरिक विकास होता है और देश की खाद्य-उत्पत्ति में सहायता मिलती है। कुश्ती, दण्ड, बैठक, मुग्दर घुमाना, सूर्य-नमस्कार, फुटबॉल, हाकी, क्रिकेट, टेनिस, बेडमिंटन, कबड्डी, गुल्ली-डण्डा, सिंगलबार, डगलबार, मलखंब, तैरना, दौड़ना, घोड़े की सवारी, नाव खेना, आसन, लेजिम, बनेठी, फरी और गदगा, लाठी चलाना आदि सभी व्यायाम हैं। ये व्यायाम इस समय काफी प्रचलित हैं और इनसे प्रायः सभी लोग परिचित हैं।

कुश्ती-व्यायाम

कुश्ती सभी व्यायामों में श्रेष्ठ है । बिना इस व्यायाम के कोई व्यक्ति मल्ल या पहलवान नहीं हो सकता । प्रसिद्ध है कि "सौ दण्ड एक पटकन्त"। दो घण्टे तक कवायद करने से शरीर के सुदृढ़ बनने में जो कार्य होता है उससे अधिक कार्य आध घण्टा कुश्ती का अभ्यास करने से हो जाता है । सबसे बड़ा यह लाभ होता है कि जो युवक कुश्ती का अभ्यास करता है, उसकी बल-प्राप्ति की इच्छा हार जीत की स्पर्द्धा से बढ़ती है और वह अपने बल से दूसरों को पराजित करने के लिए प्रयास करता है तथा इसके साथ परस्पर के संघर्ष से नस-नाड़ियों में चेतना प्राप्त होती है, रक्तवाहिनी सिराओं में रक्त का संचालन जोरों के साथ प्रारम्भ होने से शरीर में एक प्रकार की विशेष स्फूर्ति का अनुभव होता है। पन्द्रह वर्ष की अवस्था के बाद यह अभ्यास करना अत्यन्त लाभदायक है । इसे किसी योग्य गुरु से सीखना चाहिए ।
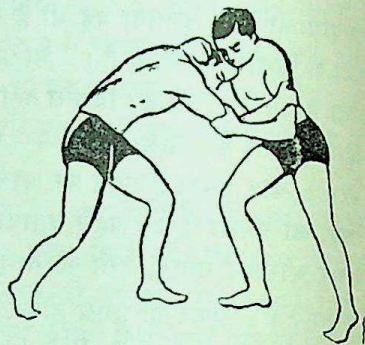
कुश्ती

दण्ड-व्यायाम

हाथ और छाती को सुदृढ़ तथा सुडौल बनाने के लिए दण्ड-व्यायाम अत्यन्त उपयोगी है । पन्द्रह वर्ष की अवस्था के बाद नित्य पचास से सौ तक दण्ड-बैठक करनेवाले को भी कोई रोग नहीं होता । शरीर फुर्तीला और मजबूत बना रहता है। दण्ड करते समय बहुत शीघ्रता करना या एक श्वास में कई दण्ड करना अच्छा नहीं है ।

व्यायाम-विधि—केवल हाथों की हथेलियों और पैरों के पंजों के बल जमीन पर आ जाएँ। दोनों हाथों और पैरों के बीच में एक हाथ चार अंगुल का अन्तर रखें। कमर को ऊँचा और गर्दन को नीचा रखे। इसके बाद ठोड़ी को छाती में लगाकर पेट की ओर देखते हुए और हाथों पर पूरा बल देते हुए नीचे झुकें। हाथों की कोहनियों को झुकाते हुए छाती को जमीन से एक इंच के अंतर तक ले जाएँ, फिर गर्दन को ऊँचा उठाते हुए कमर और पेट को इतना नीचा कर दें कि जमीन से एक इंच अन्तर रहे। यह एक दण्ड हुआ। इसी प्रकार जितने दण्ड करने हों उतनी बार ऐसा ही करना चाहिए।
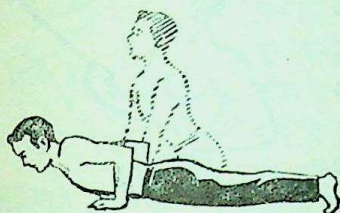
दण्ड-व्यायाम

बैठक-व्यायाम

पैरों को बलवान् और सुन्दर बनाने के लिए बैठक का व्यायाम बहुत उपयोगी है। बैठक करने के लिए एडियों के बीच में कम-से-कम ६ इंच का अन्तर रखकर सीधे-खड़े हो जाएँ। शरीर को ढीला छोड़ दें। छाती निकली रहे। हाथ लटके और खुले रहें और हथेलियाँ सामने की तरफ रहें। अब गहरी साँस धीरे-धीरे लें और बैठक पूरी होने तक रोके रहें। साँस खींचकर रोकने के बाद घुटनों को मोडते हुए पंजों पर बैठने की कोशिश करें। नितम्ब जैसे-जैसे नीचे आएँ वैसे-ही-वैसे एड़ियां ऊपर उठें; पर दोनों मिलने नहीं पाएँ। इसी प्रकार हाथों की मुट्ठी बांधकर कुहनी पर से मोड़ते हुए धीरे-धीरे कन्धों के पास ले जाएँ। परन्तु मुट्ठियों को कन्धों पर एकदम मत रखे और जांघों को भी पिण्डलियों से कम-से-कम आधा इंच के अन्तर पर रोक दें। अपनी शक्ति के अनुसार कुछ देर इस अवस्था में रहकर उलटी क्रिया करते हुए शुरू की
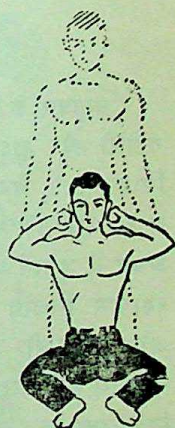
बैठक

अवस्था में आ जाएँ। बैठक करते समय कमर से छाती तक का भाग सीधा और सख्त रहे तथा मुट्ठियाँ काफी जोर से दबायी जाएँ। बैठक के बाद सीधे खड़े होकर रोकी हुई साँस को धीरे-धीरे छोड़ें और शरीर को ढीला छोड़ दें। यह एक बैठक हुई। इस विधि में थोड़ा-थोड़ा अन्तर करके बैठक के कई भेद हो जाते हैं, जैसे—आगे-पीछे कूदते हुए बैठक से 'कूद-बैठक' और चक्कर में कूदने से 'चक्कर-कूद बैठक'।

लाठी
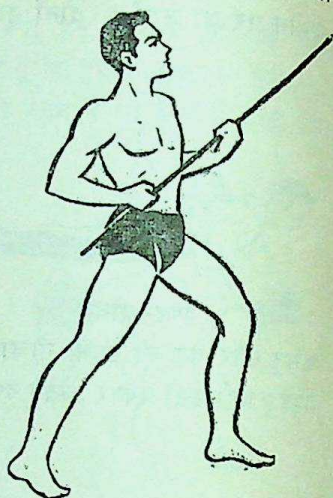
लाठी-व्यायाम

व्यायाम की दृष्टि से इसका उतना महत्त्व नहीं है, लेकिन आत्मरक्षा और दुष्टों के दमन के लिए इसका महत्त्व बहुत है। यह स्फूर्ति, बुद्धि और अवधान-वर्द्धक है। लाठी पुरुष की शक्ति और पुरुषत्व का सूचक है। लाठी चलाने का कौशल्य जरूर ही सीखना चाहिए।

मुग्दर-व्यायाम

बाहुबल के लिए मुग्दर-व्यायाम बहुत लाभकारी है। इससे दोनों भुजाएँ तो गठीली और सुदृढ़ होती हैं; साथ ही समस्त शरीर को भी अच्छा व्यायाम मिलता है। अच्छे पूरे आदमी के लिए अपने शरीर और बल के अनुसार २० सेर से ६० सेर तक मुग्दर की जोड़ी काम में आती है। इतने वजन के मुग्दर जब अधर में घुमाये जाते हैं, तब पैर से लेकर सिर तक समस्त शरीर को अच्छा व्यायाम मिलता है। इससे सारे शरीर की मसल्स—माँस-पेशियाँ—खूब पुष्ट और सुन्दर हो जाती हैं। अनेक जन मुग्दर को घुमाने के बाद फिर कोई व्यायाम नहीं करते, आवश्यकता भी नहीं रहती। मुग्दर के अनेक तरह के हाथ निकालना पहलवानों की विशेषता है। जो जितना बली होगा, वह उतने ही प्रकार के मुग्दर घुमाने का कौशल जानता होगा।
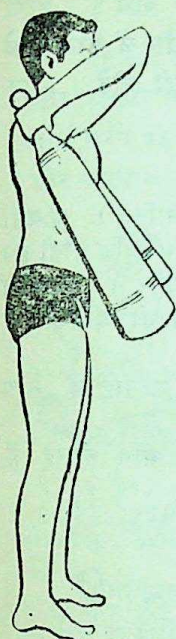
व्यायाम-विधि——गहरी सांस खींच कर दोनों मुट्ठियों से मुग्दरों को हाथों से उठाकर सीधे खड़े करें। दाहिने हाथ के मुग्दर को सिर के ऊपर से घुमाकर, दक्षिण-पार्श्व भाग से नीचे ले जाकर ऊपर खड़ा करें। दाहिने मुग्दर की पूर्व स्थिति होते ही बायें से भी वही क्रिया करें। किसी दूसरे व्यक्ति को करते हुए देखकर यह शीघ्र ही सीखा जा सकता है।

दौड़ने का व्यायाम
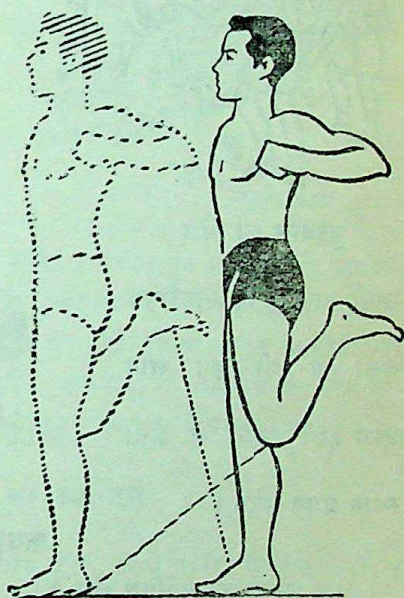
मुग्दर

दौड़ने की विधि

नये व्यायामों में इसकी प्रधानता है। वास्तव में यह बहुत लाभकारी है। टहलने-घूमने का व्यायाम ५० वर्ष से अधिक उम्र के व्यक्तियों के लिए है। आजकल के शिक्षित लोग जो प्रात:-सायं भ्रमण करते हैं वह बुड्ढों की चीज है। नवयुवकों के लिए दौड़नेका व्यायाम शक्तिदायक है। इस व्यायाम से शीघ्र लाभ होने लगता है। इससे मंदाग्निमूलक रोग—अजीर्ण, अम्लपित्त, कब्जियत आदि दोष निश्चित रूप से दूर हो जाते हैं।

विधि--धीमी गति से दौड़ें। पैरों के साथ-साथ मुट्ठी बाँध कर हाथों का व्यायाम भी करें। दौड़ते समय मुंह बन्द कर नाक से साँस लें और सीधे तनकर, छाती को आगे निकालकर, जितनी दूर दौड़ सकते हों, दौड़ें। एक एक पैर को ३२ इंच की दूरी पर रखते जाये।

फुटबाँल और हाँकी का खेल

विधि--उन्हें किसी भी टीम में शामिल होकर सीखना चाहिए। ये वर्षों के अभ्यास से आते हैं। इनसे शक्ति तो बढ़ती ही है, बुद्धि की भी वृद्धि होती है। हॉकी में तो भारतवर्ष विश्वविजयी है लेकिन फुटबॉल में कमजोर। फुटबॉल में शारीरिक बल की भी आवश्यकता होती है। जिस उत्साह के साथ भारतीय छात्र इसमें भाग ले रहे हैं, उससे आशा है कि ओलम्पिक खेलों में भी हम लोग शीघ्र ही फुटबॉल में ऊँचा स्थान प्राप्त करेंगे।
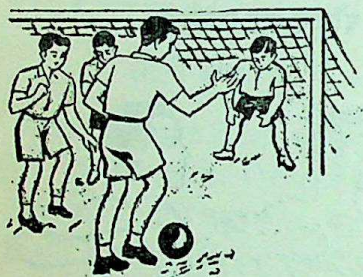
फुटबॉल का खेल

हॉकी का खेल

कबड्डी

यह भारत का सर्वप्रिय खेल है। यह अत्यन्त स्फूर्तिदायक और बुद्धिवर्द्धक है। यह देहातों में सर्वत्र खेला जाता है। अब इसका प्रचार हाई स्कूल और कॉलेज के छात्रों से लेकर सर्वसाधारण जन में भी बढ़ रहा है। इसकी लोकप्रियता और बढ़नी चाहिए।

कृषिकार्य और बागवानी

वर्तमान स्थिति को देखते हुए ये दोनों व्यायाम बहुत महत्त्व के हैं। हल और फावडा चलाने का व्यायाम बड़ा तगड़ा है। पशु-पालन के लिए भी कई काम करने पड़ते है। वे भी यदि नियमित रूप से किये जाएँ, तो शरीर सुदृढ़ और बलवान् बनता है। बागवानी का व्यायाम तो बहुत ही उत्तम है। पागल-

बागवानी
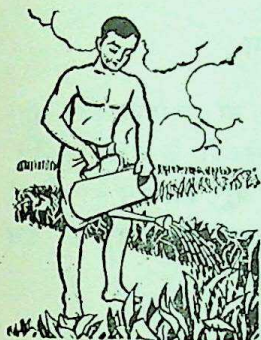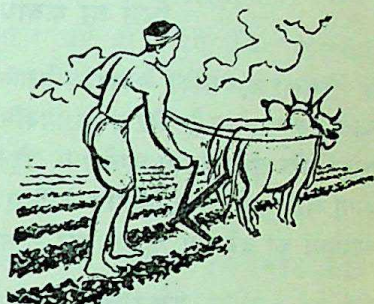
कृषि-कार्य

खाने में, अत्यधिक मानसिक परिश्रम के कारण पागल हुए व्यक्तियों से, बागवानी का काम भी कराते हैं, जिससे शारीरिक व्यायाम के साथ-साथ उनकी मानसिक दुर्बलता नष्ट होती है। फल और फूल के पौधे लगाना बहुत उपयोगी और आरोग्यकारक व्यायाम है। कृषि और बागवानी से व्यायाम के साथ-साथ आर्थिक लाभ भी होता है। वर्तमान समय में यह लाभ परमावश्यक है।

तैरने का व्यायाम

तैरना भी एक बहुत सुन्दर व्यायाम है। इससे शरीर के सब अंगों का व्यायाम हो जाता है। जिनके पास सुविधा हो और जो कर सकें, उनको यह व्यायाम अवश्य करना चाहिए। गर्मी की ऋतु में तैरने का व्यायाम बहुत अच्छा है।

कुछ अन्य उत्तम व्यायाम

ऊपर लिखे व्यायामों के अलावा और भी बहुत-से उत्तम व्यायाम हैं। जैसे घोड़े की सवारी के व्यायाम की प्रशंसा मुसोलिनी ने बहुत की है। नाव खेना भी एक बहुत बढ़िया व्यायाम है। घूंसेबाजी (बॉक्सिग) कुश्ती से अधिक कठिन व्यायाम है। पोलो का खेल भी एक कठोर तथा मनोरंजक व्यायाम है।

ड्रिल या कवायत का व्यायाम

स्कूलों के बालकों के शरीर-विकास के लिए ड्रिल या कवायद करते हैं। यह सरल व्यायाम है और इसके नियमित अभ्यास से लड़कों के शरीर सुडौल सुन्दर और हृष्टपुष्ट हो जाते हैं। ड्रिल-शिक्षक योग्य और व्यायाम का ज्ञाता होना चाहिए। राष्ट्र-निर्माण के लिए यह एक बड़े महत्त्व का काम है। इस व्यायाम को बड़े प्रेम और उत्साह के साथ अपनाना चाहिए।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के व्यायाम

इनके व्यायाम बहुत ही उत्तम, वैज्ञानिक तथा बुद्धि और बलवर्द्धक हैं। इस व्यायाम या कवायद के आविष्कारक के हमलोक कृतज्ञ हैं। जिन्होंने बिना किसी सामग्रीवाले इतने सुन्दर और उपयोगी व्यायाम राष्ट्र में प्रचारित किये। इनके व्यायाम करने का समय, स्थान और रीति सभी वैज्ञानिक हैं। यद्यपि मैं संघ के राजनैतिक विचारों से सहमत नहीं हूँ; लेकिन यह तो मानना ही होगा कि इसके इस व्यायाम-सम्बन्धी कार्य के प्रचार और प्रसार से देश की आरोग्य-वृद्धि में निश्चित रूप से लाभ हुआ है। यह राष्ट्र की नींव का सुधार है, जिस-आधार पर हम लोग संसार के संघर्ष में जीवित रह सकते और विजयी हो सकते हैं। हिन्दुओं में शारीरिक दुर्बलता और आपसी फूट न हो, तो संसार की एक सर्वश्रेष्ठ जाति बनने में कोई सन्देह नहीं है।

आसन-व्यायाम

आसन अमीरी कसरत है। यद्यपि 'अमीरी' शब्द के साथ 'कसरत' शब्द मेल नहीं खाता? परन्तु ऐसे बाबू लोगों की इस देश में कमी नहीं है, जिनकी

प्रकृति जन्म से ही अमीराना (कोमल) है, जिनका शरीर केवल दिमागी काम करते रहने के कारण ऐसी अवस्था में है कि दण्ड-बैठक आदि कड़ी कसरत नहीं कर सकते। उनके लिए नीचे बताये हुए आसनों का अभ्यास बड़ा ही अच्छा है। ये आसन एक या आधा घण्टा नियमित रूप से प्रतिदिन किये जाएँ तो तन्दुरुस्ती को बड़ा लाभ हो।
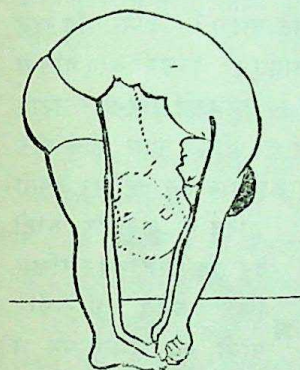
१–पादहस्तासन

पहले खड़े हो जाइए, फिर धीरे-धीरे दोनों हाथों को नीचे करके दोनों पांवों के अगूठे पकड़िये, जब इसका अभ्यास हो जाए, तब अपनी नाक घुटनों तक ले जाइये या मस्तक दोनों घुटनों के नीचे रखिए।

यह आसन प्रतिदिन १० मिनट करने से पेट में वायु जमा होने की शिकायत दूर हो जाती है। यकृत् (लीवर) का काम ठीक से होता है। मन्दाग्नि दूर होती। कब्जियत का दोष मिट जाता है और पाचन क्रिया ठीक से होती रहती है।

२–पश्चिमोत्तानासन

जमीन पर बैठकर पाँवों को आगे फैलाइए। फिर दोनों हाथों से दोनों पांवों के अंगूठों को पकड़ लीजिए। पैर सीधे ही रहने चाहिए। इसका अभ्यास ठीक हो जाने पर सिर को धीरे-धीरे झुकाते जाइए और दोनों
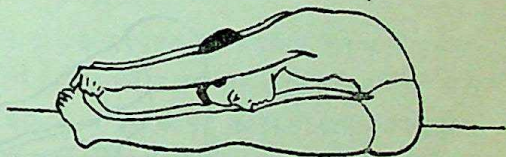
घुटनों के बीच तक ले जाइए। ध्यान रखें, पैर बराबर सीधे रहने चाहिए।

इस आसन का यकृत (लीवर) पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह बवासीर को फायदा पहुचाता है और मन्दाग्नि, अजीर्ण तथा पेट में वायु जमा होने की शिकायत को दूर करता है। एक योगाभ्यासी सज्जन ने तो मुझें बतलाया

था कि इसके अभ्यास से मनुष्य उर्ध्वरेता हो जाता है। हमारे पूर्वजों ने इस अवस्था को बहुत उत्तम कहा है। शुक्र (वीर्य) का प्रवाह, जो जननेन्द्रिय की ओर रहता है, इस आसन से सिर की तरफ हो जाता है जिससे ब्रह्मचर्य का पालन अनायास ही होता है।

३—उत्तानपादासन

सब स्नायुओं को ढीला करके जमीन पर लेट जाइए। दोनों पाँव खूब सीधे रखिए और उन्हें धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठाइए। जितनी मन्द गति से पाँवों को ऊपर उठायेंगे, उतना ही अच्छा फल होगा। पाँव को धीरे-धीरे उठाने से आँतों पर जोर पड़ता है, जिससे उनके सभी दोष दूर होकर काम ठीक-ठीक होने लगते हैं। जमीन से एक हाथ ऊपर जब पाँव आ जाय तब वहाँ पर अपनी
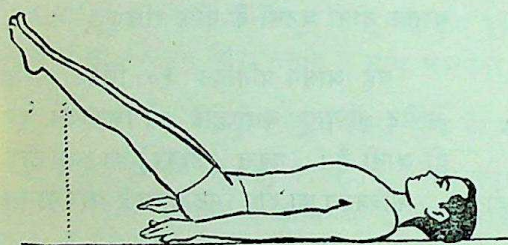
शक्ति के अनुसार थोड़ी देर तक उन्हें स्थिर रखिए फिर बहुत धीरे-धीरे पांवों को जमीन पर ले जाइए। इस आसन से आंतों को बहुत शक्ति मिलती है। कब्जियत, बदहजमी आदि पेट के रोग दूर होते हैं और भूख खूब लगती है।

४—सर्वाङ्गासन
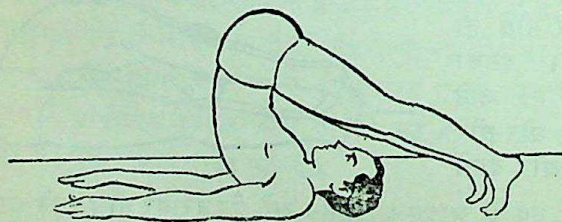
जमीन पर लेट जाइये। दोनों पांवों को उठाकर धीरे-धीरे अपने पीछे सिर के पास जमीन पर लगाइए, पांव के अंगूठे और अंगुलियां ही जमीन को

छूएँ। शेष भाग सीधा रहना चाहिए। हाथों को जमीन पर रखिए या सहारे के लिए कमर पर रखिए। शुरू में सहारा देना अच्छा होता है।

यदि प्रतिदिन १० मिनट तक इसका अभ्यास किया जाय, तो विलक्षण फल देखने में आता है। इससे तिल्ली और जिगर ठीक होते हैं और भूख खूब लगती है।

५—उर्ध्व-सर्वाङ्गासन

नीचे जमीन पर लेटकर, दोनों पावों को जोड़कर, ऊँचा करना चाहिए। नितम्ब को जमीन में ही जमाए रखना चाहिए फिर अभ्यास करते-करते कन्धे और सिर के सहारे समस्त शरीर को तनाकर खड़ा कर देना चाहिए। शक्ति के अनुसार शरीर को ऊपर रखकर फिर पाँवों को जमीन में गिरा देना चाहिए। इससे शीर्षासन के समान ही लाभ होते हैं।
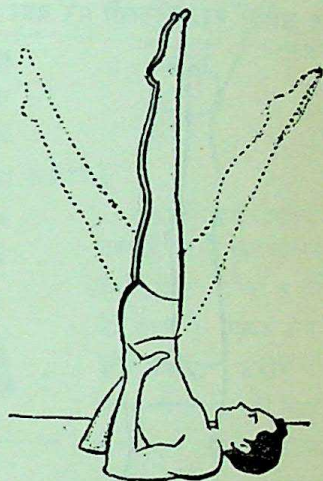
शीर्षासन

इस आसन में सिर के बल खड़ा होना पड़ता है; इसलिए सिर के नीचे नरम गद्दीदार कोई चीज रखनी चाहिए। सख्त जमीन पर सिर रखने से दिमाग पर बुरा असर पड़ने का भय रहता है। प्रारम्भ में इस आसन को किसी दीवार का सहारा लेकर करना चाहिए। साथ ही एक सहायक का भी पास में रहना जरूरी है जो गिरने से रोकने के लिए हमेशा सतर्क रहे। पीछे अभ्यास हो जाने पर न दीवार का सहारा लेना पडेगा, न किसी सहायक की ही आवश्यकता होगी। पहले सिर को गद्दी पर अच्छी तरह टेक कर दोनों हाथों को जमीन में दोनों तरफ या मिलकर सिर के आगे स्थिर कर लेना चाहिए। फिर दोनों पाँवों को ऊपर फेंककर दीवार

से लगा देना चाहिए : धीरे-धीरे दीवार का सहारा छोड़ देने का अभ्यास भी करना चाहिए।

यह आसन सभी आसनों में श्रेष्ठ है। मेरा निज का ऐसा अनुभव है कि इस आसन का तन्दुरुस्ती पर बड़ा आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। शरीर में खून का दौरा स्वाभाविक रीति से ऊपर से नीचे की ओर होता है; किन्तु शीर्षासन से खून की प्राकृतिक गति में परिवर्तन हो जाता है, वह नीचे से ऊपर की ओर अर्थात् पैरों से मस्तक की ओर प्रवाहित होने लगता है। इस क्रिया से खून के सभी विकार दूर होकर वह निर्मल हो जाता है। इस आसन से खून का रोग जल्द आराम होता है। स्वप्नदोष की शिकायत दूर करने का तो इससे अच्छा उपाय दूसरा है ही नहीं। छात्रावस्था में अधिक स्वप्नदोष होता है। सप्ताह में २-४ बार हो तो इसके अभ्यास से बन्द हो जाता है। इससे कुछ ही दिनों के अभ्यास से खून बढ़ने लगता है, दस्त साफ होने लगता है, नेत्र की ज्योति बढ़ने लगती है, शरीर में स्फूर्ति आती है, और गई हुई तन्दुरुस्ती वापस आ जाती है। यह आसन ५ मिनट से लेकर आधा घण्टा तक किया जा सकता है। जितनी देर तक यह आसन किया जायगा, उतना ही अधिक फायदा होगा। इस आसन से दृष्टि-शक्ति बढ़ती और दांत मजबूत होते हैं। अन्न-पचन अच्छा होता है, भूख लगती है। खाज, फोड़ा-फुन्सी, दद्रु, अनिद्रा, मस्तिष्क की गरमी, हथेली और तलवों की जलन आदि मिटती है। शरीर और चेहरे पर तेज झलक उठता है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में शीर्षासन की बड़ी प्रसंसा की है।
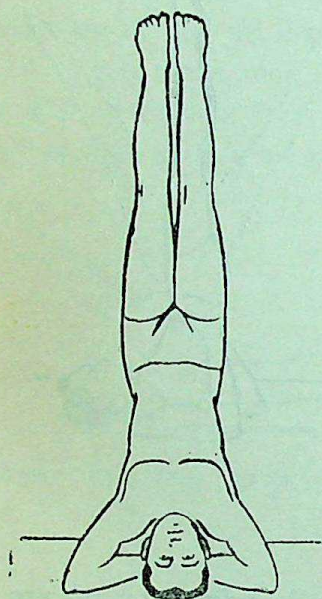
शीर्षासन

७--धनुषासन (प्रथम प्रकार)

जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, हाथ और पैरों को पृथ्वी पर टेककर शेष शरीर को धरती से ऊपर उठा लेना चाहिए। हाथ और पाँव जितने अधिक समीप रहें, उतना ही यह आसन और उत्तम समझा जाता है।
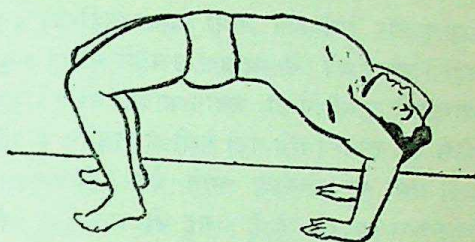
८--धनुषासन (दूसरा प्रकार)
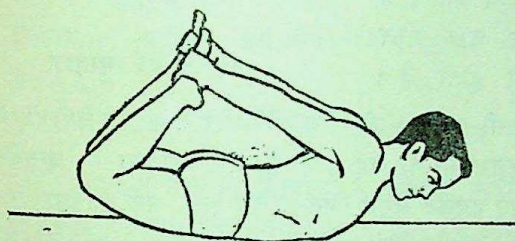
जैसा चित्र में दिखाया गया है, पेट के बल जमीन पर लेटकर दोनों पावों को हाथ से पकड़ लेना और जितना शरीर को धनुष के आकार में किया जा सके, उतना करना अच्छा है। ऊपरवाला धनुषासन रीढ़ का प्रधान व्यायाम है। नवीनतम खोज से मालूम हुआ है कि मस्तिष्क की तरह रीढ़ का महत्त्व है। अधिक समय युवा बने रहने की जितनी विधियाँ हैं, उनमें भी रीढ़ व्यायाम बहुत आवश्यक है। यह आसन भी शीर्षासन की तरह बड़ा उपयोगी है।

अन्यान्य आसन

ऊपर लिखे आसनों के अतिरिक्त और भी बहुत-से आसन हैं। उनमें से अधिकांश उपयोगी भी हैं। अपनी रुचि और शरीर की स्थिति को देखकर उनका अभ्यास करना चाहिए; परन्तु योग्य शिक्षक से उनको सीखना चाहिए।

टहलने का व्यायाम

संसार के बड़े-बड़े विद्वान, राजनीतिज्ञ और पूंजीपति इस विषय में एकमत

हैं कि दिमागी काम करने वालों के लिए टहलने का व्यायाम उत्तम है । महात्मा गान्धीजी जब इंग्लैण्ड गये थे, तब बीस घण्टे तक काम करने पर भी उनके भ्रमण और प्रार्थना में कभी बाधा नहीं पड़ी । सत्तर वर्ष से अधिक उम्र में भी गान्धीजी टहलते थे तो जवान आदमी भी पीछे छूट जाते थे । वे बड़ी तेजी से चलते थे । अभी सन्त बिनोवा भावे पैदल ही भारत-भ्रमण कर रहे हैं । यह भी प्रातः-काल चार बजे टहलने निकलते हैं; तब २०–२५ वर्ष के तगड़े जवानों को भी पीछे छोड़ देते हैं । गाँधीजी की तरह इनकी भी टहलने की गति चार मील प्रति घण्टे से अधिक ही होती है ।
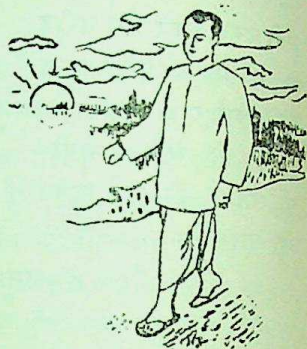
टहलने का व्यायाम

असल में टहलना नाम भी इसी का है । जो लोग धीरे-धीरे पार्कों या बगीचों में घूमते हैं, उसको तो हम चहलकदमी ही कह सकते हैं, जो व्यायाम के अन्तर्गत नहीं आता । स्वास्थ्य के लिए टहलते समय जितना तेज चल सकें, उतना तेज चलना चाहिए । टहलने में हिसाब तेजी का ही नहीं अपितु, दूरी का भी रहता हैं । भ्रमण का व्यायाम वैसे तो सभी को लाभप्रद हैं; परन्तु जिनकी उम्र चालीस वर्ष से अधिक हो गई है या जो दिमागी काम करते है, उनके लिए अत्यन्त उपयोगी है । आजकल शहरवालों ने चलने फिरने का क्रम छोड़ दिया है और मनुष्य की सवारी, पशु की सवारी तथा मशीन की सवारी का आश्रय लेते हैं । यह उनके पैरों की दुर्बलता का सूचक है ।

प्राणायाम (श्वास-व्यायाम)

वृद्धावस्था में यह व्यायाम बहुत महत्त्वपूर्ण होता है । वृद्धावस्था से पहले भी यह व्यायाम किया जा सकता है । स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए प्राणायाम का बहुत महत्त्व है । प्राचीन शास्त्रों में विशेषतः चित्त को एकाग्र करने के लिये योगशास्त्र में प्राणायाम का विशद वर्णन है और हमारे देश में सन्त-महात्मा, योगी जन इसके विशेषज्ञ हैं । साधना के रूप में वे इसका अभ्यास करते हैं । नये

विज्ञान ने भी इसका महत्त्व स्वीकार किया है। घने शहरों में रहने वाले और आठ-दस घण्टा बैठकर काम करनेवाले लोगों के शारीरिक प्रधान अंगों में पूर्ण रूप से प्राणवायु नहीं पहुंचता। पूर्णरूप से प्राणवायु न मिलने से फेफड़े, हृदय (Heart), यकृत् आदि विकृत हो जाते हैं। उनको स्वस्थ रखने के लिए यह प्राणायाम अवश्य करना चाहिए। प्राणायाम करने की कई विधियां हैं। प्राचीन आर्य-विधि किसी विद्वान् साधक से सीखनी चाहिए। नवीन विधि भी किसी योग्य शिक्षक से सीखी जाय, तो अच्छा है। साधारण विधि यह है कि किसी खुले और ऊँचे स्थान पर सीधे तनकर खड़े होकर श्वास-व्यायाम कीजिए। दोनों हाथों को ऊपर उठाते हुए गहरा सांस जितना खींच सकें, उतना खींचिए। सिर के ऊपर दोनों हाथ मिलने तक वह क्रिया समाप्त होनी चाहिए। फिर दोनों हाथों को नीचे लाते हुए श्वास को जितना बाहर निकाल सकें, उतना निकाल देना चाहिए। इसे प्राणायाम न कहकर लम्बा श्वास प्रश्वास भी कह सकते है।

सूर्य–नमस्कार

संसार में प्रचलित व्यायामों में सर्वश्रेष्ठ, सर्वसुलभ और सबके करने योग्य पूर्ण वैज्ञानिक व्यायाम 'सूर्य-नमस्कार' है। इसे बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी कर सकते हैं। आयुर्वेद तो अपने जन्मकाल से ही सूर्य को आरोग्य का देवता मानता आ रहा है। अब यूरोप और अमेरिका के सभी विख्यात पुरुषों ने भी हाइजीनिया की जगह सूर्य को ही आरोग्य का देवता स्वीकार कर लिया है 'फिजिकल कल्चर' मासिक पत्रिका जुलाई १९२६ में डा० गार्डनर रोन ने लिखा है—'वस्त्र-रहित होकर धूप में बैठो। सूर्य वैद्यों तथा औषधियों का राजा है शास्त्र कहता है कि "सूर्य आरोग्य का मूल है"।

सूर्य-नमस्कार-एक ऐसा व्यायाम है, जिससे शारीरिक बल तो बढ़ता ही है, मानसिक उन्नति भी होती है; क्योंकि कसेरु-संकोच (सूर्य-नमस्कार का छठा आसन) तथा कसेरु-विकसन (सूर्य-नमस्कार का सातवाँ आसन) से स्नायु मण्डल का व्यायाम होता है, जिससे स्नायु मण्डल सशक्त होकर मानसिक बल प्राप्त करता है। हिन्दू सूर्य को ईश्वर का प्रतीक मानते हैं एवं उसकी उपासना

द्वारा निश्चित रूप में आध्यात्मिक उन्नति करते हैं। इस प्रकार सूर्य-नमस्कार से सर्वाङ्गीण-शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक-उन्नति होती है। प्रातः काल जब तक सूर्य का रंग लाल रहता है, तब तक उसमें से नील-लोहितातीत (Ultra violet Rays) नाम की किरणें निकलती हैं। आज-कल कृत्रिम नील-लोहितातीत किरणों (Ultra violet Rays) द्वारा कई दुःसाध्य रोगों को दूर किया जाता है फिर प्राकृतिक नील-लोहितातीत किरणों (Ultra violet Rays) में सूर्य नमस्कार व्यायाम किया जाय तो कितना लाभ होगा; यह प्रत्येक विचारशील मनुष्य स्वयं समझ सकता है।

सूर्य-नमस्कार के विषय में औंध के राजा साहब श्री भगवान राव श्रीनिवासरावजी पन्त ने अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है--

"अपनी युवावस्था में मैंने पंजाब के स्व० प्रसिद्ध पहलवान इमामुद्दीन से कुश्ती की शिक्षा प्राप्त की थी। कुश्ती के अलावा जोर जोड़ी, बैठक आदि भी मैं करता था। पुरानी व्यायाम-पद्धति के अनुसार आवश्यक स्निग्ध और भारी चीजें भी मेरे खाने में आने लगी। इन सबके फलस्वरूप मेद बढ़ने लगा।

"सन् १८९८ में मैंने व्यायामपटु सैण्डो के सम्बन्ध में कुछ पुस्तकें पढ़ीं। तुरन्त ही मैंने सैण्डों के व्यायाम का साहित्य मँगवाया और पूरे दस वर्ष तक इस पद्धति से नियमित और अव्याहत व्यायाम किया। उनसे छाती के घेर में तो कुछ फर्क नहीं पड़ा; परन्तु कमर और पेट कुछ कम हुए।"

"आगे चलकर मेरे परम मित्र श्रीमान् राजा गङ्गाधर राव उर्फ बाला साहब पटवर्धन के उदाहरण सहित उपदेश के अनुसार, मैंने सन् १९०८ से नित्य नियम से पद्धतियुक्त और मन्त्रयुक्त सूर्य-नमस्कार करना आरम्भ कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पहले का भारीपन नष्ट हुआ और शरीर हलका हो गया। पेट का घेरा १४ इंच कम हुआ और छाती ४३ इंच ही कायम है। वृत्ति आनन्दपूर्ण एवं उत्साहयुक्त हुई और मालूम होने लगा कि मुझे जवानी की फुर्ती फिर प्राप्त हो गई है। सर्वोत्तम लाभ यह हुआ कि २५ वर्ष से ज्वर आदि विकारों से मैं बिलकुल अलिप्त हूँ। यही नहीं, बल्कि डॉक्टरों के मतानुसार सर्दी-खांसी आदि जो सामान्य विकार अनिवार्य हैं वे मेरे पास नहीं फटके।

"मेरे शरीर-सामर्थ्य एवं रोग प्रतिबन्धक-शक्ति का आश्चर्यकारक प्रमाण यह है कि मैंने चार बार प्लेग का टीका लगवाया, उससे बुखार आना या सूर्य-नमस्कार में रुकावट डालने वाली रीति से शरीर का दुखना आदि बातों का मुझे बिलकुल अनुभव नहीं हुआ।

"आज पच्चीस वर्ष के पूर्ण अनुभव से मैं अधिकारयुक्त वाणी में जोर देकर कहता हूँ कि सब व्यायाम-पद्धतियों में सूर्य नमस्कार-पद्धति अति उत्तम है। परमोत्तम शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य प्राप्त करा देने वाली है तथा किसी भी विकट परिस्थिति में या मानसिक आपत्ति में अचल एकाग्रता एवं मनोधैर्य प्राप्त करा देने वाली है। अतएव मैं निश्चित रूप से कहता हूँ सूर्य नमस्कार पद्धति अन्य सभी व्यायाम-पद्धति से श्रेष्ठ है।"

नित्य प्रति सूर्य-नमस्कार करनेवाले का अनायास ही प्राकृतिक व्यायाम होकर शारीरिक अंग-प्रत्यङ्ग सुदृढ़ व बलवान होता हैं और किसी प्रकार के रोग-शोकादि पास नहीं फटकते। सूर्य भगवान जैसे भौतिक-जगत् में अन्धकार मिटा कर प्रकाश फैलाते है, वैसे ही आन्तरिक-जगत् में भी उनके प्रकाश-प्रसार से अशुभ और असुखमयी अन्धकार की शक्तियों का नाश हो जाता हैं।

सूर्य नमस्कार के विभिन्न आसन

(१) दोनों हाथ मिलाकर, छाती सामने निकाल कर, पीठ सीधी रखनी चाहिए। दोनों पैरों की अँगुलियाँ मिली हुई रहनी चाहिए, तथा पंजों में एक इंच का अन्तर रहना चाहिए। सीधे तनकर खड़े रहना चाहिए। दृष्टि नासिकाग्र के ऊपर रखनी चाहिए।

(२) दोनों हाथों को नीचे लाकर पैरों के सामने रखना चाहिए। इस समय घुटने सामने की ओर न झुकने चाहिए।

(३) दूसरी स्थिति में रखे हुए हाथ तथा बायें पैर को आगे रखकर दाहिना पैर जितना पीछे की ओर ले जा सकें, ले जाना चाहिए। छाती सामने निकालकर दृष्टि ऊपर आकाश की ओर रखनी चाहिए।
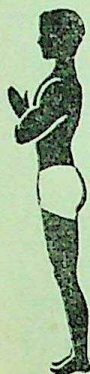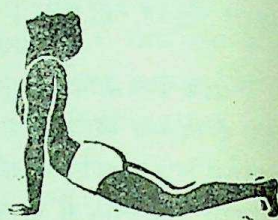
(१) (२) (३)

(४) तीसरे आसन में रखा हुआ बाँया पैर पीछे लाकर दाहिनें पैर के साथ मिलाना चाहिए। हथेली तथा अँगुलियाँ सभी जमीन पर लगी हुई रहनी चाहिए।
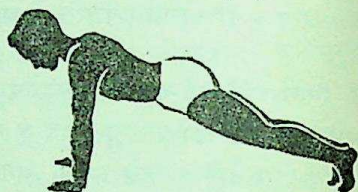
(५) हथेलियाँ अपने स्थान से न हटनी चाहिए तथा मस्तक को जमीन की ओर ले जाते समय दोनों हाथों के बीच से ले आना चाहिए। छाती दोनों हाथों के बीच में जमीन पर लगनी चाहिए तथा मस्तक और घुटने भी जमीन पर लगने चाहिए अर्थात् आठो अंग जमीन का स्पर्श करें।
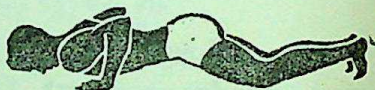
(६) पांचवें आसन की स्थिति में दोनों हाथ पूरी तरह सीधे होने तक जमीन पर लगा हुआ मस्तक तथा छाती धीरे- धीरे ऊपर की ओर लानी चाहिए। तथा दृष्टि आकाश की ओर रखनी चाहिए।

(७) सिर और छाती को हाथों के बीच में से लाते हुए चौथे आसन की दशा में आना चाहिए।

(८) इसमें बाँया पैर पीछे ही रखकर दाहिना पैर दोनों हाथों के बीच में लाना चाहिए।
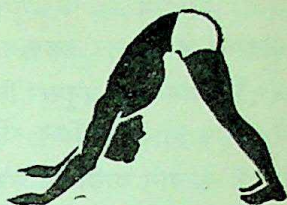
आसन (९) दूसरे आसन की तरह करना चाहिए।

आसन (१०) पहले आसन की तरह करना चाहिए।

हाथ-पैर आगे-पीछे करते समय, पहले नमस्कार में दाहिना, तो दूसरे में बाँया, तीसरे में फिर दाहिना, इस तरह क्रमशः करना चाहिए।

आधुनिक व्यायामशाला

यहाँ पहले जैसे अखाड़े थे, उसी तरह आज-कल बड़े शहरों में व्यायाम शालाएँ खुली हैं। जहाँ सिंगलबार, डबलबार, चेस्ट-एक्स्पेंडर आदि व्यायाम के साधन रहते हैं। इनमें शिक्षक भी रहते हैं। जो व्यायाम की विधिवत् शिक्षा देते हैं। अनुभवों से देखा गया हैं कि शरीर के विकास की दृष्टि से व्यायाम अपने प्राचीन देशी व्यायामों या खेलों से अथिक श्रेष्ठ नहीं हैं तथा खर्चीले भी अधिक हैं। फिर भी इनमें जाकर व्यायाम करना उत्तम हैं। स्वास्थ्य बना रहता है।

व्यायाम के नियम

व्यायाम प्रारम्भ करने के पहले, निम्नलिखित आवश्यक नियमों की जानकारी प्राप्त करना चाहिए। तभी व्यायाम से उत्तम लाभ प्राप्त होता है।

(१) व्यायाम खुले स्थान में करना चाहिए, ताकि शरीर को शुद्ध वायु मिले। अधिक शुद्ध वायु ग्रहण करना ही व्यायाम का उद्देश्य है।

(२) व्यायाम करते समय निःश्वास-उछ्वास की गति बढ़ने पर भी साँस नाक से ही लेनी चाहिए।

(३) व्यायाम शक्ति के अनुसार ही करना चाहिए। शरीर को बेहद थकान घाटे का सौदा होगा।

(४) व्यायाम उम्र के अनुसार करना चाहिए। बालक, युवा और वृद्ध के लिए अवस्था के अनुसार अलग-अलग व्यायाम उपयुक्त हैं।

(५) व्यायाम के अनुसार स्निग्ध और पौष्टिक भोजन करना आवश्यक है। भोजन सुपाच्य हो और अधिक गरिष्ट न हो।

(६) व्यायाम खाली पेट करना चाहिए भोजन के पूर्व या भोजन के काफी देर बाद।

(७) व्यायाम नियमित और निश्चित समय पर करना चाहिए। किसी दिन सबेरे, किसी दिन दोपहर को और किसी दिन शाम को ऐसा अनियमित व्यायाभ नहीं करना चाहिए।

(८) व्यायाम के साथ ब्रह्मचर्य और संयम का होना आवश्यक है।

(९) व्यायाम की मात्रा को क्रमशः बढ़ाना उचित है। सहसा अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए।

(१०) सबसे अन्तिम, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यायाम प्रसन्नचित होकर करना चाहिए।

व्यायाम के सम्बन्ध में प्रसिद्ध महानुभावों के अनुभव

मैं बचपन से दुर्बल रहा हूँ, परन्तु कुछ काल बाद मुझे शारीरिक शक्ति की आवश्यकता प्रतीत हुई। आज मेरी इस महानता का प्रमुख कारण मेरा नियमित भ्रमण और आरोग्य-प्राप्ति का दृढ़ आचरण है। **——महात्मा गांधी**

मानसिक स्वास्थ के लिए शारीरिक स्वास्थ्य आवश्यक है। आसन-व्यायाम द्वारा ही मैंने इतनी आध्यात्मिक उन्नति की है। **—स्वामी रामकृष्ण परमहंस**

मानसिक दुर्बलता को दूर करने के लिए शारीरिक शक्ति का संचय आवश्यक हैं। बिना आरोग्य और शारीरिक बल के पुण्य दर्शन असम्भव है।

——स्वामी विवेकानन्द

शारीरिक उन्नति के बिना जीवन की कोई सफलता नहीं मिल सकती। अतएव हमारे जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य स्वास्थ्य और शक्ति है।

—स्वामी रामतीर्थ

स्वास्थ्य और आरोग्य के सम्बन्ध में मैंने बहुत कुछ अनुभव किया है और निश्चय किया है कि प्रतिदिन व्यायाम करना और उसके साथ वालीबॉल की तरह का कोई खेल अवश्य खेलना चाहिए। **--थ्योडोर रूजवेल्ट**

मैं तो यही समझता हूँ कि मनुष्य को अपने शरीर की मशीनरी दुरुस्त रखने के लिए प्रातःकाल का भ्रमण एक बहुत अच्छा साधन है। **--जे. पी. मॉरगन**

स्वास्थ्य-साधन-२

स्वच्छता (सफाई)

भोजन, विश्राम और ब्रह्मचर्य के तीन मूल आधारों से जो पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होता है, वह व्यायाम द्वारा परिपुष्ट होता है और स्वच्छता के नियम-पालन से उसकी सुरक्षा होती है,। इस प्रकार स्वास्थ्य-साधन में स्वच्छता का अपरिहार्य महत्त्व है। इसलिए हर व्यक्ति को स्वच्छता के विषय में अधिक से अधिक जानकारी रखनी चाहिए और उसको अधिक से अधिक व्यवहार में लाना चाहिए।

स्वच्छता-विषय को दो भागों में बाटकर विचार किया जाता है, एक व्यक्तिगत स्वच्छता (Personal Hygiene) और दूसरा सामूहिक स्वच्छता (Public Hygiene)

व्यक्तिगत स्वच्छता

मानसिक स्वच्छता

जैसे स्वास्थ्य-प्रसंग में सबसे पहले मानसिक स्वास्थ्य पर विचार किया गया वैसे ही स्वच्छता के विषय में भी सर्वप्रथम मानसिक स्वच्छता के विषय में समझना आवश्यक है। मन से स्वच्छ व्यक्ति ही शरीर से स्वच्छ रह सकता है। यदि मन ही साफ-सुथरा नहीं तो अनायास ही ऐसे आचरण होंगे जिनसे अपना शरीर तो गंदा और रोगी बनेगा ही, बुरे आचरणों का प्रभाव सामूहिक स्वास्थ्य पर भी निश्चित पड़ेगा और समूह की हानि होगी।

आयुर्वेद के मतानुसार सर्व रोगों की जड़ प्रज्ञापराध होता है। वह प्रज्ञा-पराध मानसिक अस्वच्छता के कारण ही होता है। मन स्वच्छ रहे तो बुद्धि में विकृति होगी ही नहीं।

मानसिक स्वच्छता का अर्थ है, हमारा मन और आत्मा दोष-रहित हों, स्वच्छ, सन्तोषी, श्रमशील, सचेत और निर्विकार हों। अर्थात् काम, क्रोध, मद, लोभ, ईर्ष्या आदि विकारों से मन विकृत न हो। ऐसा होने से मनुष्य स्वाभाविक ही उच्च चरित्र का धनी, आदर्श सफलता वाला, प्रतिष्ठित, सम्पन्न, स्वस्थ और जीवन की हर दिशा में यशस्वी होता है।

मानसिक-स्वच्छता के साधन रूप में प्राचीन भारतीय परम्पराएँ ही अधिक श्रेयस्कर सिद्ध होती हैं। संध्यावन्दन, अग्निहोत्र, ध्यान, जप, साधना और स्वाध्याय आदि क्रियाओं से मानसिक स्वच्छता होती है।

सन्ध्यावन्दन से मनुष्य का मानसिक विश्वास जाग्रत होता हैं और उसमें धैर्य एवं संयम की भावना का उदय होता है। अग्निहोत्र से बाहर के वातावरण की शुद्धि तो होती ही है, भीतर एक आत्मिक तेज प्रस्फुटित होता है। ध्यान और जप से मन में एकाग्रता बढ़ती है तथा मन शक्तिशाली एवं सहिष्णु बनता है। आधुनिक लोग पूर्ण एवं निश्चित सफलता के हेतु कान्सेन्ट्रेशन (Concentration) नाम के जिस अभ्यास को उपयोगी मानते हैं वह भारतीय विधि से ध्यान करने में सहज सुलभ होती है। स्वाध्याय से अज्ञान दूर होता है और मनुष्य अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक होता है। इसी प्रकार दान के अभ्यास से मनुष्य में दूसरे के प्रति क्रियात्मकरूप से सहानुभूति, संवेदना एवं सेवाभाव की स्थापना होती है और संग्रहीत द्रव्य की शुद्धि एवं सदुपयोग होता है।

इन सबसे मनुष्य में 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना बलवती होकर, अन्यों को भी अपने समान ही समझने की सुबुद्धि आती है और वह सहजगति से सदाचारानुगामी बनता है। आधुनिक काल में साधन-बहुलता की आकांक्षा और निःसीम काम-इच्छाओं की दुष्प्रवृत्तिवश जो नैतिकहीनता, विभ्रम एवं उन्माद आदि विकार बढ़ रहे हैं, उनके निराकरण हेतु भी मानसिक स्वच्छता के उपरोक्त उपाय सर्वथा उपयोगी हो सकते हैं।

उपासना

मन को स्वच्छ और सन्तोषी बनाने के लिए उपासना सबसे उत्तम साधन है। उससे मन के सम्पूर्ण विकार धुलते हैं और मनुष्य की शक्ति का विकास होता हैं।

युवावस्था में चंचलतावश ऐसी धारणा बन जाती हैं कि उपासना केवल ढोंग है और उससे कुछ नहीं होता, यह धारणा सर्वथा असत्य है। मन की अस्वच्छता का सबसे प्रधान कारण नि:सीम कामना है। कामना की पूर्ति न हो तो क्रोध बढ़ता है और उसकी पूर्ति हो जावे तो लोभ बढ़ता है। ये दोनों मन को अस्वच्छ करनेवाले हैं। ऐसी स्थिति में कामना को सीमित और संतुलित रखना ही हितकर है। धन और काम-वासना को सीमा में रखना ही धर्म का प्रधान लक्षण है। यह धर्म धारणा और उपासना से प्राप्त होता है। उपासना उच्चजीवन का सुदृढ़ आधार है।

उपासना के लिए भावना में आस्तिकता होनी चाहिए। कर्म का तदनुरूप फल मिलता है। परलोक है और पुनर्जन्म भी है—इस विश्वास को ही आस्तिकता कहा है। कर्म-फल को ही लीजिए, मनुष्य कितनी ही गुप्त-योजना पूर्वक बुरा काम करे, अन्ततः उसका बुरा फल उसको किसी न किसी प्रकार भोगना ही पड़ता है। अदालत से एक बार छूट भी जावे, अपराधी को उसकी अन्तरात्मा अवश्य दण्ड देती है, क्योंकि प्रत्येक बुरा कार्य अन्तरात्मा के विरुद्ध ही होता है। आस्तिकता में विश्वास रखनेवाला उपासक अन्तरात्मा के विरुद्ध कार्य नहीं करता, काम और लोभ को सीमित रखता है, इसीलिए उसका मन सदा निर्मल और वह सदा प्रसन्न रहता है।

संसार के सभी वर्ग आज यह स्वीकार करते हैं कि शारीरिक बल से भी अधिक श्रेष्ठ मनोबल होता है। वह मनोबल उपासना से निश्चित बढ़ता है। पाश्चात्य लोग जो वैज्ञानिक ढंग से शारीरिक एवं मानसिक शक्ति बढ़ाते हैं, वह कल्याणकर न होकर अहंभाव पूर्ण होती है। मनुष्यकृत शक्ति से उठने वालों में निहित स्वार्थ के विभिन्न वर्ग बन जाते हैं जो ईर्ष्यावश एक दूसरे को नष्ट करने में अधिक सक्रिय होते हैं। वैज्ञानिक शक्ति-अर्जन का उद्देश्य ही दूसरे को नष्ट करना हो गया है। वैसी शक्ति से मन निर्मल होने की अपेक्षा, अधिकाधिक विकारग्रस्त ही होता है। इसलिए अध्यात्म-साधन से शक्ति-संचय अधिक श्रेयष्कर है। हमारे देश में शक्ति-संचय का लक्ष्य, अशक्तों की रक्षा

और सबका भला करना रहता है। स्वयं को और दूसरों को समभाव से उठाने की सहअस्तित्वभावना आस्तिकता और उपासना से ही मिलती है।

आयुर्वेद की शिक्षा मन पर अधिकार करने की प्रेरणा देती है। हमें मन के अनुकूल नहीं बल्कि मन को हमारी इच्छा से चलना चाहिए। ऐसे अभ्यास में मन को बांधना असंभव नहीं है। उसमें कठिनाई अवश्य होती है। संसार में महत्वपूर्ण जीवन बनाने के लिए यह आवश्यक भी है। वह कठिनाई ऐसी भी नहीं जिससे शरीर या मन को दुःख भोगना पड़े। केवल नियमित अभ्यास होना चाहिए। वह अभ्यास उपासना क्रम के साथ सुगमता से प्राप्त हो सकता है।

उपासना मनमाने ढंग से यथार्थ फलवाली नहीं हो सकती। उसके लिए नियमित समय, नियमित स्थान, नियमित साधन-विधि, नियमित भोजन आदि को अपनाना वांछनीय होता है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई सभी धर्मवाले इस सत्य को स्वीकार करते हैं कि कोई एक उत्कृष्ट शक्ति अवश्य है; जो संसार के अणु-अणु में व्याप्त है, जो हमें गति देती है, हमारे प्रत्येक कर्म को देखती है और हमारे कर्म का यथोचित फल हमें देती है। वही परमशक्ति परमात्मा, जिसकी कृपा के बिना हमारा जीवन आनन्दमय नहीं हो सकता। यह मान्यता ही अध्यात्म है। मन को निर्मल और सशक्त बनाने के लिए इसी अध्यात्म भावना के साथ आस्तिकता पूर्वक परमात्मा के जिस स्वरूप को भी आप मानते हैं उसकी नियमित उपासना अवश्य करें। उससे मन के सम्पूर्ण विकार दूर होंगे। मानसिक स्वच्छता का इससे उत्तम दूसरा कोई साधन नहीं है।

शारीरिक स्वच्छता

शरीरांगों की सफाई को ही आधुनिक विज्ञान में व्यक्तिगत स्वच्छता (Personal Hygiene) कहा जाता है। इस प्रसंग को भी हमें दो भागों में बांटना चाहिए। **एक भीतरी सफाई, दूसरी बाहरी सफाई।**

शरीर की भीतरी सफाई

मनुष्य-शरीर के भीतरी अवयवों की स्वच्छता ही भीतरी सफाई है। यह मानव-शरीर एक ऐंजिन के समान है। कोयले और पानी से ऐंजिन को शक्ति

प्राप्त होती है किन्तु उसमें सारहीन पदार्थ-राख को नियमित रूप से बाहर निकालना पड़ता हैं। यदि उस सारहीन पदार्थ को ऐंजिन में ही पड़ा रहने दें तो ऐंजिन बहुत जल्द खराब हो जायगा। इसी प्रकार मनुष्य जो अन्न-पानी खाता-पीता है उसका सार-तत्व खून बनकर शरीर के विभिन्न अवयवों में पहुँच जाता है और निःसार पदार्थ पेट में पड़ा रह जाता हैं। शरीर के भीतर से निःसार मल पदार्थ को मल-मूत्र-पसीना आदि के रूप में बाहर निकलना आवश्यक होता हैं। यदि इन सारहीन पदार्थों को बाहर न निकाला जाय तो शरीर रूपी ऐंजिन खराब हो जायगा और कुछ ही दिनों के भीतर जीवन-गाड़ी का चलना रुक जायगा।

शरीर की स्वचालित मशीन अपना हर काम नियमित ढंग से स्वयं करती है। यदि उसकी गति में बाधा न पड़े तो वह अपनी सफाई अपने आप कर देती है। परन्तु आजकल हर मनुष्य को अपने कार्य उद्योग और व्यस्त समय की सुविधा के अधींन ही शरीर को चलाना पड़ता है, यही कारण है कि भीतरी सफाई से सम्बन्धित शारीरिक क्रियाओं के विषय में भिन्न-भिन्न मनुष्यों के विभिन्न समय और प्रकार चल पड़े हैं। अतएव इनकी जानकारी बहुत महत्वपूर्ण हैं।

शरीर की मशीन अपने भीतरी अंग-प्रत्यगों की सफाई का काम अपने आप करती ही है, इसलिए हमें क्या करना? ऐसा सोचना उचित नहीं। हमारी अनियमितताओं के कारण, या रोगी होने पर शरीर की मशीन अपना नियमित काम विधिवत् नहीं कर पाती जब की हम शरीर को उसकी निश्चित अवस्था और नियमित गति से नहीं चलने देते, और अपनी सुविधा से ही चलाते हैं, तो हमारा यह भी कर्तव्य हो जाता है कि उसकी भीतरी-बाहरी सफाई के लिए हम उचित उपक्रम करके उसकी सहायता करें।

हमारी चेष्टा से जिन भीतरी शरीरांगों की सफाई हो सकती हैं, उसमें आंतें (मलाशय) गुर्दे, और फेफड़े मुख्य हैं। इन अंगों की सफाई का ध्यान न रखने से शरीर को भयंकर हानि और रोग का होना निश्चित है।

मल त्याग

हम जो कुछ खाते-पीते है, वह पहले आमाशय में पहुँचता है, फिर छोटी आंत

में और उसके बाद बड़ी आँत (पक्वाशय) में। यहाँ तक पहुँचने के पूर्व ही भोजन का सारभाग प्रचूषित हो चुकता है। बड़ी आँत में केवल सारहीन पदार्थ ही पहुँचता है। उस सारहीन पदार्थ में मल और विषैले तत्त्व होते हैं जिनके नित्य-नियमित शरीर के बाहर निकलने से आँतों की सफाई होती है।

शौच क्रिया (पाखाना जाना) आँतों की सफाई के लिए सबसे सहज और प्राकृतिक तरीका है। इसलिए बचपन से ही नियमित रूप से नियमित समय पर पाखाना जाने की आदत डालनी चाहिए।

दिन-रात में कम से कम दो बार पाखाना अवश्य जाना चाहिए। यदि तीन बार भी जावें तो कोई हानि नहीं। मल का रोकना और दो-दो दिन तक पाखाना न जाने की आदत बहुत ही हानिकारक है। मल यदि चौबीस घण्टे से अधिक आँतों में रह जावे तो उसके सड़ने से जो विषैले द्रव्य और गैस आदि उत्पन्न होते हैं, वह रक्त में मिलकर अनेक भयंकर रोग उत्पन्न करते हैं।

शौच का समय नियमित होना चाहिए। कभी सुबह, कभी दोपहर, कभी शाम और कभी रात को शौच जाना-ऐसी प्रवृत्ति हानिकारक है। किसी कारण नियत समय पर पाखाना न उतरता हो, तो भीं शौच जाना चाहिए कुछ दिन नियमित समय पाखाना जाते रहने से उसी समय शौच होने लगता है। ऐसा कुछ दिन करने से अभ्यास हो जायगा और नियत समय पाखाना उतरने लगेगा। छोटे बच्चों को आरम्भ से ही ऐसी आदत डालनी चाहिए।

यदि एक ही बार शौच जाना हो तो उसके लिए प्रात:काल का समय सर्वोत्तम है। विद्यार्थियों को विशेष कर सुबह सोकर उठते ही सबसे पहले शौच जाना चाहिए। दो बार जाना पड़े तो सुबह-शाम जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त जब भी शौच जाने की इच्छा हो तो उसे दबाना नहीं चाहिए। नियत समय पर या इच्छा होने पर शौच न जाने से कोष्ठबद्धता, कब्जियत, मंदाग्नि और गैस बनना आदि रोग हो जाया करते हैं। कब्ज होने से जीभ पर मैला फफूंदन छा जाता है, भूख मर जाती है, सिर में दर्द होने लगता है, स्वभाव रूखा-चिड़चिड़ा और खिन्न हो जाता है। तब मन का उत्साह मर जाता है।

पाखाना फिरने के लिये पुराने लोग खुले मैदान को पसन्द करते थे। अब गाँवों तक में जगह नहीं रही इसलिये नये ढंग से पाखाना बनाना आवश्यक हो गया है। नये ढंग में फ्लश का संडास सर्वश्रेष्ठ होता हैं। जहाँ फ्लश के पानी बहने के लिये जमी-दस्त गटर न हो वहां दो हौज बनाने से दुर्गन्ध रहित शौचालय बन जाता है। पुराने कस्बे या शहरों के शौचालय तो नरक का दृश्य उपस्थित करते हैं। ये रोगाणुओं के भन्डार होते हैं। भयानक दुर्गन्ध सारे घर का वातावरण दुषित कर देती है। यूरोप अमेरिका में तो सोने के स्थान से भी स्वच्छ शौचालय बनाते हैं। इसलिये वे लोग स्वस्थ भी हैं। अब भारतवासी भी स्वास्थ्य पर विचार करके स्वच्छ शौचालय बनाने लगे है। पुराने और दुर्गन्धयुक्त शौचालय में फिनाइल ब्लीचिंग पाउडर, चूना या राख नियमित रूप से छिड़क कर सफाई की जाय तो वे भी अच्छें रह सकते हैं। देहातों में स्त्रियों को पाखाना फिरने का बहुत कष्ट है अब सभी जगह ग्राम-पंचायते हो गयी हैं उनको प्रत्येक गांव में इनके लिये उचित प्रबन्ध अवश्य करना चाहिये स्वच्छ पेय जल तथा स्वच्छ शौचालय स्वास्थ्य के लिये परमावश्यक हैं।

संडास हों या मैदान, शौच का स्थान ऐसा होना चाहिये जिससे मन सुस्थिर और सहज प्रसन्न रह सके। मन की सुस्थिर और एकाग्र अवस्था में ही शौचक्रिया ठीक प्रकार से होती है। आजकल के नये पढ़े-लिखे लोगों को शौच में बैठकर कुछ पढ़ने या सोचने की आदत पड़ गई है। यह आदत अत्यन्त बुरी है। शौच के समय सारा ध्यान केवल मल त्यागने की ओर ही केन्द्रित रहना चाहिए, तभी पाखाना साफ होता है।

शौच क्रिया के लिए पाश्चात्य सभ्यता का कमोड वाला ढंग हमारे लिए अच्छा नहीं है। खुड्डी पर उकड़ुं बैठकर ही पाखाना करना चाहिए। इससे जांघों का जोर पेट और मलाशय पर पड़ता हैं, उस दबाव से मल शीघ्र और आसानी से उतर जाता है।

मल त्यागते समय बहुत जोर नहीं लगाना चाहिए। बार-बार काँखने से आँतों पर अनुचित भार पड़ता है, गुदा को भी हानि होती है और बवासीर आदि रोग उपन्न होते हैं। मल त्यागते समय पेट को भीतरी ओर संकुचित करने से आसानी के मल बाहर निकल जाता हैं।

जिन्हें प्रातःकाल उठते ही दस्त साफ न होता हो, उन्हे बिस्तर से उठते ही तत्काल खूब कुल्ला करके प्रकृति के अनुकूल ठंडा या गर्म पानी, एक गिलास पीना चाहिए। थोड़ा टहलना चाहिए। पानी से आँतें साफ होंगी, मल पर दबाव पड़ेगा और मल की खुश्की (कठोरता) दूर होगी। टहलने से शौच का वेग उत्पन्न होकर दस्त साफ हो जायगा।

खुश्की और कोष्टबद्धता से पीड़ित लोगों को भोजन में चिकनाई के पदार्थ अत्यावश्यक होने पर लेने चाहिए और बीच-बीच में एनिमा लेकर आँतो को साफ करते रहना चाहिए। भोजन में चोकर सहित आटे की रोटी और हरे शाकों की उबली हुई सब्जी लेने से दस्त साफ होता है। पपीता, अमरुद, नीबू आदि फलों का सेवन भी कब्जियत दूर कर दस्त साफ लाता है। साल्ट लेने से स्वाभाविक हाजमा खराब हो जाता है। अधिक कब्ज रहता हो तो ईसबगोल या त्रिफला को प्रकृति के अनुसार जो अनुकूल हो उनका सेवन करना चाहिये। रात को सोते समय एक चम्मच शुद्ध कास्टर आयल (एक तैल) लेने से पुरानी कोष्ठबद्धता दूर होती है।

मूत्र-त्याग

शरीर के भीतरी अंगो की सफाई का दूसरा साधन मूत्र-त्याग है। पिया हुआ पानी, शरीर के भीतरी अंगों को धोकर तथा उनके मैल और विषों को बटोर कर मूत्र के रूप में बाहर निकाल देता है। मूत्र का सम्बन्ध गुर्दों से होता है। मूत्र जब गुर्दों में पहुँचकर छनता है तब वे उसका सारहीन पदार्थ और मैल अलग निकालते हैं। मैल और शरीर के जलीय अंश का योग ही मूत्र होता है। खाये-पिये पदार्थों का आवश्यक तरल अंश गुर्दों द्वारा छनकर वस्ति में एकत्र होता है और समय-समय पर मूत्र मार्ग द्वारा बाहर निकलता है। उचित मात्रा में पेशाब होते रहने से शरीर का जहर और रक्त के विजातीय तत्व बाहर निकलते हैं।

चौबीस घण्टों में लगभग डेढ़ सेर पेशाब उतरना चाहिए। इससे अधिक और बार-बार थोड़ी-थोड़ी देर में भी पेशाब उतरना हानिकर एवं रोग का लक्षण है। इसी प्रकार बहुत कम पेशाब होना भी उचित नहीं।

स्वस्थ अवस्था में पेशाब का रंग हल्के पीले रंग का होता है। यह जब हल्दी जैसा पीला, लाल या मटमैला हो तो विकार समझना चाहिए। पेशाब कम होता हो और उसका रंग अस्वाभाविक हो तो अधिक मात्रा में पानी पीने से पेशाब साफ और उचित परिणाम में होने लगता है। प्रतिदिन लगभग ढाई किलो पानी पीने से उचित पेशाब उतरकर गुर्दों और बस्ति की नियमित सफाई होती रहतीं है।

पसीना

भीतर सफाई का तीसरा प्राकृतिक साधन पसीना है। रक्त सारे शरीर में घूमकर जो मैल एवं विषैले पदार्थ इकट्ठा करता है, उसको बाहर निकलने का दोहरा प्रबंध है। एक तो गुर्दों में छनकर रक्त का मैल पेशाब द्वारा बाहर निकलता है दूसरा पसीना द्वारा। सम्पूर्ण शरीर में बहुत छोटे-छोटे छिद्र बने हैं जिनमें रोयें कहे जाने वाले महीन बाल उगे हैं। इन छोटे छिद्रों से सदा ही रक्त का विजातीय तत्त्व और शरीर का मैल पसीना के रूप में बाहर निकलता रहता है।

पसीना निकलने से शरीर के भीतर की अनुचित गर्मी बाहर निकल जाती है। इसी कारण ज्वर में पसीना आ जाने पर उतर जाता है या हल्का हो जाता है।

ग्रीष्म ऋतु में तो खूब पसीना निकलता है, जिसे हम प्रत्यक्ष देखते हैं। पसीना जाड़ों में भी निकलता है, परन्तु इतना कम कि उसे देख या अनुभव नहीं कर पाते। बहुत अधिक मात्रा में पसीना निकलना शरीर को कुछ अशक्त करता है।

पसीना द्वारा रक्त और शरीर की भीतरी सफाई निर्बाध होती रहे इसके लिए रोम छिद्रों को सदा साफ रखना चाहिए जिससे त्वचा पर मैल की कोई तह न रहे, रोम छिद्र खुले रहें और पसीना निकलने में रुकावट न हो।

स्वाभाविक रूप से उचित मात्रा में पसीना न निकलता हो तो व्यायाम या अन्य खेल-कूद अथवा शारीरिक परिश्रम करके पसीना निकलने का उपक्रम करना चाहिए। शारीरिक श्रम में रक्त में गर्मी आती है और वह गर्मी मैल-सहित पसीना द्वारा शरीर के बाहर निकलती है।

श्वास-प्रश्वास

भीतरी सफाई का चौथा साधन श्वास-प्रश्वास है। इससे बहुत अन्तःशुद्धि होती है। फेफड़ों की सफाई का साधन श्वास-प्रश्वास ही तो है। शरीर से बाहर निकलने वा ी प्रश्वास की हवा के साथ प्रांगार द्विजारेय (कार्बन डाई-आक्साइड) और फेफड़ों में एकमात्र रक्त का विषाक्त मैल अहर्निश बाहर निकलता है।

जल्दी-जल्दी और गहरी सांस लेने से फेफड़ों और रक्त की अच्छी सफाई होती है। खुली हवा में दीर्घ श्वास लेने के अतिरिक्त प्राणायाम द्वारा सांस का व्यायाम भी इसके लिए उपयोगी है।

शरीर की बाहरी सफाई

शरीर के भीतरी अंगों की सफाई तो शरीर की स्वचालित मशीन स्वयं भी कर लेती है, परन्तु बाहरी अंग-प्रत्यंगों की सफाई की पूरी जिम्मेदारी केवल मात्र स्वयं हम पर होती है।

शरीर के जो भाग अधिकांश खुले रहते हैं उन पर वायु के साथ उड़नेवाले धूलिकण और अन्य मैल अहर्निश जमते रहते हैं। उन्हें साफ न करने से शरीर का रोगी होना निश्चित है। कुछ अंग तो इतने महत्त्वपूर्ण है कि उनकी सफाई और सुरक्षा के लिए विशेष रूप से तत्पर रहना आवश्यक हैं। जिनमें आँख, जीभ, कान, नाक, दाँत और गुप्त इन्द्रियाँ विशिष्ट रहती हैं।

आँखों की सफाई और सुरक्षा

आँखें हमारे शरीर का अत्यन्त ही मूल्यवान अंग है। उनके बिना जीवन सूना और व्यर्थ हो जाता है। इसलिए आँखों की सफाई और सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

रात को सोने कीं स्थिति में आँखों का मैल कीचड़ के रूप में उभर कर पलकों की बरोनियों में इकट्ठा हो जाता है। इसको साफ करने के लिए नित्य प्रातः आँखों को शुद्ध और ठंडे जल से धोना उत्तम तरीका है। दातीन के समय भोजन के पूर्व या बाद में जब भी मुंह धोया जाय तब साथ में आँखें भी धोना चाहिए। आंखों पर ठंडे जल के छींटे मारना और स्नान के उपरान्त स्वच्छ एवं गीले वस्त्र से कुछ देर आँखों को सहलाना हितकर होता है।

आँखों की सफाई के लिए सुरमा या काजल का उपयोग भी अच्छा होता है। यह भीतर का मैल काटकर बाहर निकालने के साथ ही आँखों को शीतलता देते हैं। इनको सुबह-शाम ठंडक के समय ही लगाना चाहिए। बाजारू और अविश्वस्त सुरमा नहीं लगाना चाहिए। काजल तो घर में ही बन जाता है। इसी प्रकार त्रिफला के पानी या फिटकरी मिश्रित गुलाब जल से आंखों को साफ धोकर साफ करना भी अच्छा घरेलू प्रयोग है।

हमारा देश उष्ण जलवायु वाला है। यहाँ सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं, इसलिए गर्मी अधिक होती है। आँख सदा ही तरलता में रहने वाला बहुत कोमल अंग है। गर्मी और सूर्य की तेज किरणे आँखों की स्वाभाविक तरलता को सोखती है। इसी कारण आँखों के रोग अधिकतर गर्मी के मौसम में ही होते हैं। इसलिए कभी भी यदि सामने की ओर सूर्य हो तो आँखों पर छाया रखनी चाहिए। विशेष कर ग्रीष्म ऋतु में हल्के रंग का चश्मा या शैला हैट (टोप) पहनकर चलना चाहिए। गर्मी की गर्म हवायें, तेज धूप और धूल आँखों को सबसे अधिक खराब करते हैं। इन्ही दिनों प्रायः आँखे आती हैं और धूप एवं धूलिकणों के प्रभाव से उनमें दाने या रोहे हो जाया करते हैं। आई आँख की चिकित्सा बहुत सावधानी से करनी चाहिए अन्यथा असावधानी से आँख छोटी हो जाती है, दृष्टि-शक्ति कम हो जाती है या अन्य कोई स्थायी रोग हो जाता है अथवा सदा के लिए आँख मारी जाती है।

किसी वस्तु को देर तक या बिना पलक झपके देखना आँखें खराब करता है। सिनेमा देखना इसलिए हानिकर हैं। आँखें गड़ाकर कोई दूर की या महीन चीज देखने से आँखों पर खिचाव पड़ता है और हानि होती है। हर दशा में पुस्तक को एक फुट दूर रखकर पढ़ना चाहिए और बहुत बारीक अक्षरों की लिखावट को बड़ा दिखने वाले कांच की सहायता के बिना नहीं पढ़ना चाहिए।

रेल या मोटर में चलते समय जब कभी आँख में धूल या कोयले का कण चला जावें, तो तत्काल ही आँखों को मलना नहीं चाहिए। ऐसा करने से आँख में घाव हो जाने का भय रहता है। जब ऐसा हो जाय तब पलकों को बार-बार खोलने मूंदने से भीतर गया कण आंसुओं के साथ स्वयमेव बाहर निकल आता

है। न निकलें तो धैर्यपूर्वक गिलास में पानी भर कर, उसमें आँख डुबोकर पलक खोदने-मूंनने से आँख धुल जाती है और कचरा या धूलिकण बाहर निकल जाता है। माता का दूध डालने से यही काम अच्छा होता है।

आँखों की सुरक्षा के लिए भोजन में पर्याप्त पौष्टिक तत्त्व विशेषत: घी लेना आवश्यक है। पौष्टिक तत्त्वों के अभाव से ही आँखों की दृष्टि कमजोर होती है। मस्तक में शीतल प्रभाववाले तेलों की मालिश, नित्य प्रात: नाक से पानी पीना, नियत समय पर रात को सोना और पूरी नींद लेकर प्रात:काल उठना–यह नेत्रों के स्वास्थ्य के लिए उपयोगी उपक्रम है। रात्रि में पढ़ने से और अधिक सिनेमा देखने से तथा अधिक धूम्रपान से निश्चित आँखें खराब होती है। अतएव, बिड़ी-तम्बाकू नहीं पीना चाहिए। अधिक धूम्रपान तथा अतिसूक्ष्म अक्षरों के पढने से भी आँखें खराब होती हैं।

दाँतों की सफाई और सुरक्षा

नित्य प्रात: भलीभाँति दातुन करना, दाँतों की सफाई का सबसे उत्तम साधन है। नीम, बबूल,, मौलश्री और कचनार की ताजी दातौन की कूंची अच्छी बनती है जो दाँतों को मसूड़ों पर कोई आघात नहीं करती और दाँतों की संधियों में से मैल निकाल कर खूब सफाई करती है। नीम की दातौन कीटाणु-नाशक होती है और बबूल की दातौन में मसूढ़ों को चिपकाने एवं दाँतों की जड़ों को मजबूत करनेवाला टॅनिक एसिड नामक एक विशेष पदार्थ होता है।

शहरों में तो अब दातुन का जैसे रिवाज ही उठ गया है। उसके अभाव में पेस्ट या पाउडर का प्रयोग भी बुरा नहीं। बहुत कड़े बालों का ब्रुश मसूड़ों पर आघात कर सकता है, इसलिए सामान्य कड़े बालों का ऐसा ब्रुश उपयोग करना चाहिए, जिनकी बनावट अर्द्ध चन्द्राकार हो जो दंतपंक्ति को सीधा-स्पर्श करे। ब्रश को दाँतों पर सीधा रगड़कर ऊपर-नीचे की ओर घुमाकर प्रयोग करना चाहिए। उपयोग के पूर्व ब्रश को खौलते पानी में डाल लेना चाहिए जिससे उसमें बसे कीटाणु मर जावें। किसी दूसरे के उपयोग किये गये ब्रश से कदापि दाँत साफ नहीं करना चाहिए।

मँहगे पेस्ट और पाउडरों के स्थान पर अच्छे घरेलु मंजन भी बनाये जा

सकते हैं। सबसे साधारण प्रयोग यह है कि स्वच्छ लकड़ी के कोयले को खूब महीन पीसकर कपड़छन करके उसमें बारीक पीसा नमक मिलाकर मंजन के उपयोग में लाया जा सकता है।

नाश्ता या भोजनोपरान्त अथवा जब कभी भी कुछ खावें तब दाँतों को अंगुली से रगड़कर पानी से भरपूर कुल्ला करना चाहिए। अन्न या खाद्य पदार्थ के कण दाँतों की संधियों में रह जाते हैं तो वे धीरे-धीरे सड़कर दाँतों में विकार उत्पन्न करते हैं और अन्त में कीड़ा लगने का अथवा पायरिया (पीव आने) जैसे भयंकर रोगों के कारण बन जाते हैं।

दाँतों की अच्छाई-बुराई पर पूरे शरीर का स्वास्थ्य निर्भर करता है। यदि दाँत नहीं होंगे तो भोजन चबाया न जा सकेगा, न लार बनेगी, इस कारण खाया हुआ भोजन शीघ्र पचने योग्य अवस्था में पेट को नहीं मिलेगा। दाँतों और पेट का बहुत निकटतम सम्बन्ध है। जिसका पेट खराब होगा, उसके दाँत निश्चित रूप से खराब हो जावेंगे। इसी प्रकार जिसके दाँत रोगी होंगे उसकी पाचनक्रिया अवश्य खराब हो जावेगी। दाँत के रोगी कब्जियत, बदहजमी, भूख की कमी आदि उदर रोगों के मरीज हो जाया करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि स्वास्थ्य और सुखी जीवन के लिए दाँतों को स्वच्छ और मजबूत रखना कितना अनिवार्य है।

आजकल दाँत कमजोर होने का कारण यह भी है कि केवल नर्म चीजें खाते रहने के अभ्यास से दाँतों का व्यायाम बन्द हो गया है। यदा कदा चना चबेना खाकर दाँतों को उचित व्यायाम देते रहने से उनकी कार्यशक्ति बढ़ती है और वे मजबूत भी रहते हैं।

अधिक पान खाना दाँतों को हानि पहुँचाता है; इसी प्रकार बर्फ मिश्रित बहुत ठंडा या बहुत गर्म पानी भी दाँतों की जड़ों को कमजोर बनाता है। यदि दाँत कमजोर हो जावें, हिलते या दुखते हों तो जब तक बिलकुल ही विवशता न हो जावें, तब तक दाँतों को नहीं उखड़वाना चाहिए। कीड़ा लगने से दाँत में पोल हो जाने पर लोग उसमें चाँदी आदि धातु भरवा लेते हैं, यह प्रयोग बुरा नहीं है। दाँतों में मवाद आता हो तो दिन में दो-तीन बार मुख्यतया खाने के

उपरान्त सरसों के तेल में बारीक पिसा नमक मिलाकर दाँतों पर मलना चाहिए। पीनेवाली देशी तम्बाखू वा बारीक चूर्ण दाँतों पर मलने से भी पायरिया से बचाव होता है।

जीभ की सफाई

रात में सोते समय शरीर के भीतर का काफी मैल जीभ पर आकर जम जाता है; यह मैल खाद्य पदार्थ के साथ फिर भीतर चला जाये तो निश्चित ही बड़ी हानि करता है। इसलिए सुबह उठते ही खूब कुल्ला करके जीभ को साफ करना चाहिए। दातौन के समय दातौन को चीर कर बनाई फांक से अथवा धातु की बनी जीभी से खरोंच कर जीभ का मैल निकाल देना चाहिए।

जीभ हमारे भोजन के स्वाद का परीक्षक और रुचि का आश्रय है। जीभ की स्वच्छता का, भोजन में रुचि और पाचन स्थिति से गहरा सम्बन्ध है। इसलिए सदा ही जीभ को साफ रखने पर ध्यान देना चाहिए।

नाक-कान की सफाई

शरीर के भीतर का कुछ मैल प्रश्वास के साथ भाप रूप में बाहर आता है जो प्रायः कफ के रूप में नथुनों में एकत्र हो जाता है। उसको साफ न किया जाय तो श्वास-प्रश्वास की क्रिया में बाधा होती है। इसलिए नित्य प्रातः ठंडे पानी से नाक की सफाई करनी चाहिए।

नाक में जमे मैल को अंगुली से नहीं खरोचना चाहिए, बल्कि पानी से गीला करके आसानी से निकाल लेना चाहिए। नाक में अंगुली डालने की आदत बहुत बुरी होती है।

नाक के भीतर के बालों को तोड़ना या काटना नहीं चाहिए क्योंकि नाक द्वारा भीतर जानेवाली श्वास की हवा इन बालों से ही छनकर भींतर जाती है। ये बाल हवा के साथ किसी मैल को भीतर जाने से रोकते हैं।

नाक की सफाई और सुरक्षा में लापरवाही करने से पीनस रोग हो जाया करता है। तेज गंध वाले पदार्थ, चाहे वे सुगन्धित हो या दुर्गन्धित, उन्हें सूंघने से नाक को हानि होती हैं। सरसों का तेल सूंघना हितकर होता है और यदाकदा नस्य लेना भी नाक को स्वस्थ रखता है।

कानों की सफाई आवश्यक है। कान की मंझली नली के पास जो पीलापन होता है, वह साफ न होने से; जमकर और सूखकर कुछ पीले-से रंग का मैल बन जाता है। यदा-कदा सुदर्शन की पत्ती का रस या लहसुन पकाया अथवा सादा तेल गुनगुना करके कान में डालना हितकर होता है। हाइड्रोजन पराक्साइड नामक तरल द्रव्य की बूंदे कानों में डालने से उनका मैल उफन कर बाहर आ जाता है।

बाजारु कान साफ करने वालों से कभी कान साफ नहीं कराना चाहिए। ये लोग कानों को बहुत खराब करते हैं। कोई नुकीली चीज या कड़ी सींक डालकर कान कुरेदने से कानों के पर्दों में घाव होने का भय रहता है।

यदि कान बहने लगे या पीब पड़ जाय तो शीघ्र ही योग्य चिकित्सक से इलाज कराना चाहिए अन्यथा वह स्थायी रोग हो जाता है और सदा के लिए बहरापन गले पड़ जाता है।

नाखूनों की सफाई

हाथों और पैरों की अंगुलियों के नाखून थोड़े-थोड़े नित्य बढ़ते हैं। समय-समय पर उन्हें काटते रहना आवश्यक है। हाथ की अंगुलियों के बढ़े नाखूनों की तली (दरारों) में जो मैल भर जाता है, वह बड़ा विषाक्त होता है और भोजन के साथ भीतर पहुँचकर उसमें भरे कीटाणु पेट में कीड़ों को जन्म देते हैं; ऐसा वैज्ञानिकों का स्पष्ट मत है। मैल भरे हुए नाखुनों से बदन खुजलाने से खुजली, फोड़ा-फुंसी और अन्य चर्म रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए नाखूनों को अवश्य काटते रहना चाहिए और अंगुलियों के सिरों को सदा साफ रखना चाहिए।

केश (बालों) की सफाई

हाथ की हथेली और पैर के तलवों को छोड़कर मनुष्य के सारे शरीर में बाल होते हैं। सिर और दाढ़ी-मूंछ के अलावा सब जगह के बाल मुलायम और छोटे होते हैं, जिन्हें हम रोंये कहते हैं।

विशेषकर सिर के बड़े बालों को सदा साफ-सुथरा और स्निग्ध रखना आवश्यक है। यदा-कदा आँवला, सीकाकाई या रीठा के पानी से बाल धोये जावें

तो उनकी जड़ों का मैल साफ होता रहता है।

सिर धोने के लिए गर्म पानी का उपयोग नहीं करना चाहिए। सामान्य साबुनों का अति प्रयोग भी बालों को हानि पहुँचाता है। बढ़िया किस्म का ग्लिसरिन युक्त साबुन का उपयोग किया जा सकता है; उससे अन्य साबुनों की भाँति बालों की जड़ों की स्निग्धता नष्ट नहीं होती। बालों की जड़ों को तरल एवं स्निग्ध रखने के लिये ही बालों में तेल डाला जाता है। तेज खुशबू वाले बने हुए तेल बालों को हानि पहुँचाते हैं। सादा तिल, सरसों या नारियल का शुद्ध और ताजा तेल ही बालों में डालना चाहिए। महिलाओं के लिए नारियल का तेल उपयोगी होता है। बालों की नियमित सफाई न करने से उसमें जूं या लीख उत्पन्न हो जाते हैं और बालों की जड़ों के छिद्र बन्द हो जाते हैं, जिससे मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

त्वचा की सफाई

त्वचा की सफाई का अर्थ है सम्पूर्ण बाह्य शरीर की सफाई। इसके लिए नियमित स्नान सर्वोपरि साधन है। मौसम के अनुसार दिन में एक-दो बार अवश्य स्नान करना चाहिए। स्नान के समय गीले-खरदरे कपड़े या रूयेदार तौलिया से रगड़कर त्वचा की अच्छी सफाई होती है। स्नान का उद्देश्य प्रधानतः त्वचा की सफाई ही है।

त्वचा में करोड़ों की संख्या में जो रोम छिद्र हैं, वे पसीने के कारण सदा-तरल रहते हैं, बाहर से धूलिकण पसीनें में मिलकर मैल के रूप में रोमछिद्रों पर जम जाते हैं। जिससे रोमछिन्द्र बन्द हो जाने के कारण भीतर से पसीना बाहर निकलना रुक जाता है। इसका स्वास्थ्य पर बहुत दुःखद प्रभाव पड़ता है। इसलिए स्नान द्वारा इन रोमछिद्रों को साफ और खुला रखना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

स्नान के लिए स्वच्छ और ठंडा जल सर्वथा उपयुक्त होता है। शीतल स्नान से त्वचा और रोमछिद्रों की सफाई के अतिरिक्त शरीर में एकदम नई और सहज स्फूर्ति आती है तथा मन प्रसन्न हो जाता है। सर्द हवा से डरना उचित हैं, लेकिन सर्द (ठंडे) पानी से डरना उचित नहीं, वह तो बलप्रद होता

है। जाड़ों की ऋतु में आवश्यक होने पर गुनगुने जल से भी नहाया जा सकता है। परन्तु मस्तक पर गर्म जल नहीं डालना चाहिए। उससे मस्तिष्क के स्नायुओं पर हानिकर प्रभाव पड़ता है।

स्वस्थ व्यक्तियों के लिए तो प्रतिदिन स्नान करना आवश्यक है ही; रोगियों के लिए भी स्थिति के अनुसार स्नान करना रोग-मुक्ति में सहायक होता है। रोगी को गुनगुने जल से ही स्नान करना चाहिए। यदि रोगी स्नान करने लायक स्थिति में न हो तो गीले कपड़े से उसके बदन को रगड़कर त्वचा की सफाई अवश्य कर देनी चाहिए।

स्नान के पूर्व शरीर पर भली प्रकार तैल मालिश करना बड़ा उपयोगी होता है। उससे त्वचा की स्निग्धता सुरक्षित रहती है और तौलिया से अंगों को पोछने पर त्वचा का मैल भी शीघ्र साफ होता है।

दो-चार लोटा पानी बदन पर डाल लेने को स्नान करना नहीं कहा जा सकता। घर में ही स्नान करें तो काफी पानी से बदन को खूब मल-मल कर नहाना चाहिए। नदी या स्वच्छ तालाब का स्नान बढ़िया होता है। तैरना एक अच्छी कला और उपयोगी कसरत है। इसलिए नदी या तालाब में स्नान करने से त्वचा की भरपूर सफाई के अतिरिक्त व्यायाम भी हो जाता है।

परन्तु गन्दे और कीटाणु युक्त पानी के तालाब में भूलकर भी स्नान नहीं करना चाहिए। उससे निश्चित चर्म रोग होते हैं। और तैरते समय थोड़ा भी कीटाणु युक्त पानी पेट में चला जाय तो भयंकर उदर रोगों का कारण बनता है। अपरिचित नदी में भी स्नान नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार बावडी में स्नान करना अहितकर होता है।

नहाने में साबुन का उपयोग न करना ही अच्छा है क्योंकि उससे त्वचा की स्वाभाविक स्निग्धता नष्ट होती है।

भोजन के तुरन्त बाद अथवा व्यायाम के तत्काल पश्चात स्नान नहीं करना चाहिए। साधारणत: किसी भी परिश्रम के काम के अनन्तर एकाध घण्टा रुककर ही स्नान करना चाहिए।

स्नान करने के लिए प्राय: हर ऋतु में प्रात:काल का ही समय सर्वोपरि

होता है। अधिक शीत में जब प्रातः स्नान कठिन हो, तब दोपहर में भी स्नान किया जा सकता है और हवा के झोंके से बचाना चाहिये। स्नान का स्थान निर्वात हो तो उत्तम है।

सामूहिक स्वच्छता
(Public Hygiene)

पूर्ण स्वस्थ रहने के लिए जिस प्रकार व्यक्तिगत स्वच्छता आवश्यक है, उसी प्रकार सामूहिक स्वच्छता भी अनिवार्य होती है। सामूहिक स्वच्छता का अर्थ है। घर की सफाई, मुहल्ले की सफाई, सार्वजनिक स्थानों की सफाई और गांव या नगर की सफाई।

यदि हम केवल अपनी शारीरिक स्वच्छता का ध्यान रखें और सामूहिक स्वच्छता के लिए कोई उपक्रम न करें तो उसका कुप्रभाव भी हमारे निज के स्वास्थ्य पर पड़े बिना नहीं रह सकता। सामूहिक अस्वच्छता के दूषित वातावरण से निजी शारीरिक स्वच्छता के सारे प्रयत्न धूल में मिल जाते हैं।

घर की सफाई

केवल कमरों के फर्श को जल्दी-जल्दी झाड़कर, कूड़ा इकट्ठा करके दरवाजे के बाहर गली या सड़क पर फेंक देने को ही घर की सफाई नहीं कहा जा सकता। मकान के कोने-कोने को झाड़कर, दीवालों या छतों के किनारों में लगनेवाले जाले-घोंसे को भी नित्य हटाना चाहिए। सदा एक ही स्थान पर रक्खी रहनेवाली आलमारी, सन्दूक, सोफा, मेज-कुर्सी और पलंग आदि चीजों के नीचे से भी नित्य कूड़ा निकालना चाहिए।

घर की सफाई का सबसे अच्छा समय प्रातःकाल है। सुबह ही मकान के सब दरवाजे और खिड़कियाँ खोलकर झाड़ू लगाना चाहिए, फिर कपड़े के झाड़न से, घर की सभी वस्तुये और दरवाजे तथा खिड़कियो के किवाड़ो को पोछ-फटकार कर साफ करना चाहिए।

ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों को नित्य फटकार कर तह करके एक स्थान पर रखना चाहिए। विशेषकर वर्षाऋतु में बिछौनो को थोड़ा धूप दिखाना अच्छा

होता है। पलंग-चारपाई को भी सप्ताह में एक बार धूल झाड़कर धूप में रखने से खटमल आदि का डर नहीं रहता।

घर की स्वच्छता और सफाई के लिए प्रत्येक वस्तु को एक निश्चित स्थान पर व्यवस्थित रखने का अभ्यास बड़ा सहायक होता है। घर में इधर-उधर बिखरी चीजें देखने में बुरी लगती हैं और उनसे निश्चित गंदगी बढ़ती है तथा यथास्थान व्यवस्थित रक्खी चीजों की सफाई में भी असुविधा होती है। इसलिए घर की हर चीज को झाड़-पोंछकर आकर्षक ढंग से एक निश्चित स्थान पर ही रखना चाहिए। हर कमरे में आवश्यक और उपयोगी सामान ही रखना चाहिए। बहुत प्रकार की चीजों से कमरे को भर देने से सजावट नहीं होती, उलटी उससे सफाई में असुविधा होती और कमरा कबाड़खाना-सा बन जाता है। इसी प्रकार दीवारों पर भी अधिक चित्रादि नहीं टाँगना चाहिए।

कमरों का फर्श यदि पक्का हो तो उसको नित्य पानी से धोना चाहिए। कच्चा हो तो गोबर से लीपते रहना चाहिए। गोबर में थोड़ा गोमूत्र मिलाने से वह कीटाणुनाशक भी हो जाता है।

रसोई बनाने-खाने की जगह विशेष रूप से बहुत साफ-सुथरी रखना आवश्यक है। धुएँ और जाले-धोसे से भरे रसोई घर में, इधर-उधर बिखरे बर्तन, खाने की वस्तुयें या सामग्री, रसोई घर को गंदा और असुन्दर बनाती है। ऐसे स्थान का भोजन आनन्ददायक और स्वास्थ्यप्रद नहीं होता। इसलिए रसोई घर को नित्य पानी से धो देना चाहिए। खाने-पीने की वस्तुओं को रखने के लिए रसोई घर में जालीदार आलमारी अवश्य रखना चाहिए; जिससे उन पर मक्खी न लगे। साफ बर्तन और जूठे बर्तन, एक दूसरों से दूर अलग रखना चाहिए।

घर के सन्डास की भरपूर सफाई के प्रति, अक्सर लोग लापरवाह रहते हैं; यह बड़ी नादानी है। संडास में शौच करने के बाद हर मर्तबा मल के ऊपर चूना या थोड़ी राख डाल देनी चाहिए। दैनिक सुबह पाखाना साफ कराके संडास को फिनाईल मिले पानी से धुलवा डालना चाहिए।

घर के आँगन या छतों पर कहीं ही कूड़ा-कर्कट नहीं रहना चाहिए। आँगन

में गन्दे पानी का कीचड़ रहना बड़ा हानिकारक होता है। नाली और परनाले को पानी से धोकर साफ करते रहना चाहिए।

यदा-कदा विसंक्रमण के लिए घर में राल या गूगल का धुआँ करते रहना चाहिए और वर्ष में कम-से-कम एक बार पूरे मकान की पुताई अवश्य करानी चाहिए।

घर की बनावट

घर ऐसे स्थान पर बनाना चाहिए जहाँ भूमि कुछ ऊँची हो, जिससे घर में सीलन का प्रभाव न हो। गंदी और घनी बस्ती, पशुओं के इकट्ठे होने की जगह, श्मशान, ईटों या चूने का भट्ठा, पानी का डबरा या नाले के निकट मकान नहीं बनवाना चाहिए।

घर बनाते समय उसकी कुर्सी भूमि से दो-तीन फीट ऊँची रखनी चाहिए; जिससे घर में पानी न भर सके और नालियों में काफी ढलाव रखा जा सके। प्रत्येक दीवार की मोटाई साधारणतः डेढ़ फीट और ऊँचाई लगभग दस फीट होनी चाहिए। गर्म देशो में कमरों को ठंडा रखने के लिए मकान ऊँचा और दो मंजिला बनाना अधिक उपयुक्त होता है। कमरों में हवा के खूब आवागमन हेतु कई खिड़की और दरवाजे अवश्य रखने चाहिए। हर कमरे में कम से कम दो खिड़की आमने-सामने बनानी चाहिए। इसे क्रास वेण्टीलेशन कहते हैं।

रसोई का कमरा इस ढंग का बनाना चाहिए कि उसमें धुआँ निकलने का विशेष प्रबन्ध हो, जिससे, उसकी दीवारें, बर्तन और अन्य सामग्री धुयें में खराब न हो। रसोई का धुआं घरके अन्य कमरों तक भी न पहुँचे, इसलिए वह सोने-बैठने के कमरों से अलग बनाया जा सके तो अच्छा रहता है।

घर का संडास रसोई घर और सोने-बैठने के कमरों से सर्वथा अलग और पूर्ण वैज्ञानिक ढंग से बना होना चाहिए। सुविधा पूर्वक भरपूर सफाई हो इसलिए संडास चौड़ा, हवादार और प्रकाशयुक्त बनाना चाहिए।

रहने के घर में ही पशुशाला कदापि नहीं रखनी चाहिए। प्रायः गाँव वाले ऐसा ही करते हैं जो अत्यन्त अस्वास्थ्यकर हैं। पशुओं के रहने की जगह मकान के बाहर और थोड़ी दूर पर हो तो हितकर होता है।

घर हर दशा में ऐसा होना चाहिए कि उसमें पर्याप्त सूर्य का प्रकाश और भरपूर हवा आती हो। घर में खुला आँगन अवश्य बनाना चाहिए जो सर्वथा समतल हो। आँगन और सभी कमरों का फर्श यथासंभव पक्का, धोने योग्य ढालू बनाना चाहिए और उसमें पानी निकालने के लिए नाली अवश्य होनी चाहिए।

घर के गंदले पानी और मल-मूत्र की नियमित सफाई के लिए कमरों और आँगन में छोटी-छोटी नालियाँ बनाकर उसका सम्बन्ध घर की प्रधान नाली से जोड़ देना चाहिए। हर नाली और घर के बाहर तक जानेवाला परनाला ऐसा ढालू बनाना चाहिए कि उसमें कहीं भी पानी या कीचड़ जमा न हो सके और गंदला पानी सर्राटे से बाहर निकल कर सार्वजनिक नाली में मिल जावे।

घर का कूड़ा-कर्कट और जूठन आदि डालने के लिए घर में एक नियत स्थान बनाना चाहिए जो ढका रक्खा जा सके। इसी प्रकार पानी के रखने के लिए भी एक छायादार स्थान नियत रखना चाहिए जो सर्वदा स्वच्छ रहता हो।

इस प्रकार व्यवस्थित बना हुआ घर रहने के लिए किराये पर भी लेना चाहिए, जिसमें भरपूर सफाई की सुविधा हो।

मुहल्ले की सफाई

गली-मुहल्ले में कूड़ा-कर्कट, कीचड़ और अन्य गंदी वस्तुओं की सड़ाँद से सारे क्षेत्र का वायु-मण्डल दूषित हो जाता है, जिससे वहाँ रहनेवाले हर व्यक्ति का रोग-ग्रस्त और अस्वस्थ होना संभव है। इसलिए घर की सफाई के साथ ही मुहल्ले की गली या सड़क की गंदगी रोकने के लिए हर व्यक्ति को सावधान रहना जरूरी है।

घरों से नित्य निकलने वाला कूड़ा-कचरा, कागज और कपड़े की चिन्धियां, राख, सड़ी शाक-सब्जी, सड़ा या बासी अन्न, रसोईघरका कचरा, जानवरों की लीद या खराब घास आदि को घर के बाहर ही गली या सड़क पर न डालकर सदा ही बस्ती के बाहर या मुहल्ले के लिए निश्चित कूड़ा घर में ही डालना चाहिए।

प्रायः सामान्य घरों के लोग अपने बच्चों को घर के बाहर ही गली या सड़क पर नाली के किनारे टट्टी फिराते हैं। यह आचरण सामूहिक स्वच्छता के लिए अभिशाप है। इससे बच्चों की आदत और स्वास्थ्य भी खराब होता है, और गली-मुहल्ले की गंदगी बढ़ती है। जिससे रोग फैलने में बहुत मदद मिलती है। मुहल्ले में चाहे जहाँ मल-मूत्र करना, पीक डालना, जूठे दोने-पत्ते या कूड़ा डालना आदि सामूहिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर होता है और यह एक अपराध भी है।

नगरों में म्युनिसिपैलिटियों की ओर से गली, सड़क के कूड़ा और नालियों की सफाई का प्रबन्ध रहता है। घरों का कूड़ा-कर्कट एक स्थान पर एकत्र करने के लिए कूड़ा घर बने रहते हैं या स्थान-स्थान पर लोहे के बड़े-बड़े ढोल रखे रहते हैं। कूड़ा कचरा इनमें ही डालना चाहिए और स्वच्छता के लिए सभी सरकारी नियम-आदेशों का, कर्त्तव्य मानकर पालन करना चाहिए। यदि सफाई के लिए नियुक्त सरकारी कर्मचारी सफाई में ढील करें तो उन्हें एक दिन भी क्षमा नहीं करना चाहिये और उच्च अधिकारियों तक उनकी लिखित शिकायत अवश्य पहुँचानी चाहिए।

गाँव की सफाई

स्वच्छता के विषय में व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही दृष्टियों से हमारे गाँव बहुत पिछड़े हुए हैं--यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। यदि ग्रामवासी भाई अपनी अज्ञानता और लापरवाही त्याग कर स्वच्छता पर ध्यान देने लगें तो प्राकृतिक सुखों से सम्पन्न स्वर्ग के समान ग्रामों का जीवन नारकीय न बने।

गाँवों में घर के कूड़ा-कचरा के अतिरिक्त पशुओं के मल-मूत्र और घास-पात की गंदगी भी बहुत बढ़ती है। सबसे बड़ा दोष यह है कि गाँव में लोग रहने के मकान में ही अपने पशु रखते हैं। एक तो वैसे गाँवों के घर छोटे-छोटे, प्रकाशहीन और पर्याप्त हवादार न होने से अस्वास्थ्यकर होते हैं, उस पर घरों में ही पशुओं का गोबर, घास, कूड़ा का ढेर रहने से सदा ही घरों का वातावरण दूषित एवं रोगों का केन्द्र बना रहता है।

राष्ट्रीय सरकार ने अब ग्रामों के विकास पर ध्यान दिया है और वहाँ

स्वच्छता का प्रबन्ध ग्राम-पंचायतों को सौंप दिया है। पंचायतों को प्राथमिक प्रबन्ध यह करना चाहिए कि पशुशालायें रहने के घरों से सर्वथा अलग बनाई जावें। ऐसे गड्ढे बस्ती से दूर बनाये जावें जिसमें पशुओं का मल-मूत्र, घास-पात और घरों का कूड़ा-कचरा इकट्ठा किया जा सके। ऐसा करने से ग्रामों में घरों और गलियों की गंदगी कम होगी और पशुओं का मल-मूत्र गड्ढो में रखने से बढ़िया कम्पोस्ट खाद तैयार होगा जो खेती के काम में आकर अधिक अन्न उत्पादन में सहायक होगा और कृत्रिम खाद की आवश्यकता न रहेगी।

ग्रामींण भाई शौच करने के लिए गाँवो के बाहर जाते हैं, फिर भी खेतो में चाहे जहाँ मलत्याग करने की उनकी आदत अच्छी नहीं। ग्रामो में महात्मा गान्धीजी द्वारा सुझाई गई शौच-व्यवस्था बड़ी उपयोगी हो सकती है। गाँव से बाहर किसी स्थान पर एक फीट चौड़ी और ६-७ फीट गहरी एक लम्बी नाली बनाई जाय। उस पर ऊपर बैठने लायक एक पटिया लगा हो, जिसमें बीचो बीच गोलाकार छेद हो, जिससे त्यागा हुआ मल नाली में गिरा करे। एक व्यक्ति के बैठने लायक स्थान के चारों ओर पर्दे के लिए जूट या चटाई की बाड़ बनाई जा सकतीं है। शौच करनेवाला इसमें मल त्याग के अनन्तर, मल पर नाली का गड्ढा भर जावे, तब शौचालय की पटिया को आगे बढ़ाकर नया संडास बना लिया जाय। ऐसा करने से मल उस नाली में एकत्र होता जायगा, जो बदबू या गंदगी नहीं फैलायेगा और कुछ दिनों बाद नाली में एकत्र मल से बहुत बढ़िया खाद तैयार हो जायगा। ऐसी नाली सामूहिक रूप से सारे गाँव के लिए एक स्थान पर बनाई जा सकती है, अथवा एक-एक परिवार अपने लिए पृथक-पृथक भी बना सकते हैं।

नगर की सफाई

नगरों में नालियों, सड़कों, अन्य सार्वजनिक स्थानों और संडासों के मैले की सफाई का प्रबन्ध म्युनिसिपैलिटी आदि स्थानिक संस्थाओं के स्वास्थ्य विभाग के नियन्त्रण में रहता है। ये विभाग विभिन्न विधियों से सफाई की व्यवस्था करते हैं।

नगर में गंदगी उत्पन्न करने के साधन मुख्यत: मनुष्यों और पशुओं का मल-मूत्र, घरों का कुड़ा-कचरा, रसोई घर, नहाने-धोने, कारखानों और वर्षा का पानी इत्यादि होते हैं। पानी आदि को बस्ती से बाहर करने के लिए सफाई विभाग, सारे नगर में छोटी-बड़ी नालियों का जल बिछा देता है, जिससे नगर का सारा गंदा पानी बस्ती के बाहर किसी नदी या जलागार में छोड़ दिया जाता है। संडास के मैले को साफ करने की दो पद्धति नागरिक क्षेत्र में हैं। एक जमादार द्वारा राख डालकर मैला उठाना, दूसरा संडास में खूब पानी डालकर मैले को नाली में बहा देना। राख डालकर मैला उठाना अच्छा है, और मैले को नाली में बहाना बहुत बुरा है यदि खुड्डी वाला संडास हो तो, शौच के लिए पानी मल स्थान से आगे खसक कर नाली में लेना चाहिए, जिससे मल पर पानी न गिरे और वह संडास के बाहर न बहे। मल पर राख डालते रहना चाहिए जिससे वह सूखा रहे और बदबू न फैले। नगर पालिका द्वारा मैल और अन्य कूड़ा-कर्कट की सफाई के लिए मुख्यत: तीन साधन काम में लाये जाते है;

१—गाड़ियों या हाथ ठेलों से बस्ती का कूड़ा और मैला एकत्र कर बस्ती के बाहर फेंक देना, जला देना या पृथक्-पृथक गड्ढों में दबाकर खाद बनाना।

२—मैल को सुखाकर फेंक देना या गाड़ देना।

३—मल-मूत्र को, भूमि के नीचे बनी नालियों द्वारा पानी की सहायता से बाहर नगर के निकट बहनेवाली नदियों में छोड़ देना।

इनमें पहली दो पद्धतियों से, जहाँ फ्लश की टट्टियाँ नहीं होती, वहाँ नगर का मल-मूत्र साफ किया जाता है; परन्तु जहाँ बड़े नगरों में फ्लश के संडास होते हैं वहाँ अधिकांश तीसरी 'जल बहाऊ' पद्धति से काम लिया जाता है।

बड़े नगरों में भूमि के नीचे मैले मिश्रित पानी और पीने के जल के बड़े-बड़े नल प्रायः पास ही पड़े रहते हैं। एक से पीने का पानी आता है दूसरे से मैला पानी जाता है। कभी-कभी यदि यह दोनों नल कहीं फूट जाते हैं या संधो में होकर मैला पानी, पीने के जल वाले नल में मिश्रित हो जाता है तो पीने का जल दूषित हो जाता है और उससे जनता रोगग्रस्त हो जाती है। इसलिए

'जल बहाऊ' पद्धति में सुधार अपेक्षित है ।

मैले का पानी नदी में छोड़ने की अपेक्षा यह अधिक हितकर एवं उपयोगी हो सकता है कि उसको नगर से बाहर दूर ले जाकर खेतों में छोड़ा जाय अथवा भूमितल में एकत्र करके सिंचाई के काम में लाया जावे। जहाँ खेतों में वह मैला मिश्रित पानी छोड़ा जाय या मैले खाद डाले जावें, वहाँ की भूमि ऊपर से कड़ी और भीतर से पोली नहीं होनी चाहिए।

जहाँ गाड़ियों या ठेलों द्वारा मैला और कूड़ा ढोने के साधन हैं वहाँ के निवासियों को घरों का कूड़ा-कचरा दिन में एक बार ही निकालना चाहिए और उस समय के पूर्व घर का कचरा कूड़ादान में डाल देना चाहिए जब कि म्युनिसिपैलिटी की कूड़ा गाड़ी उसको उठाने आती हो। नगर में स्वच्छता के मामले में हर नागरिक को सफाई विभाग के साथ पूरा सहयोग करना चाहिए।

अभी यह स्थिति है कि हम लोग खुद ही गन्दगी फैलाते हैं। गाँव के चारों तरफ टट्टी पड़ी रहती है, स्त्रियाँ लज्जावश अन्धेरे में शौच करती है। गाँव घर के समीप ही जाती है; बच्चे तो घर के सामने ही टट्टी फिरने के आदि हो जाते हैं। इस तरह गन्दगी के परकोट में रहने वाले रोगी और दुःखी न हों तो आश्चर्य करना चाहिए।

सार्वजनिक स्थानों की स्वच्छता

सार्वजनिक उपयोग में आनेवाले स्थान, जैसे-नदी तालाब के घाट, व्यायाम तथा खेल के मैदान, हाट-मेलों की जगह कुआँ-बावड़ी, बाग-बगीचे, पब्लिक पार्क, चौपाल और देवस्थान, वट या पीपल का वृक्ष---ये सब ऐसी जगह हैं जहाँ बहुत आदमियों के समूह एकत्र हुआ करते हैं। इसलिए इन स्थानों की गन्दगी का कुप्रभाव सामूहिक स्वास्थ्य पर बहुत पड़ता है।

खेल कूद या अन्य कामों के उपयोग में आनेवाले खुले मैदानों, नदियों या तालाबों के किनारे अथवा बाग या पार्कों में यत्र-तत्र कहीं भी शौच करने, पेशाब करने, थूकने या पीक डालने की आदत अत्यन्त निकृष्ट होती है। इसी प्रकार नदी या तालाबों में रोगी व्यक्तियों के मल-मूत्र सने कपड़े धोना या जानवरों को

नहलाना सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। कभी भी किसी को नदी या तालाब के किनारे मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए। जहां बहाव न हो और पानी थमा हो, वहाँ शौच के हाथ और पात्र भी पानी में नहीं धोना चाहिए। नदी, तालाब के किनारों की गंदगी और मैला, जब वर्षा होती है तब प्रवाह के साथ नदी, तालाब में ही सिमट आता है और उससे पानी में भयंकर रोगों के कीटाणु उत्पन्न होते हैं, जो अनेक संक्रामक रोग फैलाते हैं।

प्रायः जो लोग शाम को पब्लिक पार्कों में घूमने जाते हैं, वे चाट, पकौड़ी खाकर जूठे पत्ते वहीं आस-पास फेंक देते हैं। मूंगफली के छिलके, कागज की चिन्दियाँ, बीड़ी-सिगरेट के टुकड़े आदि भी यत्र-तत्र चाहे जहां डाल देते हैं, जिससे पार्कों में बहुत गंदगी फैलती हैं।

सार्वजनिक स्थानों की नियमित सफाई वा कोई विशेष प्रबन्ध नहीं होता। ऐसी दशा में वहाँ गंदगी उत्पन्न करना अपराध और पाप करने के समान है। स्वास्थ्य विभाग को प्रेरित करके सार्वजनिक स्थानों की सफाई करना चाहिए। यदा-कदा सामूहिक श्रमदान करके इन स्थानों को स्वयं साफ करने का प्रयास करना भी बहुत अच्छा है।

स्वास्थ्य-साधन—३

सदाचार

जिस प्रकार आहार-निद्रा-ब्रह्मचर्य पूर्ण स्वास्थ्य के आधार और व्यायाम तथा स्वच्छता उनके साधन हैं; उसी प्रकार सदाचार अर्थात् अच्छे आचरण-पूर्ण स्वास्थ्य के आधारों एवं साधनों के भी साधन हैं।

सदाचार से हमारे दैनिक जीवन में नियम-संयम का ऐसा अभ्यास बनता है, जिससे स्वास्थ्य के मूल आधारों को सहज ही प्राप्त किया जा सकता है; और इन्द्रियों पर अधिकार होता है जिससे इच्छायें निःसीम नहीं होने पातीं। फिर कोई ऐसी भूल-चूक (प्रज्ञापराध) होती ही नहीं, जिससे स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन हो और रोग का कारण बने।

'आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्' अर्थात् जो बात या व्यवहार

स्वयं को बुरा लगता है, वह दूसरे को भी बुरा लगना निश्चित है अतएव स्वयं के प्रति होने पर खटकने वाला आचरण-व्यवहार दूसरों के प्रति हमें कदापि नहीं करना चाहिए। ऐसा दृढ़ निश्चय रखने वाला व्यक्ति सबसे बड़ा सदाचारी होता है और स्वास्थ्य की दृष्टि से जीवन पर्यन्त समृद्ध रहता है।

यहाँ हम आयुर्वेद के सद्वृत्त में निर्देशित सदाचार की कुछ व्यावहारिक बातों का उल्लेख कर रहे हैं; इनका पालन करनेवाला व्यक्ति तन-मन से कभी दुःखी नहीं रहता और पूर्ण स्वास्थ्य पाकर दीर्घजीवी होता है।

उत्तम आचरण के नियम

१. अपने मान्य धर्म और कुलपरम्परा का अवश्य ही पालन करना चाहिए।

२. कभी किसी से कड़वे बोल, झूठी बात और असम्बद्ध (बे मतलब के) वचन नहीं बोलना चाहिए।

३. शरीर, मन और वाणी से कभी दूसरे के प्रति घृणा नहीं करनी चाहिए और दूसरे को पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिए।

४. हिंसा, चोरी और चुगली की कुप्रवृत्ति से सदा दूर रहना चाहिए।

५. माता, पिता और गुरु तथा आयु, विद्या-बुद्धि या पद में अपने से बड़ों और अपने शुभचिंतकों की भक्तिपूर्वक सेवा करनी चाहिए। अशुभ चाहने वालों की भी विपत्ति में यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए।

६. रोगी, पीड़ित, शोकग्रस्त और बेकार प्राणी की यथा-सामर्थ्य सहायता करनी चाहिए। किसी भी प्रकार की सहायता चाहने वाले को यथाशक्ति विमुख न करके, उसको अपमानित, झूठा कलंकित नहीं करना चाहिए।

७. सम्पत्ति और विपत्ति में एक समान धैर्यशाली रहना चाहिए।

८. 'हेतौ ईर्ष्येत् फले न तु' के अनुसार दूसरे की सफलता देखकर उसकी उन्नति से डाह न करके जिन कारणों से वह उन्नत हुआ हो उन कारणों में स्पर्द्धा करनी चाहिए।

९. केवल अपने को ही सुखी रखने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। और सदा ही अपने साथ सबके सुखी होने की कामना रखनी चाहिए।

१०. अकारण किसी को अपना शत्रु अथवा अपने को किसी का शत्रु नहीं समझना चाहिए।

११. अपने प्रति स्वामी की अप्रीति या अपमान को किसी पर प्रकट नहीं करना चाहिए।

१२. सब पर आँख मींच कर विश्वास नहीं करना चाहिए और नहीं सब पर अकारण अविश्वास करना चाहिए।

१३. दूसरे का आशय समझ कर शक्ति भर उसके अनुकूल आचरण करके दूसरे को प्रसन्न रखने का प्रयास करना चाहिए। यही दूसरे का स्नेह पाने की कुंजी हैं।

१४. अधिक बोलने से शक्ति क्षीण और मन दूषित होता हैं, अतएव सदा ही थोड़ा, मधुर और समयानुकूल बोलना चाहिए।

१५. न तो इन्द्रियों के वश में होना चाहिए और न ही उसका एकदम कठिन दमन ही करना चाहिए। केवल मोक्ष की इच्छा करके जीवन को धर्म, अर्थ और काम से एकदम शून्य नहीं बनाना चाहिए।

१६. मन को सदा कोमल और दयापूर्ण रखना चाहिए। स्वभाव को सहिष्णु और क्षमाशील बनाना चाहिए। 'स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तं इति सद्व्रतं' के अनुसार परार्थ भी अपना स्वार्थ (कर्त्तव्य) मानकर करना चाहिए।

१७. नित्य इस बात का विचार करना चाहिए कि आज का दिन बेकार बर्बाद तो नहीं हुआ या कोई बुरा काम तो हमने नहीं किया ? पढ़ने-लिखने, नौकरी या व्यवसाय का जो भी काम करते हैं, उसको हमने पूरी ईमानदारी से किया है या नहीं ? कहीं भूल ज्ञात होने पर उसको सुधारना कर्त्तव्य हो जाता है।

१८. लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, मोह और पर-निन्दा की इच्छा—ये जब भी मन में आवें तब शान्तचित्त होकर तत्काल इनका निवारण करना चाहिए।

१९. अपान वायु, शौच (पाखाना) की हाजत, पेशाब की हाजत, छींक जम्भाई, आँसू, कै (उल्टी), खांसी, दमा, थकावट, प्यास, भूख, नींद और

मैथुन की इच्छा--इनका जब वेग हो तो उसको रोकना नहीं चाहिए ।

२०. मुंह, नाक, नाखून, अंगुली या शरीर के अन्य किसी भी अंग से व्यर्थ का बाजा नहीं बजाना चाहिए ।

२१. सिर पर शक्ति से विशेष बोझा नहीं उठाना चाहिए । **'प्राक् श्रमाद् विनिवर्तयेत्'** के अनुसार शारीरिक श्रम, बात-चीत, या मानसिक सोच-विचार, थकावट आने के पहले ही बन्द कर देना चाहिए ।

२२. अपरिचित नदी में नहीं तैरना चाहिए, आग की लपटों के निकट नहीं जाना चाहिए और संदिग्ध पशु या वाहन की सवारी नहीं करना चाहिए ।

२३. अकारण नाक खुजलाने, दाँतों से नाखून काटने या अंगुली दबानें, अथवा पैर की अंगुलियों से जमीन खोंटने की बुरी आदतें त्याग देनी चाहिए ।

२४. भंग, अफीम, गांजा, बीडी, सिगरेट और शराब इत्यादि मादक द्रव्यों के सेवन की आदत कदापि नहीं डालनी चाहिए ।

२५. हँसना, छींकना और जम्भाई लेना--ये तीनों करते समय मुंह नहीं बन्द रखना चाहिए ।

२६. सूर्य की ओर, अत्यन्त महीन वस्तु, तेज और स्थिर प्रकाश तथा अप्रिय दृश्य की ओर आंख गडाकर नहीं देखना चाहिए ।

२७. नाक, कान, आंख और गुदा आदि मल निकलने वाले अंगों की दैनिक सफाई करनी चाहिए ।

२८. नियमित रूप से कम से कम हर पांचवें दिन हजामत बनानी चाहिए ।

२९. सदा ही साफसुथरे, बिना भडकदार, सादा कपड़े पहनना चाहिए । आवश्यक होने पर सुगन्धित द्रव्यों (इत्र तैलादि) का कम ही उपयोग करना चाहिए कड़ी और तेज सुगंध का कभी उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि घ्राणेन्द्रिय पर कडी सुगन्ध का कुप्रभाव भी दुर्गन्ध के समान ही होता है ।

अनायास ही मनुष्य के स्वभाव में कुछ बुरी आदतों का समावेश हो जाता है जो व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकर होती है । नीचे लिखी आदतों को प्रयत्नपूर्वक त्यागना चाहिए ।

१. सोते समय कपड़े से मुंह ढकना या कमरे की सब खिड़कियाँ दरवाजे एकदम बन्द करके सोना।

२. निश्चित स्थान छोडकर चाहे जहां थूक देना, पीक डालना, नाक साफ करना या पेशाब करना अथवा कुआँ, तालाब या नदी के निकट शौच करना या पानी को गन्दा करना।

३. बिना हाथ-मुंह धोये भोजन करना और कुछ खाने के बाद भली-भांति कुल्ला न करना।

४. किसी के मुंह का उगला या जूठा किया हुआ पदार्थ खाना अथवा मक्खियों या अन्य जन्तुओं से छुआ हुआ पदार्थ खाना।

५. बिना भली-भाँति चबाये जल्दी-जल्दी भोजन खाना अथवा स्वादवश भूख से अधिक खा जाना।

६. सोना, खाना और शौचक्रिया—इन तीनों कामों को दैनिक और नियमित समय पर न करना।

७. सिनेमा-थियेटर आदि दृष्टिनाशक और मनोद्दीपक दृश्य अधिक देखना और यौन बिकृतियों पर आधारित काम-वासना उभारने वाले कथा-कहानी-उपन्यासादि अधिक पढ़ना।

८. अधिक विषय भोग करना और चित्त में निरन्तर विषय-कामना बनाये रहना।

९. बहुत चिन्ता करना, दुःखी, अस्त-व्यस्त और भयातुर रहना।

१०. मैले, गीले या तंग (चुस्त) कपड़े पहनना या सदा उघाड़े बदन रहना।

११. नाक को अंगुली या कान को सींक आदि नुकीली चीजों से कुरेदना। अथवा तिनका, कलम या पेंसिल को दाँतों से चबाना।

१२. शौकीनीवश, आंख ठीक होते हुए भी देखा-देखी चश्मा लगाना।

१३. शक्ति से अधिक परिश्रम या व्यायाम करना अथवा आय से अधिक व्यय करना।

१४. सामने आये काम को फिर करेंगे ऐसा सोचकर टालना और कोई भी काम उचित समय पर न करना।

१५. बीड़ी, तम्बाकू, भांग, शराब और चाय आदि मादक एवं हानिकर द्रव्यों को आदतन पीना ।

दिनचर्या

स्वास्थ्य के विचार से दिन-रात में क्या काम, कब और किस प्रकार करना चाहिए, इसके कुछ नियम प्राचीन काल से ही भारतीय-जीवन-परम्परा में चले आ रहे हैं । आधुनिक शिक्षित, नयी सभ्यता के फेर में उन प्राचीन नियमों की उपेक्षा करते हैं, इस कारण पूर्ण स्वस्थ नहीं रहते । दिनचर्या और रात्रिचर्या के प्राचीन नियम हमारे देश की जलवायु और सामाजिक स्थिति के अनुकूल निर्धारित है, इसलिए पूर्ण स्वस्थ रहने की इच्छा रखने वाले हर भारतवासी को इनका अवश्य पालन करना चाहिए ।

प्रातःकाल उठना

नित्य ही सूर्योदय से इतना पहले जागकर बिस्तर छोड़ देना चाहिए कि शौचादि से निवृत्त होकर साफ-सुथरा और प्रसन्न मन से उगते हुए नये सूर्य का स्वागत करने को पहले से ही तैयार रहें । गर्मी के दिनों में सुबह चार बजे और जाड़े में पाँच-साढ़े पांच बजे अवश्य बिस्तर छोड़ देना चाहिए । सूर्योदय से चार घड़ी पूर्व के समय को हमारे पूर्वजों ने "ब्रह्ममुहूर्त" अर्थात् सबसे उत्तम समय कहा है । अन्य पशु-पक्षी और नवजात शिशु उस समय अवश्य जाग जाते हैं, इससे यह सिद्ध है कि उस समय सोकर उठने का प्राकृतिक नियम है । सूर्योदय से पूर्व के उस सर्वश्रेष्ठ और मूल्यवान समय को बिस्तर पर पड़े-पड़े स्वप्न देखना या आलस्य में खो देना बड़ा लज्जाजनक है ।

जिन्हें देर तक सोने की आदत हो, उन्हें तुरन्त सुधार करना चाहिए । आरम्भ में कुछ कठिनाई हो सकती है, परन्तु धीरे-धीरे अपने-आप सुबह जल्दी-जल्दी उठने की आदत पड़ जायगी ।

नियमपूर्वक सूर्योदय से एक घण्टे पूर्व उठ जाने से स्वास्थ्य पर तत्काल ही उत्तम प्रभाव पड़ने लगता है । चेहरे पर तेज और ललायी आ जाती है । शरीर फुर्तीला-बलवान और सुन्दर दिखाई देने लगता है । मन अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है ।

शीतल जल पीना

प्रात: सोकर उठते ही जो लोग 'बेड टी' के नाम से गर्मागरम चाय पीते हैं, वे अपने आमाशय और शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति बहुत बड़ा अन्याय करते हैं। शीत प्रधान जलवायु वाले यूरोपीय देशों में सुबह-सुबह गर्म चाय पीने की प्रथा उचित हो सकती है, परन्तु हमारे लिए उनकी नकल करना एकदम अहितकर है। भारत जैसे उष्ण जलवायु वाले देश में तो सुबह उठते ही ठंडा जल पीना अन्यन्त लाभकर होता हैं।

नाक से पानी पिया जाय तो और भी उपयोग होता है। इससे मस्तिष्क धुलता है, बुद्धि की प्रखरता और नेत्रों की ज्योति बढ़ती है, बाल जल्दी सफेद नहीं होते और शरीर में असमय बुढ़ापा नहीं आता।

नाक से पानी पीने के अभ्यास में आरम्भ में कुछ कठिनता अवगत होती है, फिर तो अपने आप पानी श्वास के साथ चढ़ने लगता है। एक तोला से आरम्भ करके आधासेर तक पानी प्रात: काल नाक से पिया जा सकता है। ऐसा करने से पूर्व नाक को खूब साफ कर लेना चाहिए।

जिन्हें फेफड़े का रोग हो या जिनके अनुकूल न पड़ता हो उन्हें ठंडा पानी न पीकर हल्का गुनगुना करके पानी पीना चाहिए। जल पीने के अनन्तर दस-पांच मिनट लेट कर विश्राम कर लेना अच्छा होता है।

शौच (पाखाना) जाना

प्रात:कालीन शारीरिक क्रियाओं में सर्वोपरि आवश्यक उठते ही जल पीकर शौच जाना है। बचपन से ही बच्चों को सुबह उठने और उठते ही पाखाना जाने की आदत डालनी चाहिए। इससे दिन भर चित्त प्रसन्न और शरीर स्फूर्तिमय बना रहता है।

प्रात: घूमना

संसार के सर्वश्रेष्ठ विद्वानों, विचारकों और वैज्ञानिकों का यह निश्चित मत है कि प्रातःकाल को शुद्ध वायु में टहलना स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हितकर है। इसलिए प्रात:काल शौचादि से निवृत्त होकर बस्ती के बाहर खुली हवा में कुछ देर तक अवश्य टहलना चाहिए।

विद्यार्थी, जो खेल-कूद में काफी परिश्रम कर लेते हैं, वे प्रातः घूमने के बजाय उस समय का उपयोग अपनी पढ़ाई के याद रखने योग्य अर्थों और विषयों की पुनरावृत्ति में किया करें। प्रातःकाल का समय मनन करने के लिये सर्वोत्तम होता है, क्योंकि उस समय बुद्धि ताजी और निर्मल होती है, तथा मस्तिष्क की ग्रहणशक्ति बहुत तीव्र होती है। किसी प्रकार का कोलाहल नहीं होता, इसलिए चित्त में एकाग्रता आती है।

परन्तु जो अन्य कोई परिश्रम नहीं करते उन बुद्धिजीवियों को प्रातः घूमना आवश्यक है। घूमने में सपाटे की तेज चाल चलनी चाहिए। शरीर का ऊपरी भाग कुछ आगे को झुका हुआ हो और सारे शरीर के भाग को पैर सम्हाले रहें। इस तरह घूमने से फेफड़े अधिकाधिक स्वच्छ वायु ग्रहण कर सकते हैं। थकावट भी कम आती है। सुबह टहलते समय यदि एकाध मील धीरे-धीरे दौड़ लगाई जाय तो कब्जियत और मन्दाग्नि के रोग में तत्काल लाभ होता है।

दातुन करना

शौच से निवृत्त होकर घूमते समय ही या घूमने से लौटकर दातुन करना चाहिए। दाँतों की सफाई के अतिरिक्त जीभ का मैल भी जीभी या दातौन से खरोंच कर निकालना चाहिए।

तेल मालिश—व्यायाम

प्रातः जब सूर्य की भीनी-भीनी धूप आने लगे तब शरीर में तैल मालिश करना बड़ा स्वास्थ्यकर होता है। इसी समय थोड़ा व्यायाम भी करना चाहिए। विद्यार्थीवर्ग और लिखा-पढ़ी का काम करनेवाले जिनको कोई शारीरिक श्रम का काम नहीं करना पड़ता उन्हें नियमित रूप से कुछ-न-कुछ व्यायाम अवश्य करना चाहिए। सूर्य नमस्कार सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है। तैल-मालिश व्यायाम के बाद ही करना ठीक होता है। व्यायाम और मालिश के बाद कम से कम पन्द्रह मिनट विश्राम भी करना चाहिए।

स्नान करना

उत्तम स्वास्थ्य के लिए नित्य शीतल जल से स्नान करना आवश्यक है। अनुकूल न पड़े तो जाड़े के दिनों में शीतोष्ण जल से नहाया जा सकता है।

थोड़े पानी से नाममात्र का स्नान व्यर्थ है । नदी में तैरकर या काफी पानी से मल-मल कर स्नान करना चाहिए और गीले खुरदरे तौलिया से रगड़कर बदन का मैल उतारना चाहिए ।

आराधना

स्नान के बाद यथावकाश भगवान की आराधना अवश्य करनी चाहिए। जिस धर्म या देवता को मानते हों, उसकी भक्ति पूर्वक आराधना करके यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हमारा आज का दिन शांतिपूर्वक, निष्कलंक और सफलता के साथ बीते । आराधना से मानसिक शक्ति बढ़ती है जो जीवन के हर क्षेत्र में निश्चित सफलता देनेवाली होती है ।

स्वल्पाहार (नाश्ता)

स्नान और आराधना के उपरान्त जिन्हे स्कूल या अन्य दफ्तरों की नौकरी पर न जाना हो उन्हें सुबह हल्का नाश्ता करना चाहिए ।

१०-११ बजे से दफ्तर जानेवाले व्यक्तियों अथवा विद्यार्थियों को प्रातः नाश्ता करना आवश्यक नहीं । उन्हें तो ९ बजे के लगभग पहला भोजन कर लेना चाहिए । जिनको अपने व्यवसाय के समय की स्थितिवश दोपहर को ही भोजन के लिये अवकाश मिलता हो, उन्हें सुबह हल्का नाश्ता करना आवश्यक है।

भोजन

अपने व्यवसाय कार्य के सुविधानुसार ही लोगों को भोजन का समय निश्चित करना पड़ता है, तथापि इतना निश्चित रुपेण अनिवार्य है कि भोजन का जो समय निश्चित हो उसका नियमित पालन निरन्तर करना चाहिए जो सुबह नाश्ता करें उन्हें बारह बजे या एक बजे भोजन करना चाहिए ।

भोजन के उपरान्त कम से कम आधा घंटा बायें करवट लेटकर विश्राम अवश्य कहना चाहिए, फिर अपने काम में लगना चाहिए ।

जिन्हें प्रातः ९ बजे ही भोजन करके स्कूल या दफ्तर जाना पड़ता है उनको मध्याह्नोपरान्त २-३ बजे कुछ भूख अनुभव होती है । उस समय कुछ फल या पेय पदार्थ लेना चाहिए । गर्मियों में दही की लस्सी, गन्ने का रस, ठंडाई या बढ़िया और विश्वस्त शर्बत तथा जाड़ों में अच्छा दूध सर्वोपरि पेय है ।

जीविकोपार्जन

दैनिक जीविका कार्य को सदैव अपना उच्च कर्त्तव्य मानकर पूरी ईमानदारी, उचित परिश्रम, जिम्मेदारी और मन लगाकर करना चाहिए। किसी भी काम, में न तो शक्ति से अधिक परिश्रम करना चाहिए और नहीं कमजोरी की आदत डालनी चाहिए। आप अपना काम मुस्तैदी से करेंगे तो आपका मन सदा स्वस्थ, सन्तुष्ट, प्रसन्न और निर्भीक रहेगा। काम से जी चुरायेंगे या दिखावटी काम करेंगे अथवा किसी तरह की बेईमानी या भ्रष्टाचार करेंगे तो निश्चित ही आपका मन भयाक्रान्त, असन्तोषी, दुखी और सशंकित रहेगा। मन के असन्तोष से मानसिक रोग तो उत्पन्न होते ही हैं, शारीरिक स्वास्थ्य पर भी मन की स्थिति का निश्चित प्रभाव पड़ता है। इसलिए अपने कार्य में ईमानदारी, सन्तोषी, परिश्रमी और व्यवस्थित रहना पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति में सर्वदा सहायक होता है।

रात्रि-चर्या

संध्याकाल

दैनिक जीविका-कार्य या पढाई से निबट कर एक बार शाम को भी शौच जाना चाहिए। शौच के अनन्तर हाथ-पैरों और मुंह की सफाई तो सर्वकालों में आवश्यक है ही, ग्रीष्म ऋतु में संध्या को स्नान करना भी अच्छा होता है। सूर्यास्त के बाद थोड़ी देर भगवान का स्मरण करना चाहिए। विद्यार्थी संध्या को थोड़ा नाश्ता करके खेल-कूद में जाया करें।

रात्रि-भोजन

रात को ७-८ बजे के बीच रात्रि का भोजन कर लेना चाहिए। यह समय बारहों मास के लिए ठीक है। भोजन के अनन्तर थोड़ी देर टहलना चाहिए फिर कुछ देर घर में बच्चों से विनोद-वार्ता करनी चाहिए।

शयन

रात्रि के ९-१० बजे भगवन्नाम स्मरण करते हुए सो जाना चाहिए। नित्य निश्चित समय पर सो जाना स्वास्थ्य के लिए परम हितकर अभ्यास होता है। बहुधा लोग रात्रि में मित्र गोष्ठियों या सिनेमा-क्लब आदि में समय खोते हैं और देर में सोते हैं। यह आदत स्वास्थ्य-नाश करनेवाली है। जो विद्यार्थी रात

में देर तक पढ़ते हैं और फिर सुबह देर तक सोते रहते हैं, वे स्वास्थ्य के प्रति तो अनाचार करते ही हैं, पढ़ना भी व्यर्थ करते हैं। क्योंकि रात में नींद के समय की उस पढ़ाई में ज्ञानार्जन में रत्ती भर लाभ नहीं होता, रात में ठीक समय पर सोयें और सुबह तड़के उठकर पढ़ें तो वह निश्चित ही उपयोगी होता है। सुबह का एक बार का ही पढ़ा बहुत दिनों तक याद रहता है, क्योंकि प्रातःकाल की स्मरण-शक्ति तीव्र होती है। भारत में छात्रों में प्राचीन जीवनचर्या के विरुद्ध चलने की आदत आजकल पनप रही है वह स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद है।

विद्यार्थी को रात में ९-१० बजे सोकर सुबह ४-५ बजे उठने से, सात घण्टे की नींद पूरी हो जाती है जो स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त और उत्तम है। छोटे बच्चे स्वभावतः अधिक समय तक सोते हैं। इसलिये उनको भी रात में जल्दी सुलाकर सुबह तड़के उठने का अभ्यास आरम्भ से ही कराना चाहिए।

ऋतु-चर्या

विभिन्न ऋतुओं की प्रकृति और प्रभाव-भिन्नता के आधार पर किस ऋतु में किस प्रकार का आहार-विहार रखना चाहिए, इसका ज्ञान रखना प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है। यूरोप आदि देशों में तो प्रायः पूरे वर्ष शीतऋतु जैसा एक-सा ही वातावरण रहता है, परन्तु हमारे देश में विभिन्न ऋतुयें होती हैं और उनके वातावरण में एकदम भिन्नता रहती है।

वैसे प्राचीन ऋषियों ने जलवायु की भिन्नता के विचार से, पूरे वर्ष को दो-दो माह की छै ऋतुओं में विभाजित किया है, किन्तु सर्वसाधारण के लिए मौसम के हिसाब से मुख्यतः शीत, ग्रीष्म और वर्षा——इन तीन ऋतुओं के विषय में जानकारी रखनी चाहिए।

शीतऋतु (सर्दी)

हेमन्त और शिशिर ऋतुओं को सर्दी का मौसम माना जाता है। अगहन से फाल्गुन (नवम्बर से फरवरी) तक का यह मौसम स्वास्थ्य-निर्माण हेतु सर्वाधिक उपयोगी है। इस मौसम में पाचक अग्नि बढ़ जाती है, इसलिए भोजन में अधिकतर पौष्टिक पदार्थ लिए जा सकते हैं। रातें बड़ी होने से रात्रिभोजन को पचने का काफी समय मिल जाता है।

इस ऋतु में सुबह नाश्ते में हलुवा, लड्डू, ताजी जलेबी या पौष्टिक पाक खाकर ऊपर से दूध पीना चाहिए। अतिरिक्त पौष्टिक पदार्थ खाने से अग्नि मन्द न हो जाये इसलिए विशेषकर प्रातः टहलना, सूर्यनमस्कार, दण्ड-बैठक और कुश्ती आदि का व्यायाम यथाशक्ति अवश्य करना चाहिए। प्रातःकालीन धूप में नियमित तैल की मालिश विशेष लाभदायक होती है।

शीत ऋतु में गेहूँ, उडद, दूध और दूध से बने पदार्थ जैसे, घी, रबड़ी, मलाई, खोवा, छैना, पनीर, पेड़ा, रसगुल्ला आदि और तिल के तैल का सेवन विशेष रूप से करना चाहिए। खान-पान में ठंडी चीजों की अपेक्षा शरीर को गम पहुँचानेवाली वस्तुओं का सेवन ही इस ऋतु में योग्य है।

बहुधा लोग ठंड से बचने के विचार से इन दिनों में अधिक मद्यपान करते हैं और गर्म चाय अधिक पीते हैं। ये दोनों प्रयोग हितकर नहीं। चाय और मद्य शरीर को थोड़ी गर्मी अवश्य पहुँचाते हैं, परन्तु आमाशय और यकृत् को बहुत हानि करते हैं। शरीर में निरापद और वास्तविक गर्मी पहुंचाने के लिए घी तैल और अण्डा-मांस का आहार उपयोगी है। इनमें भी घी सबसे उत्तम है क्योंकि घी में शरीर को गर्मी देने की सबसे अधिक शक्ति होती हैं और पोषण करके शरीर विकास करने में तो घी अद्वितीय है ही।

इस मौसम में शीत के कुप्रभाव से बचने के लिए हलके वजन के गर्म (ऊनी) कपड़े अथवा रुई भरे वस्त्र पहनना चाहिए। आयुर्वेद के साथ आधुनिक वैज्ञानिकों का भी मत है कि ठंड सिर से न लगकर बहुधा पैरों से ही लगती है। इसलिए इस ऋतु में कभी नंगे पैर नहीं चलना चाहिए। पैरों में मोजे पहनना हितकर है।

जब बहुत अधिक ठंड हो तब आवश्यकता होने पर सिगडी आदि जलाकर कमरे को गर्म रखने का प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु हवा एकदम बन्द नहीं करनी चाहिए। रात को सोते समय भी कमरे में हवा आने के लिए एकाध खिड़की अवश्य खुली रखनी चाहिए और कपड़ों से मुंह ढककर कभी नहीं सोना चाहिए।

प्राय: लोग जाड़ों में स्नान करना छोड़ देते हैं, यह दोषपूर्ण है। बारहों

मास ठण्डे जल से नित्य नहाने के अभ्यासियों को जाड़े में भी शीतल किन्तु ताजे जल का स्नान कोई हानि नहीं करता। फिर भी वह अनुकूल न पड़े तो गुनगुने जल से नहाया जा सकता है। जाड़ों में भी प्रातःकाल को स्नान कर लेने से दिन भर शरीर को शीत का अनुभव नहीं होता और स्फूर्ति बनी रहती है।

ग्रीष्म ऋतु (गर्मी)

सर्दी समाप्त होते ही बसन्त ऋतु आती है, जिसमे थोड़ी सर्दी और थोड़ी गर्मी का वातावरण रहता है। ऋतु परिवर्तन का यह काल कफकारक होने से इन दिनों कफ के रोग उत्पन्न होते हैं। दिन में सोने से कफ बढ़ता है इसलिए दिन में नहीं सोना चाहिए और पैदल टहलने जैसे सात्म्य व्यायाम करना चाहिए।

बसन्त के दिन बीतते ही गर्मी आती है और सूर्य की किरणें तेज होकर मनुष्य, पशु-पक्षी, वनस्पती और पृथ्वी सभी की तरलता को सोखने लगती है इसलिए इस ऋतु में मनुष्यों की शक्ति निर्बल होने लगती है।

गर्मी, भारत का सबसे बड़ा अर्थात् अधिक दिनों तक रहनेवाला मौसम है यहाँ कई स्थानों पर ८-१० महीनों तक गर्मी का मौसम रहता है वैसे ऋतु विभाग के विचार से चैत्र से आषाढ़ (अप्रेल से जुलाई) तक का काल गर्मी का मौसम माना जाता है। मैदानी इलाके में मई-जून में बहुत ही तेज गर्मी पड़ती है।

गर्मी का मौसम स्वास्थ्य पर सबसे अधिक हानिकारक प्रभाव डालता है, इसलिए इसके विषय में अधिक ज्ञान करना चाहिए।

गर्मी के दिनों में पाचक अग्नि एकदम कमजोर हो जाती है, प्रातः भोजन में गरिष्ठ और अजीर्णकारक पदार्थ कदापि नहीं लेना चाहिए। हल्के, सुपाच्य एवं शीतल प्रभाववाले पदार्थ परिमित मात्रा में खाना चाहिए। सामान्य भोजन की मात्रा भी कम रखनी चाहिए और मांस यथासंभव बिल्कुल नहीं खाना चाहिये।

सुबह नित्यकर्म से निवृत्त होकर एक गिलास अच्छी ठंडाई, दूध या दही की

लस्सी, अथवा जौ या चने का सत्तू पानी में घोलकर मीठा मिलाकर पी लेना चाहिए। खश या चन्दन का शर्बत भी पी सकते हैं जो सुगन्धि और गुण दोनों में उत्तम होते हैं। आधा पाव खश या चन्दन का बुरादा एक सेर जल में बारह घण्टे तक भिगोकर फिर खूब मलकर छान लें। छने घोल में तीन सेर शक्कर या मिश्री और आवश्यकतानुसार जल मिलालें, इसका चार बोतल शर्बत घर में ही बन सकता है। यह कच्चा शर्बत १०-१५ दिन तक खराब नहीं होता।

प्रात:कालीन पेयों में नीरा (ताड़ या खजूर से निकलनेवाला ताजा रस) बहुत स्वास्थ्यप्रद होता है। नारिकेल का जल, गन्ने या सन्तरा आदि फलों का ताजा रस भी उत्कृष्ट पेय है। राजस्थान में लोग जौ के आटे को मट्ठा में मिलाकर बार्ली की भाँति बहुत पतली बनाते हैं; फिर दूसरे दिन बासी होने पर मट्ठा के ही साथ पीते हैं। यह पेय भी ग्रीष्म-प्रभाव से बचने के लिए अच्छा है। मद्रास में लोग सुबह के भोजन में ठंडा भात (चावल) और इमली को जल में गलाकर तैयार किया तरल लेते हैं। बासी भात और इमली का नित्य भोजन यद्यपि स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है, फिर भी गर्मी से बचाव के लिए यह प्रयोग भी बुरा नहीं है।

ग्रीष्मकालीन मध्याह्न भोजन में उत्तम चावल, पतली दाल या पतली कढ़ी, दही अथवा मट्ठा अवश्य लेना चाहिए। जो केवल चावल पर न रह सकें वे जौ या गेहूँ की रोटी थोड़ी मात्रा में ले सकते हैं।

दिन बड़े होने से, दोपहर बाद इन दिनों कुछ भूख लगती है तब भुने हुए जौ और चने खा कर ठंडा जल पीना हितकर होता है। समर्थ लोग फल या फलों का ताजा रस ले सकते हैं।

रात्रि के भोजन में रोटी, हरे प्याज, पुदीना या धनियां की चटनी होनी चाहिए। गर्मी में कच्चा प्याज खाना बहुत लाभदायक होता है। हमारे देश के श्रमशील किसान केवल कच्चा प्याज और रोटी खाकर धूप में काम करके भी निरोग रहते हैं।

इन दिनों ऋतुफल आम का सेवन बड़ा उपयोगी है। कलमी आमों में गूदा अधिक होने से वह देर में पचता है; परन्तु छोटे बीजू आमों में रस अधिक

होता है। जो हाजमा बढ़ाकर शरीर को पुष्ट करता है। दूध के साथ आम का रस लेना शरीर का वजन और शक्ति बढ़ाता है।

ग्रीष्म ऋतु में चाय का उपयोग स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है। यदि अनिवार्य हो तो बहुत कम पीना चाहिये। इन दिनों दूध भी ठंढा करके पीना चाहिए। परन्तु दूध को ठंढा करने हेतु स्वच्छ पात्र में कपड़े से मुँह बांध कर रखना चाहिए। जिससे उसमें दूषित कीटाणु न मिलने पायें।

गर्मी में स्नायुमण्डल बहुत कमजोर रहता है इसलिए मद्यपान कतई नहीं करना चाहिए, क्योंकि मद्य स्नायुमण्डल पर बुरा प्रभाव डालती है। बिना पिये जिसका काम ही न चले उन्हें गर्मी में अधिक पानी मिलाकर अल्पमात्रा में मद्य लेना चाहिए, अन्यथा सूजन, सुस्ती और बेहोशी हो जाती हैं तथा कभी कभी स्नायुमण्डल पर घातक प्रभाव हो जाता है। इन दिनों स्त्री-प्रसंग भी निश्चित रूप से अति हानिकारक है। उससे शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार को निर्बलता बढ़ती है।

आयुर्वेद-मतानुसार ग्रीष्मऋतु में दोपहर के समय दो-तीन घण्टा सोना स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है। इस ऋतु में दैनिक कार्यो का समय ऐसा ही रखना चाहिए कि दोपहर में विश्राम के लिए अवकाश रहे।

अंग्रेजों ने अपने राज्यकाल में यूरोप की भांति हमारे देश में भी, दैनिक काम के लिए सब मौसमों में प्रायः एक-सा समय प्रचलित कर दिया। प्रातः १० बजे से शाम के ४-५ बजे तक दोपहरी भर काम करना गर्मी के मौसम में कदापि अच्छा नहीं। ग्रीष्म काल ही क्या हमारे देश की जलवायु को देखते हुए मार्च से अक्टूबर तक वर्ष में ८ महीने दैनिक कार्य का समय विभाजन प्रातः ७-११ तक काम, मध्याह्न भोजनोपरान्त २ बजे तक विश्राम फिर संध्या ४ से ८ तक काम—इस प्रकार का समय-विभाजन ही विशेष कर ग्रीष्मऋतु में भारतीय जनता के लिए स्वास्थ्यवर्द्धक और अनुकूल हो सकता है। हमारी राष्ट्रीय सरकार को इस दिशा में ध्यान देकर सुधार करना चाहिए।

ग्रीष्म के स्वाभाविक प्रभाव से एकदम बचना भी हितकर नहीं। प्राकृतिक दृष्टि से मौसम की थोड़ी अनुभूति होनी ही चाहिए। ग्रीष्म के आरम्भ होते

ही जो लोग शीतल स्थानों में चले जाते हैं या घर पर ही प्रबन्ध करके चौबीस घण्टे शीतल वातावरण में रहते हैं, वे भी स्वास्थ्य के अनुकूल कार्य नहीं करते।

इन दिनों अधिकतर शहरी नागरिक बर्फ का बहुत प्रयोग करते हैं। बर्फ पीने में तत्काल तो ठंडक देती है, परन्तु उसकी ठंडक स्थायी नहीं होती। अधिक बर्फ खाने-पीने से दांतों की जड़ें कमजोर होती हैं, हाजमा खराब होता है और गला खराब होता है। विशेष कर बच्चों को आइसक्रीम आदि बर्फ के पदार्थों से बचाना चाहिए।

गर्मी की ऋतु में आंखों की बहुत रक्षा करनी चाहिए। बहुधा इन्हीं दिनों आंख आया करती है। सर्वाधिक बचाव लू से करना चाहिए। थोड़ी-सी ही असावधानी से लू लगना प्राणघातक हो जाता है। यथासंभव तेज धूप में कदापि बाहर न निकालना चाहिए। निकलना ही पड़े तो काफी पानी पीकर चलना चाहिए। गर्मी में बहुत महीन कपड़ा पहनकर धूप में फिरना हानिकर है। सफेद-मोटे कपड़े से शरीर को ढककर चलने से भी लू से बचाव होता है।

गर्मी में चुश्त कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। गहरे रंगों के कपड़े भी सूर्य की किरणों को आकर्षित करते हैं, इसलिए गर्मी में सफेद कपड़ा पहनना सर्वोत्तम होता है।

वर्षाऋतु (बरसात)

वर्ष का तीसरा विभाग वर्षाऋतु है। सामान्यत: जुलाई से अक्टूबर तक वर्षाकाल होता है, तथापि विशेष वर्षा मध्य के दो महीनों में होती है। शुरू-शुरू में आकाश मेघों से घिरा रहता और हवा प्रायः बन्द रहती है, इससे सड़ी गर्मी पड़ती है और पसीना अधिक आता है। स्वास्थ्य के विचार से वर्षा का आरम्भ और अन्त दोनों ही काल बहुत कष्टकर होते हैं।

इस ऋतु में अधिकांशत: पेट खराब रहता है, अतएव भोजन में हल्के पदार्थ और सूखे साग ही लेना चाहिए। हरी सब्जी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। खटाई, नमक और चिकनाई पर्याप्त लेना चाहिए। भोजन के साथ, सोंठ, पीपल पीपलामूल, चव्य और चित्रक इस पंचकोल का चूर्ण लेना हितकर होता है।

वर्षाऋतु में नदी, तालाब का पानी तो भूलकर नहीं पीना चाहिए। कुयें का पानी भी कपड़े की दो तहों में छानकर पीना चाहिए। यदि हैजा आदि कोई संक्रामक रोग फैल जाय तो पानी को उबालकर, ठंडा करके पीना चाहिए।

आकाश से गिरनेवाला पानी यदि ऊपर-के-ऊपर किसी पात्र में एकत्र किया जा सके तो वह इन दिनों पीने के लिए सर्वोपरि होता है।

वर्षाऋतु में कागजी नीबू का प्रयोग बड़ा हितकर होता है। नीबू की दो फांकें बनाकर उनमें यथेष्ट काली मिर्च और काला या सेंधा नमक भरकर अंगारों पर गर्म करके चूसना बड़ा फायदेमंद होता हैं। साग-दाल में नीबू का रस लेना और नीबू की मीठी शिकंजी पीना भी वर्षा में उपयोगी होता है।

वर्षाऋतु के अन्त और शरद् के आरंभ का काल बहुत खराब होता है। वर्षा के कारण चारों ओर सड़ांद-सीलन से वातावरण दूषित हो जाता है। इस कारण पेट के विकार और मलेरिया आदि कष्टकारक ज्वर इन्हीं दिनों होते हैं। जुकाम, खाँसी दस्त और आंव आदि बीमारियाँ भी इन दिनों हो जाया करती हैं। इसलिए इस काल में विशेषकर खान-पान के विषय में अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। थोड़ा भूखा रहना अच्छा परन्तु हाजमा नहीं बिगड़ने देना चाहिए। स्वच्छता के नियमों का भी इन दिनों कड़ाई के साथ प्रयोग करना चाहिए।

स्त्री स्वास्थ्य

यों तो सभी स्वास्थ्य-नियम स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान रूप से उपयोगी एवं पालनीय हैं। आयुर्वेदोक्त 'त्रय उपस्तंभाः'—आहार, विश्राम और ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त दोनों पर एक समान लागू होता है; तथापि स्त्री-पुरुष में प्रकृति ने ही जो भिन्नता और विशिष्टता रक्खी है; उसको ध्यान में रखते हुए स्त्री-स्वास्थ्य-विषय में कुछ बातें अलग से विचारणीय हैं।

स्त्री-पुरुष की शरीर-रचना में यह प्राकृतिक भेद है कि स्त्रियों के शरीर में गर्भाशय और स्तनदुग्ध-ग्रन्थियां विशेष होती हैं, जो पुरुष के शरीर में नहीं होती।

मनुष्य जरायुज प्राणी है। अण्डज प्राणियों में तो संतति की रक्षा और पालन-पोषण नर-मादा मिलकर करते हैं; परन्तु जरायुज जीवों की यह विशेषता है कि उनमें गर्भधारण से लेकर संतति के जन्म, दुग्धपान और पालन-पोषण आदि का भार केवल स्त्री ही वहन करती है। पुरुष उसमें सक्रिय कुछ नहीं करता। इस प्रकार मानवों में स्त्री और पुरुष का कार्य विभाजन भी प्राकृतिक रूप से है।

ऐसी स्थिति में स्त्री-पुरुष दोनों के लिये समान नियम-व्यवहार रखना अनुचित है। आजकल आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से हमारे देश में नारी को समानाधिकार देने के नाम पर स्त्री-पुरुषों के लिये जो एक जैसे नियम लागू किये जा रहे हैं और स्त्रियों का सेना, सरकारी दफ्तरों और अन्य श्रम आदि आफिसों में भरती किया जाता है, यह प्राकृतिक नियम के प्रतिकूल है। रहन-सहन, पहनावा, खेल-कूद व्यायाम, राजनीति, इत्यादि सबमें पुरुषों के समान ही स्त्रियों का अनुकरण स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी नहीं, प्रत्युत वह स्त्री की स्वाभाविक सुकुमारता पर आघात करने वाला और विकृत करने वाला है।

हमारा कदापि यह दृष्टिकोण नहीं कि भारतीय स्त्री-समाज अशिक्षित, पिछड़ा हुआ, रूढ़िग्रस्त और किसी भी प्रकार पुरुष से निम्न दर्जे का बना रहे- ऐसा होना तो अभिशाप है। परन्तु स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक अन्तर की अवहेलना करना भी श्रेयस्कर नहीं। भारत में प्राचीन काल से पुरुष के लिए कठिन परिश्रम के कार्य, अर्थोपार्जन, घर के बाहर के सम्पूर्ण काम करना एवं स्त्री के लिए कोमल कार्य, शिशुओं का लालन-पालन, गृहस्थी की व्यवस्था, परिवार का स्वास्थ्यरक्षण आदि कार्य निर्धारित हैं। यह एक प्रकार का समानाधिकारिक कार्य-विभाजन अपने आप में महत्वपूर्ण है और स्त्री-पुरुष दोनों के स्तर को गौरवपूर्ण बनाने वाला है, प्राकृतिक नियमों के आधार पर बनी हमारी इस प्राचीन परिवार व्यवस्था में मध्यकालीन युग में जो दोष आये हैं, उन्हें अवश्य दूर किया जाना चाहिए। हिन्दुओं में मुस्लिम संस्कृति की भाँति कठिन पर्दा और स्त्रियों को सदा घर के भीतर बन्द रखने की कुप्रथा अहितकर है। पर्दा प्रथा के कारण

बहुधा जो स्त्रियाँ निरन्तर घर की चारदीवारी में बन्द रहती है, उनको यक्ष्मा, चर्मरोग आदि रोगों का शिकार होना पड़ता है। इसलिए कठिन पर्दा और स्त्रियों के प्रति अन्य जो सामाजिक दुर्व्यवहार है, उनमें सुधार की निश्चित आवश्यकता है।

प्रगतिशील युग में स्त्री-शिक्षा नितान्त वांछनीय है; परन्तु आधुनिक शिक्षा की विषय-बहुलता जो अनावश्यक पाठ्यपुस्तकों के भार से बालकों के मस्तिष्क को भी थकित और कुंठित कर देती है, वह बालिकाओं के कोमल मस्तिष्क के लिए तो कदापि ही श्रेयस्कर नहीं। बालक-बालिकाओ की उच्च श्रेणी में सहशिक्षा दोनों के लिए अत्यन्त हानिकर है। १० वर्ष की उम्र तक बालक-बालिकायें साथ-साथ पढ़े तो कोई दोष नहीं है। भारत में १२-१३ वर्ष की आयु में ही दोनों के स्नायु-मण्डल में सहज उत्तेजना आ जाती हैं, जो उनके स्वच्छन्द रूप से निकट रहने में मनोविकारों को प्रोत्साहन देता है। इसलिए बालक-बालिकाओं की उच्च शिक्षा का पृथक-पृथक स्वतन्त्र ही प्रबन्ध होना चाहिए। स्वस्थ चरित्र और उच्च नैतिक स्तर के निर्माण हेतु शिक्षाप्रणाली में यह सुधार होना वांछनीय है।

बालकों के फुटबॉल, हाकी आदि खेल और दण्ड-बैठक, कुश्ती आदि व्यायाम बालिकाओं के लिए उपयोगी न होकर हानिकारक होते हैं और उनमें शारीरिक विकृति उत्पन्न करते हैं। इसलिए शरीर-रचना के अनुकूल बालिकाओं के खेल और व्यायाम भी कोमल होने चाहिए। इसी प्रकार बालिकाओं के शिक्षा का विषय उनके अनुरूप होना चाहिए। बालिकाओं को मुख्यतः पाक विज्ञान, गृह-अर्थशास्त्र, शिशु-मनोविज्ञान स्वास्थ्य-विज्ञान, गार्हस्थ कलाएँ, रोगी-परिचर्या, संगीत और प्राथमिक शिक्षा-विज्ञान—इन, विषयों का ही शिक्षण दिया जाना चाहिए, जिनमें कि वे स्वाभाविक रूप से अधिक सफल हो सकती हैं और यह विषय उनके जीवन में काम भी आते हैं। कन्याओं को उच्चशिक्षा, नर्सिंग, गृहविज्ञान, मनोविज्ञान और अध्यापन विषयों की शिक्षा देना उचित है।

प्रकृति ने स्त्री-शरीर की रचना कुछ इस प्रकार की है कि वह पुरुष की

अपेक्षा तन-मन और स्वभाव से अधिक कोमल, ममतामयी, सहिष्णु, सेवाभावी, संकोचशील और दयालु होती है। स्त्री का स्नायु मण्डल पुरुष की अपेक्षा सहज सुकुमार और अल्पशक्ति वाला होता है। अतएव स्त्री की शिक्षा, कार्य और व्यवहार में इस प्राकृतिक सुकुमारता का ध्यान रखकर नियम-व्यवहार रखना चाहिये।

यौन-विकास

पश्चिम के शीतप्रधान देशों में तो १७-१८ वर्ष की आयु तक भी बालिकाओं में यौवन के चिन्ह प्रकट नहीं होते। परन्तु भारतवर्ष उष्ण जलवायु का देश है, इसलिए यहाँ १०-११ वर्ष की आयु में ही बालिकाओ में यौवन-विकास प्रारम्भ हो जाता है। १३-१४ वर्ष की अवस्था में हमारे यहां लड़कियां रजस्वला होने लगती है। अत्यल्प अनुपात में ऐसे भी उदाहरण हो सकते हैं कि जब कि लड़की का यौन-विकास १५-१६ वर्ष तक न हुआ हो। यदि किसी लड़की में जल्दी यौन-विकास होता है अथवा देर से होता है तो ये दोनों ही स्थितियाँ चिन्ता का कारण नहीं है क्योंकि यौवन-विकास आयु मात्र पर ही निर्भर नहीं प्रत्युय शरीरास्थ ग्रन्थियों की कार्यशीलता पर निर्भर करता है। यौन-विकास काल में कभी-कभी पहले एक स्तन बढ़ता है, फिर कुछ महीनों बाद दूसरा बढ़ता है--यह बात भी चिन्ता का कारण नहीं है।

यौन-विकास आरम्भ होने के डेढ़-दो साल के भीतर लड़की रजस्वला होती है। किसी-किसी लड़की को प्रारंभिक पहले और दूसरे वर्ष मासिकधर्म अनियमित और बार-बार होता है, विवाहोपरान्त मासिकधर्म में ऐसी गड़बड़ी तो दोषपूर्ण होती है, परन्तु विवाह के पूर्व हुये मासिकधर्म के प्रारंभिक रूप में ऐसा होने को रोग का कारण नहीं समझना चाहिए।

मासिक-धर्म

प्रत्येक वयस्क स्त्री के योनिमार्ग से प्रतिमास जो रक्त का स्राव होता है उसे "मासिक-धर्म" कहते हैं। इसमें बीरबहूटी के रंग जैसा गहरे लाल रंग का रक्त निकलता है जिसका वस्त्र पर लगा दाग धोने से छूट जाता है। इसके

निकलने में दाह, वेदना हो अथवा बहुत कम या बहुत अधिक रक्त निकले तो रोग का कारण समझना चाहिए। २७ दिन के पहले या बाद में देर से मासिकधर्म होना भी सामान्य रोग का चिन्ह है। तीन चार दिन से अधिक मासिक रक्त निकलना भी विकार का सूचक है। रक्त के साथ लोथड़े निकलें उसका रंग पीलापन लिये हो अथवा उसमें दुर्गन्ध आता हो तो उसे विकार समझकर उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

मासिक-धर्म का रक्त प्राय: तीन दिन तक निकलता है। आर्तव दर्शन के दिन से लेकर सोलह दिन तक अथवा आर्तवानन्तर स्नान के पश्चात् बारह दिन तक स्त्री गर्भधारण करने योग्य रहती है।

रजोदर्शन से लेकर तीन दिन तक स्त्री को ब्रह्मचारिणी रहना चाहिए। इन दिनों में स्नान, श्रृंगार और किसी भी प्रकार का मानसिक या शारीरिक परिश्रम नहीं करना चाहिए। एकान्त स्थान में मुलायम आसन पर प्राय: लेटे ही रहना चाहिए। दिन में सोना नहीं चाहिए। आर्तव बन्द होने पर चौथे दिन स्त्री को सिर धोकर स्नान करना चाहिए।

मासिक-धर्म के दिनों में प्राय: स्त्रियाँ गन्दे कपड़े पहने रहती हैं और गन्दे कपड़े की तह योनि मार्ग पर बाँधती हैं। कोई-कोई तो कपड़ों की तह करके योनिमुख में भर लेती हैं। यह अत्यन्त खराब बात है। गन्दे कपड़े के कीटाणु योनि में प्रवेश कर भयंकर रोग का कारण बन जाते हैं, सेप्टिक (विषोत्पत्ति) का भी भय रहता है क्योंकि मासिक-धर्म में गर्भाशय की अन्त कला विदीर्ण होती है। इसलिए मासिक-धर्म में बहुत साफ-सुथरा कपड़ा पानी में उबालकर प्रयोग करना चाहिए। शहरों में इसके लिए 'सेनिटरी टावल्स' मिलते हैं, उनका उपयोग उचित है।

गर्भावस्था

गर्भावस्था स्त्री-जीवन का सबसे विषमकाल है। गर्भ का सम्बन्ध केवल माता से होता है, अतएव गर्भस्थ शिशु का उत्तम निर्माण गर्भिणी के स्वास्थ्य की उत्तम स्थिति पर ही निर्भर करता है। गर्भस्थ बच्चे का सम्पूर्ण निर्माण स्त्री की ही रस-धातुओं से होता है और वह गर्भिणी की खुराक से ही अपनी

खुराक लेता है। इसलिए सबसे आवश्यक बात यह है कि गर्भिणी स्त्री को विशेष रूप से पौष्टिक आहार मिलना चाहिए। आयुर्वेद में कहा है कि प्रथम मास से ही गर्भिणी स्त्री को भोजन में दोनों समय दूध (ठंडा करके) अवश्य पीना चाहिए। भोजन में शरीर और पाचन शक्ति के अनुकूल मधुर और पौष्टिक द्रव्य अधिक ग्रहण करना चाहिए। गर्भिणी को द्रव (पतले) पदार्थ लेना अधिक श्रेयस्कर है।

गर्भिणी को उबटन और तैल मालिश नहीं करना चाहिये। मद्य और मांस का सेवन नहीं करना चाहिए। मैथुन नहीं करना चाहिए। वातकारक (वादी करने वाली) वस्तुएँ नहीं खाना चाहिए। गर्भावस्था में अधिक वातकारक चीजें खाने से गर्भ में जड़ता, बहरापन, गूंगापन, कुबड़ापण, अंगभंगता आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

तीसरे मास से छठवें मास तक के काल में गर्भवती को दौहृदा कहा गया है। अर्थात् इस काल में गर्भिणी के दो हृदय हो जाते हैं। एक तो स्वयं उसका और दूसरा गर्भस्थ शिशु का। ऐसी स्थिति में गर्भिणी को नाना प्रकार की इच्छाएँ होने लगती हैं। कभी-कभी वह विचित्र और असम्बद्ध इच्छाएँ करती हैं। इस काल में गर्भिणी की इच्छाओं का बलात् दमन कदापि नहीं होना चाहिए। इच्छा पूर्ण न होने पर गर्भिणी को जो मानसिक आघात पहुँचता है उसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर भी बुरा पड़ता है। दौहृद काल में गर्भिणी की सभी इच्छाओं को हितकर साधनों द्वारा पूरा करना चाहिए। उसकी जो कुछ खाने की इच्छा हो वह उसे अवश्य खिलाना चाहिए। गर्भावस्था में स्त्री को सीधा (चित) नहीं लेटना चाहिए; दस्तावर दवा नहीं लेनी चाहिये। किसी प्रकार का कठिन परिश्रम का कार्य या व्यायाम कदापि नहीं करना चाहिये। गर्भावस्था में कुयें से पानी भरना, बोझ उठाना, बार-बार जीने पर चढ़ना, चक्की पीसना, अधिक पैदल चलना आदि गर्भ को हानि पहुँचाते हैं। श्रमिक-कार्य करनेवाली स्त्री को गर्भावस्था काल में पूर्ण अवकाश मिलना चाहिये। यह नियम नागरिक महिला के लिये है। श्रमकारी जाति के लिये श्रम करना निषेध नहीं है।

गर्भिणी स्त्री को सर्वकाल शांत वातावरण में रहना चाहिए। घरके सभी

लोगों का व्यवहार गर्भिणी के प्रति अत्यन्त उदार और स्नेहपूर्ण होना चाहिये। घरेलू झगड़ों से शोकग्रस्त रहनेवाली, चिन्तित और दुःखी गर्भिणी के गर्भ में कमजोर, विकलांग, मूर्ख और अल्पायु सन्तान उत्पन्न होती है।

निश्चित है कि गर्भावस्था के दिनों में स्त्री को अधिकाधिक विश्राम मिलना चाहिये। परन्तु इन दिनों अधिक सोना विशेषतः दिन में सोना गर्भ पर हानिकर प्रभाव करता है। जिस घर में गर्भिणी स्त्री रहे, वह स्वच्छ और खूब हवादार होना चाहिए। गर्भिणी के वस्त्रादि भी साफ-सुथरे होने चाहिये और घर में सदा ऐसा वातावरण रहना चाहिये कि जिससे गर्भिणी का मन प्रसन्न और सन्तुष्ट रहे।

प्रजनन

गर्भ के नौ महीने पूर्ण होने पर प्रजनन होता है। अज्ञानतावश हमारे देश में प्रजनन की असावधानियों से स्त्रियाँ बहुत रोगग्रस्त होती हैं। प्रतिवर्ष हजारों स्त्रियां या तो प्रसवकाल में ही मर जाती हैं या किसी भयंकर प्रसूति रोग से जीवन-पर्यन्त ग्रस्त रहती हैं।

वस्तुतः प्रजनन एक नैसर्गिक क्रिया है। यदि आहार-विहार में विशेषकर गर्भावस्था में प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन न हो तो प्रजनन-क्रिया भी नैसर्गिक रूप से बिना कष्ट के स्वाभाविक ही सम्पन्न होती है। इस विषय में नैसर्गिक जीवन बितानेवाली आदिवासियों और किसानों की परिश्रमशील स्त्रियों का उदाहरण ध्यान देने योग्य है। वे प्रायः प्रथम प्रसव में भी चलते-फिरते और काम करते-करते बिना किसी की सहायता के जंगल में ही बच्चा जन देती है और दूसरे दिन फिर ज्यों के त्यों काम करने लगती हैं। उन्हें कभी कोई गर्भाशयिक प्रसूति रोग होते प्रायः नहीं देखा गया। इसका मुख्य कारण यही है कि उनका जीवन परिश्रमपूर्ण होता है। नैसर्गिक आहार-विहार होने से उनका परिपुष्ट गर्भ उचित समय पर निसर्ग द्वारा ही सहजरूपेण गर्भाशय से पृथक् हो जाता है।

परन्तु आजकल विशेषकर शहरी क्षेत्र में स्त्रियां अपना घरेलू काम-काज का आवश्यक परिश्रम भी नहीं करती और आहार-विहार में अनियमित रहती है। इसी कारण उनका प्रसव भी कष्टकर और कठिनाई पूर्वक होता है। यदि

सामान्य जीवन में वे अपने घर का काम-काज अपने हाथों से करके उचित परिश्रम करती रहे और गर्भावस्था में पौष्टिक आहार, शुद्ध जलवायु और पर्याप्त विश्राम का सेवन करें तो उन्हें भी न तो प्रसव-कष्ट उठाना पड़े और न किसी प्रसूति रोग का शिकार होना पड़े। प्रथम प्रसव में सामान्यतः अधिक कष्ट होता है।

प्रसव-सम्बन्धी अज्ञानताओं के कारण हमारे देश में बहुत शिशुओं और माताओं की मृत्यु होती है। विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में अप्रशिक्षित, अयोग्य और अकुशल दाइयाँ अनेक प्रकार के प्रसव में हस्तक्षेप और जल्दबाजी करके प्रसूता और शिशु को बड़ी हानि पहुँचाती है। सबसे बड़ा दोष यह है कि प्रसव में गन्दे स्नान, गन्दे वस्त्र, गन्दे पात्रादि और गन्दे हाथों से काम लिया जाता है। प्रसव एक प्रकार का शल्यकर्म है जिसमें गर्भ और योनिमार्ग में घाव हो जाता है। यह सामान्य नियम है कि किसी भी घाव में यदि कोई गंदगी के कीटाणु प्रवेश पा जाते है तो भयंकर विकृति उत्पन्न करते हैं। गाँव की दाइयाँ बहुधा गंदी रहती हैं, गंदे हाथों को बिना धोये ही सब काम करती हैं और उस्तरा आदि गंदे औजारों से ही बच्चे का नारा (नाल-नाडी) काटती है। चाकू या उस्तरा को पानी में रखकर उबाल लेना, साफ कृमिरहित रुई या वस्त्र से काम लेना, लाल साबुन से हाथ धोकर प्रजनन सम्बन्धी कार्य करना चाहिए। गंदे कपड़े से ही प्रसूता के गर्भस्थल को पोंछती हैं। प्रसूती स्थल तो गंदा होता ही है, वहाँ की हवा एकदम बन्द कर दी जाती हैं, इन सबका यह परिणाम होता है कि स्त्रियाँ रक्त प्रदर और प्रसूतिज्वर आदि रोगों से सदा के लिए पीड़ित हो जाती है।

शहरों में आधुनिक ढंग से बने प्रसूतिगृह भी सर्वथा निरापद नहीं। स्वच्छता का प्रबन्ध तो इनमें रहता है, परन्तु प्रसूता की परिचर्या उचित ढंग से नहीं होती। प्रसूति के कमरे में चारों ओर खुली खिड़कियाँ होती हैं, जिनसे सीधी और तीखीं (तेज) हवा प्रसूता के स्वास्थ्य पर स्थायी घातक प्रभाव करती है। शहरी प्रसूतिगृह में प्रसव के तत्काल उपरान्त अनावश्यक दवाओं का सेवन प्रारम्भ कर दिया जाता है और आहार का संयम नहीं रखा जाता जो

निश्चित हानिकर होता है ।

प्रजनन के सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय परम्पराएँ और आयुर्वेदीय नियम ध्यान देने योग्य है । प्रजनन के लिए प्रसूति-गृह बहुत साफ होना चाहिए जिसमें मिट्टी, धूल या बालू के कण न हों । उसकी बनावट ऐसी हो कि वह शीत, वर्षा और ग्रीष्म सब ऋतुओं में निवास योग्य हो । गृह का मुख्य द्वार उत्तर या पूर्व दिशा में होना चाहिए जिससे सूर्य का प्रकाश उसमें आ सके । सभी आवश्यक वस्तुएँ प्रसूति-गृह में रहना चाहिए । अग्नि और जल निरन्तर रहना चाहिए । प्रसूता के लिए पलंग, बिछौने, ओढ़ने और पहनने के कपड़े बहुत स्वच्छ होना चाहिए । प्रसूति कार्य में उपयुक्त पात्र और वस्त्र भी धुले हुए होना चाहिए । प्रसूता की परिचर्या में लगनेवाली दाई और अन्य स्त्रियाँ भी साफ कपड़ों में खूब हाथ-पैर धोकर प्रसूतिगृह में जावें । ऐसी बूढ़ी और अनुभवी स्त्री प्रसूता के पास अवश्य रहनी चाहिए जिसको अनेक बार के प्रसव का ज्ञान हो ।

प्रसव एक ऐसा आपरेशन हैं जो बिना शस्त्र के होता है । सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रसव के समय बहुत धैर्य रखना चाहिए और गर्भ को स्वयमेव ही बाहर निकलने देना चाहिए, जब तक अनिवार्य आवश्यकता न हो तब तक उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और गर्भ को बलात् निकालने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए ।

जब प्रसव का समय निकट आता है तो गर्भवती स्त्री को अनायास थकान, क्षीणता, बार-बार मल-मूत्र करने की हाजत मालूम होती है । आँखें बाहर को आती-सी लगती हैं । मुंह में फेन आने लगता है । कुक्षि शिथिल हो जाती है । पेडू का निचला भाग भारीं हो जाता है । पेट, कमर, तरेट और उसके दोनों ओर जांघों के जोड़ों में और हृदय में वेदना अनुभव होती हैं । योनि में स्फुरण होता है और स्राव बहने लगता है । फिर पीरें आती है और गर्भोदक बहने लगता है । गर्भोदक बहने से गर्भ के बाहर आने और अपरा निकलने तक की तीन स्थितियाँ प्रसूता के लिए बहुत गंभीर होती है । उन तीनों के बीच प्रसूता को क्षणिक विश्राम और शक्ति देने के लिए काफी घी में बनी गर्ग-गर्म पतली लप्सी पिलाना चाहिए । लप्सी पिलाने से गर्भ नीचे की ओर खिसकता है और गर्म तथा स्निग्ध

पेय होने से वह प्रसूता की थकान को हरण करती है।

यवागू (लप्सी) पिलाकर प्रसूता को मुलायम बिस्तर पर सीधा पैर सिकोड़ कर लिटा दें। फिर पीठ और बगलों में, कमर और टांगों में गुनगुने तेल की मालिश करें। यदि गर्भ का सिर सीधा होकर बस्ति प्रदेश तक न आवे तो प्रसूता को थोड़ा चलना चाहिए। इस पर भी यदि गर्भ का सिर नीचे न आवे तो सावधानी से प्रसूता को पलंग पर लिटा देना चाहिए और प्रजनन कार्य में बहुत कुशल स्त्री प्रसूता के पाँव की ओर बैठकर प्रसूता के योनि-मार्ग पर तैल की अनुलोम मालिश करे और प्रसूता की जांघों को दबावे और बस्तिकर्म कर दे।

प्रसूता को बिना वेदना के गर्भ को बाहर निकालने के लिए जोर नहीं लगाना चाहिए। जब वेदना उठे तब ही जोर लगाना चाहिए। जब सिर नीचे आ जावे तब साधारण जोर से प्रवाहण करना चाहिए। जब गर्भ योनि-मुख में आजावे तब उस समय तक पूरे जोर के साथ प्रवाहण करना चाहिए जब तक सारा बच्चा बाहर न आ जावे।

सामान्यत: गर्भ बाहर आ जाने के दस-बीस मिनट बाद अपरा अपने-आप बाहर आ जाती है। इतने समय बाद भी अपरा न निकले तो प्रयत्न करके निकालना चाहिए।

प्रसवोपरान्त गर्भाशय की सफाई का कार्य प्राकृतिक रूप से होता है। गर्भ के उपरान्त जो तरल रस एवं आर्तव निकलता है वह स्वयं बहुत कीटाणुनाशक होता है तथा गर्भाशय और योनि मार्ग को धोकर विसंक्रमित करता है। इस प्राकृतिक सफाई में कोई बाधा नहीं डालनी चाहिए अर्थात् प्रसवोपरान्त निकलने वाले रक्त को सम्पूर्णत: निकल जाने देना चाहिए।

प्रसव कर्म के उपरान्त प्रसूता के अंगों को साफ करने में कदापि गंदे वस्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। ठंडा पानी भी प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। तीखी और सीधी हवा से बचाव रखना चाहिए।

प्रसवोपरान्त गुह्यांगों, शरीर और वस्त्रादि की पूर्ण स्वच्छता का बहुत ध्यान रखना चाहिए। प्रसूता को अजवान आदि की धूनी देनी चाहिए और प्रसूतिगृह में भी राल-गूगल, गंधक आदि जलाकर विसंक्रमण करना चाहिए।

प्रसव के बाद प्रायः प्रसूता को वायु अधिक रहती है, ऐसी दशा में प्रथम तीन दिन तक वायु शामक पदार्थ ही उसे खिलाना चाहिए। प्रथम तीन से पांच दिन तक कोई गरिष्ठ पदार्थ नहीं देना चाहिए। केवल दूध और दशमूल का काढ़ा ३ दिन पिलाने से प्रसूत सम्बन्धी कोई रोग नहीं होता। फिर प्रसूता को गुड़-घी आदि में बना हरीरा पिलाना चाहिए। डेढ़ मास तक प्रसूता के लिए आहार-विहार विश्राम के नियमों का कड़ाई के साथ पालन करना चाहिए। प्रसव में खोई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिये प्रसूता को पर्याप्त पौष्टिक भोजन देना चाहिए और दशमूल क्वाथ का विधिवत् सेवन करना चाहिए और पेट पर पट्टी (Abdominal Bandage) बांधना चाहिये।

इसके साथ ही सद्योजात शिशु की ओर भी जनते ही ध्यान देना चाहिए। गर्भ के निकलते ही शिशु कुछ मूर्च्छित-सा होता हैं; तथापि स्वयं रोता है। यदि न रोये तो उसे डराकर रुलाने का उपक्रम करना चाहिए। उत्पत्ति के कुछ देर बाद जब नाभिनाल का स्पंदन बन्द हो जावे तो नाभि से दो इंच लम्बाई पर एक इंच के अन्तर से दो सूत के बंधन बांधना चाहिए और दोनों के बीच में नाभिनाल को स्वच्छ शस्त्र से काट देना चाहिए। नाभि पर हल्दी चूर्ण डालकर पट्टी बाँध देनी चाहिए। सद्योजात शिशु को सावधानी से साफ कर स्वच्छ कपड़े से ढक कर रखना चाहिए। माता के लिये भी हल्दी का पिचु गर्भाशय के मुख पर रखना अच्छा है।

प्रथम तीन दिन तक माता का दूध बच्चे को नहीं पिलाना चाहिए। गाय के दूध में चौगुना पानी तथा तालमिश्री या ग्लूकोज मिलाकर देना अच्छा है।

शहरी क्षेत्र में आधुनिक सभ्यता के प्रसार में स्त्रियों का जो घरेलू काम-काज छूट गया है, वह भी स्त्री-रोगों की वृद्धि कर रहा है। इसलिए स्वस्थ रहने की इच्छा रखनेवाली स्त्रियों को यह चाहिए कि वे भारतीय संस्कृति के अनुसार ही जीवनक्रम बनावें। घर की स्वच्छता, भोजन बनाना, थोड़ा-बहुत आटा पीसना—इतना परिश्रम का काम यदि स्त्री करती रहे तो उसका स्वास्थ्य भलिभाँति सुरक्षित रह सकता है।

स्त्री-जीवन का सर्वोपरि महत्त्व सन्तान के पालन पोषण में है। मातायें

अपने शिशु को शैशवावस्था में ही स्वस्थ रखने का ध्यान रक्खें तो जीवन भर के लिए स्वास्थ्य की अच्छी नींव पड़ जाती हैं। शारीरिक निर्माण के अतिरिक्त माता सन्तान में अच्छी आदतें डालने का कार्य सबसे उत्तम कर सकती है। बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा का कार्य भी माता को घर में करना चाहिए।

घर की व्यवस्था, घर के सामान की सुरक्षा, आय-व्यय का हिसाब-किताब रखने के अलावा सबसे बड़ा काम जो घर में स्त्री कर सकती है वह घर के सभी प्राणियों की स्वास्थ्य रक्षा का है। बीमार की सेवा और परिचर्या पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक सफलतापूर्वक कर सकती है। जब घर में कोई बीमार हो तो स्वाभाविक रूप से भावुक होने के कारण स्त्री को ऐसा भाव कभी नहीं दिखाना चाहिए कि जिससे रोगी यह समझे कि वह भयंकर रूप से बीमार है। विशेषकर जब घर में कोई बच्चा बीमार होता है या पति अस्वस्थ होता है तो हमारे यहाँ मातायें और पत्नियाँ विलाप तक करने लगती है। यह उचित नहीं। ऐसा करने से रोगी के मन पर दुःखकारक प्रभाव पड़ता है और इसका रोग जटिल बनता है। इसलिए घर में किसी के रोगी होने पर स्त्री को बहुत धैर्यवान् बनकर उसकी परिचर्या करनी चाहिए। धैर्यपूर्वक की गई परिचर्या औषधि से कई गुना लाभ करती है।

घर-सेवा में सबसे अधिक निपुण स्त्री स्वयं के स्वास्थ्य के प्रति लापरवाह होती है। उन्हें निज का स्वास्थ्य ठीक करने के प्रति भी सावधान रहना चाहिए। प्रायः हमारे घरों में स्त्रियाँ बचा-खुचा और अधिकतर बासी भोजन खाती हैं। यह बड़ा दोषपूर्ण है। भोजन में घी-दूध, आदि पौष्टिक तत्त्व जितने पुरुष के लिए आवश्यक है, उससे कुछ अधिक ही स्त्री के लिए भी जरूरी हैं, क्योंकि स्त्री को तो अपने शरीर से ही शिशु के शरीर का निर्माण भी करना पड़ता है। इसलिए भोजन में बचा-खुचा, जूठा-बासी खाना खाने की आदत का परित्याग करना चाहिए। सद्गृहस्थ की स्त्रियाँ स्वभाव से कुछ कृपण होती हैं; परन्तु उन्हें अपने भोजन में ही कृपणता नहीं करनी चाहिए। सन्तुलित भोजन से ही स्वास्थ्य और सौन्दर्य बनता हैं।

स्नान के बाद गीले वस्त्र पहनने की आदत बहुधा ग्रामीण स्त्रियों में होती है, जो उनको खाज-खुजली आदि चर्मरोग का शिकार बनाती है। यह आदत उन्हें छोड़ना चाहिए।

जब कभी कोई स्त्री बीमार होती है तो स्वाभाविक संकोचशीलता के कारण बहुत दिनों तक तो वह अपना कष्ट किसी को बताती नहीं, चिकित्सक को दिखाने में भी संकोच करती है। इसका परिणाम यह होता है कि रोग उसके शरीर में गहरी जड़ जमा लेता है। बीमारी के मामले में कदापि कोई संकोच नहीं करना चाहिए। और जब भी थोड़ी-सी ही बीमारी का आरंभ हो चाहे वह कैसी हो, उसको घर के लोगों और वैद्यराज को सही-सही बताने में कभी देर नहीं करनी चाहिए। बीमार-अवस्था में भी मामूली बुखार, खाँसी की उपेक्षा करके, घर का काम करते रहने से अन्ततः बीमारी असाध्य होकर जीवन भर के लिए गले पड़ जाती है।

रोग-प्रकरण

रोगों के तीन कारण

स्वास्थ्य-प्रकरण में पूर्ण स्वास्थ्य और आरोग्य के जिन लक्षणों पर हमने विचार किया, वस्तुतः उनसे उल्टी स्थिति को ही रोग कहना चाहिए। **'रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोग्यता'**--अर्थात् दोष (वात-पित्त-कफ) की विषमता ही रोग है और दोषों की साम्यावस्था ही आरोग्य है।

आयुर्वेद-शास्त्र में जिस प्रकार पूर्ण स्वास्थ्य के तीन उपस्तंभ बताये गये हैं, उसी प्रकार रोगों के भी तीन ही आयतन (कारण) कहे गये हैं :--

'त्रीण्यायतनानि इति–इत्यसात्म्येन्द्रियार्थसंयोग. प्रज्ञापराधः परिणामश्चेति'।

अर्थात् रोग होने के तीन मुख्य कारण हैं :(१) इन्द्रियों का उनके विषयों से असात्म्य संयोग, (२) प्रज्ञापराध यानी बुद्धि की भूलें और (३) परिणाम अर्थात् काल इन्द्रियों-विषयों के असात्म्य-संयोग का, वाग्भट के निम्न श्लोक में सुबोध दिग्दर्शन है :—

कालार्थकर्मणां योगो हीनमिथ्यातिमात्रकाः।
सम्यक् योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम्॥

काल अर्थात् ऋतुयें, वायु, दिन-रात, और दैनिक कार्यों का समय; **अर्थ** यानी इन्द्रियों के विषय अर्थात् इन्द्रियों के भोग्य पदार्थ; **कर्म** यानी कर्म इन्द्रियों की क्रियायें या शरीर, मन और वाणी की चेष्टायें--इन तीनों के संयोग और उपयोग में न्यूनता, आधिक्य या विपरीतता, रोग का कारण हैं और तीनों का सम्यक् उपयोग--आरोग्य का हेतु है।

काल, अर्थ और **कर्म** तीनों के संयोग में परस्पर हीन, अति या विपरीत न हो, और तीनों के उपयोग में व्यावहारिक न्यूनाधिक्य या विरोधाभास न हो-- इस सहज सत्य का ध्यान रखकर स्वाभाविक आचरण करने वाला व्यक्ति सर्वथा नीरोग रहकर शतायु हो सकता है।

उक्त श्लोक में योग शब्द का अपना विशिष्ट अर्थ है। योग की वैदिक परिभाषा **'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः'** अथवा गीता की योग-व्याख्या **'योगः कर्मसु कौशलम्'**--इन दोनों अर्थों से भिन्न यहाँ योग का अभिप्राय व्यवहार या संयोग से है।

काल का योगायोग

काल के कई अर्थ हैं। एक तो काल परमात्मा का स्वरूप है। वह एक परात्पर शक्ति है। अर्थ और कर्म में उस परमात्मस्वरूप काल से असंयोग करने वाला अथवा काल के अर्थ के विपरीत कार्य करने वाला या हीन और अति करने वाला व्यक्ति नीरोग नहीं रह सकता।

इसके अतिरिक्त रोगारोग्य के उपरोक्त साधन में काल से मुख्यतः चार अभिप्राय हैं। (१) ग्रीष्म; वर्षा और शीत आदि ऋतुकाल, (२) बाल्य, युवा और जरा आदि आयुकाल, (३) प्रातः, मध्यान्ह, सायं और रात्रि आदि प्रहर-काल, और (४) भोजन, निद्रा, शौच आदि दैनिक कार्यों का क्रिया-काल। इन चारों प्रकार के कालों में व्यवहारिक हीनता, अति या विपरीतता--रोग की उत्पत्ति के निश्चित कारण होते हैं।

काल के ये ऋतु हीन, मिथ्या और अतियोग भी दो प्रकार के होते हैं--एक तो ईश्वरीय या प्राकृतिक कारण से, दूसरे मनुष्य की अपनी भूलों से, अज्ञानता से या जानबूझ कर भी अवहेलना करने से।

ऋतुकाल का योगायोग

ग्रीष्मऋतु का काल आने पर भी उचित मात्रा में गर्मी न पड़े, या शीतऋतु में ठंडा न हो अथवा वर्षाऋतु में पानी न बरसे तो यह ऋतुकाल का प्राकृतिक हीन-योग हुआ जो सभी जीवों के लिए रोग का कारण है।

इसी प्रकार गर्मी की ऋतु आते ही ठंडे स्थानों में चले जाना, अथवा अन्य भौतिक साधनों (खश की टट्टियाँ या कूलर आदि) से निर्मित कृत्रिम ठंडक के ही वातावरण में निरन्तर रहना और ऋतु अनुकूल गर्मी का स्पर्श ही न होने देना यह ग्रीष्मकाल का हीन-योग करना है। ऐसे ही शीतऋतु में चौबीस घण्टे

हीटर लगाये रहना या अग्नि के निकट रहना, अथवा शरीर को सम्पूर्णतः ढक लेने वाले पश्चिमी ढंग के वस्त्र निरन्तर पहने रहना और शीत का बिल्कुल ही उपभोग न करना--शीतकाल का हीन योग है। यही बात वर्षा के लिए है। वर्षाऋतु में पानी से इतना बचना कि एक बूंद भी शरीर को न छू जावे--यह वर्षाकाल का हीन योग करना है। भारतवर्ष में ऋतुकाल के यह मनुष्य-कृत हीन योग कहे जावेंगे जो निश्चित रोगोत्पत्ति के हेतु हैं।

ऋतुकाल का मिथ्या और अतियोग भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। ऋतु के प्राकृतिक भाव के प्रतिकूल अर्थात् बिलकुल उल्टी स्थिति को मिथ्या योग कहा जायगा। जैसे ग्रीष्मऋतु की प्रकृति उष्णता है। उसके विपरीत गर्मी में जाड़ा पड़े या पानी बरसे तो यह ग्रीष्मकाल का ईश्वरीय मिथ्यायोग है। व्यवहार में उल्टा चलना जैसे गर्मी में शीत की भाँति आग तापना, या गर्म कपड़े पहनना, अथवा शीत में महीन मलमल के वस्त्र पहन कर घूमना, या वर्षाऋतु में गर्मी-सर्दी जैसा आहार-विहार करना जैसा कि प्रायः तपस्या करने वाले करते हैं, तो यह ऋतुकाल का मनुष्य-कृत मिथ्या योग है, जो रोग का कारण बनता है।

प्रकृति-प्रकोपवश किसी ऋतु में उसके प्रभाव की अत्यधिक तीव्रता होना जैसे गर्मी में तीव्रतम गर्मी पड़े, शीत में अत्यधिक ठंड हो, और वर्षा में असीम जलवृष्टि हो, तो ऋतुकाल का दैवकृत अतियोग कहा जायगा। ऋतु-प्रभाव से बचाव की नितान्त उपेक्षा करना—जैसे कड़ाके की धूप और लू में कोई बिना छाता, नंगे पैर और खुले बदन घूमे तो यह ग्रीष्म का मनुष्य-कृत अतियोग है। इसी प्रकार शीत और वर्षा की सर्वथा अवहेलना करके असात्म्य आहार-विहार करना अतियोग है जो आरोग्य का नाशक है। रोग आने का मार्ग है।

आयुकाल का योगायोग

बाल्यावस्था, युवावस्था और बुढ़ापा—मनुष्य जीवन के यह तीन आयुकाल हैं। बाल्यकाल के कार्य हैं खेलना कूदना, खाना-पीना और निर्द्वन्द्व रहना, फिर उचित आयु से ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करना। बाल्यकाल की कुछ स्वाभाविक प्रवृत्तियां होती हैं, उनमें न्यूनाधिक्य या विपरीतता ही असात्म्य योग है।

बाल्यकाल में दूध-दही-मक्खन आदि मधुर पौष्टिक पदार्थ बच्चे को खाना चाहिए। इनका बिल्कुल न खिलाना हीन योग, बहुत अधिक खिलाना अतियोग और इनकी अपेक्षा बच्चों को चाय-काफी आदि हानिकारक पदार्थ खिलाना पिलाना मिथ्या योग हैं। चंचलता शिशु का स्वभाव है, यदि वह बिल्कुल न होने देना और बच्चा रींझा-रींझा तथा उदास हो तो हीन योग, अत्यधिक चंचल हो तो अतियोग और उसके विपरीत गंभीर हो तो मिथ्या योग होता है। इन अयोगों का प्रभाव निश्चित रूप से बालक के स्वास्थ्य पर परिलक्षित होता है। बच्चे को कपड़ों में बहुत ढँकना और ऋतु-प्रभाव का स्पर्श न होने देना भी अयोग है।

यौवन-काल की प्रवृत्ति खूब तन्दुरुस्त रह कर, सन्तोषपूर्वक अर्थ-संग्रह व्यवसाय, गृहस्थी का पालन, सन्तति-प्राप्त्यर्थ समय-समय पर उचित परिमाण में स्त्री-संभोग, गृहस्थी का सुख भोगना, भोग्य सामग्री का संचय करना आदि हैं जो कार्य करने के हैं, उन्हें बिलकुल न करना ही हीन योग है, हर प्रवृत्ति अति करना अतियोग और प्रवृत्ति के विपरीत करना मिथ्या योग है। युवा अवस्था में स्वाभाविक तेजस्विता न होना यौवनकाल का हीन योग है, अत्यधिक तेजस्वी (उद्दंड) होना अति योग है और यौवन काल में बाल्यावस्था जैसे लक्षण या बुढ़ापे जैसी शिथिलता होना मिथ्या योग है।

वृद्ध-अवस्था काल में स्वयमव इन्द्रियाँ शिथिल और शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है। इस आयुकाल में संन्यस्त (रिटायर्ड) जीवन बिताना उचित होता है। त्याग और सेवाभाव में मगन होकर भगवद् भजन तथा सार्वजनिक और सामाजिक सेवा के काम करना बुढ़ापे की सर्वोत्तम प्रवृत्ति है। इसके विपरीत बुढ़ापे में भी तृष्णा, लोभ और कामवश सांसारिक कार्यों में लिप्त रहना और शक्ति न होते हुए भी परिश्रम करना असात्म्य है।

सारांश यह है कि आहार-विहार और आचरण में, जिस आयुकाल में जिस प्रकार का व्यवहार उचित है, उसमें कमी करना हीन योग, अधिकता करना अति योग और उल्टा करना मिथ्या योग है।

आयुकाल का हीन-मिथ्या-अतियोग इस प्रकार समझना चाहिए

शैशवावस्था में समुचित विकास का न होना हीनयोग, बाल्यावस्था में ही यौवन का उभार होना अतियोग और युवावस्था में बुढ़ापा आना मिथ्या योग है। ये सभी स्थितियाँ रोग के लक्षण हैं।

प्रहर-काल का योगायोग

वैसे तो चार प्रहर दिन में होते हैं और चार ही प्रहर रात्रि में होते हैं, तथापि संक्षेप में यहाँ हम दिन, संध्या और रात्रि—यह तीन ही प्रहर-काल मान लें तो इनके नियमित प्रभाव, स्थिति और कार्य-व्यवहार में असात्म्य, रोग का कारण है। तीनों प्रहर कालों में वायु, पित्त और कफ की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती हैं, उन अवस्थाओं में न्यूनाधिक्य अथवा प्रतिकूलता अस्वास्थ्य का निश्चित कारण है।

सामान्यत: दिन का काल-कार्य करने के लिए, संध्याकाल चित्तवृत्तियों को शान्त एवं प्रसन्न बनाकर आराधना करने के लिए और रात्रि का काल पूर्ण विश्राम के लिए है। कोई दिन में सोवे और रात में जागकर काम करे तो यह प्रहर-काल का दुरुपयोग ही हुआ। सूर्योदय से सूर्यास्त तक बारह घण्टे के दिन में बिलकुल हाथ-पैर न चलाना हीन योग, शक्ति के बाहर लगातार परिश्रम और काम करना अतियोग तथा सुबह से शाम तक सोते रहना मिथ्यायोग है। इसी प्रकार सूर्यास्त से सूर्योदय तक बारह घण्टे की रात्रि में बहुत थोड़ा सोना हीन योग, बहुत अधिक सोना अतियोग (अवस्थानुसार ७-८ घंटा सोना चाहिए) और बिलकुल न सोकर अहोरात्रि जागरण करना मिथ्या योग है।

संध्याकाल—वस्तुतः दिन और रात्रि के संधिकाल को संध्या कहते हैं। रात्रि का अन्त और दिवस का प्रारंभ भी सन्धिकाल है। इन दोनों संधिकालों में शान्त और प्रसन्न रहने की अपेक्षा, आलस्य में रहना, अधिक व्यस्त रहना, चिंतन, अध्ययन या मैथुन आदि अशांत बनानेवाले कार्य करना—यह संध्याकाल का असात्म्य योग है। इसी प्रकार प्रहर कालों के प्रभाव से बिलकुल बचना हीनयोग, अतिकरण अतियोग और विपरीत कार्य का ग्रहण मिथ्या योग है।

क्रिया-काल का योगायोग

शौचादि से निवृत्त होने, भोजन करने, सोने और अन्य दैनिक कार्य करने

के निश्चित समय को क्रिया-काल कहा जाता है। जितनी भी शरीर की क्रियाएँ हैं, उनका नियत समय पर उचित ढंग से पालन होना ही चाहिए। क्योंकि उनका व्यतिक्रम रोग-कारक होता है। शौच के समय पर शौच न जाना, भोजन के समय भोजन न करना, काम के समय काम न करना और सोने के समय नहीं सोना। इसमें अति करना या उल्टा-सीधा करना। सब रोगी होने के लक्षण हैं।

जैसे आजकल हमारे विद्यार्थी युवक केवल परीक्षा के दिनों में रात-दिन एक कर देते हैं और जाग-जाग कर पढ़ते हैं। पहले से ही नियमित पढ़ते रहें तो उन्हें समय का यह मिथ्या योग न करना पड़े। प्राय: लोग आधी रात तक का समय मित्र गोष्ठियों में, सिनेमा-क्लब या अन्य अनावश्यक कार्यों में बिता देते हैं, फिर सुबह देर तक सोते रहते हैं। ऐसे लोगों के समस्त क्रियाकाल अस्तव्यस्त रहते हैं, फलत: वे किसी न किसी रोग के शिकार बन जाते हैं।

जिस क्रिया के हेतु जो समय उचित और नियत है, उसके उपयोग में या उस क्रिया में न तो हीनता करनी चाहिए, न अति करनी चाहिए और न ही प्रतिकूल आचरण करना चाहिए––यही क्रिया-काल, एवं काल और क्रिया के संयोग का सम्यक् उपयोग है; जो कि स्वाभाविक आरोग्य का देने वाला है।

अर्थ का योगायोग––

रोगारोग्य के कारण-सूचक उक्त श्लोक में अर्थ का मतलब इंद्रियों का भोग्य विषय है। हमारे शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और उनके पाँच विभिन्न कार्य और विषय हैं। नेत्रेन्द्रिय (आँखों) का कार्य देखना है, और दिखाई देने वाली वस्तु उनका विषय है। सुनना-श्रवणेन्द्रिय (कानों) का कार्य है और सुनाई देने वाला शब्द या स्वर उनका विषय है। गंध लेना घ्राणेन्द्रिय (नाक) का कार्य है और गंध उसका विषय है। विविध रसों का स्वाद-ज्ञान करना रसनेन्द्रिय (जीभ) का कार्य है और रस उसका विषय है। स्पर्श-ज्ञान करना त्वगिन्द्रिय (त्वचा-चमड़ी) का कार्य है और उससे स्पर्श होने वाला पदार्थ शीत, उष्ण, नर्म, कठिन आदि उसका विषय हैं।

इन्द्रियों के उपभोग पदार्थ-विषयों में हीन, मिथ्या और अति स्थिति और

इन्द्रियों की क्रियाओं में हीन, मिथ्या या अति आचरण ये दोनों ही अवस्था रोग के निश्चित कारण हैं।

आधुनिक काल में पश्चिमी सभ्यता के अन्धानुकरणवश हमारे देश में इन्द्रियों के कर्म और अर्थ (विषयों) में सर्वाधिक असात्म्य व्यवहार बढ़ रहा है। उसी का परिणाम है कि रोग बढ़ रहे हैं। असम जागरण, सिनेमा आदि का अति दर्शन और अनावश्यक अधिक पढ़ाई आदि से नेत्र-विकृति बढ़ रही है। तेज गंधवाले इत्र-तेल, स्नो-क्रीम आदि के बहुप्रयोग से घ्राणेन्द्रिय का दुरुपयोग हो रहा है। स्वादवश रसनेन्द्रिय (जीभ)के असात्म्य योग का तो कहना ही क्या?

आँखों से स्वाभाविक निरीक्षण का काम लेना चाहिए। अर्थात् मनोनुकूल दृश्य, प्राकृतिक दृश्य, साधु-पुरुष और काम-काज की उपयोगी वस्तुओं को उचित स्थिति और स्वरूप में देखना चाहिए। एकदम आँखें बन्द किये रहना और कुछ देखना ही नहीं, नेत्रेन्द्रिय का हीन योग है। सूर्य या विद्युत आदि अति तेज प्रकाश या सिनेमा आदि दृश्य अधिक समय तक निरन्तर देखना अथवा किसी भी वस्तु को अपलक देखना--नेत्रेन्द्रिय का अतियोग है। बहुत महीन अक्षरों को आँख गढ़ाकर पढ़ना अथवा बहुत पास या अतिदूर की वस्तु को देखना, भयानक, रौद्र वीभत्स, विकृत दृश्य अथवा अनिच्छित वस्तुओं को देखना--नेत्रेन्द्रिय का मिथ्या योग है।

जिस वस्तु या दृश्य पर हमारी दृष्टि पड़ रही है, उससे यदि हमारी आँखों पर खिंचाव पड़ रहा है अथवा वह आँखों के लिये कष्टदायक है, अरुचिकर है, चौंधियाने वाला है, सहज दिखाई नहीं पड़ रहा, या जिसके देखने से भय लग रहा है या घृणा हो रही है; फिर भी देख रहे हैं तो वह निश्चित ही नेत्रेन्द्रिय तथा उसके विषय का असात्म्य संयोग है।

अत्यन्त तीव्र स्वर, जैसे बिजली की कड़क, तोप चलाने या बम फटने का ध्वनि, आतिशबाजी के धमाके और नगाड़ा आदि घोर शब्दवाले वाद्य का स्वर कानों में पड़ना--कर्णेन्द्रिय का अतियोग है। इसी कारण लोग बम की भीषण आवाज से बहरे हो जाते हैं। कानों में कोई शब्द ही न पड़ने देना, उसका हीन योग है और कटुवचन, [illegible] के [illegible] वाक्य, अप्रिय, अनिच्छित

और निन्दात्मक वाक्य आदि सुनना कर्णेन्द्रिय का मिथ्या योग है।

इसी प्रकार, अत्यन्त तीक्ष्ण, उग्र सुगंध या नाक वहानेवाले द्रव्यों का सूंघना घ्राणेन्द्रिय (नाक) का अतियोग है। नाक को सदा वन्द किये रहना और उससे गंध का आभास ही न करना उसका हीन योग है। अपवित्र, सड़ी हुई, मैली वस्तु, मुर्दा, विष और अन्य दुर्गन्धित पदार्थों की गंध को सूंघना नाक का मिथ्या योग है।

रसनेन्द्रिय अर्थात् जीभ वस्तुतः हमारे पेट की सतर्क पहरेदार है। जब भी हम कोई असात्म्य या हानिकर चीज खायेंगे तो वह हमें तुरन्त टोक देगी। जीभ से किसी स्वाद का स्पर्श या ज्ञान न होने देना, उसका हीन योग हैं। अत्यधिक स्वादिष्ट पदार्थों का बहुत प्रयोग करना जिह्वा का अतियोग हैं। प्रतिकूल पदार्थ खाना, अधिक चट-पटे मसाले और जीभ को जलाने वाले पदार्थों का बहुसेवन अथवा किसी एक ही रस का अतिसेवन करना जीभ का मिथ्या योग है। जो वस्तु जीभ को जलावे, ऐंठा दे या कड़वाहट उत्पन्न करे, उसका उपयोग जिह्वा का मिथ्या योग है।

किसी भी वस्तु के ठंडे, गर्म या शीतोष्ण, मृदु, कठिन आदि प्रभाव का ज्ञान हमें तभी होता है जब वह हमारी त्वचा से स्पर्श होती है। त्वचा से किसी प्रकार का स्पर्श कतई न होने देना या स्पर्शानुभूति न होना उसका हीन योग है। अत्यन्त शीत या अत्यन्त उष्ण पदार्थों का स्पर्श जैसे बहुत गर्म या वर्फ के जल से स्नान, अत्यधिक ठंडे या अत्यधिक गर्म तैल से मालिश आदि त्वचा का अतियोग है। विष, अग्नि, बिजली, शस्त्र, कठिन वस्तुओं आदि अहितकर वस्तुओं का स्पर्श त्वचा का मिथ्या योग हैं।

स्पर्शनेन्द्रिय का प्रभाव समग्र इन्द्रियों पर तत्काल पड़ता हैं। किसी वस्तु के त्वचा से छूते ही सारी इन्द्रियाँ उसकी ओर आकर्षित हो जाती हैं। कतिपय विद्वान मैथुन क्रिया को भी स्पर्शनेन्द्रिय का विषय मानते हैं। स्त्री-पुरुष के संयोग का आनन्द स्पर्श से ही अनुभव होता है। अतएव मैथुन में हीनता, अति या मिथ्या सेवन रोगों का निश्चित हेतु है।

संक्षेप में किसी भी इन्द्रिय का उसके उपभोग्य विषय के साथ असात्म्य संयोग चाहे वह चेष्टा से हो अथवा आकस्मिक हो, निश्चित रूप से रोग का कारण है।

कर्म का योगायोग

मन, वाणी और शरीर—ये तीन प्रधान कर्मेन्द्रियाँ हैं। इनके स्वाभाविक कार्य में हीनता अति और मिथ्यायोग भी रोगी होने के निश्चित कारण हैं। इन तीनों के सहयोग में असात्म्य अवस्था भी रोग का कारण है, क्योंकि तीनों का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। शास्त्रों में कहा है :—

यन्मनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति,
यद्वाचा वदति, तत्कर्मणा करोति।

कर्मेन्द्रियों की स्वाभाविक स्थिति यह है कि जो बात मन में होगी या उठेगी उसको ही वाणी कहेगी और जिसको वाणी कहेगी, वही शरीर करेगा। इसके विपरीत मन में कुछ और हो, वाणी में कुछ और हो और कर्म उससे भिन्न कुछ दूसरा ही हो, तो यही असात्म्य संयोग है जिससे मानसिक द्वन्द्व बढ़ता है और रोग उत्पन्न होते हैं। स्पष्ट है कि मन-वाणी और कर्म के असात्म्य से मानसिक सन्तुलन नष्ट होता है।

सबसे प्रधान कर्मेन्द्रिय मन है। मन का विषय है चिन्तन या सोच विचार। मन को एकदम बुझा-बुझा-सा उदासीन रखना और उससे कुछ सोचने विचारने का काम ही न लेना उसका हीन उपयोग है। सांसारिक विषयों का अत्यधिक चिन्तन करना, मन को निरन्तर व्यस्त बनाना, अधिक चिन्तित रहना, निरन्तर काम वासना या अर्थ (द्रव्य) का ही मन में ध्यान रखना आदि मन का अति योग है। जो मन वस्तुतः अच्छी, कल्याणकर और नैतिक बाते सोचने के लिये है, उसको काम, भय, क्रोध, शोक, लोभ, ईर्ष्या, अभिमान, मिथ्या दर्शन दूसरों की बुराई अथवा ऐसी बातें सोचने में लगाना जो वाणी और शरीर की सामर्थ्य के बाहर है—तो यह सब मन का मिथ्या योग है।

वाणी तो मनुष्य का भूषण ही है। उसके सदुपयोग या दुरुपयोग से मनुष्य अनेक सुखों और दुखों को वरण करता है। वाणी से अत्यन्त धीरे बोलना या

मौन रहना उसका हीन योग है। बहुत जोर से बोलना, चिल्लाना या देर तक आलाप करना, वाणी का अतियोग है। सदा ही दुष्टतापूर्ण बोलना, असत्य, कटु, अप्रिय, प्रसंग-विपरीत और रूखा बोलना—यह वाणी के मिथ्या योग हैं।

वाणी का संयम बड़ा सुखकर और स्वास्थ्य-रक्षक होता है। एक बार महात्मा गान्धी एक सभा में स्वाभाविक स्वर में बोल रहे थे। सभा खादी-कार्यकर्ताओं की थी। कार्यकर्ताओं की आवाज आई—'कुछ जोर से बोलिये, सुनाई नहीं पड़ता!'—गाँधीजी तो बड़े नियम-संयमी थे। उन्होंने तुरन्त कहा—'मुझे अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं करना है।'—बहुत बोलने या जोर से बोलने से शक्ति का अपव्यय होता है। क्योंकि वह वाणी का असात्म्य प्रयोग है।

हमारा शरीर कर्मेन्द्रियों का समूह है। हाथ-पैरों से ही हम विभिन्न कार्य करते हैं। हाथ-पैरों को एकदम निकम्मा बनाए रखना, शरीर का हीन योग है। हाथों से बहुत काम करना, निरन्तर चलाना, अत्यधिक परिश्रम करना और शक्ति से अधिक बोझा ढोना—यह सब शरीर का अतियोग है। मल-मूत्र, छींक, जंभाई आदि वेगों को रोकना या बलात् निकालना, विषमस्थान से गिरना, (ऊंचे से कूदना), विषम—ऊबड़-खाबड़ स्थान में घूमना या भागना, विषम प्राणायाम और व्यायाम करना, तथा विषम नृत्य आदि करना यह सब शरीर के मिथ्या योग हैं।

शरीर और अन्य कर्मेन्द्रियों के सदुपयोग पर बहुत स्वास्थ्य निर्भर करता है। किसी भी अंग से एक ही प्रकार का परिश्रम निरन्तर बहुत देर तक करते रहना, उस अंग का दुरुपयोग ही है। आज का शिक्षित वर्ग पढ़ने-लिखने और बोलने या भाषण देने में ही अधिक लगा रहता है। एक ही प्रकार से कर्मेन्द्रिय-प्रयोग करते रहने से शिक्षित वर्ग अधिकतर स्वस्थ नहीं रहता। एक बार आचार्य विनोबा भावे ने कहा था कि 'देश को विचारों की अपेक्षा काम की अधिक आवश्यकता है।'—इस कथन का यही अभिप्राय है कि सभी कर्मेन्द्रियों का सानुपात सम्यक् उपयोग किया जाय। केवल सोचते रहने या केवल वाणी से उपदेश देते रहने की अपेक्षा, थोड़ा सोचना, थोड़ा बोलना और अधिक करना—तब काम चलता है। सम्यक् उपयोग का अर्थ ही यह है कि किसी एक अंग पर अतिभार

न पड़े और हर शरीरांग का कुछ न कुछ उपयोग उचित रीति से होता रहे।

सम्यक् योग

आयुर्वेदोक्त सम्यक् योग का सिद्धान्त किसी विषय या वस्तु के भोग या कार्य का नितान्त निषेध नहीं करता। बल्कि यह सभी योग विषयों को भोगने के लिए प्रेरित करके सुखों की एक उचित सीमा का निर्धारण अवश्य करता है। सम्यक् योग का सिद्धान्त कहता है कि प्रत्येक विषय का उपभोग करो, परन्तु उसमें अति न करो, विपरीतता न करो। विषयों का उपभोग न करने को भी तो सम्यक् योग का सिद्धान्त दोष मानता है।

प्रज्ञापराध

इन्द्रियों के साथ उनके उपभोग्य विषयों का असात्म्य संयोग, रोगों का प्रथम कारण है। दूसरा कारण है—प्रज्ञापराध। इन्द्रिय-विषयों का असात्म्य संयोग दो प्रकार से होता है; एक तो दैवी या प्राकृतिक कारणों से आकस्मिक, दूसरा मनुष्य के प्रज्ञापराध के आचरणवश। इसलिए प्रज्ञापराध रोगों का अधिक बड़ा कारण हुआ। आयुर्वेद में कहा भी है। 'प्रज्ञापराधं हि मूलं रोगाणाम्।' अर्थात् रोगों की जड़ प्रज्ञापराध ही है।

प्रज्ञापराध का मतलब अन्तःकरण द्वारा (मानसिक) अपराध करना जैसा कि चरक महर्षि ने कहा है—

> धीधृतिस्मृति विभ्रष्टः कार्यं कर्म करोति यः
> प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोषप्रकोपणम्।

अर्थात्—धी, बुद्धि, धृतिः धैर्य स्मृति-आत्मज्ञान से भ्रष्ट होकर जो कर्म किया जाता है उसका नाम प्रज्ञापराध है, जो सब तरह के रोग पैदा करता है।

वर्तमान समय में देखा जा रहा है कि बुद्धि जो निर्णय करती है वह स्वार्थ मूलक निर्णय करती है; स्वार्थी व्यक्ति कहता कुछ है और करता कुछ है। इस कपट आचरण से अन्तरात्मा कुपित होकर उस व्यक्ति को दण्ड देती है। तब मन में अनेक तरह के दुष्ट भाव पैदा होते हैं—

> ईर्ष्याशोकभयक्रोध रागद्वेषादयश्च ये।
> मनोविकाराः येऽप्यक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः॥

ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, राग द्वेष आदि जो मनोविकार हैं वे सब प्रज्ञापराध से पैदा होते हैं।

समस्त संसार में ऊपर कहे मनोविकार बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। यूरोप, अमेरिका आदि देश कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। वहाँ के निवासी भी धनप्राप्ति के लिये सब कुछ करते हैं। भारतवासियों में भी ईर्ष्या भावना बहुत है। भाई-भाई को बड़ा होते देखकर प्रसन्नता के स्थान में ईर्ष्या करता है। प्रसन्नता की जगह शोक करते हैं। निर्भय के स्थान में भय ही भय है। क्षमा के स्थान में क्रोध है। समस्त भूमण्डल में राग और द्वेष दो भाव बड़े प्रबल हैं। सभी मानसिक विकारों में राग द्वेष अवश्य रहता है। ये सभी प्रज्ञापराध मूलक हैं जब बुद्धि विकृत हो जाती है तो व्यक्ति और समाज की धृति याने धैर्य भ्रष्ट हो जाता है। सर्दी, बुखार, दस्त आदि सामान्य बीमारी एक दो दिन के उपवास से शान्त होती है, वहाँ वर्तमान समय का व्यक्ति पैसा खर्च करके तेज दवा डाक्टर से लेता है इन तेज दवाओं के सेवन से रोग परम्परा चलती है—यह धैर्य न होने का दोष है। इसी प्रकार स्मृति अर्थात् आत्मस्मृति का भ्रष्ट होना भी प्रज्ञापराध है।

कबहूं मन विश्राम न मान्यो—
निशि दिन भ्रमत बिसार सहज सुख जहं तहं इन्द्रिन तान्यो।

तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में कहा है।

परिणाम

रोगों के आयुर्वेदोक्त तीन मुख्य कारणों में तीसरा कारण "परिणाम" है। परिणाम का अभिप्राय काल या समय अथवा उसका प्रभाव है। ऊपर कहे हुए इन्द्रिय विषयों के प्रयोग का जो कालानुबन्ध प्रभाव है—वही परिणाम है।

षड्ऋतुयें तथा दिन रात के तीन-तीन विभाग यह समय के घटक हैं। इन ऋतुओं और समयों में दोषों की विभिन्न स्थिति से जो स्वाभाविक रोग होते हैं, वे परिणाम कारणजन्य रोग कहे जाते हैं। कालक्रम के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले रोग भी परिणामज रोग हैं। आयु काल के स्वाभाविक रोग जैसे—वृद्धावस्था में शक्ति-शैथिल्य आदि भी परिणामजन्य हैं।

एक विशेष बात यह है कि परिणाम से उत्पन्न होनेवाले रोगों से बचाव का उपक्रम पहले से ही किया जा सकता है, क्योंकि वे प्रायः पूर्व निश्चित होते हैं। शरद, वर्षा, ग्रीष्म आदि ऋतुओं में प्रधानतः क्या विकार हो सकते हैं अथवा इन ऋतुओं की विकृति का क्या परिणाम हो सकता है इसका पूर्व ज्ञान होना आवश्यक है। ज्ञान होने से उन विकार-प्रभावों से बचने के लिए पहले से ही सावधान होना चाहिए। यदि परिणामज रोगों के प्रति पूर्व से ही बचाव की चेष्टा न की जावे, तो, उनसे बचा नहीं जा सकता। आयुर्वेद का मत है कि काल परिणाम से, जरा और मृत्यु (ये भी काल हैं) के कारण से जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे स्वाभाविक होते हैं, आयुर्वेद में स्वाभाविक रोगों से निबटने के लिए रसायन नामक अंग की रचना की गयी है।

संक्रामक रोग

एक से दूसरे व्यक्ति को लग जाने वाले रोगों को संक्रामक रोग (छूत की बीमारियाँ) कहा जाता है। श्वास-प्रश्वास से, कफ-थूक से, साथ-साथ भोजन करने से, एक बिस्तर पर सोने से, जूठा जल पीने या जूठा भोजन करने से और सहवास से संक्रामक रोगों के कीटाणु, एक से दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश पाकर रोग उत्पन्न करते हैं।

तथापि यह आनुभविक सत्य है कि संक्रामक रोगों के कीटाणु शरीर में अनुकूल भूमिका पाकर ही अपनी सृष्टि कर पाते हैं। पूर्ण रोग-निरोध-क्षमता-सम्पन्न स्वस्थ शरीर पर रोगों के कीटाणु भी अहितकर प्रभाव नहीं कर पाते। जैसे कोई भी बीज अनुकूल भूमि में ही पनपता है, वैसे ही रोगों के कीटाणु निर्बल और अस्वस्थ शरीर में ही पनपते और प्रभावकर होते हैं।

आयुर्वेद में संक्रामक रोगों के संक्रमण का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

> प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात्।
> सहशय्यासनाच्चापि, वस्त्रमाल्यानुलेपनात्॥

अर्थात् रोगी व्यक्ति के अंगों को स्पर्श करने से, उसकी निश्वास से, उसके साथ भोजन करने और साथ सोने-बैठने से, और रोगी के वस्त्रादि व्यवहार

करने से—रोग पीड़ित व्यक्ति के रोगाणुओं का संक्रमण-स्वस्थ व्यक्तियों में हो जाता है।

कीटाणुयुक्त गन्दा जल पीने, सड़ी-गली चीजें खाने और गन्दे वायुमण्डल में रहने से भी संक्रामक रोग फैलते हैं।

संक्रामक रोगों के मुख्यत: चार प्रकार हैं :—

(१) वायु द्वारा कीटाणु-संक्रमण से होने वाले,
(२) जीवाणुयुक्त गंदा जल पीने से होने वाले,
(३) कीटवंश से फैलने वाले,
(४) मनुष्यों के परस्पर संपर्क से होने वाले।

वायु से फैलने वाले रोग

राजयक्ष्मा (तपेदिक)

वायु से फैलने वाले संक्रामक रोगों में क्षय सबसे भयंकर है। यह महारोग जीवन-सुख को नष्ट करके, अल्पायु में ही मृत्युकारक है। घर में किसी एक को होने पर यह रोग असावधानीवश परिवार के अन्य जनों को भी लग जाता है। इतना ही नहीं इसका क्रम पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक चलता है। इसलिए इस भयानक रोग से बचाव रखना प्रत्येक के लिए अत्यावश्यक है।

वर्तमान काल में, क्षयरोग, हमारे देश के लिए एक बड़ी समस्या है। संसार भर में सबसे अधिक लोक प्रतिवर्ष भारत में क्षय के रोगी होते हैं। जनसामान्य की व्याधि-क्षमता और जीवशक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाने से यह स्थिति है कि क्षय के कीटाणु, अल्पाधिक मात्रा में, प्राय: शत प्रतिशत व्यक्तियों में पाया जाना असंभव नहीं है। शरीर में क्षय के कीटाणु रहते हुए भी, बहुतसे व्यक्ति व्याधि-क्षमता में सबल और स्वस्थ हुए तो स्वत: ही अच्छे हो जाते हैं और उन्हें सामान्यत: पता भी नहीं लगता कि कब क्षय हुआ और कब ठीक हो गया। तथापि वर्तमान काल में, विशेषकर हमारे देश में लाखों व्यक्ति क्षयग्रस्त होकर जीवन खो देते हैं।

क्षयरोगी के थूक में क्षय के अगणित कीटाणु रहते हैं, इसलिए रोगी का थूक (कफ) सर्वाधिक संक्रमण का कारण होता है। थूक में मिले क्षय के रोगाणु

अंधेरे स्थान में तो महीनों तक जीवित रहते हैं, और उनमें रोग-संक्रमण की शक्ति बनी रहती है। भली-भाँति प्रकाशित और हवादार स्थानों में भी क्षय के रोगाणु ७-८ दिन तक जीवित रहते हैं। खुली धूप में अवश्य ही ५-६ घण्टों में मर जाते हैं।

रोगी का थूक (कफ) यदि खुला पड़ा रहे तो रोगाणु दूसरे व्यक्तियों पर निश्चित आक्रमण करते हैं। थूक सुखने पर उसके छोटे-छोटे कण हवा में मिल जाते हैं और नाक से श्वास द्वारा दूसरे व्यक्तियों में प्रवेश पा जाते हैं, अथवा थूक के वे कण (रोगाणु) हवा की धूल के साथ खाने-पीने के पदार्थ पर जम जाते हैं; और जो भी उन पदार्थों को खाता है, उसके शरीर में पहुँच कर, क्षय के रोगाणु अपनी सृष्टि करते हैं। इसी प्रकार क्षय रोगी के प्रश्वास से निःसृत वायु में क्षय के कीटाणु होते हैं जो दूसरों के श्वास में मिलकर उन्हें रोगी बनाते हैं।

धूल, धुआँ, वालू तथा रेशम, सूत या जूट के रेशे जिस वायु मण्डल में मौजूद हों, जूट, कपड़ा, रेशम आदि के मिलों में काम करने वाले व्यक्तियों को क्षय-रोग बहुत होता है। इसका कारण यह है कि उक्त प्रकार के वायुमण्डल में काम करने वाले लोगों के फेफड़े निश्चित रूप से कमजोर हो जाते हैं। वायु में मिश्रित धूल, धुआँ, बालू या रेशे—फेफड़ों पर अपनी तह जमा लेते हैं, जिससे फेफड़े मैले और अशक्त हो जाते हैं। मैले और निर्बल फेफडों पर क्षय के कीटाणु शीघ्र ही प्रभाव कर लेते हैं। अधिक जनाकीर्ण गंदे, दुर्गन्धयुक्त, सील एवं दूषित हवा वाले स्थानों में निरन्तर रहने वालों को भी क्षय रोग शीघ्र होता है।

क्षय से पीड़ित गाय-भैंस का दूध पीने से भी क्षयरोग हो जाता है। परन्तु बकरी का दूध सर्वथा निरापद है, बल्कि क्षय-निवारण में सहायता करता है। क्योंकि बकरी पर क्षय के कीटाणु कोई बुरा प्रभाव नहीं कर पाते।

क्षयरोग फैलता तो संक्रमण से ही है; परन्तु इसकी उत्पत्ति का मूल कारण शारीरिक शक्ति और रस-धातुओं का अत्यधिक अपव्यय है। निरन्तर शक्ति से अधिक परिश्रम करते रहने, अधिक मैथुन करने और भोजन में पर्याप्त पौष्टिक तत्व न लेने से जो शरीर कृश हो जाता है, वह क्षय-कीटाणुओं को अपनी सृष्टि

बढ़ाने के लिए एकदम अनुकूल होता है। वास्तव में शरीर की रस-धातुओं, बल-वीर्य और ओज के अनुचित अपव्यय से शरीर का क्षय (क्षीणता) हुआ हो तो वह क्षय रोग है। इसलिए क्षयरोग से बचाव का सबसे उत्तम साधन पौष्टिक आहार और शारीरिक शक्तियों का अपव्यय न करना ही है। क्षय रोगी के संक्रमण से सावधान रहना भी आवश्यक है।

जब भी देखें कि घर में किसी को निरन्तर ज्वर रहता है, साथ में खांसी आती है और शरीर धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है। वजन घट रहा है और चेहरा रूखा पड़ता जा रहा है, तो समझ लीजिए कि उसको क्षय हो रहा है। ऐसी स्थिति होने पर यथाशीघ्र रोगी का एक्सरे तथा थूकादि की परीक्षा करा लेनी चाहिए और क्षय सिद्ध होने पर उसको किसी 'सेनिटोरियम' (क्षय चिकित्सालय) में भरती कर देना चाहिए। 'सेनिटोरियम' में भरती कराना शक्य न हो तो घर में ही रोगी को पृथक रखने का प्रबन्ध करके सुयोग्य चिकित्सक से इलाज कराना चाहिए।

घर में रोगी को एकदम स्वच्छ, खुले, हवादार, सुप्रकाशित, थोड़ी धूप आने-वाले शान्त स्थान में इस प्रकार अलग रखना चाहिए, कि घर के बच्चे या अन्य लोगों को रोगी के पास ही न रहना पड़े। रोगी के कमरे में किसी दूसरे का सोना हानिकर है, क्योंकि वहाँ व्याप्त रोगाणु दूसरे के श्वास में मिलकर उसे भी क्षयरोगी बनावेंगे।

ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि क्षयरोगी चाहे जहाँ न थूक कर, एक नियत और ढक्कनदार पात्र में ही थूका करे और उसमें तुरन्त राख या चूना डालकर ढक दिया करे।

रोगी के उपयोग में आने वाले बर्तन और वस्त्रादि को भलीभाँति स्वच्छ किये बिना अन्य लोग उपयोग करे तो उन्हें भी क्षय हो जाता है। क्षय रोगी के साथ लेटने-सोने वाले को तो निश्चित ही क्षय रोग लग जाता है।

रोगी के थूक आदि से सने हुए वस्त्रों को खूब उबालकर साफ करके विसंक्रमित अवश्य ही करना चाहिए।

क्षयरोगी के कमरे को सदा ही विशेष रूप से स्वच्छ रखना आवश्यक है। झाड़ू से झाड़ने मात्र की अपेक्षा कमरे को जीवाणुनाशक घोल से धोना चाहिए अथवा घोल में भीगे कपड़े से साफ करना चाहिए। कमरे का फर्श कच्चा हो तो उसको गोमूत्र मिले गोबर से नित्य लीपना चाहिए। कमरे में गोमूत्र छिड़कना, चूना डालना और गूगल या राल की धूप जलाना, कीटाणुनाशन के लिए हितकर है।

रोगी के ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों को नित्य नियम से कुछ देर धूप में सुखाना चाहिए। इससे रोगाणुओं का नाश होता है।

क्षयरोगी को भरपूर विश्राम, दूध और पाचन शक्ति के अनुरूप यथोचित पौष्टिक भोजन देना रोग-मुक्ति में सहायक होता है।

वैसे तो आजकल ऐसी औषधें और चिकित्सा सुलभ है कि क्षयरोग अच्छा हो जाता है; तथापि क्षय का रोगी होना ही जीवन का सर्वनाश समझना चाहिए। जब रोग होगा, तब दवा कर लेंगे—ऐसा सोचने के बजाय, सर्वथा हितकर यह है कि पहले से ही सावधान रह कर रोग को उत्पन्न ही नहीं होने देना चाहिए।

क्षय-निवारण के लिए हमारी राष्ट्रीय सरकार, पिछले कुछ वर्षों से विशेष चिन्तित और प्रयत्नशील है। कृत्रिम रूप से जनता की व्याधि-क्षमता बढ़ाने और क्षय का संक्रमण रोकने के लिए बड़े पैमाने पर टीकों का प्रयोग किया जा रहा है। इन टीकों के प्रयोग से क्षय का प्रसार रोकने में कहाँ तक सिद्धि होगी, यह अभी नहीं कहा जा सकता।

फिर भी यह निश्चित सत्य है कि टीका लगाकर प्राप्त की गई व्याधि-क्षमता सर्वथा कृत्रिम होती है, और उसका स्थैर्य तो निश्चित है ही नहीं। इसलिए यह अधिक उचित एवं श्रेयस्कर होगा कि क्षय-निवारण हेतु, जिन कारणों से क्षय रोग उत्पन्न होता है और फैलता है, उन कारणों के उन्मूलन का उपक्रम किया जाय, जिससे उसकी उत्पत्ति का स्रोत ही समाप्त हो।

आजकल क्षयरोग फैलने के सर्वाधिक प्रमुख कारण—नागरिकों की स्वास्थ्य दुर्बलता, शक्ति से अधिक परिश्रम, पौष्टिक आहार की कमी, असंयत स्त्री-संभोग,

अनियमित आहार-विहार, गंदी आब-हवा और घनी तथा गन्दी बस्तियाँ हैं। इन कारणों से ही नागरिकों का स्वाभाविक स्वास्थ्य इतना निर्बल हो जाता है और शरीर की व्याधि-क्षमता इतनी अशक्त हो जाती है कि उस शरीर में क्षय रोगों के कीटाणु प्रवेश करके कमजोर फेफड़ों में अपनी जड़ जमा लेते हैं। क्षय-कीटाणुओं को संक्रमण की सुविधा अशक्त शरीर में ही होती है।

वस्तुत: क्षय के उपरोक्त मूल कारणों को दूर करने के उपाय दृढ़ता से किये जावें तो भारत में क्षय-निवारण में पर्याप्त सफलता मिल सकती है। अतिकाम-संभोग क्षय रोग की उत्पति का सबसे बड़ा कारण है; अतएव प्रभावपूर्ण ढंग से जनता में ब्रह्मचर्य-पालन का प्रचार किया जाना चाहिए। कामोत्तेजक साहित्य, दृश्य, सिनेमा आदि पर कठोर प्रतिबन्ध होना चाहिए। विशेषकर विद्यार्थी वर्ग और नवयुवकों को विलासितापूर्ण वातावरण और काम-वासनोद्दीपक साहित्य तथा सिनेमा से दूर रखने के प्रभावोत्पादक उपक्रमों का होना आजकल बहुत आवश्यक है। ऐसा करने से उत्कृष्ट नागरिक चरित्र-निर्माण में सहायता मिलेगी और ब्रह्मचर्य पालन-प्रवृति से जनसंख्या वृद्धि की राष्ट्रीय समस्या का यथार्थ एवं स्वाभाविक हल भी होगा तथा क्षय रोग की उत्पत्ति भी न होगी।

क्षयोत्पत्ति का दूसरा प्रमुख कारण भोजन में पौष्टिक तत्त्वों की कमी है। इसके लिए भारतीय भोजन में घी-दूध आदि पौष्टिक तत्त्व अवश्य ही ग्रहण करने के लिए जनता को व्यापक रूप से प्रेरित करना चाहिए। यह पूर्ण विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है कि दुधारू पशुधन के पालन-पोषण पर यथार्थ ध्यान दिया जावे तो अब भी भारत में परम पौष्टिक पदार्थ दूध-घी की कमी नहीं है।

शक्ति से अधिक और अतिशय परिश्रम करने की प्रवृत्ति को प्रचार मात्र से नहीं रोका जा सकता। मनुष्य को अपनी परिस्थिति और अनिवार्य आवश्यकताओं के अनुसार जीवन- निर्वाह के लिए परिश्रम करना ही पड़ता है। अतिशय परिश्रम का सबसे बड़ा कारण निर्धनता है; उसमें तो जब सुधार होगा, तब होगा, तथापि अतिशय परिश्रम करने वालों को भोजन में पुष्टिकारक तत्त्व मिलें तो उन्हें परिश्रम से हानि न हो।

गन्दी बस्तियों का उन्मूलन करके अस्वच्छ अस्वास्थ्यकर वातावरण एवं

रहने के तरीकों में तो यथाशीघ्र ही सुधार किया जा सकता है। सरकार के स्वास्थ्य-विभाग और मुख्यत: स्थानिक नगरपालिकायें ही यदि अपने कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करें और बस्तियों में सफाई तथा स्वच्छ वायु-संचरण का समुचित प्रबन्ध करने को प्राथमिकता दी जावे तो क्षय के अतिरिक्त अन्य संक्रामक रोगों के निवारण में भी सफलता मिल सकती है।

मसूरिका (चेचक)

वायु-संवाहित रोगों में मसूरिका (चेचक या शीतला) भी हमारे देश में बहुत होता है। इसके कीटाणु इतने प्रबल होते हैं कि उनके प्रहार से बचने की व्याधिक्षमता किसी में भी नहीं होती। यह बड़ा भयानक और कष्टकारक छूत का महारोग है। यह रोग बहुधा बचपन में ४-५ वर्ष की अवस्था तक अधिक हुआ करता है। आजकल तो जवानों को भी चेचक होते देखा जाता है। चेचक की महामारी प्राय: बसन्त ऋतु में ही आती है। उष्ण जलवायु प्रधान होने से भारतवर्ष तो जैसे इसका घर ही है। प्रति ५-६ वर्ष बाद इसका तीव्र दौरा-सा आता है। एक बार यह रोग होने पर शरीर में स्वमेव स्थायी रोग-क्षमता उत्पन्न हो जाती है, इसलिए किसी को यह रोग दोबारा प्राय: नहीं होता।

चेचक के लक्षण और रूप अब सभी जानते हैं। यह रोग यदि बढ़ जाता है तो रोगी प्रलाप करने लगता है, शरीर में कम्प बढ़ता है और अन्त में रोगी प्राण त्याग देता है।

लगभग समूचे देश में हिन्दू जनता चेचक को रोग न मानकर शीतला नामक देवी का प्रकोप मानती है। इसलिए चेचक की चिकित्सा न कराकर अधिकतर लोग झाड़-फूक और देवी-पूजन पर निर्भर रहते हैं। चिकित्साशास्त्र के मतानुसार यह रोग स्वत: अच्छा होने वाला अवश्य है; तथापि बिगड़ जाने पर यह निश्चित मृत्यु का कारण बनता है। इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं कि चेचक छूत से फैलने वाला एक भयंकर रोग है। अच्छा हो जाने पर भी यह मनुष्य को सदा के लिए कुरूप बनाकर छोड़ता है। मुख और शरीर पर इसके गहरे दाग जीवन-पर्यन्त बने रहते हैं।

बचपन में एक दो वर्ष की आयु में ही चेचक से बचाव के लिए टीका लगवा

लेना चाहिए। एक बार लगा टीका १०-१२ वर्ष तक व्याधि-क्षमता बनाये रहता है; इसलिए युवावस्था तक यदि प्रति पांचवे वर्ष चेचक का टीका लगवा लिया जाय तो जीवन भर इस रोग से रक्षा हो सकती है।

चेचक में रोग का विष और संक्रामक कीटाणु रोगी की त्वचा, मुख और नाक के बलगम में, फुन्सियों की पीव की खुरन्टों में मल-मूत्र में और शरीर के प्रायः प्रत्येक स्राव में रहते हैं। अतएव रोगी के दूषित कपड़े यथासंभव जला ही देना चाहिए। रोगी के कपडे यदि अविशोधित रह जावें, तो बहुत दिनों बाद भी उनको स्पर्श करने या उपयोग में लाने से दूसरे व्यक्ति को निश्चित रोग लग सकता है। कपड़ों के साथ ही रोगी के काम में आये हुए बर्तन और अन्य वस्तुओं को भी भली-भांति विशोधित कर लेना चाहिए।

फुंसियों से जब खुरन्ट झरता है, तब यह रोग अत्यन्त संक्रामक हो जाता है। खुरन्टों के सूक्ष्म कणों में सर्वाधिक तीव्र संक्रमण-शक्ति होती है। इसलिए खुरन्ट निकलते समय रोगी को स्पर्श कदापि नहीं करना चाहिए। निकले खुरन्टों को सावधानीपूर्वक कपड़े झाड़कर तत्काल जला देना चाहिए। अन्यथा फुन्सियों के इस खुरन्ट में व्याप्त रोगाणु-कण वायु में मिलकर इस रोग को सर्वत्र फैलाते हैं।

दूषित जल से फैलने वाले रोग

दूषित और कीटाणुयुक्त जल पीने के काम में लेने की अज्ञानता से हमारे देश में कई भयंकर संक्रामक रोग होते और फैलते हैं। जिनमें हैजा और प्रवाहिका-पेचिस ये दो सर्वाधिक घातक रोग हैं।

हैजा (कॉलरा)

वैद्यक शास्त्र के मतानुसार हैजा का प्रारंभ अति भोजन से होता है। प्रायः देखा जाता है कि हैजा का अधिक प्रकोप अत्यधिक सड़ी गर्मी पड़ने पर और वर्षा के प्रारंभ में ही होता है। यह सभी जानते हैं कि अधिक गर्मी के दिनों में मामूली भोजन भी नहीं पच पाता और अजीर्णकारक हो जाता है, उस पर भी कोई अधिक भोजन कर ले तो अजीर्ण होगा ही, यही अपचन हैजा की उत्पत्ति का कारण बनता है।

आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि हैजा का रोग एक विशेष जाति के कीटाणुओं से फैलता है। ये कीटाणु तालाब या कुओं के पानी में होते हैं। उनका पानी पीने वालों को हैजा हो जाता है।

इस प्रकार हैजा दो प्रकार का होता है; एक **अपचन-जन्य** और दूसरा **कीटाणु जन्य**। प्रबल अपचन से हुए सामान्य हैजा मे भी कै-दस्त आदि हैजे के सभी लक्षण होते हैं; परन्तु हैजे की सभी अवस्थायें प्रकट होने पर भी अपचन जन्य हैजा से रोगी मरता नहीं।

कीटाणु-जन्य हैजा अत्यन्त घातक और महा संक्रामक होता हैं। जहाँ यह रोग प्रारंभ होता है, बड़ी भयंकरता के साथ फैलता है और गांव का गांव साफ कर देता है। तत्काल उचित चिकित्सा न हुई तो ६ से १० घण्टे में ही रोगी की मृत्यु हो जाती है। कीटाणु जन्य हैजा में दस्त और उल्टी के लिए रोगी को जोर बिलकुल नहीं लगाना पड़ता। बिना इच्छा और बिना कष्ट के अपने आप ही लगातार दस्त और उल्टियाँ होती हैं। शरीर की उष्णता एकदम कम हो जाती है। एक दो ही कै-दस्त होने से रोगी अत्यन्त अशक्त हो जाता है। इस प्रकार का हैजा प्राय: रात्रि के तीसरे प्रहर में आरंभ होता है।

एक तीसरे प्रकार का हैजा भी यदा-कदा देखा जाता है जिसे डाक्टरी में 'ड्राई कालरा' और वैद्यक में 'अलसक' कहते हैं। इसमें उल्टी और दस्त नहीं होते। शेष सब लक्षण हैजा के समान ही होते हैं। पेट में भयानक दर्द, पेशाब न उतरना, प्यास कमजोरी, हाथ-पैरों में ऐंठन और पेट फूलना आदि लक्षण इसमें भी होते हैं और यह भी कीटाणु-जनित हैजा की ही भांति भयानक एवं प्राण-घातक होता है।

हैजा की प्राथमिक अवस्था में मामूली पतले दस्तों के साथ कमजोरी अवगत होती है। उल्टी भी मालूम होती है। जब पूर्ण वेग के साथ दस्त और उल्टी हो, हाथ-पैरों में खिचाव, प्यास, बेचैनी, आँखों का भीतर धसना आदि लक्षण हों तो हैजा की पूर्ण विकसित अवस्था समझनी चाहिए। इसके बाद शीतांग अवस्था आती है, जिसमें रोगी का शरीर अत्यन्त ठण्डा हो जाता है। नाड़ी छूट जाती है। ललाट पर अधिक पसीना आता है। दस्त और प्यास की

अधिकता से उल्टियाँ ज्यादा होती हैं। इस अवस्था में रोगी की शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

वस्तुतः हैजा में अत्यधिक दस्त और उल्टियाँ होने से शरीर का जलीय पदार्थ सब बाहर निकल जाता है। शरीर में जल का अंश न्यून हो जाने से रक्त इतना गाढ़ा हो जाता है कि शरीर में उसका परिभ्रमण कम हो करके बन्द हो जाता है, इसी से शरीर की उष्णता नष्ट हो जाती हैं–सहसा देह निर्जीव हो जाती है। हैजा की सर्वोत्तम चिकित्सा नही है कि जलीय अंश के अभाव में गाढ़े हुए रक्त को फिर से पतला किया जाय। इसीलिए हैजा में हाथ की धमनी द्वारा रक्त में नमक का पानी (सलाइन) पहुँचाकर खून को पतला किया जाता है।

सबसे अधिक बुद्धिमानी यह है कि सावधान रहकर हैजे से बचाव किया जाय। सबसे पहली बात यह हैं कि हैजा का संक्रमण उन लोगों पर तत्काल होता है जिनका दिल कमजोर हो। अतएव हैजा के दिनों में भयभीत न होकर हृदय को बहुत मजबूत रखना चाहिए। नही तो जहाँ हैजा फैला हो, उस स्थान को तुरन्त छोड़ देना चाहिए।

प्रायः सभी संक्रामक रोगों के कीटाणु, मनुष्य शरीर में अपने अनुकूल स्थिति पाकर ही प्रभाव कर पाते हैं। हैजा के कीटाणु भी सहायक सामग्री और स्थिति के बिना कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते। कच्चे और सड़े फलों का खाना, बासी भोजन करना, गंदा पानी पीना, बाजारू चाट-मिठाई, मादक द्रव्यों का अति सेवन, रात्रि जागरण और विशेष कर ऋतु-परिवर्तन के समय आहार-बिहार में असंयम यथा दूषित वायुमण्डल में निवास---ये सब हैजा के सहायक कारण हैं।

हैजा से बचाव के लिए सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण पेय–जल है। हैजा के दिनों में भूलकर भी कच्चा पानी नहीं पीना चाहिए। पानी को खूब उबालकर, उबले पानी से ही धोये बर्तन में उस उष्ण जल को ठंडा करें और भलीभाँति ढक कर रक्खे, वही पानी पीने और भोजन बनाने के काम में लावें। कुआं, तालाब या नदी का पानी भरसक तो पीने के काम में लेना ही न चाहिए। लेना पड़े तो

अवश्य उबालकर ही प्रयोग करना चाहिए। नलों का पानी शुद्ध होकर ही आता है, इसलिए वह हानिकर नहीं।

जहाँ हैजा फैलना शुरू हो वहाँ तुरन्त हैजे का टीका लगवा लेना चाहिए। भीड़-भाड़ के मेलों में हैजा प्राय: फैलता ही है। इसलिए ऐसे अवसरों और स्थलों पर अवश्य टीका लगवा कर जाना चाहिए।

हैजे के दिनों में ही नित्य सुबह दो-चार बुंद अर्क कपूर पानी में पी लेना हितकर होता है। भोजन एकदम हल्का और ताजा ही करना चाहिए। हरी सब्जियाँ इन दिनों नहीं खाना चाहिए और भोजन में प्याज, पुदीना की चटनी और नीबू अवश्य लेना चाहिए।

यदि घर में किसी को हैजा हो जाय तो घबराना नहीं चाहिए; धैर्य और सावधानी से काम लेना चाहिए। साथ ही चिन्ताजनक स्थिति होने के पूर्व ही रोगी को निकट के अस्पताल में पहुँचा देना चाहिए। इतना बचाव रखना चाहिए कि रोगी के कपड़े मलमूत्र और कै से घर के अन्य लोगों का स्पर्श न हो। यदि माता को हैजा हो जावे तो उसका दूध बच्चे को नहीं पिलाना चाहिए। रोगी के मलमूत्र और कै को फिनाइल मिलाकर दूर फिकवा देना चाहिए या गड्ढा खोदकर भूमि में गाढ़ देना चाहिए। रोगी के कपड़े नदी, तालाब, कुंआ या अन्य सार्वजनिक उपयोग में आने वाले स्थान पर कदापि नहीं धोना चाहिए।

हैजा के काल में आहार-विहार के अतिरिक्त स्वच्छता पर भी बहुत ध्यान देना चाहिए। मकान में और आस-पास मुहल्लों में जो जगहे नीची सीलनदार या दुर्गन्धपूर्ण हो उन सब पर चूना या राख अवश्य डालना चाहिए।

प्रवाहिका (पेचिस)

जल-संवाहित कीटाणुओं से उत्पन्न होने वाले रोगों में प्रवाहिका (पेचिश) भी एक भारतव्यापी रोग है और यह हमारे देश में बहुतायत से होता है।

प्रवाहिका रोगी के मल से सने कपड़े नदी-तालाब या कुएँ पर धोने से इसके कीटाणु पानी में मिश्रित हो जाते हैं और वही दूषित पानी पीने पर यह कीटाणु स्वस्थ मनुष्य के भी पेट में पहुँच कर रोग का संक्रमण करते हैं। घर में खाने

पीने की वस्तुओं के खुले रहने से धूल के साथ खाद्य सामग्री में भी मिलकर कीटाणु मनुष्य के पेट में पहुँचकर विकार करते हैं।

कीटाणुओं को मनुष्यों के पेट में पहुँचाने का एक बड़ा साधन मक्खियाँ भी हैं। मक्खियाँ प्रायः मल पर बैठती है और मल में से हजारों कीटाणु अपने पंजों में उठा लेती हैं। वे ही मक्खियाँ जब घर में या बाजार में खुली रखी मिठाई और अन्य खाद्य वस्तुओं पर बैठती है, तो मल से पंजों में संग्रहीत कीटाणु उन वस्तुओं पर छूट जाता है।

प्रवाहिका कई प्रकार का होता है; तथापि दो प्रकार का अधिक देखने में आता है; एक वेसेलरी और दूसरा एमेबिक। यह रोग कीटाणु-विशेष से होता और फैलता है।

प्रवाहिका के कीटाणु मनुष्य के पेट में पहुँच कर कब्ज करते हैं। वे खायें पिये पदार्थों का रस चूसते हैं और विष उगलते हैं। उस विष से पाचन-संस्थान निष्क्रिय और विशेषकर आंतें बहुत विकृत हो जाती हैं। इससे यकृत् (जिगर) का परिश्रम बढ़ जाता है, और धीरे-धीरे वह भी थकित एवं निर्बल हो जाता है। कीटाणुओं का यह प्रभाव ही प्रवाहिका रोग का प्रधान कारण है। यह कीटाणु विशेषतः आँतों में घर बनाकर अपनी परिमित संतति बढ़ाते है। कभी कभी जब यह कीटाणु यकृत् में पहुँच जाते है तो रोगी की मृत्यु का कारण बन जाते है।

कीटाणुओं के प्रहार से निर्बल आँतें जब अपना काम नहीं कर पाती, तो बड़ी आंत में मल जमा हो जाता हैं और आँव या खून का दस्त आने लगता है। प्रारंभिक अवस्था में पेट में मरोड़ के साथ बार-बार दस्त होते हैं। कभी-कभी अपान वायु के साथ भी मल का तरल भाग निकल जाता है। शौच की शंका इतने जोर से होती है, मानों दस्त निकला ही पड़ता है; परन्तु शौच पर बैठने से दस्त नहीं होता, केवल थोड़ा कफ जैसा पदार्थ दस्त में निकलता हैं। भूख की कमी, जीभ पर सफेद मैल जमना और पेट में दर्द के साथ कभी-कभी मल के साथ खून भी आने लगता है अथवा खून के ही दस्त होने लगते हैं और आँतों में घाव हो जाता है।

प्रवाहिका जैसे घातक और भयंकर रोग का शिकार न होना पड़े, इसके लिए मन्दाग्नि और अपच से बचने के साथ ही इसके कीटाणुओं से अपनी रक्षा करनी चाहिए। सदैव नल का पानी ही पीने के उपयोग में लाना चाहिए। क्योंकि वह यान्त्रिक विधि से सर्वथा कीटाणुरहित करके ही नलों में भेजा जाता है। जहाँ नल न हों वहाँ कुयें का पानी साफ कपड़े की दो तहों से छाने बिना नहीं पीना चाहिए। बाजारू चाट-मिठाई, या घर की खाद्य सामग्री जो खुली रखी रहती हो और जिस पर मक्खियाँ बैठा करती हों उसको नहीं खाना चाहिए। पता नहीं कब किस मिठाई या पानी के साथ एक-दो कीटाणु ही पेट में पहुँच कर हमारा जीवन संकट में डाल दें, ऐसा विचार कर सदा ही खान-पान में गंदगी और मक्खियों से अपनी रक्षा करते रहना चाहिए।

कीट दंश जन्य संक्रामक रोग

मलेरिया

जीवों द्वारा फैलने वाले रोगों में मलेरिया सबसे प्रमुख है। यह एनफिलीज जाति के एक विशिष्ट मच्छर के काटने से फैलता है। यह मच्छर जब मलेरिया के एक रोगी को काटता है, तो रक्त के साथ रोग के कीटाणू भी चूसकर अपने मुंह में भर लेता है। मच्छर के मुंह में मलेरिया के कीटाणु खूब बढ़ते हैं। फिर वही मच्छर किसी अन्य स्वस्थ व्यक्ति या पशु को काटता है तो उसके शरीर में मलेरिया के कीटाणु उगल देता है। इसी प्रकार से मलेरिया रोग का संक्रमण होता है।

मलेरिया वाहक यह विशिष्ट प्रकार का मच्छर जल में विशेष कर तालाब, नदी, पानी से भरे गड्ढे या पात्रों में अथवा झील के किनारों पर अण्डे देता है। रेलवे लाईन या दूरगामी सड़कों के दोनों ओर मिट्टी खोदने से जो गड्ढे बन जाते हैं, उनमें वर्षा का जल इकट्ठा हो जाने पर, वे गड्ढे भी मलेरिया के मच्छरों की उत्पत्ति के स्थान बन जाते हैं।

इन मच्छरों की यह विशेषता है कि वे अपने उत्पत्ति स्थान से ४०-५० गज से अधिक दूर उड़कर नहीं जा सकते। इसलिए मलेरिया उन्मूलन का सर्वोपरि उपाय यह है कि बस्ती के चारों ओर ७०-८० गज दूर तक के समस्त गड्ढे,

पुराने टूटे तालाब, अथवा स्थिर जल एकत्र होने के ऐसे सब स्थल जिनके किनारे सीलन रहती हो, उन्हें मिट्टी से भरकर समतल कर दिया जाय। रेलवे लाईन और सड़कों के दोनों ओर गड्ढे को भी भर दिया जाय और आगे के लिए ऐसा नियम बना दिया जाय कि उस प्रकार के गड्ढे न बनें जिनमें वर्षा का जल एकत्र हो।

बस्तियों से पानी के विकास का ऐसा प्रबन्ध हो कि कहीं भी बस्ती में पानी एकत्र न हो और सीलन न फैले। मलेरिया उन गाँवों और तराई के सीलन वाले स्थानो में ज्यादा होता हैं। बंगाल, आदि में अधिक मलेरिया होने का यही कारण हैं कि वहाँ पानी के गड्ढे बहुत होते हैं और सर्वत्र सदा ही सीलन बना रहता है।

रहने के घर में भी सीलन और अँधेरा का वातावरण नहीं होना चाहिए। खूब हवादार घर हो और उसके पानी का निकास साफ हो। घर की छतों पर रखे गमलों या अन्य बर्तनों में वर्षा-जल एकत्र न होने देना चाहिए। नालियों में नियमित सफाई कर मिट्टी का तेल छिड़क देना चाहिए। विशेषकर सितंबर-अक्टूबर के महिनों में मच्छरों से बचने का विशेष उपक्रम करना चाहिए। क्योंकि इन्हीं दिनों मच्छरों की बहुत उत्पत्ति होती है और मलेरिया फैलता है। इन दिनों रात को सोते समय शरीर के खुले भागों में सरसों का तेल लगाकर सोना चाहिए और मच्छरदानी का प्रयोग करना चाहिए। राज्य के प्रयत्न द्वारा मलेरिया, उन्मूलन योजना से बहुत कम हो गया है।

सम्पर्क-जन्य संक्रामक रोग

वैसे तो सब ही संक्रामक रोग मनुष्यो के पारस्परिक संपर्क से एक-दूसरे को लग जाते हैं। फिर भी संक्रामक रोगो में कुछ प्रत्यक्ष सम्पर्क के रोग ऐसे हैं, जो अत्यन्त घृणित और कष्टदायक होते हैं। इनमें भी कुछ तो ऐसे होते हैं जिनका संक्रमण और उसका ज्ञान या प्रभाव एक-दो बार के ही स्पर्श-संपर्क या सहवास से प्रकट हो जाता है और कुछ ऐसे होते हैं जिसका संक्रमण-प्रभाव बार-बार के स्पर्श और बहुत दिनों तक सहवास-संपर्क से कालान्तर में ही प्रकट होता है।

मैथुन जन्य संक्रामक रोग

पूयमेह (सुजाक) और उपदंश (गर्मी, आतशक) शीघ्र संक्रमित होने वाले अति भयानक रोग है जो एक बार हो जाने पर जीवन भर का सुख नष्ट कर देते हैं। यह रोग स्त्री-संगम द्वारा स्त्री से पुरुष को और पुरुष से स्त्री को लग जाते हैं। बहुधा वेश्यागामियों और दुराचारिणी स्त्रियों से संभोग करने वाले पुरुषों को यह रोग निश्चित ही होते हैं। यह रोग एक प्रकार से मनुष्य के अपने ही कर्मों का दुःखदायी फल समझना चाहिए, निजका कष्ट निजके लिए तो अत्यन्त यंत्रणाकारी होता ही है उसकी संतति पर भी अनिवार्य प्रभाव डालता है। यह रोग रोगी को मर्मान्तक शारीरिक वेदना, मानसिक दीनता और सामाजिक घृणा का सन्त्रास देता है। अतएव सदैव संयम रखना चाहिए कि हमें यह भयंकर रोग कभी न होवे।

गलित कुष्ठ

दीर्घकालीन संपर्क से होने वाले रोगों में कुष्ठ प्रधान हैं। बहुत लोग शरीर पर सफेद दागों को ही कुष्ठ समझते हैं, वह वास्तव में कुष्ठ न होकर केवल चर्मविकार का रोग होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से, इसके होने का कारण तो निश्चित नहीं किया जा सका, तथापि यह सफेद दागों का रोग, संक्रमण द्वारा एक से दूसरे को होने वाला रोग नहीं, और न कष्ट देने वाला ही है।

वास्तविक कुष्ठ वह है जिसमें, सारी देह पर जगह-जगह पीवदार घाव या चकत्ते हो जाते हैं और हाथ-पैरों की उंगलियाँ गलने लगती है। इसको ही "गलित कुष्ठ" कहा जाता है और यह एक चिरकालीन महारोग है। जिस व्यक्ति को यह रोग हो जावे, उसकी चिकित्सा के अलावा, उसके संक्रमण से अन्यों को बचाना अधिक आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है।

कुष्ठ रोगी के साथ अधिक निकट सम्पर्क बराबर रखने वाले पर इसका संक्रमण निश्चित होता है, भले हो उसका परिणाम काफी दिनों बाद प्रकट हो। माता को यदि कुष्ठ है तो निरन्तर सम्पर्क के कारण उसकी सन्तान को कुष्ठ का संक्रमण निश्चित होगा। इसी प्रकार पति-पत्नि आदि घनिष्ठ सम्बन्धों में कुष्ठ का एक से दूसरे को लगना अनिवार्य है।

शैशवावस्था और विकासकालीन आयु में संपर्क से यह रोग लगने की संभावना अधिक होती है। इन अवस्थाओं में कुष्ठ के कीटाणु त्वचा-छिद्रों से शरीर में चले जाते हैं और कालान्तर में अपने अनुकूल परिस्थिति पाकर रोग उत्पन्न करते हैं।

कुष्ठ रोग के फैलने में सहायक कारण और अनुकूल स्थिति का विशेष स्थान है। अत्यन्त घनी, गन्दी और अस्वच्छ वायु मण्डल की बस्ती में निवास करना, जूठा या एक साथ भोजन करना, एक ही पात्र से अनेक लोगों का पानी पीना, हुक्के से सामूहिक धूम्रपान, व्यभिचार, ताकत से बाहर मेहनत, शरीर और कपड़ों की गन्दगी, बासी और सड़े-गले खाद्यों का सेवन---इन कारणों से कुष्ठ के कीटाणुओं को शरीर में रोगोत्पत्ति करने की सुविधा मिलती है। चमड़ी के रोगों से विकृत और अधिक निर्बल बनाने वाले रोगों से कृश शरीर भी कुष्ठ के कीटाणुओं की अनुकूल भूमिका होती है। जिस संतान के माता या पिता में से कोई कुष्ठ ग्रस्त रहे हों उनके शरीर में कुष्ठोत्पत्ति की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही अन्यों से अधिक होती है; क्योंकि कुष्ठ उनका पैतृक रोग होता है। जिन क्षेत्रों में यौन स्वच्छन्दता अधिक है वहाँ गर्मी, सुजाक रोग बहुत होता है। गर्मी या सुजाक से रक्त अत्यधिक दूषित होने पर कुष्ठ हो जाता है।

कुष्ठ रोगी के कफ-थूक, नाक की सिनक और गलित घावों या फोड़ा-फुंसियों से निकले मवाद में कुष्ठ के दण्डाणु होते हैं। यह दण्डाणु, मक्खियों द्वारा खाद्य सामग्री में पहुँचकर या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रोगी के वस्त्र या बर्तन आदि उपयोग करने से, दूसरे स्वस्थ मनुष्यों के शरीर में पहुँचकर बस जाते हैं और अनुकूल भूमिका पाकर रोग की सृष्टि करते हैं।

यदि शुरू-शुरू में ही चिकित्सा से लाभ हो जावे तो कुष्ठ की औपसर्गिकता कम हो जाती है। रोग बढ़ जाने पर लम्बी चिकित्सा करनी पड़ती है।

कुष्ठ रोग से बचने का एकमात्र निश्चित उपाय यही है कि किसी भी अवस्था में कुष्ठ के रोगी से सम्पर्क न हो। यदि घर में किसी प्रिय से प्रिय प्राणी को भी कुष्ठ हो या कुष्ठ के लक्षण प्रतीत हों, तो बिना संकोच से उसको घर से हटाकर किसी कुष्ठाश्रम में भर्ती करा देना चाहिए, जिससे पुश्तों तक

चलने वाले इस घृणित रोग से घर के बच्चों और अन्य व्यक्तियों की रक्षा हो सके और रोगी रोग मुक्त हो। यदि माता को कुष्ठ रोग हो तो शिशु को दूध नहीं पिलाना चाहिए क्योंकि शैशवावस्था में क्षमता कम होने के कारण कुष्ठ के कीटाणु बच्चों के शरीर में शीघ्र घर बना लेते हैं। रोगी को कुष्ठाश्रम न भेज सकें और घर में ही चिकित्सा कराना पड़े तो कुष्ठ रोगी को अलग कमरे में विशेष कर बच्चों से दूर रखना चाहिए। रोगी के वस्त्र, खाने-पीने के पात्र और अन्य उपयोगी वस्तुयें––सर्वथा अलग होनी चाहिए, घर के किसी अन्य प्राणी के काम में उन्हें नहीं लेना चाहिए। नियमित रूप से उनका विशोधन करते रहना चाहिए। रोगी के कपड़े यदि धोबी के यहाँ धुलने डालें तो पहले उन्हें खौलते पानी में उबाल लेना चाहिए, जिससे अन्यों के कपड़ों में कीटाणुओं का प्रवेश न हो सके। घर के लोगों को रोगी के सब तरह के सम्पर्क से एकदम अलग रहना चाहिए।

संसार भर में कुष्ठ रोगियों की संख्या सबसे अधिक भारत में है। इसलिए यह रोग हमारी राष्ट्रीय समस्या है। इसके निवारण हेतु अधिकाधिक संख्या में कुष्ठाश्रमों की स्थापना वांछनीय हैं।

अर्थहीनतावश रहन-सहन का स्तर निम्न होने से, अपौष्टिक भोजन, स्वच्छता का अभाव और गंदी बस्तियों में आवास के कारण कुष्ठ रोग निर्धनों को अधिक होता है, जो महँगी चिकित्सा नहीं करा सकते और जीविका-साधन भी नहीं छोड़ सकते। इस कारण कुष्ठग्रस्त होकर भी उन्हें समाज के सम्पर्क में रहना ही पढ़ता हैं, इस कारण भी यह रोग बहुत फैलता है।

इस महारोग का संक्रमण रोकने के लिए कुष्ठ-पीड़ित जनों को समाज से पृथक रखने का एक उपाय यह हो सकता है कि जिला-स्तर पर कम-से-कम एक-एक गाँव अलग बसाया जावे जिसमें केवल कार्यक्षम कुष्ठरोगियों को रक्खा जावें। गांव-गांव से कुष्ठग्रस्त व्यक्तियों को लाकर इन पृथक बसे ग्रामों में रक्खा जावें और उनको वहाँ मुफ्त चिकित्सा-सुविधा के साथ खेती-बारी या अन्य लघु उद्योग करके जीविका कमाने के साधन भी जुटाये जावें। ऐसा करने से उनके संपर्क से समाज में कुष्ठ-संक्रमण को रोका जा सकेगा।

प्राय: कुष्ठरोग-पीड़ित अंगभंगवाले व्यक्ति मंदिरो, तीर्थस्थानों और बाजारों में भीक माँगने का काम करते हैं। ये भीखमंगे भी समाज में कुष्ठरोग फैलाने का कारण होते हैं। इन पर दया करना तो स्वाभाविक है, परन्तु दयावश उनके निकट जाकर भीक देना या उन्हें स्पर्श करने की अपेक्षा यह अधिक श्रेयस्कर होगा कि राज्याधिकारियों से कहकर उन्हें सार्वजनिक स्थानों से हटवाकर किसी कुष्ठाश्रम में पहुँचा दे। ऐसे व्यापक प्रयत्नों से ही देश में कुष्ठरोग का प्रसार रोकने में सफलता मिल सकती है।

खाज-खुजली

खाज खुजली ऐसे चर्म रोग हैं जो संक्रमण से एक दूसरे को लग जाते हैं। अन्य चर्मरोगों की भाँति यह भी विशेषकर चमड़ी की सफाई में लापरवाही करने से होते हैं। चमड़ी पर जमा मल खाज-खुजली के कीटाणुओं का अच्छा ख़ासा-आश्रय स्थल होता है। जो लोग नित्य नियम से नहाते नहीं है, उन्हें यह रोग निश्चित होता है।

प्राय: लोग अंगुलियों की संधियों और पीरुओं की सिकुड़न को भली-भाँति साफ नहीं करते। मलद्वार और मूत्रद्वार के मध्यवर्ती स्थल की सफाई पर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। अंगुलियों को संधियों और पौरुओं की सिकोड़ों में जमे मैल की तहों में खुजली के कीटाणु संक्रमण करते हैं। इसी कारण खुजली का आरंभ अंगुलियों की संधियों और विटप प्रदेश में फुंसिया उठने से ही होता है। फिर धीरे-धीरे रोग का विष शरीर के अन्य भागों में भी फैल जाता है।

खाज-खुजली का एक बड़ा सा कारण गीले वस्त्रों का उपयोग। जब लोग नदी-तालाब पर नहाते हैं, तो पहने हुए वस्त्र के ही आधे भाग को निचोड़कर पहिन लेते है और उसी अवस्था में घर तक जाते हैं। गांवों में स्त्रियाँ तो बहुधा स्नानोपरान्त गीले वस्त्र पहन कर ही लौटती है। गीले वस्त्रों से चमड़ी में खुजलाहट होती है और नाखुनों से खुजलाने के कारण बदन में पीबदार फुंसियाँ हो जाती है।

खुजली का संक्रमण एक से दूसरे व्यक्ति में स्पर्श से ही हो जाता है। रोगी के कपड़े पहनने या उसके बिस्तर का उपयोग करने अथवा उसके साथ लेटने-वाले को निश्चित रूप से खुजली का रोग लग जाया करता है।

इसी प्रकार से एक्जिमा (छाजन) और दाद रोग भी स्पर्श के सम्पर्क से फैलते हैं। इसका प्रमुख कारण भी शरीर की भली-भांति सफाई न करना है। सभी प्रकार के चर्म रोगों से रक्षा का सर्वोपरि साधन यह है कि शरीर की नित्य खूब सफाई करते रहें। स्नान में साबुन का प्रयोग न करें क्योंकि साबुन त्वचा की स्वाभाविक स्निग्धता को सोखता है और चमड़ी में रूखापन पैदा करता है। स्नान के समय मोटे खुर-दुरे खद्दर के गीले कपड़े से रगड़-रगड़ कर बदन की सफाई करना बहुत उपयोगी होता है। एक्जीमा के रोगी को साबुन और तेल का व्यवहार नहीं करना चाहिए, विशेष करके पीड़ित स्थान को तो तेल और साबुन से बचाना ही चाहिये।

आकस्मिक घटनाएँ और प्राथमिक उपचार

जीवन में अकस्मात ही कभी-कभी ऐसी घटनायें हो जाया करती हैं, जिनसे शरीर को आघात पहुँचता है। अधिकांश आकस्मिक घटनायें मनुष्यों की जल्द-बाजी और सावधान न रहने की आदत के कारण होती है।

आकस्मिक घटनाओं से होने वाले अपघातों (एक्सीडेन्ट) में कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान न होने से, मनुष्य घबराहट में कोई ऐसा काम कर जाते, जिसका अनिष्टकर परिणाम हों। सभी अस्पतालों में तत्काल प्राथमिक उपचार (फर्स्टएड) बड़ा हितकारी होता है। अपघात में तत्काल प्राथमिक उपचार न होने से, जब-तक वैद्य-डाक्टर आता है या रोगी को अस्पताल पहुँचाया जाता है, तब तब प्राय: रोगी मृत्यु के मुख में पड़ जाता है। अतएव हम यहाँ कुछ मुख्य आकस्मिक अपघातों के तत्काल उपचार का विवरण दे रहे हैं।

चोट आना

चोट बहुत कारणों से लगती है। सड़कों पर सावधानी पूर्वक इधर-उधर देखकर न चलने से, तांगा, ठेला, गाड़ी, मोटर, ट्रक आदि किसी भी वाहन से

टकराने से, कहीं ठोकर लगने से, खेलों में कूद-फांद से, ऊँचाई से गिरने से अथवा मार-पीट या अन्य किसी तरह बदन पर किसी चीज का आघात लगनें से--इस प्रकार कई तरह से चोट लगती है।

कोई चोट ऐसी लगती है जिसमें खून निकलता है, और कोई ऐसी जिसमें खून तो नहीं निकलता, परन्तु भीतरी हड्डी टूट जाती है अथवा नसें या छोटी-छोटी रक्त-वाहिनी शिरायें फट जाती हैं। इसी कारण बन्द चोट लगने पर आहत स्थान का रक्त भीतर ही जमता जाता है और वह स्थान नीला या काला-सा दीखने लगता है।

जब कोई खून बहने वाली चोट लगे तो सबसे पहले रक्त का बहना बन्द करना चाहिए, ताकि अधिक रक्त निकलने से आहत व्यक्ति अशक्त न हो जावें। तत्काल ठंडे पानी में भिगे साफ कपड़े की पट्टी बाँधने से, या चोट पर बर्फ का टुकड़ा रख देने से रक्त का बहना कम हो जाता है।

यदि हड्डी टूट गई हो तो चोट के स्थान पर यथास्थिति में ही तत्काल कपड़े की पट्टी खूब कसकर बांध देनी चाहिए। हड्डी टूटी हैं या नहीं, इसकी सामान्य पहचान यह है कि आघात-स्थल पर तुरन्त असह्य पीड़ा होती है। बहुत लोग हड्डी टूट जाने पर स्थानीय नाई या मालिश वाले अनाड़ी लोगों से खींच-तान कराते हैं। ऐसा करना बहुत हानिकर हैं। इसलिए हड्डी टूटने पर अस्पताल में ही दिखाना चाहिए।

चोट से खून निकलने पर तत्काल प्राथमिक उपचार करके यथाशीघ्र घायल को अस्पताल ले जाकर बेंडेज करा लेनी चाहिए; और हड्डी टूटने पर तत्काल तो कपड़े का बन्दन काफी है फिर यथाशीघ्र, यदि हड्डी टूटना संदिग्ध हो तो घायल व्यक्ति को अस्पताल ले जाकर एक्स-रे परीक्षा करा लेनी चाहिए और टूटी हड्डी पर प्लास्टर चढ़वा देना चाहिए।

बच्चों को खेल कूद में बहुत चोटें लगती है। कभी खून निकलता है; कभी बन्द चोट लगती है। कभी-कभी कोई कील या नुकीला कंकड़ ही पैरों में धस जाता है। लोहे की कील में यदि थोड़ी-सी भी जंग लगी हो तो उसका घाव

सेप्टिक होकर पक जाने का तथा टिटेनस (धनुर्वात) का बड़ा भय रहता है। साधारण खरोंच या अन्य चोट के घावों में धूल पड़ने से पकने का डर रहता है। ऐसी दशा में घायल को एन्टी टिटेनस का इन्जेक्शन लगवा देना चाहिए, जिससे चोट या कील के घाव के पक जाने का अन्देशा न रहे। खरोंच या कील लगने पर तत्काल ही टिंचर आयोडीन या स्प्रिट-पेट्रोल या नर मूत्र लगा देने से सेप्टिक होने का डर कम रहता है।

किसी अंग के भारी चीज से कुचल जाने या अन्य प्रकार से बन्द चोट लगने पर जब कि खून न निकला हो और चोट की जगह भीतर ही खून जम गया हो तो आहत स्थान पर कुछ देर बर्फ रखने से या शीतल जल की पट्टी बांध देने से भावी अनिष्ट की आशंका नहीं रहती।

बन्द चोटों और हाथ-पैरों में मोच आ जाने पर कुछ समय बाद मालिश और सेक करना बहुत उपयोगी हैं। इन दोनों क्रियाओं से पीड़ा (दर्द) में तो तत्काल शान्ति होती है। चोट में टूटे स्नायुओं से जमा खून को पिघला कर यथावत् बनाने और मोच में अस्त व्यस्त हुए स्नायुओं को सुधारने में मालिश और सेक के प्रयोग बड़े हितकारक होते हैं।

बन्द चोट-मोच में प्याज, आमा हल्दी, और थोड़ा-सा नमक, तिल-या खली इन सब को कुचल कर तिल्ली के तेल में गर्म कर उनकी पोटली से सेक करना और आहत स्थान पर उनको ही बांधना बहुत लाभकर होता है।

आग से जलना

स्टोव, गैसबत्ती या चूल्हा आदि जलाते समय अक्सर असावधानी से, पहने हुए कपड़ों में आग लग जाती है। विशेषकर नगरो में आजकल महिलायें जो नायलन के कपड़े पहनती हैं, उनमें बड़ी जल्द आग लगती है। नायलन के कपड़े आग पकड़ते ही बदन से चिपकने लगते हैं। चौका-चूल्हा का काम करने वाली स्त्रियों के अलावा बच्चों को भी आग लग जाती है। घरों में बच्चे प्रायः आग का खेल किया करते हैं। बहुत बीड़ी-सिगरेट पीने के अभ्यासियों को भी, रात में सोते-सोते बीड़ी पीने के कारण कई बार आग लगते देखा गया है।

पहने हुए कपड़ों में आग लगते ही तत्काल कपड़ों को चाकु, छुरी या ब्लेड

से चीर कर देह से अलग कर देना चाहिए। आग बुझाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि जिसको आग लगी हो, उसके ऊपर बड़ा-सा लिहाफ, कम्बल, मोटा चद्दर या त्रिपाल डालकर चारों तरफ से इस तरह ढक दें कि तत्काल हवा एकदम बन्द हो जावे हवा बन्द होते ही आग एकदम बुझ जाती है और अग्नि-पीड़ित व्यक्ति अनिष्ट से बच जाता है। वस्तुतः आग में जलने की शक्ति हवा से ही तो आती है। यदि कतई हवा बन्द हो तो आग एक क्षण भी नहीं जल सकती। इसलिए अग्निपीड़ित के जलते हुए कपड़ों की आग बुझाने के लिए उसको ढक कर हवा रोकना हितकर है।

आग लगते ही उस पर रेत या मिट्टी डालने से भी आग बुझ जाती है। जिस व्यक्ति के कपड़ों में आग लग जाय तो हड़बड़ाहट में उस पर जल्दी से पानी नहीं डालना चाहिए अत्यधिक आग पकड़ने पर ही पानी डालना उचित है क्योंकि पानी डालने से आग तो बुझ जाती है, परन्तु जले हुए अंगों पर किरोमिन (मिट्टी का तेल छिड़कने से और उससे भीगे कपड़े को लपेट दें और फिर उसको किरोसिन तैल से भिगोता रहे या पानी गिरने से अनिष्ट की सम्भावना होती है। फफोले पड़कर कष्टदायक जखम हो जाते हैं।

आग लगी हो वह व्यक्ति आग लगते ही तुरन्त भूमि पर लेट कर धूल में गुलाटें (जल्दीं-जल्दी करवटें) ले ले तो भी कपड़ों में लगी आग बुझ जाती है।

जले हुए स्थान पर नारियल के तेल में चूने का पानी मिला कर शीघ्र लगा देना चाहिए और हवा से बचने के लिए दग्ध अंगों को रुई से ढक देना चाहिए जिससे फफोले पैदा होने का डर न रहे। अलसी शहद या घी-कुवांर का रस लगाने से भी उत्तम फल होता है। जले घावों पर टॅनिक एसिड को ग्लीसरिन में मिलाकर लगाने से घाव शीघ्र अच्छे होते हैं। अधिक जल गया हो तो यथा-शीघ्र दग्ध व्यक्ति को अस्पताल पहुँचाना चाहिए।

आग लगने से बचाव के लिए विशेषकर गर्मी की ऋतु में बहुत सावधान रहना चाहिए। स्टोव आदि जलाते समय कपड़ों को समेट कर काम करना

चाहिए। यदि कहीं मकान में आग लग जावे तो बिना पूर्ण सुरक्षा-प्रबन्ध के कदापि लपटों में नहीं जाना चाहिए।

जल में डूबना

पानी में डूबने से मनुष्य के पेट में पानी भर जाता है और श्वास रुक जाती है। ऐसी स्थिति में सबसे पहले, जल से निकाले व्यक्ति को पैर पकड़ कर उलटा करके मुख से भीतरी पानी और लार निकाल देना चाहिए। औंधा लिटा-कर पेट का भाग मल-मल कर दबाने से भी पेट में भरा पानी बाहर निकल आता है।

पेट का पानी शीघ्रतापूर्वक निकाल कर जल्दी ही रुकी हुई सांस को फिर से चलाने का यत्न करना चाहिए। नाक में तेज सुँघनी सुघाना और स्मेलिंग साल्ट या गोल मिर्च का चूर्ण कागज की नली में भरकर नाक में फूंक देने से रुकी सांस चलने में सहायता मिलती है। चूना में नौसादर मिलाकर सुँघाने से भी तीव्र नस्य लगता है। इससे भी श्वास-प्रश्वास न आवे तो रोगी को चित्त लिटाकर पीठ के नीचे तकिया आदि लगाकर छाती का भाग ऊँचा करें फिर कुहनी और कलाई के बीच के भाग को पकड़ कर दोनों हाथ झटके से ऊपर उठावें, फिर दोनों हाथों को छाती पर धीरे-धीरे दृढ़ रूप से दबायें। इस प्रकार की क्रिया एक मिनट में अठारह बार के हिसाब से करें या फेफड़ा दो भागों में विभक्त है; डूबे हुए व्यक्ति को चित लिटाकर हाथ की हथेली से क्रमशः एक-एक फेफड़ा को छोड़ने और दबाने से भी श्वास चलने लगता है। यह कृत्रिम श्वास-संचालन क्रिया है और इससे रोगी का श्वास-प्रश्वास पुनः जारी होना संभव है। श्वास-प्रश्वास चलने लगे तब रोगी को पानी में मिलाकर थोड़ी ब्राण्डी या अन्य उत्तम मद्य पिलाने से हृदय को उत्तेजना मिलती है और रोगी को शक्ति मालूम होती है। रोगी आराम से सो जावे, ऐसा यत्न करना चाहिए। फिर आवश्यता हो तो किसी योग्य चिकित्सक को दिखा लेना चाहिए।

जल में डूबे हुए का यह प्राथमिक उपचार भी तब सार्थक होता है जबकि

जल में डूबे व्यक्ति को बाहर निकालने पर उसका शरीर गर्म और हाथ-पैर शिथिल न हो गये हों।

डूबते हुए व्यक्ति को जल से निकालने का काम भी बड़ी सतर्कतापूर्वक करना चाहिए। स्वयं हाथ से पकड़ने या डूबते व्यक्ति को गोदी में भरने का दुस्साहस नहीं करना चाहिए। कभी-कभी डूबता हुआ व्यक्ति घबराहट में बचाने वाले को भी इस तरह जकड़ लेता है कि बचाने वाला भी डूब जाता है। इसलिए या तो डूबते हुए व्यक्ति को फेंक कर रस्सी या कपड़ा पकड़ाकर खींच लेना चाहिए या फिर ठेल कर उसे किनारे लाना चाहिए। डूबते हुए व्यक्ति से सट कर उपक्रम नहीं करना चाहिए। उसमें स्वयं डूब जाने का खतरा रहता है।

श्वास-प्रश्वास का **रुकना,** पानी में डूबने के अतिरिक्त गले में फांसी लगाने या अन्य प्रकार से **गला भिचने** के कारण भी होता है। वैसी स्थिति में पुनः श्वास-प्रश्वास-संचालन **करने** के लिए उपरोक्त प्रकार से कृत्रिम श्वास क्रिया लाने का उपक्रम करना चाहिए। हर दशा में रोगी के आस-पास लोगों की भीड़ इकट्ठा न हो, इसका ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि उससे रोगी को पर्याप्त शुद्ध वायु मिलने में बाधा पड़ जाती है।

कीट-दंश

बहुधा बर्रे (ततइया) हड्डा, बिच्छू आदि के डंक मारने की आकस्मिक घटनायें होती हैं, जिनमें तत्काल प्राथमिक उपचार न होने से कष्ट होता है। जब कोई ऐसा कीड़ा काटे तो सबसे पहला काम यह करना चाहिए कि दंश स्थान को सुई, चाकू या सूआ (सूजा) से कुरेद कर डंक बाहर निकालें। फिर उस पर तम्बाखू या प्याज कुचल कर बाँध दें। असली अर्क कपूर या थोड़ा-सा कार्बोलिक एसिड लगा देने से शीघ्र लाभ होता है, परन्तु कार्बोलिक एसिड बहुत सावधानी से लगाना चाहिए, क्योंकि अधिक लग जाने से फफोले पड़ जाने की संभावना रहती है।

बिच्छू के डंक स्थान पर डंक निकालने के बाद तारपीन का तेल या पत्थर का कोयला घिस कर लगाने से भी काफी लाभ होता है। बिच्छू के दंशस्थान से जहाँ तक वेदना का अनुभव होता हो उस स्थान पर दृढ़ बन्धन बाँधकर ताजा

पानी की धारा डालते रहें और गुड़ का शरबत पिला दें।

कान खजूरे के काटने पर गूलर के पत्ते पीसकर लगाने से लाभ होता है। पागल कुत्ता या स्यार काट ले तो शीघ्र ही चेष्टापूर्वक उपचार और चिकित्सा करानी चाहिए। सबसे पहले यह पता लगा लेना चाहिए कि काटने वाला कुत्ता पागल तो नहीं है। पागल कुत्ते के काटने से कुछ दिनों बाद शरीर में भीषण जहर फैलता है। इसलिए कुत्ते के काटे क्षतों (घावों) को तत्काल ही टिंचर, स्प्रिट या पेट्रोल से धो डालना चाहिए। और अस्पताल जाकर इन्जैक्शन लगवा लेना चाहिए।

पागल कुत्ते के काटने से उत्पन्न रोग संक्रामक होता है। यदि कुत्ता-दंश से दूषित व्यक्ति किसी दूसरे स्वस्थ व्यक्ति को काट ले या नोंच ले तो उसमें भी वैसे ही रोग का संक्रमण हो जाता है। उसके शरीर में भी जहर फैल जाता हैं।

साँप का काटना

कीट-दंशों में साँप का काटना सर्वाधिक घातक होता है। साँप काटने से भारत में प्रतिवर्ष काफी संख्या में लोग मरते हैं। इस विषय में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि सभी सर्प विषैले नहीं होते है और सभी साँपों के काटने से मृत्यु नहीं होती।

फिर भी साँप के काटे का ऐसा आतंक मनुष्य के मन पर बैठा हुआ है कि वहुत से साँप काटे मनुष्य डर के मारे ही बेहोश हो जाया करते हैं और दिल कमजोर होने से मर तक जाते हैं।

साँप स्वभाव से बहुत डरपोक जन्तु है। वह अपने आप कभी मनुष्य पर आक्रमण नहीं करता। जब मनुष्य उस पर प्रहार करता है, या मनुष्य के पैर से कुचल जाता है, तब वह अवश्य ही काटता है।

काटे हुए स्थान से खून बहना, जलन और पीड़ा होना, सूजन आजाना, शून्यता होना और दंश स्थान पर हरा-नीलापन आ जाना—ये लक्षण जहरीले साँप के काटने पर होते हैं।

सांप काटे पर सबसे प्राथमिक उपचार यह है कि अति शीघ्रता पूर्वक दंश स्थान से चार-छै अंगुल ऊपर खूब कड़ा बंधन बांध कर रक्त का संचालन रोक देना चाहिए। बंधन यदि रबर का हो तो सबसे अच्छा, अन्यथा रस्सी या कपड़ा जो भी तत्काल मिल जावे, उससे ही बंधन बांध देना चाहिए। ऐसा करने से सांप का जहर खून से मिलकर सारे शरीर में नहीं फैल पाता। काटने के बाद जल्दी से जल्दी एक-दो मिनट के भीतर बँधन अवश्य बँध जाना चाहिए।

बाँधने के बाद काटे हुए स्थान को स्प्रिट, पेट्रोल, तारपीन का तेल या शुद्ध जल से खूब धोकर दंश स्थान पर दो इंच लम्बा और आधा इंच गहरा चीरा लगाना चाहिये। चीरते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कोई नाड़ी या धमनी (नस) न कट जावे। दंश स्थान को चीर कर अंगूठों से खूब दबा-दबा कर दंश स्थान का रक्त निकालना चाहिए। इस क्रिया का मुख्य उद्देश्य सांप का जहर बाहर निकालना है।

तूंबी, नली या मुख से चूस कर भी दंश स्थान से जहर निकाला जा सकता है। मुंह से चूस कर जहर को तुरन्त ही थूकते जाना चाहिए। जो व्यक्ति मुँह से जहर चसे उसके मुंह में भीतर किसी तरह का छाला या घाव नहीं होना चाहिए, अन्यथा जहर का प्रभाव चूसने वाले पर भी तत्काल हो जायेगा छोटी कटोरी या कांच के छोटे गिलास में स्प्रिट जलाकर उसको दंश स्थान पर औंधा रखने से भी जहर बाहर आता है।

जहर निकाल कर सांप काटे व्यक्ति को, नीम की पत्ती खिलाने से यदि उसका स्वाद कड़वा लगे तो समझना चाहिए कि जहर निकल गया और उसका प्रभाव शरीर में अन्यत्र नहीं पड़ा है।

विष-मोक्षण की उपरोक्त क्रिया के अनन्तर चीरे हुए स्थान पर पोटाशियम परमेगनेट (पिनकी अर्थात् पानी में डालने की लाल दवा) के दाने खूब मलना चाहिये। पिचकारी या किसी अन्य साधन से पिनकी का घोल दंश स्थान में आधा इंच गहराई तक खूब भरना चाहिए।

रोगी को सोने नहीं देना चाहिए और पूर्ण स्वस्थ न होने तक अन्न न खिलाकर केवल दूध में घी मिलाकर पिलाना चाहिए। रोगी को बहलाना चाहिए

और भरपूर यह विश्वास दिलाना चाहिए कि उसका कोई अनिष्ट नहीं होगा और वह शीघ्र अच्छा हो जायगा जिससे डर या घबराहट के मारे उसका दिल न बैठने पावे।

यथाशीघ्र जहर चूसने का प्राथमिक उपचार करके रोगी को अस्पताल अथवा सुयोग्य चिकित्सक के पास पहुँचाकर चिकित्सा करनी चाहिए।

विष-भक्षण

कभी भूल से या जान बूझ कर अफीम, शृंगीविष, कुचला, संखिया, धतूरा आदि जहर अथवा अन्य विषैली चीज खाने से मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ जाता है। जब ऐसी घटना हो तो प्राथमिक उपचार हेतु तत्काल रोगी को वमन-विरेचन (उल्टी-दस्त) कराना चाहिए जिससे खाया हुआ जहर, रक्त में मिलने के पहले ही पेट के बाहर निकल आवे। आधा सेर पानी में एक छटाँक नमक डाल कर रोगी को पिला देने से निश्चित रूप से कय (उल्टी) हो जाती है। एक बार नमक पानी पिलाने से उल्टी न हो तो दुबारा पिलाना चाहिये जब तक रोगी को डाक्टरी सहायता न मिले तब तक शीघ्रतापूर्वक यदि कै-दस्त कराके रोगी का जहर निकालने का प्रयास कर लिया जाय तो मृत्यु से बचना संभव हो जाता है।

अंशुघात (लू लगना)

प्राथमिक अपघातों (एक्सीडेन्टों) में लू लगना सबसे प्रमुख और मृत्युकारक है। तेज गर्मी के दिनों में लू लगने से बहुत मौतें होती हैं।

तीव्र धूप में जबकि गर्म हवायें चलती हैं, तब खुले सर, उघारे बदन, नंगे पैर, बिना छाता के प्यासे फिरने से निश्चित रूप से लू लगती है। खस के पर्दे लगे कमरों अथवा कूलर आदि अन्य प्रकार से ठंडे किये गये स्थान से एकाएक तेज धूप में बाहर निकल पड़ने से भी लू लग जाती है।

लू लगने का अर्थ है शरीर की तरलता और स्निग्धता का एकाएक सूख जाना। सूर्य की किरणों के आघात से शरीर का जलीय अंश शोषित हो जाना ही—लू लगना कहा जाता है।

गर्मी में लू चलते समय बाहर जाना आवश्यक हो तो सदा ही काफी पानी पीकर बाहर निकलने से और मोटे कपड़े से शरीर को ढक कर चलने से या कम से कम कान बाँध कर छाता की छाया में चलने से तेज धूप में लू लगने का भय नहीं रहता। यथासंभव तो कड़ी गर्मी और तेज धूप में घर से बाहर निकलना ही नहीं चाहिए। निकलें तो पेट भर पानी पीकर निकलें।

लू लग जाय तो तत्काल प्याज का रस निकाल कर रोगी को पिलाना चाहिए। बर्फ के टुकड़े चूसने के लिए मुंह में डालते रहना चाहिए। मस्तक पर भी बर्फ की थैली रखनी चाहिए। कच्चे आम (कैरी) को भून कर उसका नमकीन या मीठा शर्बत रोगी को पिलाना चाहिए। चने की सूखी पत्तियों (भाजी) को पानी में गलाकर, रोगी के सारे शरीर पर उसकी मालिश करना चाहिए। जो श्रमिक गर्म स्थान जैसे कोयलों की भट्टी में कार्य करता हो उसको गर्मी के ऋतु में नमक अधिक खाना चाहिए अत्यधिक पसीना निकलने से जो शारीरिक हानि होती है इससे उसकी पूर्ति हो जाती है।

चिकित्सा-प्रकरण

ज्वर-बुखार

शरीर की तापवृद्धि का नाम ही ज्वर है। ज्वर सब रोगों का राजा है। जन्म और मरण के समय बुखार का कुछ-न-कुछ अंश जरूर ही रहता है। शरीर के जितने भी रोग हैं, उन सबों के साथ ज्वर का होना प्रायः सम्भव है। ऐसे तो ज्वर बहुत तरह के होते हैं, पर हम इस प्रकरण में उन्हीं बुखारों तथा उनके इलाजों का वर्णन करेंगे, जो अक्सर लोगों को हुआ करते हैं।

मामूली बुखार––ठण्डा लगने, गर्म शरीर को तुरन्त ठण्डा लगने, तेज धूप में घूमने, वर्षा में भीगने, चोट लगने, ज्यादा परिश्रम करने, ज्यादा दिमागी काम करने, रात को जागने, खराब जलवायु वाले स्थानों में रहने, अनियमित भोजन करने, ज्यादा भोजन करने, अधिक उपवास करने, मादक पेय––जैसे शराब, ताडी वगैरह ज्यादा पीने, किसी तरह जहर के खून में पहुँचने तथा कब्जियत आदि से साधारण ज्वर पैदा होता है। यदि पहले का संचय किया हुआ विकार शरीर में नहीं रहा तो यह मामूली बुखार दो-तीन दिन में आप ही उतर जाता है, किसी दवा की जरूरत नहीं पड़ती; पर शरीर में यदि पहले से ही विकार एकत्र हो तो उसके कारण यही बुखार अपना उग्ररूप धारण कर लेता है और कभी-कभी कोई भयंकर रोग भी पैदा कर देता है; नहीं तो उपर्युक्त कारणों से होनेवाला साधारण बुखार तो शरीर के और भी विकारों को दूर कर इसे नीरोग कर देता है। जब शरीर में किसी तरह का जहर व्याप्त हो जाता है, तो प्रकृति उसे निकालने की व्यवस्था स्वयं करती है, यह साधारण बुखार उसी व्यवस्था का एक स्वरूप है। मामूली बुखार १०२ डिग्री के आस-पास ही रहता है। इसमें सिर या सारे बदन में दर्द होता है, पेशाब का रंग लाल होता है और कम मात्रा में होता है, साथ ही बेचैनी रहती है तथा प्यास अधिक लगती हैं।

चिकित्सा––ऐसे रोगी को मुलायम बिस्तरे पर लिटा कर आराम देना चाहिए। खाने को नहीं देना चाहिए। यदि भूख खूब लगी हो तो ज्वर की हालत

में दूध-साबूदाना, चाय, मिश्री आदि खूब हल्की चीजें खाने को देना चाहिए। अन्न देना बिल्कुल मना है। पीने के लिए गर्म करके खूब ठण्डा किया हुआ जल जितना पी सके, उतना देना चाहिए; प्रत्येक बार गरम ही पानी पिया जाय तो दोष पाचन होकर विशेष लाभ होता है। मिश्री का शरबत, मौसमी का रस, सोडा वाटर, बर्फ का पानी या डाभ (कच्चे नारियल का पानी) देना भी बहुत अच्छा है। ज्यादा पानी पीने से पेशाब ज्यादा होगी, जिससे शरीर का जहर निकल कर शरीर जल्दी नीरोग हो जायगा। इस बात को भूलना न चाहिए कि पेशाब के साथ, पाखाने के साथ और पसीनें के साथ शरीर का जहर निकल कर शरीर को जल्दी नीरोग कर देता है। अतः इस प्रकार के बुखार में प्रायः दवाओं की जरूरत ही नहीं पड़ती। एक-दो दिन आराम करने से ही ज्वर चला जाता है। रोगी को साफ और हवादार कमरे में लिटाना चाहिए। शारीरिक और मानसिक किसी भी प्रकार की मेहनत, स्नान, स्त्री-प्रसङ्ग बिल्कुल मना है। रोगी को जब पसीना आने लगे तो उसे खाद्दी के तौलिये से धीरे-धीरे पोंछ देना चाहिए। ऊपर लिखी हुई तरकीब हर प्रकार के बुखार में लाभदायक होती है। मामूली बुखार यदि एक-दो दिन में अच्छा होता दिखाई न पड़े, तो नीचे लिखी हुई दवा का सेवन करने से ठीक हो जायगा। यथा—

पान का रस ५·८३ ग्राम, अदरक का रस ५·८३ ग्राम, शहद ५·८३ ग्राम, ये तीनों चीजें मिलाकर सुबह-शाम दोनों समय पी लेना चाहिए। इससे बुखार बहुत जल्द दूर हो जाता है। यदि जुकाम या सर्दी-गर्मी का बुखार हो तो नीचे लिखा हुआ काढ़ा बड़ा फायदेमन्द होगा। यह काढ़ा हमारे कई बार का परीक्षित है।

गुलबनफ्शा, गाजवाँ, मुलेठी, गिलोय और खूबकला—इन पाँचों चीजों को बराबर भाग लेकर २३·२ ग्रा. वजन करके ४६७ ग्राम जल में डाल कर आग पर चढ़ा देना चाहिए। जब ११६·६ ग्रा. पानी रह जाय, तब छानकर उसमें ११·६६ ग्रा. शहद या मिश्री मिलाकर दो बार में पी जाना चाहिए; सुबह और शाम। इससे जुकाम ठीक होकर तबियत हल्की हो जाती है। यदि दस्त न होने की शिकायत हो तो इसी काढे में १०-१५ नग मुनक्का या ३ से ५ नग अंजीर और डाल

देना चाहिए। इस काढ़े से बुखार या जुकाम के साथ होनेवाली खाँसी भी तुरंत अच्छी हो जाती है।

सर्द-गर्म की वजह से होनेवाले बुखार में २३·२ ग्राम खूबकलाँ का ऊपर लिखे मुताबिक काढ़ा बनाकर पीना बड़ा फायदेमन्द होता है। गर्मी (लू) लगकर जो बुखार हो उसमें कच्चे आम को पुटपाक की रीति से पका कर और उसका रस ४६७ ग्राम पानी में मिलाकर पीना निहायत फायदेमन्द हैं। गुलबनफशा का शरबत पीना बड़ा गुणदायक होता है। ज्यादा परिश्रम के कारण होनेवाले बुखार में खूब आराम करना और चित्त को प्रसन्न रखना ही सर्वोत्तम उपाय है। जल-वायु के दोष से होने वाले बुखारों से बचने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि फिटकरी डालकर औंटा हुआ साफ जल पीना चाहिए और संयम-नियम से रहना चाहिए। ऐसे स्थान में मसहरी के भीतर सोना उत्तम हैं। तुलसी के पत्ते की चाय भी हर प्रकार के बुखार में फायदा करती है। बनाने की विधि यह है :—

२० तुलसी के पत्ते, २० काली मिर्च, ५·८३ ग्राम अदरख और जरा-सी दालचीनी को २३३ ग्राम पानी में डालकर खूब औटाना चाहिए, उसके बाद आग से उतार कर उसे छान लेना चाहिए और ऊपर से २९·२ ग्राम मिश्री या चीनी मिलाकर गर्म-गर्म पी जाना चाहिए।

बुखार में मट्ठा या दही का शरबत पीना बहुत फायदेमन्द होता है। एक पाव दही में एक पाव पानी और २९·२ ग्राम चीनी मिलाकर अच्छी तरह घोंट देने से अच्छा शरबत तैयार हो जाता है। चीनी की जगह नमक जरा-सा डाला जाय तो और भी अच्छा है। इसके पीने से पेट ठण्डा रहता है और पेशाब साफ होती है।

कब्जियत या बदहजमी के कारण होनेवाले बुखार में मामूली जुलाब पंचसकार चूर्ण लेकर पेट साफ करना बहुत अच्छा है।

बहुत-से नासमझ लोग बुखार के रोगी को खूब गर्म कपड़ों में लपेट कर ऐसे स्थान पर लिटाते है जहाँ हवा और प्रकाश का पहुंचना बड़ा कठिन होता है। ऐसी बन्द जगहों में नमी और दुर्गन्ध का होना स्वाभाविक ही है। रोगी को ऐसी

जगह में लिटा कर रखने से बड़ा नुकसान होता है। यदि भला-चंगा आदमी भी ऐसे स्थान में एक दिन सो जाय तो वह बीमार हो जाय, फिर बीमार आदमी को ऐसी जगह में सुलाना कितना हानिकारक हो सकता है, इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है।

हम ऊपर कह आये हैं कि शरीर में विकार जमा हो जाने पर प्रकृति खुद उसे दूर करने की चेष्टा करती है और बुखार भी उन्हीं चेष्टाओं में से एक है। अतः जब प्रकृति अपने प्रयत्न में लगी हो तो हमें उसके कामों में मदद देनी चाहिए। बन्द और गन्दे कमरे में रोगी को लिटा कर प्रकृति के कार्यों में रुकावट पैदा न करनी चाहिए। हवादार और प्रकाशमय स्थान में रोगी को लिटाने से प्रकृति को अपना काम करने में बड़ी मदद मिलती है। ऐसी जगह पर आराम से लिटाया हुआ रोगी बहुत जल्द बिना दवा के ज्वर से मुक्त हो जाता है।

आरोग्यपंचक

हर्रे, कुटकी, अमलतास, निशोथ और आमला—इन पाँचों दवाओं को २३·२ ग्राम लेकर ४६७ ग्राम पानी में डालकर काढ़ा बनाएँ। जब ११६·६ ग्राम पानी शेष रह जाय, तब उतार और छान कर एक शीशी में भर दें। इसमें २३·२ ग्राम शहद और मिला दें। एक या दो घण्टे के अन्दर से दो-तीन बार पिलाने से दस्त होकर कोठा साफ हो जायगा और ज्वर भी उतर जायगा। मामूली बुखार की यह बहुत सुन्दर दवा है। जिसको कब्जियत हो उसके लिए तो अमृत के समान है। कब्जियत वाले रोगी को इस दवा के सेवन से दस्त साफ न हो तो दवा की मात्रा कुछ बढ़ा देनी चाहिए। अगर एक दिन में पेट अच्छी तरह साफ न हो तो दो-तीन दिन तक बराबर दवा पिलानी चाहिए। प्रायः हर तरह के बुखार में कब्जियत हो जाती है, उस हालत में इस "आरोग्यपंचक" का सेवन बहुत अच्छा है। इससे कब्जियत मिटती है और बुखार भी ठीक हो जाता है।

छोटी हर्रे के चूर्ण में काला नमक मिला कर देने से भी पाखाना होकर पेट साफ हो जाता।

त्रिफला के काढ़े में साफ एरण्ड (रेंडी) का तेल डाल कर पिला देने से भी दो-चार दस्त हो जाते हैं।

पटोलादिक्वाथ

कड़वे परवल के पत्ते, हर्रेदल, बहेड़ादल, आंवला दल, नीम की अन्तर-छाल, मुनक्का, इन्द्र जौ, नागरमोथा मुलेठी, गिलोय और अड़ूसा—ये सब द्रव्य सम भाग लें और व ११'६६ ग्राम का काढ़ा बनाकर उसमें नौसादर ६०७ मि. ग्रा. और कलमी सोरा ६०७ मि. ग्रा. डालकर दिन में ३-४ बार पीवें। केवल इसको या त्रिभुवन कीर्तिरस या ज्वर संहार आदि के अनुपात में दें। सब तरह के बुखारों में लाभ करता है।

ज्वर की प्रधान दवा उपवास है। बुखार होते ही उपवास (फाका) करना शुरू कर देना चाहिए। बालक, बूढ़े, गर्भवती-स्त्री तथा क्षय, वायु, भय, क्रोध, काम, शोक, परिश्रम से होने वाले बुखार के रोगी के लिए उपवास करना अच्छा नहीं है। ऐसे रोगियों को दूध, साबूदाना, बार्ली, अरारोट, किसमिस आदि हल्का भोजन थोड़ा-थोड़ा तीन-चार बार देना चाहिए। जिसकी तन्दुरुस्ती अच्छी हो उसे पानी के अतिरिक्त और कुछ देना अच्छा नहीं, लेकिन आजकल के लोग प्राय: कमजोर ही होते हैं, इसलिए बिल्कुल निराहार रखना भी ठीक नहीं; क्योंकि यदि बुखार ज्यादा दिन तक रह गया और खाने को कुछ नहीं मिला तो रोगी बहुत कमजोर हो जाता है। इसलिए अच्छी तरह सोच-विचार कर हल्का पथ्य तथा मौसम्मी, बेदाना आदि ताजा फल देना अच्छा है।

सारांश यह है कि यदि तन्दुरुस्ती वाले किसी मजबूत आदमी को बुखार लगे और वह दो ही चार दिन में उतर जाय तो वह निराहार भी रह सकता है, पर ज्यादे दिन का होने से ऊपर बतलाये गये हल्के पथ्य दिये जाने चाहिए और कमजोर आदमी को तो बराबर कुछ-न-कुछ खिलाना ही चाहिए, जिससे उसकी कमजोरी ज्यादे बढ़ने न पावे।

पित्तज्वर

यह बुखार वर्षा ऋतु या इसके अन्त में (भादों, आश्विन और कुछ कार्तिक तक) हुआ करता है। जिस साल वर्षा कम होती है, उस साल पित्त का बुखार

भी कम और जिस साल ज्यादा बारिश होती है, उस साल ज्यादा होता है। वर्षा होने के कारण जगह-जगह जल इकट्ठा हो जाता हैं और उसमें घास-पत्ते आदि गिर कर सड़ने लगते हैं जिससे वहाँ मच्छर पैदा हो जाते हैं। उस दुर्गन्ध के कारण वहाँ की हवा भी खराब हो जाती है। विषैले मच्छरों के काटने तथा हवा की गन्दगी से यह बुखार पैदा होता है। ऐसी दशा में जाड़ा देकर होने वाला मलेरिया बुखार भी हो जाता है। हम मलेरिया के सम्बन्ध में आगे चलकर लिखेंगे।

आयुर्वेद शास्त्र में एक और भी युक्ति-संगत कारण लिखा है। वाग्भट्ट ने लिखा है कि ऋतुओं के नियमानुसार वर्षा-ऋतु में पित्त का संचय होता है और गोदन्ती भस्म ८ भाग, जहर मोहरा पिष्टी २ भाग रसादि वटी २ भाग मिलाकर एक जगह रख ले। मात्रा ९७२ मि. ग्रा.; इसी का नाम गोदन्तीमिश्रण है। शरद्-ऋतु में पित्त कुपित हो कर अनेक रोग पैदा करता है। वर्षा-ऋतु में वर्षा और ठण्डी हवा के कारण लोगों के शरीर ठण्डे रहते हैं। वर्षा के जाते ही जब धूप पड़ने लगती है, तब पित्त दूषित होकर बुखार पैदा करता है। पित्त से होने वाले जितने रोग हैं उनमें बुखार सर्वप्रधान है। किसी भी तरह का बुखार हो उसमें शरीर की गर्मी बढ़ना तो जरूरी ही है। शरीर के ताप का ही नाम बुखार है। यह ताप बिना पित्त के हो नहीं सकता। अतः बिना पित्त के कुपित हुए किसी भी प्रकार का बुखार नहीं हो सकता। वायु या कफ के बुखारों में भी पित्त का कुपित होना जरूरी है। जब बुखार के साथ पित्त का इतना सम्बन्ध है, तब पित्त के मौसम में बुखार ज्यादा फैलना बिल्कुल स्वाभाविक है। यही कारण है कि पित्त के मौसम—शरद्-ऋतु में ज्यादा बुखार हुआ करता है। इस पित्त के बुखार से बचने के लिए जुलाब लेना और कुछ रोज उपवास करना उचित है। नियमपूर्वक एक-दो नीबू को चूसने से बुखार का डर नहीं रहता। नीबू के दो टुकड़े करके उसके बीज निकाल लेने चाहिए और उसमें ऊपर से सेंधा नमक तथा काली मिर्च का चूर्ण ९७२ मि. ग्रा. से १॥ ग्राम तक डाल कर कोयले की आग पर उसे गर्म कर लेना चाहिए और गर्म-गर्म चूसना चाहिए। देशी चीजों में बुखार रोकने के लिए यह कुसादन से कम नहीं है।

पित्त ज्वर में नीचे लिखे हुए लक्षण प्रकट होते हैं—१०३ से १०५ या १०६ डिग्री तक का जोर का बुखार, प्यास की अधिकता, कै और उसमें पित्त का निकलना, जी मिचलाना, सिर गर्म रहना, आँखें लाल रहना, पसीना अधिक आना, नींद न आना, कभी-कभी प्रलाप करना, मुँह का स्वाद कड़ुवा रहना, पतले दस्त का होना, बेचैनी और पेशाब का रंग पीला होना। बुखार सुबह में १०० से १०२ डिग्री तक, शाम को १०३ से १०६ डिग्री तक रहता है। बुखार की अधिकता के कारण रोगी आधी आँख बन्द किये पड़ा रहता है।

पित्त का बुखार प्राय: दसवें दिन उतरता है। रोग जब अच्छा होने को रहता है तो ७ दिन के बाद ही रोगी के लक्षण अच्छे मालूम होने लगते हैं, बेचैनी कम होने लगती है, नींद आने लगती है और शरीर का ताप कम हो जाता है। परन्तु यदि सातवें दिन से बुखार का वेग और भी बढ़ने लगे तो समझना चाहिए कि रोगी का बचना मुश्किल है। सात दिन के बाद रोग लक्षण प्रबल होने से यह रोगी की जान लेकर ही दम लेता देखा गया है। यह बुखार २१ दिन से भी ज्यादा रह सकता है।

चिकित्सा—रोगी को साफ हवादार कमरे में लिटा कर रखना सबसे अच्छी चिकित्सा है। शास्त्र ने ७ रोज तक दवा देने का निषेध किया है। अनुभव से भी देखा गया है कि ७ दिन के भीतर दवा देने से फायदा के बदले हानि होने लगती है। लेकिन प्राय: देखा जाता है कि दो-तीन दिन के बाद ही रोगी के घर के लोग घबड़ाकर डाक्टर-वैद्य को दिखला कर दवा देने के लिए तंग करने लगते हैं। डाक्टर-वैद्य भी व्यापार की रक्षा के लिए अपनी जवाबदारी न समझ कर कुछ-न-कुछ दवा देना शुरू कर देते हैं। होमियोपैथी में रोगी तथा उसके घर वालों के संतोष के लिए ऐसे मौको पर Blank Dose (खाली साफ किये हुए जल की खुराक) देने की प्रथा है। उसी प्रकार यदि वैद्यराज जी होशियार हुए तब तो ऐसी हल्की दवा दे देते हैं, जिससे रोगी तथा उनके घर वालों को संतोष तो हो जाय, पर रोग पर कोई बुरा असर न पड़े। परन्तु जब 'नीम हकीम खतरे जान' कोई वैद्य रहे तो काढ़ा, चूर्ण चटनी आदि चीज देने लग जाते हैं जिससे रोग बढ़ जाता है। इसीलिए ऐसे रोगियों को किसी अधूरे वैद्य

या डाक्टर से दिखलाने की अपेक्षा प्रकृति के ऊपर ही छोड़ देना लाख गुना अच्छा है। रोगी को खूब हिफाजत से रखना चाहिए। अन्न बिल्कुल नहीं देना चाहिये और पीने को निम्नलिखित प्रकार से तैयार किया हुआ जल देना चाहिए। नागरमोथा, खश, पित्तपापड़ा, लाल चन्दन, सुगन्धबाला और सोंठ—इन छः चीजों को मिलाकर ११ ६६ ग्रा. वजन में ले लीजिए और १·८७ किलो पानी डालकर उसे औंटा लीजिए, आधा पानी शेष रहने पर उसे छान कर मिट्टी के बर्तन में रख दीजिए और रोगी को प्यास लगने पर उसी जल को पीने को इसे दीजिए। "षडंग पानी" कहते हैं। इसके पीने से प्यास कम होगी, बेचैनी घटेगी, कै बन्द होगी और बुखार भी कम हो जायगा। इस पानी की गिनती दवा में नहीं होती। यदि बुखार के साथ और कोई उपद्रव हो तो उसका इलाज अवश्य करना चाहिए। कच्चे बुखार में दवा न देने का उद्देश्य यह है कि बुखार के साथ जबर्दस्ती न की जाय। सात दिन के अन्दर यदि दवा देने की जरूरत हो तो नीचे लिखी दवा देनी चाहिए। इससे रोग पर कोई उल्टा असर भी नहीं होगा और रोगी तथा उसके घर वालों के चित्त को संतोष भी रहेगा तथा ज्वर में कुछ-न-कुछ फायदा भी अवश्य ही होता है। गोदन्तीमिश्रण-कम मात्रा में देना चाहिये।

आनन्दभैरव रस—शुद्ध हिंगुल, शुद्ध तेलिया-(मीठा विष) सोंठ, फूला हुआ सोहागा और जायफल—इन पाँचों चीजों को ११·६६ ग्राम काली मिर्च और छोटी पीपल २३·२ ग्राम लेकर अलग-अलग इन्हें खूब महीन पीसकर वजन कर लेना चाहिए। पहले शुद्ध हिंगुल को खरल में डालकर खूब देर तक पीसने के बाद सभी चीजों को उसमें डालकर तथा जम्बीरी नीबू के रस में भिगो कर घोटना चाहिए। अच्छी तरह घुट जाने पर १२१·५० मि. ग्रा. की गोली बना लेनी चाहिए इसी का नाम "आनन्दभैरव रस" है। यह आनन्दभैरव रस हर तरह के बुखार में दिया जा सकता हैं। मामूली बुखार में सुबह और शाम एक-एक गोली शहद के साथ चाटने से फायदा होता है। जब बुखार बहुत जोर का हो और उसके कम न होने के कारण रोगी के अनिष्ट होने की आशंका हो तो एक गोली आनन्द भैरव रस, ११.६६ ग्राम अदरख का रस और ११·६६ ग्राम शहद मिला

कर दिन-रात में ३ बार देने से बुखार का वेग जरूर कम हो जाता है। एक खुराक से आधी डिग्री या एक डिग्री बुखार कम हो जाता है। अगर बुखार कम करने की जरूरत न हो, तो आनन्दभैरव रस को सिर्फ शहद के साथ दिन-रात में दो बार चटा देना चाहिए। इससे बुखार धीरे-धीरे पचकर उतर जाता है।

मृत्युञ्जय रस––शुद्ध हिंगुल २३·२ ग्राम, शुद्ध टंकण, शुद्ध मीठा विष, काली-मिर्च, पीपल के चूर्ण और शुद्ध गन्धक प्रत्येक ११·६६ ग्राम ––इन चीजों को अलग-अलग महीन चूर्ण करके वजन कर लेना चाहिए और फिर पत्थर के खरल में रख कर आवश्यकतानुसार अदरख का रस मिला कर उसकी मूंग के बराबर की गोलियाँ बना लेनी चाहिए। एक-एक गोली सुबह शाम २ ग्राम शहद और ३ ग्राम पान के रस के साथ रोगी को खिलाने से बड़ा फायदा होता है। बुखार की हालत में इसके सेवन से नये उपद्रव बढ़ने की आशंका नहीं रहती और धीरे-धीरे बुखार पचकर उतर जाता है।

रसादि वटी––शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, कपूर, सफेद चन्दन, जटामांसी, नेत्र बाला, नागरमोथा, खश ये ८ दवा समभाग लें तथा बनाने की तरकीब यह है कि पारा और गन्धक को छोड़कर और सभी चीजों को अलग-अलग महीन चूर्ण करके ठीक से तौल कर रख लेना चाहिए। पहले पत्थर के खरल में पारा और गन्धक को २ घण्टे इस प्रकार घोंटना चाहिए कि पारा और गन्धक मिल-कर कज्जली तैयार हो जाय फिर उस कज्जली में सब चीजों को मिला कर चार घण्टे तक खूब घोंटना चाहिए। गुलाव तथा चन्दन के अर्क से दो तीन दिन तक मर्दन करे और एक साफ की हुई वोतल भर कर अच्छी तरह डाट लगा देनी चाहिए। इसी का नाम "रसादि वटी" है। इसकी ३६४ मि.ग्रा. की एक खुराक है। शहद के साथ दिन-रात में ३ बार चाटना चाहिए। यह वटी बासी पानी के साथ भी खायी जा सकता है। इसके सेवन से ज्वर, भयंकर प्यास, कै, बेचैनी आदि आराम होते हैं। यह पित्त ज्वर की अच्छी दवा है। गोदन्ती हरताल भस्म बराबर भाग मिलाकर रसादि वटी देने से ज्वर तत्काल कम हो जाता है। यदि बहुत जोरों का बुखार हो, श्वास लेने में तकलीफ हो, प्यास और कै बहुत हो, रोगी बहुत बेचैन हो तो रसादि वटी के बराबर गोदन्ती

हरताल भस्म मिलाकर शहद या जल के साथ खिला देना चाहिए। एक घण्टे बाद थर्मामीटर लगाकर देखने में बुखार १ से ३ डिग्री तक कम हुआ मालूम पड़ेगा। हमने इसे अनेक बार आजमा कर देखा है।

यदि समय पर ऊपर लिखे तीनों रस तैयार न मिलें तथा और भी कोई रस तैयार न मिले, तो केवल अदरख का रस ३ ग्राम और ३ ग्राम मकरध्वज के साथ सुबह-शाम देने से बुखार में बहुत फायदा होता है और वह ठीक समय पर उतर जाता है। पित्तज्वर में मकरध्वज को शहद में मिला कर धनिये का पानी या परवल के पत्तों का रस या अनार का रस ११·६६ ग्राम डाल कर देना चाहिए, इससे बहुत लाभ होता है। यदि ७ रोज हो जाय और बुखार का जोर कम नहीं हो, तो नीचे लिखा काढ़ा देना चाहिए। इससे तुरन्त फायदा होगा। यह बात याद रखें कि यह काढ़ा ७ दिन से कम में नहीं देना चाहिए।

ज्वासा, पित्तपापड़ा, फूलप्रियंगु, चिरायता, कुटकी और अडूसे की जड़ की छाल—इन छः दवाओं को समभाग लेकर २३·२ ग्राम वजन कर काढ़ा बना लेना चाहिए। ऊपर से २३·२ ग्रा मिश्री का प्रक्षेप डाल कर पी जाना चाहिए। इससे पित्त ज्वर, प्यास, कै, जलन आदि आराम होते हैं।

मुनक्का, हरड़ की छाल, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, कुटकी, अमलतास की गिरी—इन छः दवाओं का काढ़ा ऊपर की तरह बनाकर मिश्री मिला कर पीने से पित्त का ज्वर, प्रलाप, बेहोशी, भ्रम, जलन, मुंह का सूखना, प्यास आदि शान्त होते हैं। इस काढ़े से दो-एक दस्त होकर जल्दी फायदा होता है। यदि ज्यादा दस्त होने लगे तो काढ़ा बन्द कर देना चाहिए।

केवल पित्तपापड़े का काढ़ा भी पित्त ज्वर में बहुत फायदा पहुँचाता है। यदि पित्तपापड़े के साथ लाल चन्दन, खश और सोंठ—ये तीनों चीजें भी मिला दी जाएँ तो और विशेष लाभ होता है। इस काढ़े को मिश्री मिला कर पीना चाहिए। यह पित्त ज्वर में बहुत फायदा करता है। पित्तज्वर में वमन को रोकने के लिए धान का लावा ११·६६ ग्रा. और मिश्री ५८.३ ग्रा. २३३ग्रा. गरम पानी में डाल कर कुछ समय रखें। जब लावा और मिश्री पानी में गल जाय तब छान कर नीबू का रस और गुलाब-जल मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पिलाना चाहिए।

३ तोला पुरानी इमली को पत्थर या कांच के वर्त्तन में डालकर २३३ ग्राम गरम पानी में भिगो दें, कुछ देर बाद मल कर छान लें और चिनी या मिश्री मिला कर पीने को दें, इससे कै बन्द हो जायगी।

पित्तज्वर में बुखार जोर का हो जाता है, उस समय यदि उपर्युक्त दवा न मिले तो सिर्फ ५ या ७ लौंग जल के साथ घिस कर रोगी को देने से ज्वर कम हो जाता है।

ठण्डा पानी या गुलाब-जल में सफेद कपड़ा भिगो कर सिर पर पट्टी रखने से भी ज्वर कम हो जाता है।

मलेरिया बुखार

पहले तो यह ज्वर अधिकतर बङ्गाल और आसाम में ही हुआ करता था, परन्तु आजकल तमाम हिन्दुस्थान में फैल गया है। फिर भी और प्रान्तों की अपेक्षा बङ्गाल, आसाम और मद्रास प्रान्त में यह बुखार अधिक होता है। इस बुखार में प्लीहा और जिगर बढ़ जाता है। शरीर का खून सूख कर रोगी की आँख व चेहरा सफेद हो जाता है। बुखार प्रायः कम्प तथा जाड़ा देकर चढ़ता है, पर पुराना होने पर बिना कम्प के भी चढ़ता है, बहुत सा पसीना आकर उतरता है। इसके आने का समय भी निश्चित होता है। यह बुखार दिन में एक-दो बार, एक या दो दिन बाद देकर आता है। रोज आने वाले बुखार को एकतरा, एक दिन बाद देकर आनेवाले को तिजारी तथा दो दिन बाद देकर आनेवाले को चौथिया कहते हैं। इसके खास लक्षण ये हैं—माथे में जोरदार जलन होना, सिर में चक्कर आना, तापमान का १०३ से १०६ डिग्री तक पहुँच जाना, प्रायः कब्जियत रहना, सिर दर्द, जी मिचलाना और कै होना, जीभ का स्वाद कड़वा हो जाना, कभी प्रलाप भी करना और हाथ-पैरों को इधर-उधर पटकना तथा कभी-कभी दस्त की बीमारी हो जाना।

आजकल के वैज्ञानिकों ने यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि एक खास तरह के मच्छर के काटने से ही मलेरिया बुखार पैदा होता है। एनाफिलीज मच्छर की जाति से प्लॉज्मोडियम नामक रोगाणु मलेरिया को पैदा करता है। वर्षाकाल के अन्त में मच्छर अधिक होते हैं और उसी समय इस

बुखार का दौरा भी अधिक होता है। इससे यह बात अनुमान से भी सिद्ध होती है कि इस बुखार का कारण मच्छर ही हो सकता है।

मलेरिया बुखार की साधारणतः तीन अवस्थाएँ होती हैं :--

(१) **शीतावस्था** में पहले जाड़ा और बाद में कम्प जान पड़ता है। कभी-कभी तो इतने जोर का शीत और कम्प होता है कि तीन-चार कम्बल ओढ़ने पर भी गर्मी मालूम नहीं होती। इसके साथ ही सारे शरीर में दर्द, माथे में धमक, प्यास आदि लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं।

(२) **उष्णावस्था**--शीतावस्था के बाद उष्णावस्था आती है। इसमें अक्सर माथे में दर्द, चेहरा लाल, प्यास, देह का चमड़ा रूखा, साँस लेने में तकलीफ और शरीर का ताप १०१ डिग्री से १०६ डिग्री तक बढ़ जाता है। द्वितीयावस्था के प्रारम्भ होते ही शीत घट जाता है।

(३) **धर्मावस्था**--कुछ देर बाद यह अवस्था आती है। इसमें खूब पसीना आता है और बुखार बिलकुल उतर जाता हैं।

चिकित्सा--मलेरिया बुखार की सबसे उत्तम दवा कुनाइन है। वास्तव में कुनाइन मलेरिया बुखार के लिए ब्रह्मास्त्र है। बहुत लोग कुनाइन की निन्दा करते हैं, परन्तु ऐसे बहुत कम लोग हैं जो कुनाइन का व्यवहार न करते हों। जब बुखार को रोकने के लिए इससे अच्छी कोई दवा ही नहीं हैं, तब सबको इसका प्रयोग करना ही पड़ता है। धूर्त्त लोग कभी लाल रंग मिला कर कुनाइन की गोली बाँध देते हैं, तो कभी कुनाइन के अर्क को चिरायता का अर्क बतला कर रोगियों को देते हैं। हमारी समझ में नहीं आता है कि इस प्रकार छिपा कर कुनाइन देने का मतलब क्या है ? प्रायः ऐसे करने वाले लोग वे ही होते हैं, जो कुनाइन को अंग्रेजी दवा या विलायती दवा समझते हैं। यदि ऐसी बात हो तो भी विलायत के बड़े-बड़े चिकित्सक लोग आयुर्वेद का मकरध्वज, पर्पटी, लौह, ईसबगोल, कूठ, कुटज आदि खुल्लम-खुल्ला व्यवहार करते हैं, तो हमें उनकी अच्छी दवाओं का व्यवहार करने में क्या लज्जा है ? कुनाइन सिनकोना नामक वृक्ष से बनता है और यह वृक्ष भारतवर्ष में दार्जिलिंग आदि जगहों में बहुत पैदा होता है।

कुनाइन का प्रयोग तीन प्रकार से किया जाता है :--

(१) **कुनाइन की गोलियाँ**--ये गौलियाँ प्राय: ६४.८ मि. ग्रा. से लेकर ३२४मि. ग्रा. तक की बनाई जाती है। मलेरिया रोकने के लिए ६ से १२ गोली रोज खाई जा सकती हैं। एक बार में दो से चार गोली तक खाई जाती है। यह खुराक पूरी उम्र वालों के लिए है। अवस्था के हिसाब से मात्रा कम कर देनी चाहिए।

(२)चूर्ण--कुनाइन के चूर्ण (पाउडर) को २४३ मि. ग्रा. से ९७२ मि. ग्रा. तक दिन-रात में चार बार में ठण्डे जल के साथ देना चाहिए।

(३) अर्क--गोली और चूर्ण की अपेक्षा अर्क विशेष लाभदायक होता है, क्योंकि गोली और चूर्ण तो पेट में जा कर पूरी तरह गलने नहीं पाते और इसीलिए ज्यादा फायदा भी नहीं मालूम होता। पर अर्क तो पेट में जाने के साथ ही फायदा करने लगता है। कुनाइन का अर्क बाजार से भी ले सकते है और अपने यहाँ पाउडर से भी तैयार कर सकते हैं। एक खुराक कुनाइन-अर्क तैयार करने के लिए २९.२ ग्राम पानी और २५९.२ मि.ग्रा. कुनाइन सल्फ और इसमें 'सल्फुरिक एसिड डाइल्यूट' उतना ही डालना चाहिए, जिससे कुनाइन जल रूप हो जाय। यानी जल में कुनाइन की सफेदी न रहे। दवा में डालने वाली गन्धक की तेजाव (Chemicaly pure sulphuric acid) का एक भाग और जल ९ भाग मिलाने से 'सल्फर एसिड डाइल्यूट' तैयार हो जाता है। इस प्रकार तैयार की हुई खुराक दिन-रात में चार बार दी जा सकती है। साधारणत: बुखार में कुनाइन देना मना है पर मलेरिया बुखार की चढ़ी हुई अवस्था में भी कुनाईन कुछ नुकसान नहीं पहुँचाता। कुनाईन खिलाने के थोड़ी देर बाद पसीना आकर बुखार उतर जाता है। मलेरिया को छोड़ कर और बुखारों में प्राय: देखा गया है कि इस प्रकार बुखार उतरते समय पसीना अधिक आने के कारण इतनी कमजोरी बढ़ जाती है कि अगर पूरी सावधानी से काम न लिया जाय तो तुरन्त हृदय की धुकधुकी बन्द (Heart failure) होकर मिनटों में रोगी का प्राणान्त हो जाय। अत: मलेरिया बुखार के सिवाय दूसरे किसी भी बुखार की चढ़ी हुई अवस्था में कुनाईन कदापि नहीं देना चाहिए। बुखार के उतर जाने पर थोड़ी-थोड़ी देर पर रोगी को कुनाईन की चार खुराक पिला देनी चाहिए

जिससे फिर बुखार का दौरा न होने पावे। मलेरिया को जड़ से नष्ट करने के लिए कुनाईन ७.१३ ग्राम तक रोगी को खिलाना चाहिए। ७.१३ ग्राम इसकी पूर्ण मात्रा है। ७.१३ ग्राम कम होने से यह कहा जा सकता है कि रोगी को पूर्ण मात्रा में कुनाईन नहीं दिया गया। जहाँ कुनाईन में इतना गुण है, वहाँ गर्म होने के बाद इतनी गर्मी लाता है कि यदि गाय के दूध का काफी व्यवहार न किया जाय तो शरीर को बहुत हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है इसलिए बुखार के बाद एक-दो सप्ताह गाय का दूध काफी मात्रा में सेवन करना बड़ा लाभदायक है। यदि बहुत ज्यादा गर्मी हो जाय और कान साँय-साँय करने लगे, तो उस हालत में दो-तीन नीबू का रस ४६७ ग्राम पानी में डाल कर ऊपर से ५८.३२ ग्राम चीनी मिलाकर पी जाना चाहिए। इससे कुनाईन की गर्मी शान्त हो जाती है।

इसके अलावा मियादी बुखार के प्रकरण में लिखा "आनंद भैरव रस" की दो गोलियों को शहद में मिला कर चाटकर के ऊपर से निम्नलिखित विधि से तैयार किया गया पानी पी जाना चाहिए। २० तुलसी के पत्ते और २० काली मिर्च को ११६.६४ ग्राम पानी में पकाना चाहिए और २९.२ ग्राम पानी शेष रह जाय तो उसमें २९.२ ग्राम मिश्री डालकर उसे पी जाना चाहिए। काली मिर्च को पीसकर पानी में डालना चाहिए। इस प्रकार तैयार किये हुए पानी को नहीं छानना चाहिए। संखिया-विष भी मलेरिया रोकने तथा यकृत् और प्लीहा को ठीक करने की अक्सीर दवा है। अतः इसके संयोग से तैयार की हुई दवाएँ भी लोग प्रायः सेवन किया करते हैं, परन्तु इसमें जरा-सी भूल होने पर रोगी के प्राण जाने की शंका बनी रहती है और इसमें फायदे की अपेक्षा नुकसान होने की ही अधिक संभावना रहती है, अतः सर्व साधारण के लिए यह उपयोगी होने से बहुत सावधानी से व्यवहार करना चाहिये। सिंकोना की छाल ११.६६ ग्राम काढ़ा कर के पीने से कुनाईन जैसा लाभ होता है।

मलेरिया को रामबाण गोलियाँ

नवीन बढ़िया करंज के बीजों को लें और उनके छिलके उतार कर खूब महीन चूर्ण कर लें। यह चूर्ण ११.६६ ग्राम, कुनाईन ११.६६ ग्राम फिटकरी ११.६६

ग्राम इन तीनों चीजों को खरल में डाल कर पानी के संयोग से दो-तीन दिन तक खूब घोटें फिर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें, मलेरिया बुखार की यह बहुत अच्छी आजमुदा दवा है। दो गोली से चार गोली तक एक बार में जल के साथ देनी चाहिये। ज्वर आने के समय तक यदि रोगी के पेट में चार-पांच बार पहुँच जाएगी तो ज्वर आने का भय नहीं रहेगा। कम्प देकर आने वाले बुखार में हमने बहुत बार परीक्षा की है। सभी समय में ये गोलियाँ तत्काल लाभ दिखाती है। 'करंजादि वटी' के नाम से बहुत लोग इन्हीं को बेच कर काफी लाभ उठा चुके हैं। वास्तव में ये गोलियाँ बहुत अच्छी हैं। मलेरिया बुखार के रोगी को बुखार उतरते ही दवा खिलाना शुरू कर देना चाहिए। बुखार आने के समय के चार घण्टे पहले ही रोगी के पेट में चार-पाँच खुराक दवा पहुँचा देनी चाहिए। दवा दो घण्टे से आठ घण्टे के अन्दर तक खिलानी चाहिए।

करंज बटी—करंजगिरी भुनी हुई, इन्द्रायण की जड़, बनपशा, अतीस कड़ुवा, फूली फिटकिरी, पीपल, बड़ी हरड़ का बक्कल, सब समान भाग लें बारीक कूटकर २४३ मि. ग्रा. की गोली बनालें। २ गोली दिन में तीन बार ठण्डे जल से दें।

सप्तपर्ण बटी—सप्तपर्ण बटी (छतवन) के वृक्ष की हरी-ताजी अन्तर छाल को महीन कूटकर चौगुने पानी में काढ़ा बनावें। चतुर्थांश शेष रहने पर अच्छे कपड़े से दो-तीन बार छान लें। इस काढ़े को फिर बर्तन में डाल कर मन्द अग्नि से पकावें। पकते-पकते काढ़ा जब इतना गाढ़ा हो जाय कि करछी में लगने लगे तब नीचे उतार लें। उसमें उचित परिमाण में अतीस का चूर्ण मिला कर ४८६ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ मलेरिया बुखार के लिए बहुत फायदेमन्द है। इससे ५०-६० प्रतिशत मलेरिया के रोगी अच्छे होते हैं। इसके साथ में दस्तावर दवा देकर रोगी का पेट साफ कर देना चाहिए। हमारा अनुभव है कि कुनाईन के अभाव की पूर्ति कुछ अंशों में सप्तपर्ण ही कर सकता है।

हरीतक्यादि बटी—सि : १३ पेज में देखें।

महाज्वरांकुश रस––शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष ११.६६ ग्राम शुद्ध धतुरे के बीज ३५ ग्राम, काली मिर्च, सोंठ और छोटी पीपल ४६.६ ग्राम, पारद-गन्धक की कज्जली करके और शेष दवाओं का महीन चूर्ण करके खरल में डाल दें और सत्यानाशी के स्वरस की तीन भावना देकर २४३ मि.ग्रा. की गोलियाँ बनावें। मलेरिया बुखार में गोलियाँ बहुत फायदा करती हैं। ज्वर न रहने की अवस्था में तीन-तीन घण्टे के अन्तर से जम्बीरी नीबू और अदरख के रस तीन-तीन ग्राम के साथ १ या २ गोली मिला कर दें। इसका नाम "महाज्वरांकुश रस" है। यह मलेरिया बुखार की प्रसिद्ध दवा है।

मलेरिया रोकने की विधि

ऊपर लिखा जा चुका है कि मच्छरों के कारण यह रोग उत्पन्न होता है; इसलिए मच्छरों को नष्ट करने से ही मलेरिया से बचा जा सकता है। मच्छर केवल जल में ही उत्पन्न होते हैं और मच्छर जिस स्थान पर उत्पन्न होते हैं उस स्थान से अधिक दूर तक उड़ नहीं सकते इसलिए जहाँ जल जमा होता हो उस (जलाशय) से २५-३० फीट दूर निवास करना चाहिए। घर के इर्द-गिर्द कहीं पानी तो नहीं जमा रहता, इस बात पर बराबर ध्यान रखना चाहिए। मच्छरों का स्वभाव है कि रात को अंधेरे में इधर-उधर घूम कर जीवों को काटते हैं। इसलिये मलेरिया से बचने के लिए मसहरी के अन्दर सोना चाहिए। मसहरी की जाली महीन होनी चाहिए ताकि मच्छर भीतर न घुस सकें। सरसों का तेल समूचे शरीर पर लगाना चाहिए जिससे मलेरिया के मच्छर न काटें और काटें भी तो अधिक असर न हो। मलेरिया के दिनों में दो-तीन दिन के अन्तर से कुनाइन की एक खुराक खाने से भी मलेरिया नहीं होता।

निमोनिया या फुपफुसपाक

कारण––फेफड़ों में अकस्मात् सर्दी लगने से निमोनिया हो जाता है। निमोनिया अधिकतर कड़ी सर्दी के मौसम में पैदा होता है बुखार, पसली में भयंकर दर्द, खाँसी तथा कष्ट से जल्दी-जल्दी श्वास लेना निमोनिया के प्रधान लक्षण हैं। एक तरफ की पसलियों में दर्द होने से एक तरफ का निमोनिया और दोनों तरफ की पसलियों में दर्द होने से दोनों तरफ का या डबल निमोनिया

कठिन समझा जाता है। इस रोग में साधारण तीन अवस्थाएँ दिखाई पड़ती हैं।

प्रथमावस्था–इस में फेफड़े में रक्त का संचय होता है और कम्प लगकर बुखार आता है। बुखार १०१ डिग्री से १०४ डिग्री तक बढ़ जाता है। खाँसी मामूली होती है, परन्तु खाँसने पर जरा-सा झागदार कच्चा कफ निकलता है। खाँसते समय पसली के भयानक दर्द से रोगी चिल्ला उठता है। रोग भयानक होने से साँस लेते समय भी पसलियों में दर्द होता है।

द्वितीय अवस्था---इसके दो तीन दिन बाद निमोनिया की यह अवस्था आ जाती है। तीसरी अवस्था में खाँसते-खाँसते बहुत कठिनाई से लोहे का बुरादा जैसा या ईंट की सुर्खी जैसा कठिन और चिकना कफ निकलता है। देर तक खाँसने से जरा-सा कफ निकलता है। कभी-कभी कफ के साथ खून भी दिखाई देता है और छाती भारी मालूम होती है। सिर दर्द, तेज साँस चलना, साँस लेने में तकलीफ, नींद का न आना, बेचैनी, अरुचि, जीभ का सफेद मैल से ढँका होना आदि लक्षण वर्तमान रहते हैं। नाड़ी और श्वास का प्राकृतिक अनुपात ४:१ का बदल कर ३:१ या और कम हो जाता है।

इसके तीन-चार दिन बाद **तीसरी अवस्था** आती है। यदि रोग आराम होने को होता है तो बुखार घटने लगता है, पसलियों का दर्द कम हो जाता है, खाँसते ही बिना तकलीफ से पका हुआ कफ निकलता है तथा रोगी को आराम मालूम होता है। परन्तु जब रोग बढ़ने को होता है तो दूसरी अवस्था में ही फेफड़े में मवाद पैदा हो जाता है। खाँसने से बहुत ज्यादा मात्रा में दुर्गन्ध युक्त कफ निकलता है, नाड़ी तेज और कमजोर हो जाती है तथा रोगी निर्बल और बेहोश होकर प्राणत्याग कर देता है।

इस रोग की परीक्षा के लिए छाती-परीक्षा करने वाला स्टेथिस्कोप यन्त्र की सहायता लेनी चाहिए। इस यन्त्र से प्रथमावस्था में एक प्रकार का कठिन शब्द सुनाई देता है। बाद में बालों के आपस में रगड़ने के जैसा शब्द सुनाई देता है। द्वितीयावस्था में फेफड़े के कठिन होने के कारण किसी तरह का शब्द सुनाई नहीं देता। तीसरी अवस्था में टप्-टप् शब्द सुनाई देता है। फेफड़े में मवाद होने पर धड़-धड़ शब्द सुनाई पड़ता है।

चिकित्सा—निमोनिया के कारण पसलियों में जितनी जगह दर्द हो, 'एण्टी फ्लोजेस्टाईन' नाम के मलहम का लेप करें। यह मलहम किसी भी अंग्रेजी दवा बेचने वाली दुकान में मिल सकता है। लेप करने की विधि यह है कि डिब्बे को थोड़ी देर गरम पानी में रखे, इससे मलहम पतला हो जायगा। फिर चाय पीने वाले चम्मच की डण्डी के सहारे से आक्रान्त स्थान याने जितनी जगह पर निमोनिया का असर हो उस पर गहरा लेप अच्छी तरह कर दें। लेप पर धुनी हुई रुई रख कर पतले कपड़े से अच्छी तरह बाँध दें। यह लेप एक रोज तक अपना असर रखता है एक रोज में दर्द आराम न हो तो पहले वाले लेप को गर्म पानी की सहायता से धोकर पुनः लेप कर लेना चाहिए। यह इस रोग की बहुत बढ़िया दवा है और हमारी बहुत बार की परीक्षित है। तीसी (अलसी) की पुल्टिश फायदेमन्द है। तीसी को महीन कूट कर गो-मूत्र के साथ अच्छी तरह पीसें, फिर मन्द आग से पका कर हलवे जैसी पुल्टिश तैयार कर लें। जरा-जरा गर्म पुल्टिश को दर्द के स्थान पर बाँध दें।

इस पुल्टिश को हर तीसरे घण्टे पर बदलें। इस तरह दिन-रात में ८ पुल्टिश देनी चाहिए। पुल्टिश बांधते या उतारते समय रोगी को उठने-बैठने न दें, मुक्तिपूर्वक रोगी को लेटे-लेटे ही बाँधे, नहीं तो उठने बैठने के कष्ट से रोग बढ़ जायगा।

पुल्टिश उतार कर उस जगह को ऐसे ही खुली न रहने दें। रुई या फलालेन के गर्म कपड़े से तुरन्त बाँध दें। निमोनिया में नीचे लिखे लेप भी फायदेमन्द हैं।

अफीम २४३ मि.ग्रा., राई ९७२ मि.ग्रा., पुराना पापड़ (जो खाने के काम में आता है) ९७२ मि.ग्रा., कबूतर की विष्ठा ९७२ मि. ग्रा.–इन चारों चीजों को गो-मूत्र के साथ बारहसिंगे की सींग से पीस कर दर्द-स्थान पर लेप करें और आग की सहायता से जल्दी सुखा दे। खाली बारहसिंगे की सींग को गो-मूत्र में पीस कर लेप करना भी अच्छा है। आक की जड़ की छाल को गो-मूत्र के साथ खूब महीन पीस कर समभाग गुड़ मिलाकर और मामूली तेल डाल कर पका लें। इसकी पुल्टिश बाँधने से बहुत लाभ होता है।

खाने के लिए ऐसी दवा देनी चाहिए जिससे ज्वर नष्ट हो तथा कफ पतला होकर आसानी से निकल जाय। फिटकरी को आग पर पका कर लावा (खील) बना लें और उसका महीन चूर्ण कर लें। ३५ ग्राम यह चूर्ण और १२१.५ मि. ग्रा. अभ्रक भस्म शहद के साथ चटावें। सुबह, दोपहर, शाम और रात को सोते समय--इस तरह चार बार चटायें, निमोनिया में बहुत लाभ होगा। अगर कोई और दवा मिलने का मौका न मिले तो सिर्फ फिटकरी का लावा ३५ ग्राम चार बार दें और रोगी का उपचार ठीक रखें। भगवान की इच्छा से जरूर फायदा हो जायगा। अडूसा (वासक) की जड़ की छाल का रस पुटपाक रीति से निकालकर ११.६६ ग्राम लें और बराबर शहद मिलाकर रोगी को पिलावें, इससे निमोनिया में बहुत फायदा होगा।

५८.३२ ग्राम बारहसिंगा की सींग को १७५ ग्राम घी कुमार के लुआब में रख दें, फिर ऊपर कपड़-मिट्टी करके सुखालें और शराव सम्पुट करके बाद को ९.३३ किलो उपलों के बीच में रख कर फूंक दें। बारहसिंगा की अच्छी भस्म तैयार हो जायगी। यह निमोनिया की बहुत उत्तम और परीक्षित दवा है। यह भस्म २४३ मि. ग्रा. शहद के साथ तीन चार बार चाटने से पसली का दर्द शीघ्र शान्त हो जाता है।

निमोनिया का दर्द भयानक हो तो ५८.३२ ग्राम गो-मूत्र को अग्नि से लाल किये हुए कुल्हड़ में डालें और जो गोमूत्र बाहर निकल जाय उसे रोगी को पिला दें। कुल्हड़, थाली में रखकर यह विधि करनी चाहिए। यह रोज नहीं पिलाना चाहिए, जब दर्द ज्यादे हो तभी पिलाना उचित है। इससे एक-दो दस्त भी रोगी को हो जाते हैं।

द्राक्षारिष्ट २९.२ ग्राम में अपामार्ग (चिड़चिड़ा) का क्षार या कण्टकारी (कटेली) क्षार ४८६ मि. ग्रा. मिला दें--यह एक खुराक। इस तरह की ४ खुराक दिन-रात में खिलायें। इससे कफ पतला होकर निकल जाएगा। निमोनिया की खाँसी में इससे निश्चय फायदा होगा। रोगी की कमजोरी या प्रलाप में रात को सोते समय एक गोली महालक्ष्मी विलास या बृहत कस्तूरी भैरव या मकरध्वज एक मात्रा, पीपल का चूर्ण २४३ मि. ग्रा. शहद ३ ग्राम और वासक

(अडूसा) का स्वरस ११.६६ ग्राम में देना बहुत अक्सीर है। निमोनिया के रोगी को नीचे लिखे क्रम से दवा सेवन करा कर हमने लाभ उठाया है।

प्रातःकाल--चन्द्रामृत रस (खाँसी रोग में लिखित) १ गोली, शहद २ ग्राम पान का रस ३ ग्राम मिलाकर चटावें। दिन को १० बजे और शाम को ४ बजे उपरोक्त द्राक्षारिष्ट एक-एक खुराक पिलायें। रात को १० बजे ६१ मि. ग्रा. मकरध्वज, २४३ मि. ग्रा. बारहसिंगा की भस्म, ११.६६ ग्राम शहद और ११.६६ ग्राम वासक (अडूसा) का स्वरस मिलाकर पिलायें। इस तरह दवा-सेवन से तथा एण्टीफ्लोजेस्टीन का लेप करने और ठीक उपचार करने से निमोनिया का रोग निश्चय अच्छा हो जायगा। निमोनिया के रोगी को खाँसी बहुत तकलीफ देती है, उसके लिए अत्यन्त मुफीद है और हमारी यह चटनी बहुत बार की परीक्षित है।

कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, पीपल-इन चारों चीजों को बराबर परिमाण में लेकर चूर्ण करें। यह चूर्ण ११.६६ ग्राम अभ्रक भस्म ४८७ मि. ग्रा. और शहद १४.६ ग्राम मिलाकर काँच के ग्लास या एलमोनियम की प्याली में रख दें। दो घण्टे के अन्तर से एक अँगुली (४८७ मि.ग्रा) भर चटावें--बहुत लाभ होगा।

अष्टांगावलेह (सन्निपात में लिखित) में अभ्रकभस्म मिलाकर चटाने से अच्छा फायदा करता है। रोगी को अगर कब्जियत हो तो मामूली दस्तावर दवा देकर पेट साफ कर देना उचित है।

पथ्यापथ्य--भोजन के लिए साबूदाना, यवमण्ड, बकरी का दूध, मिश्री मुनक्का आदि शीघ्र पचाने वाला पथ्य देना चाहिए। रोगी को ऐसे स्वच्छ कमरे में रखें जिसमें गर्द-गुब्बार, भीड़-भाड़ न हो और निरन्तर ताजी हवा साँस लेने को उसे मिलती रहे, क्योंकि निमोनिया फेफड़ों का रोग है और फेफड़ों का प्रधान भोजन शुद्ध हवा है। परन्तु रोगी को ठण्ड न लग जाय इस बात का भी पूरा ध्यान रखना जरूरी है। रोगी के पैरों को सावधानी से गर्म रखें। बदन में गर्म--ऊनी कपड़ा पहनाये रखे। पीने के लिए गर्म पानी बार-बार यथेष्ट परिमाण में दें। यदि कब्ज हो तो ११.६६ ग्राम मुनक्का में ५.८ ग्राम हर्रे का चूर्ण गर्म दूध के साथ सेवन करावें। दर्द की जगह को ईंट को गर्म करके सेकने से भी बहुत लाभ होता है। रोगी को बहुत जरूरत होने पर ही बोलना

चाहिए। उठना-बैठना बिलकुल मना है। करवट भी जल्दी-जल्दी न लेनी चाहिए। रोगी को लेटे ही लेटे दस्त व पेशाब करना उचित है। रोगी को शान्त-भाव से धैर्य के साथ चुपचाप लेटे रहना चाहिए--यही सर्वोत्तम पथ्य है। रोग की गम्भीरता का ध्यान रखकर योग्य चिकित्सक से परामर्श लें।

इन्फ्लुएंजा

लक्षण और प्रभाव--आयुर्वेद में इसको वातश्लेष्म ज्वर कहा गया है। विषाणुओं से वातावरण के दूषित एवं विषाक्त हो जाने के कारण यह रोग फैलता है। सबसे पहले गले में कुछ सुरसुरी-सी अवगत होती हैं और स्वर कुछ भारी हो जाता है, फिर नाक पर प्रभाव पड़ता है। जुकाम हो जाता है। मलेरिया की भाँति जाड़ा देकर अथवा साधारण ही ज्वर आ आता है। कुछ समय बाद ज्वर १०४° तक बढ़ जाता है। प्यास और बेचैनी बढ़ती है। सारे शरीर में भयानक दर्द हो उठता है, सिर में तीव्र शूल होता है। भूख मर जाती है सूखी खाँसी उठती है। रोग के विषैले तत्त्वों से श्वास-प्रणाली के प्रभावित होने पर निमोनिया भी हो जाता है। इसका ज्वर तो साधारणतः तीन दिन में चला जाता है, किन्तु रोगी, रोग के प्रभाव से, बहुत अशक्त और रक्तहीन हो जाता है और वह कमजोरी कई दिनों तक बनी रहती है।

एन्फ्लुएंजा का संक्रमण (प्रसार)

संक्रामक होने के कारण यह रोग शीघ्र और तीव्र गति से फैलता है। रोगी के सम्पर्क में आने से--रोगी के छींकने-खाने इत्यादि से निःसृत विषाणु वायु के माध्यम द्वारा आसपास के व्यक्तियों में संक्रमित होने से, यह रोग जब फैल रहा हो तब सिनेमा, होटल, रेल, मोटर आदि भीड़ के स्थान से बचना चाहिए। अधिकतर यह रोग गन्दी और घनी बस्तियों में जल्दी फैलता हैं। इस रोग का संचयकाल २४ से ४८ घंटे का है।

बचने के उपाय

रोग होने के पूर्व ही यदि इससे बचने के उपायों की तरफ ध्यान रखा जाय तो रोग से बचाव भली प्रकार हो सकता है। पूर्व बचाव के कुछ मुख्य उपाय निम्न प्रकार हैं --

(१) इस रोग का प्रभाव कमजोर मन वाले पर तुरन्त होता है, इसलिए जीवन-मरण को सृष्टि का क्रम समझ कर और ईश्वर की कल्याणकारी शक्ति पर विश्वास रख कर मन को सदैव निडर और साहसी रखिये। विश्वास रखिये कि यह बीमारी बहुत भयंकर नहीं है और सावधानी रखने पर कभी तीव्र प्रभाव नहीं कर सकती। रोग के दिनों में अधिक श्रम की थकान से बचिये।

(२) शरीर को स्वस्थ रखने और प्रतिरोधक शक्ति को स्थायी रखने के लिए संयम और ब्रह्मचर्य का भरपूर पालन कीजिए।

(३) भोजन हल्का, सुपाच्य और कम ही कीजिए। भारीपन अवगत होने पर तुरन्त उपवास कीजिए।

(४) पेट को हल्का और साफ रखिये। कब्जियत होने पर त्रिफला चूर्ण या गुलकन्द अथवा अन्य कोई साधारण दवा लेकर पेट साफ कर लीजिए।

(५) यह रोग सर्वप्रथम गले में होता है। नाक और गलें की झिल्ली प्रदाहयुक्त हो जाती है। इसके लिए दो प्रयोग सर्वोपयोगी हैं—

(१) गरम पानी में थोड़ा नमक डालकर गरारा (कुल्ला) करना और

(२) नाक में सरसों का तेल सूंघना। जिन लोगों को बार-बार सर्दी जुकाम होता हो उन्हें हम सरसों का तेल सुंघाने का प्रयोग करते हैं। बंगला में स्नान के पूर्व सरसों के तेल की मालिश करने और सुंघने का आम रिवाज हैं। दमा के रोगियों को बार बार सर्दी-जुकाम होने पर सरसों का तेल सूंघने की आदत डाली जाती है। इन्फ्लुएंजा में यह प्रयोग नाक एवं गले की झिल्ली को सुरक्षित रखने के लिए बहुत हितकर होगा, नित्य प्रातःकाल उठकर दो बूंद सरसों का तेल सूंघना चाहिए। शुद्ध सरसों के तेल से किसी प्रकार का विकार नहीं होता जैसा कि टीका आदि लगवाने से प्रायः हो जाता है। नाक के सामने कपड़ा रखने से देह-रक्षा होती है।

(६) यह रोग आर्द्र वातावरण से अधिक होता है, अतः बरसात में भीगने से बचना चाहिए। ओस पड़ने वाले खुले स्थान में नहीं सोना चाहिए और गीले कपड़े नही पहनना चाहिए।

(७) १०-१५ तुलसी पत्र तथा ५-७ काली मिर्च, जरा-सा टुकड़ा दालचीनी और अदरख कूटकर, पानी में उबाल कर और शक्कर मिलाकर चाय की भाँति पीना चाहिए। रोग फैलने के समय में इसके द्वारा अच्छा बचाव होता है।

(८) रात को अधिक जागने, बजारू मिठाई, गले हुए फल, बासी भोजन और भीड़-भाड़ के स्थानों में जाने से अपने को बचाना चाहिए।

(९) रहने के स्थान को अधिक से अधिक साफ-सुथरा रखना चाहिए। घर में नित्य नीम के पत्तों और गुगल की धुनी देनी चाहिए। सर्वसाधारण जन वातावरण की शुद्धि के लिए गुग्गुलु, राल, नीम की पत्ती, देवदारु इत्यादि की धूप से काम निकाल सकते हैं।

रोग हो जाने पर

उपरोक्त बचाव के नियमों का भली-भांति पालन करने पर यह निश्चित है कि रोग नहीं होगा। बचाव के नियमों के पालन में असावधानी हो जाने से यदि रोग हो भी जाय तो कदापि उससे घबराना या भयभीत नहीं होना चाहिए। घर के किसी व्यक्ति को यदि रोग हो जावे तो शेष सब घर वालों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे अपने को तथा पास-पड़ोस वालों को रोग से बचावें और सब प्रकार की सफाई इत्यादि की सावधानी रक्खें। निर्भय होकर विधिवत् रोगी की परिचर्या करते हुए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए।

(१) रोग होते ही रोगी को साफ और हवादार कमरे में आराम से लेटे रहना चाहिए। बच्चों को रोगी से अलग रखना चाहिए। पीने के लिए गरम पानी देना चाहिए। आधा गिलास गुनगुने जल में एक चुटकी नमक डाल कर रोगी को गरारा (कुल्ला) करा देना चाहिए।

(२) ज्वर की अवस्था में रोगी को अन्न कदापि न दें। एक-दो दिन का उपवास सम्भव हो तो करायें। दूध, चाय, मुसम्मी का रस, या मुनक्का खिला कर पानी पिला दें।

(३) यह बराबर ध्यान रखना चाहिए कि रोगी का गला साफ रहे। इसके लिए गले में दवा लगाना और उपरोक्त प्रकार से बार-बार गरारा करना चाहिए।

(४) अन्य लोगों को रोग न लगे इसके लिए रोगी के अधिक पास किसी को बात न करने देना चाहिए। रोगी के थूक या कै को तुरन्त राख या चूना से दबा देना चाहिए। रोगी के कपड़े को दूसरों से अलग और साफ रखना चाहिए।

(५) रोगी से बात करते समय नाक-मूंह के सामने स्वच्छ कपड़ा रखना चाहिए।

आयुर्वेदिक दवा

इन्फ्लुएंजा में अब तक के अनुभव से आयुर्वेदीय औषधियां विशेष लाभकारी सिद्ध हुई हैं। इसलिए शास्त्रोक्त आयुर्वेदीय औषधियों का ही प्रयोग करना चाहिए; यथा—१-कटेरी छोटी, गिलोय, सोंठ और पुष्करमूल ३ ग्राम लेकर २३४ ग्राम पानी में उबालें ५८.३२ ग्राम शेष रहने पर ११.६६ ग्राम शहद डाल रखलें २३.३२ ग्राम हर ४ घंटे पर देने सें इन्फ्लुएंजा, पसली का दर्द, कास और श्वास रोग ठीक होता है। त्रिभुवनकीर्ति रस अथवा लक्ष्मीविलास रस (नारदीय) की १२१.५ मि. ग्रा. की गोली, गोदन्ती हरताल भस्म २४३ मि. ग्रा के साथ तीन ग्राम अदरख का रस मिला कर शहद में लेना चाहिए। यह जवान आदमी के लिए पूरी खुराक है। इस प्रकार की तीन खुराक सुबह-दोपहर-शाम नित्य देनी चाहिए। बच्चों के लिए आयु के अनुसार मात्रा निश्चित करनी चाहिए।

त्रिभुवनकीर्ति और नारदीय लक्ष्मीविलास रस सुलभ न हो तो संजीवनी बटी, कल्पतरु रस और आनंदभैरव रस का भी प्रयोग किया जा सकता हैं। रोगी को अधिक खाँसी और जुकाम हो तो मरिचादि बटी, एलादि बटी, व्योषादि बटी—किसी भी बटी को चूसने के लिए दिया जा सकता है। यदि कफ न निकलता हो और खाँसी ज्यादा हो तो चन्द्रामृत रस को मिश्री के साथ, चूसने को देना चाहिए या गुलबनफ्सादि काढ़ा पीने को देना चाहिए। यदि रोग किसी कारण से निमोनिया में परिवर्तित हो जावें तो उसकी चिकित्सा शीघ्र किसी योग्य एवं अनुभवी चिकित्सक से करानी चाहिए योग्य चिकित्सक जब तक न मिले तब तक श्रृङ्गभस्म (३-४ रत्ती) का प्रयोग किया जा सकता है।

सन्निपात ज्वर

आन्त्रिक-सन्निपात-ज्वर––यह सन्निपात ज्वर बहुत भयानक होता है। हिफाजत और योग्य चिकित्सा होने पर ही इसके रोगी बच सकते हैं। इस बुखार का आक्रमण विशेष कर आँतों पर होता हैं, इसलिए इसका नाम 'आन्त्रिक-सन्निपात ज्वर' हुआ है। इसका भोगकाल २१ दिन से ४२ दिन तक होता है। सड़ा हुआ मल, बाजार की गन्दी नालियों की बदबू, दूषित जल या दूध से एक खास प्रकार के कृमि द्वारा इस रोग की उत्पत्ति होती है। उपर्युक्त कीड़े रोगी के दस्त में देखे जाते हैं, इसलिए इस रोग की गणना छूत के रोगों में की जाती है। रोग का विष शरीर में घुसने पर सात रोज तक कुछ विशेष दुर्लक्षण प्रकट नहीं होते, सात रोज के बाद रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं—जैसे पेट का फूलना, पेट में विशेष करके नीचे के भाग को दबाने से दर्द होना, यकृत् के नीचे वाले भाग को दबाने से एक तरह के शब्द का होना, तिल्ली और विशेषकर यकृत् का बड़ा होना आदि। बुखार बराबर बना रहता है। पहले सप्ताह में तो कुछ विशेष दुर्लक्षण दिखाई नहीं पड़ते, परन्तु दूसरा सप्ताह शुरू होते ही रोग अपना भयानक रूप धारण कर लेता है। दस्त होना, कभी-कभी (किसी रोगी की) आंत से एकदम खून गिरना, चावल का पानी या मांस धोवन जल के जैसा दस्त होना, निःश्वांस के साथ दुर्गन्ध मालूम होना, माथे के अग्रभाग में दर्द, सिर घूमना, कान सों-सों करना, बेचैनी की नींद, प्रलाप, बेहोशी, अस्थिरता, चौंकना, उठकर भागने की इच्छा करना या एकदम निश्चेष्ट भाव से आधी आँखें बन्द करके पड़ा रहना आदि उसके लक्षण हैं। इस रोग में एक तरह की विशेष गन्ध आती है जिसकी सहायता से चतुर वैद्य तुरन्त इस ज्वर का निश्चय कर लेता है। रोग का जोर होने पर क्रमशः गला, छाती, पेट, जाँघ आदि स्थानों पर चमकने वाली सफेद और छोटी-छोटी फुन्सियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनको अनेक प्रान्त वाले मोतीझरा कहते हैं। पेशाब का रंग लाल और परिमाण में उसकी मात्रा कम हो जाती है। जीभ पहले सरक्त और रोग के बढ़ने से मैली हो जाती है।

रोग जिस मात्रा में कम होता जाता है उसी मात्रा में जीभ भी अग्रभाग से साफ होने लगती है। खाँसी कभी कम और कभी किसी की ज्यादा हो जाती है, परन्तु खाँसी होना कुछ निश्चित नहीं है। रक्ताधिक्य होने से, निमोनिया आदि उपद्रव होने से रोगी की मृत्यु हो जाती है। आँतों को ढकने वाली झिल्ली में प्रदाह होने से पेशाब की बिमारी पैदा हो जाती है। दस्त होना अरिष्ट लक्षण है।

शरीर का ताप—इस रोग में शरीर का ताप प्रतिदिन धीरे-धीरे बढ़ता और धीरे-धीरे घटता भी है। रोग के प्रथम सप्ताह में पाँच-छः दिन तक सायं-काल १०० डिग्री से १०२ डिग्री तक बुखार होता है। परन्तु प्रातःकाल डेढ़ डिग्री बुखार कम हो जाता है। दूसरे सप्ताह में शरीर का ताप १०३ डिग्री से १०५ डिग्री तक बढ़ जाता है। कभी-कभी १०६ डिग्री तक बढ़ा हुआ देखा गया है। तीसरे सप्ताह के आदि में बुखार का कम होना शुभ लक्षण और बुखार का बढ़ना खराब समझना चाहिए। प्रलाप करना, चौंकना, उठ कर भागना आदि तीसरे सप्ताह तक वर्तमान रहते हैं।

मस्तिष्क-सन्निपात-ज्वर—इस ज्वर का भोगकाल या लक्षण सब ऊपर लिखे ज्वर से ही मिलते हैं। अन्तर यही है कि इस सन्निपात में दस्त—खून के दस्त बिलकुल नहीं होते। जो कुछ विकार होता है वह दिमाग में ही होता है। यह उतना कठिन नहीं है। रोगी को हिफाजत और बुद्धिमानी से रखा जाय तो बचने की पूरी आशा रहती है।

चिकित्सा—सन्निपात रोग भयानक है, इसलिए विद्वान् और अनुभवी वैद्य से ही चिकित्सा करावें। यदि उत्तम वैद्य-डाक्टर का प्रबन्ध न हो तो नीचे लिखे अनुसार चिकित्सा करें। भगवान् की दया से रोगी को निश्चय फायदा होगा। मूर्ख लोग वैद्यक-शास्त्र के मर्म को न जानकर बहुत अण्ट-सण्ट दवा देकर रोग को खराब कर देते हैं, इसलिए यदि समय पर दवा का प्रबन्ध नहीं हो सके तो उतनी खराबी नहीं है, जितनी खराबी अनभिज्ञ वैद्यों के इलाज से देखी जाती है। अत्यधिक सन्निपात ज्वर में पहले आम दोष और कफ को शान्त करने की दवा देनी चाहिए। फिर बाद में पित्त और कफ का इलाज करना चाहिए।

आमदोष की शान्ति के लिए पंचकोल सोंठ, मरिच, पीपल, पीपलामूल तथा चव्य, चूर्ण १ ग्राम के साथ ६१ मि. ग्रा. मकरध्वज शहद में चटा देना चाहिए। इसकी रोज प्रातःकाल एक खुराक दे दी जाय तो रोगी की हालत खराब न हो पायेगी। कफ की शान्ति के लिए नीचे लिखा निष्ठीवन कराना चाहिए।

सेंधा नमक, सोंठ, काली मिर्च, पीपल--इन चारों दवाओं का चूर्ण ११·६६ ग्राम अदरख के रस में मिलाकर रोगी के मुंह में रखवा कर थुकवा दें। निगलने न दें। इस तरह दो-तीन बार थुकवाएं। इस तरह अवस्थानुसार तीन चार बार थुकवाने से हृदय, पसली, माथा और गले का कफ निकल जाता है। बड़ा नीबू का रस और अदरख का रस ६ ग्राम में सेंधा, काला और समुद्री नमक--तीनों मिलाकर एक ग्राम डालें। इसके सूंघने से कफ की शान्ति होगी। पीपलामूल, सेंधा नमक, पीपल और महुए का फूल बराबर लेकर चूर्ण करें, फिर जितना चूर्ण हो उतना ही काली मिर्च का चूर्ण मिला दें। इसको गर्म पानी में मिला कर सुंघाएँ। इससे बेहोशी, तन्द्रा (आधी आंखे बन्द करके पड़ा रहना) प्रलाप और माथा का भारीपन दूर होगा।

सेंधा नमक, सहजन का बीज, सफेद सरसों और कूठ-इन चारों दवाओं का चूर्ण बकरी के मूत्र में पीसकर सुंघाएँ तो तन्द्रा दूर होगी। सहिजन का बीज, पीपल, काली मिर्च, सेंधा नमक, लहसुन, मैनसिल और बच-इन सातों चीजों का महीन चूर्ण गो मूत्र में पीस कर आंखों में अंजन करें तो बेहोशी नष्ट होगी। मृत्युञ्जयरस (ज्वर) २४३ मि.ग्रा. ,प्रवालभस्म ४८६ मि. ग्रा. को शहद के साथ तीन-तीन घण्टे से चटाना चाहिये। इससे रोग बहुत शीघ्र शान्त हो जाता है।

अष्टाङ्गवलेह--कायफल, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवासा, स्याह जीरी--इन आठों दवाओं को सम भाग ले कर महींन चूर्ण कर लें। इसी का नाम "अष्टाङ्गावलेह" है। यह चूर्ण १॥ ग्राम अवस्थानुसार शहद या अदरख के रस में मिला कर दिन-रात में ३-४ बार चटाने से सन्निपात ज्वर में अच्छा फायदा होता है। --र० र०

कस्तूरीभैरव रस--शुद्ध हिंगुल, शुद्ध विष, सुहागे का लावा, जावित्री,

जायफल, काली मिर्च, पीपल, असली कस्तूरी—इन आठों चीजों को समभाग ले कर महीन चूर्ण करें। फिर पत्थर के खरल में पान का रस दे-दे कर दो रोज खूब घोटें, फिर २४३ मि. ग्रा. की गोलियां बना लें। इसको "कस्तूरीभैरव रस" कहते हैं। यह सन्निपातज्वर की अमोघ दवा है। रात्रि को सोते समय १ गोली ११.६६ शहद और ११·६६ ग्राम अदरख के रस के साथ देने से तत्काल फायदा होता है। अमरसुन्दरी बटी जो वातव्याधि-अधिकार में लिखी गयी है, सन्निपात (विशेष करके प्रलाप) में भी लाभ करती है। —र० सा० सं०

सन्निपात भैरव रस—शुद्ध हिंगुल ५२·२ग्राम, शुद्ध गन्धक और शुद्ध वच्छ-नाग शुद्ध २३·२ ग्राम, धतूरे का बीज ३७ ग्राम, फुलाया हुआ सुहागा १२·६६ ग्राम—इन सबके चूर्ण को जम्बीरी नीबू के रस में घोट कर १२१·५ मि. ग्रा. की गोलियां बना कर छाया में सुखा लें। इसका नाम "सन्निपात भैरव रस" है। सन्निपात के प्रलाप आदि तीव्र वातविकारों में अदरख—रस के साथ १-१ गोली देने से बहुत लाभ होता है। ——भै० र०

चिकित्साक्रम

निचे लिखे क्रमानुसार चिकित्सा करने से हमने बहुत लाभ देखा है—प्रातः काल ६१ मि. ग्रा. मकरध्वज, एक ग्राम पंचकोल चूर्ण शहद के साथ, शाम को चार बजे एक या दो गोली मृत्युञ्जय-रस और शहद के साथ, रात को १० बजे एक गोली कस्तूरी भैरव रस अदरख के रस और शहद के साथ। दिन रात में ११·६६ ग्राम अष्टाङ्गावलेह शहद या अदरख के रस के साथ दें।

सन्निपात रोगी के बुखार पर सबसे ज्यादा ध्यान रखे। १०३ डिग्री से ऊपर बुखार होते ही बरफ के टुकडों को रबड की थैली में डाल कर दिमाग पर बराबर रखें। यदि बरफ और रबड़ की थैली न मिले तो ११·६६ ग्राम यूडी-कोलन में ११६ ग्राम पानी डाल कर एक पात्र में रखें। उस पात्र में सफेद कपडा भिगो कर बराबर दिमाग पर रहने दें। अगर यह भी न हो सके तो कलमी सोरा ५·८ ग्राम और नौसादर ५.८ ग्राम ९३३ ग्राम पानी में डालकर रखें। फिर इसी जल में कपड़ा भिगोकर दिमाग के अग्रभाग पर रखें। स्त्री का दूध डालें या चरकोक्त दशाङ्गचूर्ण का लेप करें। इससे शरीर का ताप निश्चय कम हो जायगा। सन्निपातज्वर में ज्यादा जोर का बुखार रहना अनिष्ट का लक्षण है

इसलिए ऊपर वाली क्रिया से बुखार का वेग कम कर देना चाहिए। ५ से १० लौंग को जल के साथ खूब महीन पीसें फिर एक छटाँक ठण्डे जल में मिलाकर रोगी को पिलादे, आधा घण्टा बाद थर्मामीटर लगा कर देखें तो दो-तीन डिग्री बुखार कम हो जायगा।

नाड़ी के क्षीण होने पर—सन्निपातज्वर में नाड़ी कमजोर और देह शीतल होने पर, मकरध्वज १२१·५ मि. ग्रा., कस्तूरी और कपूर प्रत्येक ६१ मि. ग्रा.—इन सबको एक जगह शहद में मिलाएँ। २३·२ ग्राम पान का रस और २३·२ ग्राम अदरख का रस मिला कर समयानुसार तीन-चार बार रोगी को पिलाएँ। इससे फायदा होने की पूरी आशा है।

अधिक पसीना आने से कभी-कभी रोगी के अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है, ऐसी हालत में भुनी हुई कुलथी का महीन चूर्ण (सतुआ) अथवा अबीर (गुलाल) सम्पूर्ण शरीर पर मालिश करें। चूल्हे की जली हुई मिट्टी के चूर्ण की मालिश करने से पसीना बन्द हो जाता है।

पथ्यापथ्य—सन्निपात-ज्वर के रोगी के पथ्यापथ्य पर खूब ध्यान रखना चाहिए। पथ्य पर विशेष ध्यान न दिया जाय तो उत्तम चिकित्सा से कुछ भी लाभ नहीं होगा। रोगी को साफ हवादार कमरे में लिटाना चाहिए। जब तक रोग अच्छी तरह आराम न हो जाय तब तक रोगी को एकदम लेटे रहना चाहिए। दस्त-पेशाब भी लेटे ही लेटे करना चाहिए। दस्त बरतन या 'बेडपेन' में कराना चाहिए। जहाँ तक हो सके रोगी को हिलने-डुलने न दें। खुराक में कोई कठिन वस्तु न दें, बलकारक और जल्दी हजम होनेवाली खुराक दें। दूध, साबूदाना, बार्ली आदि बिल्कुल नरम पेय दें। दूध के साथ एक चुटकी खाने का सोड़ा या एक चम्मच चने का पानी (देखें बाल रोग) मिला कर दें, तो बहुत उत्तम रहे। मीठा सन्तरा, मौसम्मी, अनार, बेदाना, आदि फलों का रस दें। गुनगुने पानी से साफ तौलिये को भिगो कर सम्पूर्ण शरीर को अच्छी तरह रोज एक बार पोंछ देना चाहिए। फिर सूखे तौलिया से पोंछ डालना चाहिए।

अन्यान्य ज्वरों के परीक्षित योग:

(१) गिलोय, धनियाँ, नीम की छाल, पद्माख, लाल चन्दन—इन पाँचों दवाओं को २३·२ ग्राम वजन में लें और काढ़ा बना कर पिलाएँ। इसका नाम

'गुडूच्यादि क्वाथ' है। यह सब तरह के बुखार में लाभ पहुँचाता है। इससे जलन, उबकाई, प्यास, कै, अरुचि आदि व्याधियाँ आराम होती हैं।

(२) अमलतास का गूदा, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी, बड़ी हरड़-इन पाँचों दवाओं को २३·२ ग्राम लेकर काढ़ा बनाएँ। उसके पीने से पेट साफ हो जाता है। एक-दो दस्त भी हो जाते हैं। पुराना बुखार भी आराम हो जाता है। यदि आँव, पेचिस और बुखार साथ हो तो इससे बहुत फायदा होता है। इसका नाम 'आरग्वधादि क्वाथ' है।

(३) गिलोय, पित्तपापड़ा, चिरायता, कुटकी, अमलतास--इन पांचों दवाओं का काढ़ा शहद डालकर पीने से जीर्णज्वर ठीक होता है। जो लोग बार-बार बुखार से सताये जाते हैं, वे इसके सेवन से निश्चय अच्छे हो जायेंगे। इसका सेवन ४० रोज तक करना चाहिए।

(४) हरड़, बहेड़ा, आमला, हल्दी, दारुहल्दी, कटेली (कंटकारी), वृहत् कंटकारी, कचूर (सठी), सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, मूर्वामूल, गिलोय, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाणा—(अभाव में गुलवनपशा), नेत्रवाला, नीम की छाल, पोहकरमूल, मुलेठी, कुड़े की छाल, अजवायन, इन्द्र जौ, भारंगी, सहजने के बीज, आग पर फुलाई फिटकरी, वच, दालचीनी, पद्माख, खश, सफेद चन्दन, अतीस, खरेंटी (वरियार), शालपर्णी, तगर, वायविडंग चीतामूल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवक (अभाव में शतावरी), ऋषभक (अभाव में असगन्ध), लौंग, वंशलोचन, कमल, काकोली (अभाव में शकाकुल मिसरी), तेजपत्ता, तालीसपत्र और जावित्री—इन सब दवाओं को समभाग लेकर चूर्ण कर लें। इस चूर्ण के वजन से आधा चिरायता का चूर्ण मिला कर अच्छे बरतन में रख दें। इसका नाम **'सुदर्शन चूर्ण'** है। यह सब तरह के बुखार में फायदा करता हैं। ३ ग्राम से ६ ग्राम तक की मात्रा जल के साथ लेनी चाहिए। कब्जियत में गर्म पानी के साथ लेना चाहिए। जिन लोगों से इसका चूर्ण न फांका जावे उन्हें वे ११·६६ ग्राम चूर्ण का काढा बनाकर या फाण्ट बनाकर ले सकते हैं। जिस तरह श्री भगवान का एक सुदर्शन चक्र सब दैत्यों को नष्ट करता है। उसी तरह यह सुदर्शन चूर्ण सब तरह के बुखार को नष्ट करता है।

पित्त का ज्वर, वायु का ज्वर, कफ का ज्वर, पुराना से पुराना ज्वर, कुनैन से अटका हुआ ज्वर आदि सब ज्वरों की यह प्रसिद्ध दवा है। धनी आदमियों को तो इसे धर्मार्थ बँटवाना चाहिए।

(५) गिलोय, पीपलामूल, छोटी पीपल, कुटकी, हरड़, सफेद चन्दन, नीम की अन्तर-छाल, लौंग, सोंठ—प्रत्येक ११·६६ ग्राम और चिरायता ५२ ग्राम :— इन सबको महीन चूर्ण करके ३ ग्राम से ६ ग्राम तक जल के साथ देने से सब तरह के बुखार में फायदा करता है। विशेष कर जीर्ण ज्वर में यह बहुत लाभ-कारी है। इसका नाम 'लघु सुदर्शन चूर्ण' है। —यो० र०

(६) फिटकरी का लावा महीन पीस कर ४८७ से ६०७ ग्राम रत्ती की खुराक में मिश्री मिला कर जल के साथ देने से कम्प देकर आनेवाला बुखार आराम होता है। इससे खाँसी में भी अच्छा फायदा होता हैं।

(७) हरसिंगार के पत्ते के ११.६६ ग्राम रस में बराबर शहद मिलाकर देने से पुराना बुखार अच्छा हो जाता है। १२१·५ मि. ग्रा. मकरध्वज और मिला दिया जाय तो तत्काल फायदा होता है।

लाक्षादि तैल—मूर्छित किया हुआ तिल तैल ९३३ ग्राम, सौंफ, हल्दी, मूर्वा-मूल, कूठ, रेणुका, कुटकी, मुलेठी, (यष्टिमधु), रास्ना, असगन्ध, देवदारू, मोथा, सफेद चन्दन—इन १२ द्रव्यों को १४·६ ग्राम तोला लें उनका कल्क करके तैल में डाल दें। साथ में ३·७३ किलोदही का पानी और ३·७३ किलो पीपल की लाख का काढ़ा डालकर पकावे। जब केवल तैल शेष रह जाय तब छान कर बोतल में भर लें। यह जीर्णज्वर, क्षय, काम-श्वास आदि विकारों में बहुत फायदेमन्द है। यह बालकों के रूखा आदि रोगों में बहुत लाभदायक है। —भै० र०

अमृतारिष्ट—गिलोय और दशमूल प्रत्येक ५·८३ किलो को ६० किलो पानी में औटाएँ। १५ किलो पानी रहने पर छान लें। फिर उसी काढ़े में गुड़ १७॥ किलो

नोट—३·७३ किलो पीपल को लाख में १५ किलो पानी और एक पाव सज्जी खार डाल कर काढ़ा करें और ३·७३ किलो जल बाकी रहने पर तैल में डाले। लाख के साथ सज्जी न मिलाने से लाख का रस ठीक तरह नहीं निकलता हैं।

(३ तुला), ९३३ ग्राम काला जीरा, ११६·६ ग्राम पित्तपापड़ा, सप्तपर्ण (छतिवन-छाल), सोंठ, मिर्च, पीपल, मोथा, नागकेशर, कुटकी, अतीस और इन्द्र जौ—ये ९ दवाइयाँ प्रत्येक ५८·३ ग्राम लेकर सबका चूर्ण करके ऊपर वाले काढे में मिला दें। फिर सब द्रव्यों को एक पात्र में रख कर मुंह बन्द कर दें। यह एक महीने में तैयार हो जायगा। फिर छान कर बोतल में भर लें। इसी का नाम 'अमृतारिष्ट' है। यह भी सुदर्शन चूर्ण की तरह सब बुखार में फायदा करता है। इसकी मात्रा २९ ग्राम से ५८ ग्राम तक है। भै० र०

स्वर्ण वसन्तमालती—स्वर्णभस्म ११·६६ ग्राम, मोतीपिष्टी २३·२ ग्राम, शुद्ध हिंगुल ३५ ग्राम, काली मिर्च का चूर्ण ४६·४ ग्राम, खपरिया ९२·८ ग्राम —इन पाँचों दवाओं को बढ़िया पत्थर के खरल में डाल कर बढ़िया ताजा घी से भिगों दें, फिर कागजी नींबू का रस दे-दे कर पाँच-सात रोज घोंटे। जब दवा से घी की चिकनाहट चली जाय तब इच्छानुसार वजन की टिकिया बना लें। इसी का नाम, 'स्वर्णवसन्तमालती' है। दो छोटी पीपल के चूर्ण और शहद के साथ १२१·५ से २४३ मि. ग्रा. तक इसकी मात्रा दी जाती है सितोपलादि चूर्ण १ ग्राम के साथ दें। पुराने बुखार में यह जल्दी फायदा करती है। इससे मन्दाग्नि और कमजोरी भी ठीक हो जाती है। वसन्तमालती के बनाने में घी डालने का खूब ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो दवा खराब हो जायगी। दवाओं के चूर्ण में धीरे-धीरे घी इतना मिलाना चाहिए कि रोटी बनाने के जल मिले हुए आटे के समान हो जाय। वर्षा के समय वसन्तमालती बढ़िया नहीं बनती—इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए। भै० र०

लघुमालिनी वसन्त—खपरिया ९२·८ ग्राम, सफेद मिर्च का चूर्ण ४६·८ ग्राम, गौ का मक्खन १४·६६ ग्राम—इन तीनों को मिला कर नींबू के रस में ४ दिन तक घोंट कर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। शहद, पीपल, दूध के साथ देने से सब प्रकार के ज्वर खास करके जीर्ण ज्वर में बहुत लाभ होता है। पित्त-विकार, रक्त-विकार, नेत्र-रोग आदि भी आराम होते हैं। छोटे बालक और सगर्भा-स्त्री के लिए यह श्रेष्ठ दवा है। महाराष्ट्र में इसका बहुत प्रचार है।

जयमंगल रस—शुद्ध (हिंगुलोत्थ) पारा, शुद्ध गंधक, फलाया हुआ सुहागा

ताम्र भस्म, वंग भस्म, सोनामक्खी भस्म, सेंधानमक और कालीमिर्च--ये आठों चीजें ११·६६ग्राम, सोना भस्म २३·२ ग्राम, कान्त लोह भस्म ११·६६ ग्राम, और चाँदी भस्म ११·६६ ग्राम, इन सब दवाओं को खरल में डालकर धतूरे के पत्ते का रस, हरसिंगार के पत्ते का रस, दशमूल का काढ़ा और चिरायते के काढ़े की तीन-तीन भावना देकर इनकी २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें और जीरे का चूर्ण तथा शहद के साथ दें। इससे पुराने-से-पुराना बुखार निश्चय अच्छा होता है। यह बल और पुष्टी बढ़ाने में भी उत्कृष्ट औषध है। जो बुखार अन्य दवा से अच्छा न होता हो वह इससे जरूर अच्छा हो जाता है। --भै० र०

बृहत् सर्वज्वरहर लौह--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, सोना भस्म, चाँदीभस्म और शुद्ध हरिताल--ये आठ द्रव्य प्रत्येक ११·६६ ग्राम तथा कान्तलौहभस्म ४६·४ ग्राम—सब को एकत्र कर करैले के पत्ते का रस, दशमूल का काढ़ा, पित्तपापड़ा का काढ़ा, त्रिफला का काढ़ा, गिलोय का रस, काकमाची का रस, सम्भालू के पत्ते का रस, पुनर्नवा का रस और अदरख का रस--इन चीजों की प्रत्येक की सात-सात भावना देकर २४३ मि. ग्रा. की गोलियां बनालें। इसे पुराना गुड़ और पीपल के साथ सेवन करें। यह सब तरह के ज्वर की रामबाण दवा है। किसी तरह का ज्वर हो इससे अवश्य लाभ होता है। यकृत् और प्लीहा भी ठीक होती है। --भै० र०

पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह--शुद्ध हिंगुलोत्थ पारा और गन्धक ११·६६ ग्राम की कज्जली करके पर्पटी की तरह बना लें और सोना भस्म ३ ग्राम, लौहभस्म, अभ्रक भस्म—तथा ताम्र भस्म प्रत्येक २३·२ ग्राम, बङ्गभस्म, गेरू-मिट्टी प्रवालभस्म--प्रत्येक ५·८३ ग्राम, मोतीभस्म, शंखभस्म, सीपभस्म—प्रत्येक तीन-तीन ग्राम। ये सब द्रव्य पानी में घोंट कर सीप में बंद कर कपड़-मिट्टी का लेप करके सुखालें। फिर ८-१० उपला की आग में रखकर पुट दें। इसकी **मात्रा** २४३ मि. ग्रा. तथा **अनुपान**--पीपल का चूर्ण, हींग और सेंधानमक है। इसके सेवन से सब प्रकार का ज्वर, पाण्डु, यकृत, प्लीहा, प्रमेह, ग्रहणी आदि रोग आराम होते हैं। यह पुराने और बराबर आनेवाले ज्वर की उत्कृष्ट दवा है। —भै० र०

कल्पतरु रस--शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध रौप्य-माक्षिक (विमल) और फुलाया हुआ सोहागा--प्रत्येक ११·६६ ग्राम, सोंठ २३·२ ग्राम, पीपल २३·२ ग्राम, काली मिर्च १४० ग्राम,--सब का बारीक चूर्ण लेकर खूब घोंट कर कपडछान करके शीशी में रख दें। इसका नाम 'कल्पतरु रस' है। इसकी मात्रा १२१·५० मि. ग्रा. है, अदरख के रस के साथ दोनों समय लें। यह वात और कफ ज्वर के लिए बहुत उत्तम दवा है। सर्दी, जुकाम, और **मूर्छा** में इसका नस्य भी दिया जाता है। --भा० प्र०

त्रिभुवनकीर्ति रस--शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, अग्नि पर फुलाया हुआ सुहागा और पीपलामूल--इन सात दवाओं को सम भाग लेकर महीन कपड़छान कर चूर्ण को अदरक का रस, तुलसी का रस और धतूरे की पत्ती का रस--प्रत्येक की तीन-तीन भावना देकर १२१·५ मि ग्रा. की गोलियाँ बनालें। यदि इसमें तीन भावना कागजी नीबू के रस की दें तो विशेष लाभदायक होता है। इसका नाम 'त्रिभुवनकीर्ति रस' है। वह नये बुखार में खास करके वात और कफ के विकार (इन्फ्लुएंजा) में विशेष फायदा करता है। अदरक के रस और मधु के साथ अथवा तुलसी का रस या बिल्वपत्र के फाण्ट के साथ सुबह-शाम और रात्री में तीन बार देने से पसीना आ कर बुखार उतर जाता है। दो-तीन दिन तक त्रिभुवनकीर्ति रस के देने से भी बुखार न उतरे तो उसे मियादी बुखार समझना चाहिए। उस हालत में मियादी बुखार का ही इलाज करना चाहिए। लक्ष्मीविलास नारदीय भी बहुत लाभ करता है।

—यो० र०

चन्दनादि लोह--लाल चन्दन, सुगन्धबाला, पाठा, खश, पिप्पली, हरड़ बड़ी, सोंठ, नीलोत्पल, आंवला, वायविडंग, नागरमोथा और चित्रक--ये १२ दवाइयां ११·६६ ग्राम और लौह भस्म १४० ग्राम लें, सब मिला कर जल के साथ खरल में घोंट कर २४३ मि. ग्रा. की गोलियां बना लें। इसे शहद के साथ चाटने से सब तरह के बुखार अच्छे होते हैं। खास करके पुराने मन्द-ज्वर में, जिसमें रक्ताल्पता हो, इस दवा से बहुत लाभ होता है। यह चढे हुए जोर के बुखार को कम करता है। यक्ष्मा-ज्वर में भी यह लाभदायक है। —भैं० र०

ज्वरसंहार रस—सोंठ, काली, मिर्च, छोटी पीपल, कुटकी, नीम की अन्तर-छाल, कूठ, नागरमोथा, पीली सरसों, इन्द्रजो, आग पर फुलाया हुआ सुहागा, लाल चन्दन, अतीस और ममीरी, ममीरी न मिले तो काली जीरी (अरण्यजीरक) डालें। ये १३ द्रव्य समभाग लेकर महीन चूर्ण कर लें। इस चूर्ण का जितना वजन हो उससे आधा रससिंदूर या शुद्ध हिंगुल बारीक पीस कर इसमें मिला दें। फिर अदरक, तुलसी और निर्गुन्डी की तीन-तीन भावना देकर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें या सुखाकर चूर्ण कर ले और बोतल में भर लें। इसका नाम 'ज्वर संहार रस' है। यह सब प्रकार के बुखारों की प्रसिद्ध दवा है। मधु के साथ अथवा एक ग्राम गोदन्ती भस्म या किसी भी ज्वर नाशक कषाय के साथ देने से बहुत जल्दी लाभ करता है। यह तरुण और जीर्ण दोनों प्रकार के ज्वर में लाभकारी है। गोजिह्वादि क्वाथ के साथ देने से कफ-ज्वर में कफ को पकाकर ज्वर शीघ्र उतार देता है तथा सर्दी-खांसी भी अच्छी हो जाती है। निमोनिया में यह २४३ से ७२९ मि. ग्रा. और अभ्रक भस्म १२१·५० मि. ग्रा. दोनों को मिलाकर देने से विशेष लाभ होता है। —सि० यो० सं०

संशमनी बटी—मोटी-ताजी और हरी गिलोय ला कर उसको जल से अच्छी तरह धो लें, पीछे चार-चार अंगुल के टुकडे करके कूट लें। इसको चौगुने पानी में डाल कर स्वच्छ लोहे की कड़ाही में या स्वच्छ कलईदार पीतल के बर्तन में क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर गाढ़े कपड़े से छान लें। फिर छाने हुए क्वाथ को मन्दाग्नि से तब तक पकाते रहें जब तक रस गाढ़ा-सीरे (हलवा) जैसा न हो जाय। फिर उसको अग्नि से उतार कर ठण्डा कर लें और २४३ मि. ग्रा. की गोली बना लें। इसी का नाम 'संशमनी बटी' है। ५ से २० गोली दिन रात में चार-पाँच बार जल से दें। यह सब प्रकार के ज्वरों की अत्यन्त लाभ-कारी औषध है। जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, रक्ताल्पता (पाण्डु), मन्दाग्नि, दौर्बल्य, प्रमेह और श्वेत-प्रदर में बहुत उत्तम फल दिखाती है। यह बलकारक और रसायन गुणयुक्त है। गिलोय-घन-सत्त्व ११६·६ ग्राम, लोह भस्म ११·६६ ग्राम, अभ्रक भस्म ११·६६ ग्राम और स्वर्णमाक्षिक भस्म ६ ग्राम मिलाकर भी संशमनी बटी तैयार होती है। इसका गुजरात में बहुत प्रचार है। —सि० यो० सं०

अतिसार, दस्त

बिना कांखे (वगैर मरोड़ के) जो पतला दस्त बार-बार होता है, उसी को अतिसार या दस्तों की बीमारी कहते हैं।

रोग होने के कारण--ज्यादा देर से हजम होनेवाली चीजों का खाना, अधिक खाना, जहर मिली हुई वस्तु का खाना, गन्दी और सड़ी चीजों का खाना, दस्तावर दवाइयों का खाना, खराब जल पीना, बरफ का अधिक सेवन, ऋतु परिवर्तन, रात का जागना हठात्, ठण्ठ लगना, भय, शोक आदि मानसिक कष्टों का होना, पेट में कीडों का होना, ज्यादा मिरचा आदि उत्तेजक चीजें खाना, कब्ज रहना--इन कारणों से अतिसार होता है।

किसी भी कारण से दस्त होने लगे हों इनके दो ही कारण होते हैं। पहला कारण यह है कि पेट में आंतों के ऊपर कफ की पतली झिल्ली है, जिससे बराबर एक तरह का रस चूता रहता है; उसी रस से भोजन पचता है। भोजन पचते समय ही उस चुए हुए रस को वही झिल्ली फिर शोख लेती है। परन्तु जब किसी कारण से उस झिल्ली की रस-शोषण की शक्ति नष्ट हो जाती है, तब पतले दस्त होने लगते हैं। दूसरा कारण है--अन्न की उत्तेजना के कारण आतें बहुत जल छोड़ती हैं जैसे तेज मिरच खाने से बहुत पानी आता है ऐसे अनेक कारणवश आंतों से स्राव होता है। शोक भय आदि मानसिक कारणों से भी पतले दस्त होते हैं।

चिकित्सा—कारण को देखकर चिकित्सा करनी चाहिए। अतिसार के विषय में संसार के सभी वैद्यक-शास्त्रों का एक मत है कि ज्यादातर अजीर्ण के कारण ही अतिसार होता है। अजीर्ण की शान्ति लंघन (उपवास) से होती है। इसलिए अतिसार में उपवास ही सर्वोपरि चिकित्सा है। बलवान रोगी को किसी तरह की दवा न देकर लंघन ही कराए जाएँ तो दस्त अपने-आप ठीक हो जाएँगे। अनुभव से भी देखा गया है कि दस्तवाले रोगी को लंघन कराना बहुत उत्तम होता है। बिल्कुल खाली पेट का लंघन भी अच्छा नहीं। दही की लस्सी, भात का माण्ड, अनार या सन्तरे का रस, नारियल का पानी, बार्ली का पानी, नीबू और मिश्री का शरबत, सोडावाटर आदि पेय पथ्य देना चाहिए।

रोगी को उपवास भी इतना ज्यादा न कराया जाय, जिससे कि रोगी बिल्कुल कमजोर हो जाय। जब जोर को भूख लगे, तब दही और भात पथ्य में देना चाहिए। यदि रोगी धैर्यवान और बुद्धिमान हो तो यह रोग बिना किसी दवा के अपने-आप समय पर अच्छा होता जाता है। दवा की आवश्यकता होने पर नीचे लिखी अनुभूत दवाओं का प्रयोग करें--जरूर फायदा होगा।

(१) सोंठ और जायफल को पानी के संयोग से उत्तम पत्थर पर घिसें। फिर ५८ ग्राम जल में डालकर रोगी को पिलाएँ। इससे पतले दस्त बन्द हो जाएँगे। सोंठ और जायफल दोनों की मात्रा अवस्थानुसार एक ग्राम से तीन ग्राम तक है। यह बालकों के लिए विशेष उपयोगी है।

(२) मोचरस, नागरमोथा, सोंठ, सोनापाठा और धाय के फूल--इन पाँचों दवाओं का चूर्ण ३ ग्राम; मट्ठा या जल के साथ लेने से पतले दस्त बन्द हो जाते हैं। बिल्वादि चूर्ण सि. यो. देखें।

(३) पूरे अनार को पुटपाक रीति से पका कर रस निकालें। २३·२ ग्राम रस में ११·६६ ग्राम शहद मिलाकर पिलाने से दस्त आराम हो जाते है।

(४) जायफल में ३६४ मि. ग्रा. अफीम देकर नीबू में बन्द करके कपड़ा-मिट्टी से लेप कर दें। फिर इसे आग में अच्छी तरह पकाकर अफीम, जायफल सहित रख लें और नीबू फेंक दें। इस जायफल और अफीम की पानी के संयोग से १०-१२ गोलियां बना लें। दो से चार गोली तक इसकी मात्रा है। एक-दो खुराक से ही दस्त बन्द हो जाते हैं।

(५) अतीस का चूर्ण ३ ग्राम शहद के साथ चटाने से दस्त बन्द हो जाते हैं।

(६) **कर्पूर रस**--कर्पूर, शुद्ध हिंगुल, नागरमोथा, इन्द्रजौ, जायफल और अफीम, भुना हुवा सुहागा इन सब को सम भाग लेकर जल के साथ २४३ मि. ग्रा. की गोलियां बना लें। अतिसार (दस्त) की यह उत्तम दवा है। ज्वरातिसार में सिद्ध फलदायक है। —भै०र०

(७) **सिद्ध प्राणेश्वर**--शुद्ध गन्धक, पारा अभ्रकभस्म प्रत्येक चार-चार

ग्राम, सज्जी खार, जवाखार, सुहागे का लावा, पांचों नमक, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रजौ, सफेद जीरा, स्याह जीरा, चित्रक, अजवायन, बिडंग और सौंफ--प्रत्येक एक-एक ग्राम। इन सब को एक जगह करके पानी के संयोग से एक-एक ग्राम की गोलियां बना लें। पान के रस में गोली खा कर ऊपर से गर्म पानी पीएँ। यह भयंकर ज्वरातिसार और संग्रहणी की परीक्षित दवा है।

—भैं० र०

(८) बेल वृक्ष के जड़ की छाल या बेलफल गिरी तथा आम की गुठली दोनों २३·२ ग्राम का काढ़ा पीने से दस्त में आराम होते हैं।

(९) **मृतसंजीवनी बटी**--पीपल ११·६६ ग्रा., शुद्ध सिंगिया विष ११·६६ ग्राम, हिंगुल २३·२ ग्राम--इन तीनों दवाओं को खरल में डाल कर जम्बीरी नीबू के रस से घोटें। अच्छी तरह घुट जाने पर ६१ मि. ग्रा. की गोलियां बना लें। इन गोलियों को ठण्डे जल के साथ खाने से सब तरह के दस्त आराम होते हैं। दस्त के अलावा हैजा, सन्निपात और ज्वरातिसार में बहुत फायदा करता है।

—र० सा० सं०

(१०) श्योनाक (सोनापाठा) की ताजी छाल ९३३ ग्राम को ३·७३ किलो पानी में औंटाएं। ९३३ ग्राम शेष रहने पर छान लें। इसमें ९३३ ग्राम अनार का रस और मिलाकर फिर औंटाएं। जब रस गाढ़ा हो जाय, तब नागरमोथा, जवाखार, विड् नमक, इन्द्रजौ, संचर नमक, सेंधा नमक, धाय के फूल और पीपल--इन आठ दवाओं (प्रत्येक २३·२ ग्राम) का महीन चूर्ण करके मिला दें। २३३ ग्राम शहद भी मिला दें। इस चटनी को ११·६६ ग्राम की मात्रा में चटाने से पतले दस्त, संग्रहणी, आंव, पेचिश बवासीर आदि निश्चय ठीक हो जाते हैं। यह चटनी हमारी बहुत बार की परीक्षित है।

(११) गिलोय (गुर्च), पाठा, खश, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रवाला, सोंठ, पद्माख, लाल चन्दन, कुड़ा की छाल, धनिया, चिरायता और अतीस--इन १३ दवाओं का काढ़ा पीने से ज्वरातिसार, प्यास, वमन आदि ठीक होते हैं बुखार के साथ दस्त हो और वमन की इच्छा होती हो तो यह काढ़ा बहुत फायदा करता है।

पथ्यापथ्य—रोटी आदि कठिन वस्तु न खानी चाहिए। दलिया, खिचड़ी पुराने चावल का भात, मसूर की दाल, बेल का मुरब्बा, दही आदि चीजें देनी चाहिए। बहुत जल्दी हजम होने वाला भोजन बहुत कम मात्रा में कई बार देना चाहिए।

प्रवाहिका या डिसैंट्री

दस्तों के साथ मरोड़ (कांखना) जिस अवस्था में होता है वह अवस्था प्रवाहिका कहलाती है। मल में श्लेष्मा (म्युकस) अधिक होता है। मल कम होता है। अमीबा जन्य डिसैंट्री (amoebic dysentry) प्रवाहिका ही है। इस का कारण इण्टामीबा हिस्टोलिटिका नामक जीवाणु है। यह सक्रियावस्था तथा सुप्तावस्था इन दो रूपों में आंतो में पाया जाता है। सक्रिय होने पर प्रवाहिका होती है। सुप्तावस्था में नहीं होती। कुछ अमीबा सुस्त और कुछ चुस्त अवस्था में भी देखे जा सकते हैं। अमीबा आंत की कला से नीचे रहते है। वहीं से कभी-कभी रक्त धारा में होकर यकृत् तक जाकर वहाँ विद्रधि बना सकते हैं।

अमीबिक प्रवाहिका जीर्ण स्वरूप की होती है इसमें मरोड़ के साथ एक या दो टट्टीयां आती हैं। टट्टी में श्लेष्मा और कभी रक्त होता है। मल दुर्गन्धित होता है। ताजे मल में क्रियाशील अमीवा के दर्शन माइक्रोस्कोप में देखने से हो जाते हैं।

एक दूसरे प्रकार की डिसैंट्री वसीलरी डिसेंट्री कहलाती हैं यह प्रवाहिका न होकर एक प्रकार अतिसार ही है जो बहुत घातक होता है इसमें रोग का कारण दण्डाणु होते हैं। इसमें तीव्र ज्वर आता है। इसे ज्वरातीसार कहना अधिक उपयुक्त है। १०–२०–३०–५० बार तक पतले दस्त होते हैं। पेट में ऐंठन के साथ दर्द होता हैं। दस्त में म्यूकस और रक्त दोनों होते हैं।

पेचिश की चिकित्सा बहुत सावधानी से करनी चाहिए। दस्त को बन्द करने की दवा भूल कर भी न देनी चाहिए। आँव एक तरह का जहर है। उसके पेट में बन्द कर देने का मतलब है आदमी को सदा के लिए रोगी बनाना। अफीम आदि दवा की सहायता से आँव के दस्त को बन्द कर देने

से पैर, हाथ-मुँह आदि स्थानों पर सूजन, पीलिया (पाण्डु), तिल्ली और जिगर की खराबी, कोढ़ जलोदर, मन्द-ज्वर, मन्दाग्नि आदि बहुत-से रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अक्सर देखा गया है कि पचिश की भयानक तकलीफ के कारण अफीम पोस्ता आदि धारक दवा से दस्त बन्द कर दिये जाते हैं। इस तरह एक बार तो आराम मालूम होता है, परन्तु वह मनुष्य सदा के लिए रोगी हो जाता है। मुझे बहुत-से ऐसे रोगी मिले हैं, जिन्होंने बतलाया कि अमुक समय मुझे आँव के दस्त हुए थे और अफीम आदि से बन्द कर दिये गये थे परन्तु तब से मेरी तबियत बराबर खराब होती जा रही है।

पहले ही लिखा जा चुका है कि आँत में बहुत-सा मल जमा होने से पेचिस होती है, उस दूषित मल को खुद प्रकृति बाहर निकाल कर कोष्ठ को साफ करना चाहती है। हमें प्रकृति के कामों मे सहायता करनी चाहिये, न कि रुकावट इसलिए विज्ञान-सम्मत और युक्ति-संगत बात यही है कि मामुली दस्तावर दवा खिला कर आँव बाहर निकाल दिया जाय। भीतर के जहर रूपी आँव बाहर निकालते ही रोगी को फौरन लाभ मालूम होता है।

आँव के दस्त शुरू होते ही २९ ग्राम शुद्ध रेंडी का तेल (Castor Oil) २३३ या ११६·७ ग्राम दूध में या त्रिफला के काढ़ा में मिलाकर पीए। यह बहुत मुफीद दवा है, तुरन्त फायदा मालूम होगा। बड़ी हरड़ की छाल का चूर्ण ६ ग्राम में काला नमक एक ग्राम मिला कर गर्म पानी से सेवन करें, तुरन्त फायदा मालूम होगा। किसी भी मामूली जुलाब—गुलाब के फूल, गुलकन्द, मुनक्का आदि से पेट साफ कर दें तो रोगी को फौरन फायदा होगा। पेट साफ होते ही मरोड़, बार-बार दस्त जाना, पेट-दर्द आदि तत्काल अच्छे हो जाते हैं। याद रखना चाहिए कि रेंडी का तेल (Castor Oil) आँव और खून दोनों में बहुत अच्छा फायदा करता है। हरड़ आदि केवल आँव के दस्त में ही लाभ पहुँचाते हैं, खून के दस्त में नहीं।

आँव के दस्त मिट जाने पर भी कुछ दिन आमनाशक दवा खानी चाहिये

और खान-पान का खूब संयम रखना चाहिये; क्योंकि आँव का थोड़ा-सा भाग भी पेट में रहने से बहुत उपद्रव पैदा कर सकता है।

पेट का दर्द आराम करने के लिए तारपीन का तेल पेट पर मालिश करना चाहिए। आमाशय पर तीन-चार घंटे के अन्तर से मृदु सेंक करना भी पेट-दर्द में फायदा पहुँचाता है। एनीमा (पिचकारी) लेकर आंतों को धो देना बहुत फायदेमन्द है।

(१) सफेद राल और चीनी दोनों बराबर लेकर १॥ ग्राम की मात्रा में पानी के साथ खाने से पेचिश में जल्दी आराम होता है।

(२) पीपल, अनंतमूल, निशोथ, बड़ी हरड़ की छाल, आमला, कपूर कचरी इनको समभाग २३·२ ग्राम लेकर काढ़ा करें और शहद तथा मिश्री मिलाकर पिलाएँ। इससे आँव के दस्त में जल्दी फायदा होता है।

(३) धनियाँ, सोंठ, बेलगिरि नागरमोथा और नेत्रवाला–इन पाँचों दवाओं का काढ़ा आंव रोग की सर्वश्रेष्ठ दवा है। इसका नाम 'धान्यपंचक' है। आँव को समूल नष्ट करने के लिए इससे अच्छी दूसरी दवा नहीं है। रोगी की गर्म प्रकृति हो या पित्तांश अधिक हो तो इस काढ़े में से सोंठ निकालकर सौंफ मिला देनी चाहिए।

(४) कुड़ा की छाल या इन्द्रजों, अतीस, बेलगिरी, नेत्रवाला और नागर-मोथा इन पाँचो दवाओं का काढ़ा बनाकर पीने से आंव, शूल और रक्तातिसार में बहुत फायदा होता है। वत्सकादि काढ़ा अमीबा नामक कृमि के कारण होने वाले आँव की सबसे श्रेष्ठ दवा है। सैकडों रोगियों पर स्वयं परीक्षा की है। भारतवर्ष में अमीबा––आँव पेचिश बहुत व्यापक रोग है उसकी इससे उत्तम दवा नहीं है।

(५) रूमीमस्तगी, गुलकन्द, सौंफ और बड़ी इलायची––इन चारों चीजों का महीन चूर्ण करके और बराबर वजन में मिश्री मिलाकर ११·६६ ग्राम जल के साथ सेवन करें। इससे आँव के दस्त जल्द अच्छे होंगे।

(६) मधुकादि चूर्ण (कब्जियत-अधिकारोक्त) और लवणभास्कर चूर्ण (मन्दाग्नि-अधिकारोक्त) बराबर भाग मिलाकर ६ ग्राम, गर्म पानी के साथ

लेने से आंव के दस्त ठीक हो जाते हैं।

(७) बड़ी हरड़, मुनक्का, सोंप और गुलाब का फल—इन चारों चीजों का काढ़ा आंव के दस्त में फायदा करता है। मरोड़ (ऐंठन) ज्यादा और मल बहुत कम हो तो इससे बहुत फायदा होता है।

(८) काला तिल ३ से ६ ग्राम तक का कल्क बनाकर और पांच गुनी चीनी या मिश्री मिलाकर खाने से खून के दस्त बन्द हो जाते है। बवासीर का खून भी बन्द हो जाता है।

(९) कुड़ा (कुरैया) ताजी छाल का काढ़ा शहद डाल कर पीने से खून के दस्त आराम होते हैं। केवल खून के दस्त में या खून मिश्रित दस्त में कुड़ा बहुत फायदा करता है। पुटपाक रीति से स्वरस बनाकर २३·२ ग्राम में ११·६६ ग्राम शहद मिलाकर पीना भी लाभदायक है।

(१०) कुरैया (कुटज) की छाल ११·६६ किलो को कूटकर ६० किलो पानी में औटाएँ। १५ किलो शेष रहने पर उतार कर छान ले। इस क्वाथ को फिर औटाएँ। जब क्वाथ गाढा हो जाय, तब मोचरस, पाठा, लज्जालू, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, धाय के फूल—इन सातों दवाओं के प्रत्येक का ११६·६ ग्राम चूर्ण मिलाकर उतार लें। इसी का नाम 'कुटजावलेह' है। ६ ग्राम से ११·६६ ग्राम तक की खुराक एक-दो या तीन बार बकरी का दूध या अडूसे की जड़ की छाल के काढे के साथ लेनी चाहिए। इससे खून के दस्त निश्चय आराम होते हैं। यह खूनी बवासीर, रक्त प्रदर, आँव के दस्त, संग्रहणी आदि रोगों में भी बहुत अच्छा फायदा करता है। हमारा बहुत बार का परीक्षित है। —शा० स०

(११) पके हुए बेल का शर्बत पुराने आँव की अव्यर्थ महौषधि है। परन्तु वह हर समय और समस्त भारतवर्ष में प्राप्त नहीं होता। चैत्र से आषाढ़ तक बंगाल, बिहार आदि प्रान्तों में मिलता है। इसके सेवन से बहुत शीघ्र लाभ होता। इसके जैसी कब्ज को साफ करने वाली दूसरी दवा नहीं है। जो लोक कब्ज की शिकायत बराबर किया करते हैं उनको तथा बवासीर के रोगियों को समय-समय पर बेल का शर्बत पीकर अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

(१२) इसबगोल ४ भाग, सोंफ आधा भुना आधा कच्चा १ भाग, पुराने और नये आँव की उत्तम दवा है। २·९२ से ५·८३ ग्राम तक बराबर मिश्री मिला कर जल के साथ सेवन करना चाहिए।

(१३) **कुटजारिष्ट**--कुड़ा की उत्तम छाल ५·८३ किलो, मुनक्का २·९१ किलो, महुआ के फूल और गम्भारी की छाल---५८३ ग्राम को ५५·७ किलो जल में काढ़ा करें और ९·७ किलो शेष रहने पर छान लें। इस काढ़े में धाय के फूल १·२ किलो, गुड़ ५·८ किलो डाल कर स्वच्छ बर्तन में एक मास तक रखें। तैयार होने पर छान कर बोतल में भर लें। इसकी मात्रा १४·७ से २९·२ ग्राम तक है। समभाग जल में मिला कर दिन में तीन, चार बार पिलावें। इससे सब प्रकार की संग्रहणी, अतिसार, आंव, खून के दस्त, ज्वर, मन्दाग्नि आदि नष्ट होते हैं। यह अरिष्ट अग्नि को बढ़ाता है।

पथ्यापथ्य--आंव, पेचिश के रोगों को खान-पान पर खूब ध्यान रखना चाहिए। बहुत-से रोगी मनमाना खान-पान करके रोग को बढ़ा लेते हैं। पेचिश ज्यादा दिन रहने-से आँतों में घाव हो जाता है और दस्त के साथ बराबर खून गिरने लगता है। संग्रहणी भी हो जाती है। पेचिश के रोगी को शुरू में मिश्री का शरबत, मठा, बार्ली, आरारोट साबूदाना, दूध, आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिए। धान का लावा पानी में मिलाकर लेना चाहिए। सिंघाड़े के आटे की लपसी, भात का माँड़ आदि भी पथ्य है। गर्म पानी ठण्डा करके देना चाहिए। जब रोगी भूख से व्याकुल होने लगे, तब पुराने चावल का भात, दही, चावल-मूंग की खिचड़ी, गेहूँ का दलिया आदि देना चाहिए। रोटी, पूरी, कचौड़ी आदि कठिन चीजें न दें। रोग पुराना हो गया हो, तो अन्न बिल्कुल न देना चाहिए। बकरी या गाय के दूध पर ही निर्वाह उत्तम है। यदि सिर्फ दही ही भोजन में दिया जाय तो बहुत लाभ होता है। रोगी को हवादार और उजियाले स्थान पर शान्ति से लेटे रहना चाहिए। घूमना-फिरना एकदम मना है। आँव और खून के दस्तवाले रोगी को उठना-बैठना भी नुकसान करता है। जहाँ तक हो लेटे-लेटे ही टट्टी और पेशाब रोगी को करना उचित है। स्नान

मना है, परन्तु तौलिये को जल में भिगो कर शरीर को अच्छी तरह पोंछ लेना चाहिए।

अमेबिक प्रवाहिका

(Amoebic Dysentry)

समस्त भारत में अमेबिक प्रवाहिका रोग अत्यधिक होता है। कोई ही भाग्यशाली व्यक्ति होगा जिस को यह आंव पेचिस न हुई हो। यह रोग जल द्वारा फैलता है। इसलिए इसके बचाव के लिये भारत सरकार शुद्ध पेय जल की व्यवस्था समस्त भारत वर्ष में कर रही है, जिसमें हजारों अरब रुपया खर्च होगा। वास्तव में यह आँव पेचिस का रोग बहुत दुष्ट है। एक बार होने पर मनुष्य का सुख-स्वास्थ्य सदा के लिए नष्ट हो जाता है। इस रोग की प्रथमावस्था में बदहजमी होती है। दस्त की कब्जियत या ढीला पतला दस्त होता है। रोग बढ़ने पर दस्त में आंव (चिकना कफ जैसा) आता है। कई बार पाखाना जाने पर भी पेट साफ नहीं होता। मन में ग्लानि बनी रहती है। काम में उत्साह नहीं होता। बड़ी आंत में वायु बहुत पैदा होती है जिसको आज-कल सभी लोग गैस कहते हैं। आंत में घाव हो जाता है। बिना पका हुआ मल जाता है। मल परीक्षा में अमेबा कीटाणु या उसके अण्डे दीखते हैं। आंव पेचिस के रोगी को मल परीक्षा अवश्य करा लेनी चाहिये।

चिकित्सा--अमीवा रोगाणु की वृद्धि मल संचय से होती है—इसलिये पेट साफ रहना आवश्यक है। इसके लिये इस रोग की सर्वश्रेष्ठ और निर्दोष दवा इसबगोल है। साबित इसबगोल १ चम्मच भिगोकर भोजन के बाद खाना चाहिए। भोजन करके भिगोई हुई ईसबगोल खाकर उठना चाहिये उसी समय दूसरे समय के लिये ईसबगोल भिगो देना चाहिये। कम से कम ८ घंटा भिगना चाहिये। यदि ऐसा होना संभव न हो तो ६० ग्राम ईसबगोल दाना २० ग्राम भुनी हुई सौंफ, २० ग्राम बिना भूनी सौंफ इनका चूर्ण बनाकर भोजन के बाद इसे ६ ग्राम मात्रा में लेना चाहिये। इससे अमेबा रोगी का समस्त जीवन आराम से कट जाता है। दवा की कोई आदत नहीं पड़ती। बीच-बीच में अधिक वायु

हो तो अग्नितुण्डी वटी या हिंग्वष्टक चूर्ण ले लें। इस रोग की स्थायी लाभ-वाली चिकित्सा केवल आयुर्वेद में है, पर है बहुत लम्बी तथा उकता देने वाली। अँग्रेजी दवा से तत्काल फायदा अवश्य होता है लेकिन कुछ समय बाद फिर रोग वैसा ही हो जाता है। नीचे लिखा वत्सकादि कषाय मैंने हजार रोगियों से अधिक को सेवन कराया है। अपने अस्पताल में रख कर विधि विधान से करीब ५० रोगियों पर परीक्षण किया है। यह काढ़ा बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ। योग यह है--

(१) **सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः, सोदीच्यमुस्तैश्च कृतः कषायः।**
सामे सशूले सह शोणिते च, चिरप्रवृत्तेऽपिहितोऽतिसारे॥

(१) कड़वा कुडा की छाल (२) कड़वा अतीस (३) बेलगिरी (४) खश (५) नागरमोथा--इन ५ दवाओं का ३५ ग्राम वजन लेकर ३५० ग्राम पानी में पकावें जब ८७·२ ग्राम बचे तब छानकर प्रातः सायं और सोते समय तीन बार में इसको पीवें। रोग के लक्षण शान्त होने तक तथा मल परीक्षा में कीटाणु तथा अण्डा न दीखे तब तक पीते रहें। बल्कि १५ दिन और पीवें तो अच्छा है। इस योग में कुड़ा की छाल और अतीस तत्व की दवा है। छाल ताजा हो तथा अतीस कड़वा तथा घुना हुआ न-हो नया हो।

(२) श्योनाक (सोना पाठा) की ताजा छाल की धन सत्वबटी बना लें। २-२ वटी ३ बार देने से भी अमीबा निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है--यह काशी विश्वविद्यालय के द्रव्य गुण विभाग के अध्यक्ष श्रीप्रियव्रतजी ने लिखा है सो निश्चय ही प्रमाणिक होगा।

बहुत से वैद्य बन्धु श्योनाक को अरलु जानते हैं यह भ्रम है। ये दो द्रव्य हैं। सोनापाठा के पर्ण संयुक्त २-३ हाथ लम्बे; फली दो-दो हाथ लम्बी, चार अंगुल चौड़ी, तलवार की आकृति की होती है। चतुर्मास प्रारम्भ में फूल आते हैं। अरलु वृक्ष इससे भिन्न है। अरलु की छाल भी दस्त बन्द करती है। अति स्तम्भक है।

(३) ताजा कड़वे कुड़ा की छाल घन सत्ववटी बनाले। दो-दो बटी ३ बार लेने से अमीबा में लाभ होता है। आंव के साथ खून भी गिरता हो तो

यह बटी बहुत लाभ करती है। केवल कुड़ा की छाल का चूर्ण भी बहुत लाभ करता है।

(४) कड़वा इन्द्र जी का चूर्ण ३६५ मि. ग्रा. जल या माठा के साथ लेने से लाभ होता है।

(५) कुटजावलेह—कुटजाष्टक क्वाथ, कुटजारिष्ट भी इस रोग में लाभ करते हैं।

पथ्यापथ्य—चिकित्सा के समय में दलिया खिचड़ी दहीभात, आदि पतली वस्तु देने से रोग शीघ्र अच्छा होता है। माठा या दही भी बहुत लाभकारी है। जिस रोगी को अत्यधिक वायु होती हो उसको भोजन में शुद्ध तेल या घी भी भोजन में लेना चाहिये। लाल या काली मिर्च बिल्कुल न खानी चाहिये। दाल कम लें या उसका पानी लें। मद्य न पिये। इस रोगी को सदा ही खान-पान में सावधान रहना पड़ता है। कुपथ्य होते ही रोग फिर से उभड़ आता है।

संग्रहणी

संग्रहणी मन्दाग्नि का ही एक रूप है। खाया हुआ भोजन जब अच्छी तरह हजम नहीं होता है, तब कब्ज हो जाता है या दस्त होने लगते हैं। बदहजमी के पुराने दस्तों को ही संग्रहणी कहते हैं। किसी को कई दिन तक कब्ज होकर एक दिन पाँच सात पतले दस्त हो जाते हैं, किसी रोज सुबह के समय तीन-चार पतले दस्त हो जाते हैं किन्तु रात को बिल्कुल नहीं होते, किसी-किसी को दिन-रात में आठ दस पतले दस्त रोज ही होते हैं। ४० दिन के ऊपर अतिसार के हो जाने पर उसे संग्रहणी कहने लगते हैं। संग्रहणी के दस्तों का कोई नियम नहीं है। संग्रहणी के दस्तों की खास पहचान यह है कि दस्त बहुत होता है। अर्थात् साधारण अवस्था में जितना मल मनुष्य करता है, उससे दुगुना, तीन गुना मल संग्रहणी के समय एक बार में करता है। मल में आंव का भाग जरूर रहता है। दस्त का वेग बहुत होता है, यहाँ तक कि यदि पाखाने के लिए कहीं दूर जाना हुआ तो कपड़े खराब हो जाते हैं और मलोत्सर्ग के बाद अत्यधिक दुर्बलता का अनुभव होता है। दस्त के समय पेट में मरोड़ उठती है।

भोजन करते ही दस्त का वेग होना, शरीर-दुर्बल और रक्तहीन, पेट का गुड़-गुड़ करना, मुंह में छाले होना, कमर में दर्द, नाड़ी चंचल और भारी, शरीर कमजोर और रूखा आदि लक्षण इस रोग में प्रकट होते हैं। रोग पुराना या आँव का भाग अधिक होने पर या आँतों में घाव होने पर ज्वर भी होता है। भोजन अच्छी तरह हजम न होने के कारण संग्रहणी की उत्पत्ति होती है। संग्रहणी वाले रोगी के दाँतों में मवाद का पाया जाना बहुत सम्भव है।

चिकित्सा——बहुत अनुभव के बाद निश्चय हुआ है कि संग्रहणी की सर्वोत्तम चिकित्सा जल-वायु का परिवर्तन है। बहुत अच्छे जल-वायु के स्थान का बन्दो-बस्त न हो सके तो मामूली जगह में ही रोगी को ले जाना चाहिए। अनेक बार देखा गया है कि मील-दो मील दूर वाले स्थान पर ही रोगी को ले जाने से आराम हो गया है। जिस स्थान पर रोगी बराबर रहता है उस जगह रह कर भी योग्य चिकित्सा होने से रोग में आराम हो सकता है, परन्तु आबहवा बदलने से तो आश्चर्यजनक लाभ होता है। नीचे लिखी दवाओं का सेवन संग्रहणी रोग में लाभदायक है।

(१) **संग्रहणी की बहुपरीक्षित दवा**——लोहे की कड़ाही में घी, शहद, रेंडी का तेल (कैस्टर आयल) और भिलावा——प्रत्येक ७०० ग्राम तोला डालें। उसी कढ़ाही में रूमी हिंगुल (अशुद्ध ही) २३३ ग्राम डालकर चूल्हे पर चढ़ा दें। पहले मन्द-मन्द अग्नि लगाकर बाद में जोर की आग लगाएँ। जब कड़ाही में से अधिक धुआँ उठने लगे तब जलती हुई लकड़ी की सहायता से कड़ाही में आग लगा दें। जरा देर के बाद जब कड़ाही से आग की लपटें उठने लगें, तब चूल्हे की आग बिल्कुल हटा दें। जब सब चीजें जलकर कड़ाही ठण्डी हो जाय तब रूमी हिंगुल को निकाल लें। अग्नि के ताप से हिंगुल तुरन्त उड़ जाता है परन्तु उपर वाली चीजों के संयोग से हिंगुल आग की लपटों के बीच रखा हुआ भी नहीं उड़ता। कड़ाही ठण्डी होने पर हिंगुल के टुकड़ों को निकालकर पत्थर के खरल में खूब महीन पीसें। फिर जायफल, जावित्री और लौंग——प्रत्येक २३३-२३३ ग्राम वजन में लेकर महीन चूर्ण करके उपर्युक्त सिद्ध किये हुए हिंगुल में मिला दें, यह मन्दाग्नि और संग्रहणी की रामबाण दवा है। सिर्फ इसी दवा के

प्रताप से कलकत्ते के एक वैद्यराज ने बहुत रुपये कमाए हैं। १२२ मि.ग्रा. दवा से आरम्भ करके ७२९ मि. ग्रा. तक इस दवा की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए। संग्रहणी वाले रोगी को कपड़े द्वारा जल निकाले हुए ५८ ग्रा. दही के साथ दवा लेनी चाहिए। मन्दाग्नि, अम्लपित्त और कब्जियत की बीमारी में ५८ ग्राम से २३३ ग्राम तक दही (बगैर पानी निकाला हुआ) के साथ सेवन करना चाहिए। रोज प्रातःकाल एक ही खुराक दवा सेवन करनी चाहिए। दो-तीन दिन के बाद ही भूख खुल जायगी। परन्तु, यदि इस नयी भूख में भर पेट भोजन कर लिया जायगा तो दवा से कुछ फायदा नहीं होगा। भूख लगने पर ज्यादातर मट्ठा ही सेवन करना चाहिए। अन्न खाना एकदम छोड़ देना चाहिए। दवा से गर्मी ज्यादा मालूम हो तो सन्तरा और अनार का सेवन करें, तुरन्त शान्ति आ जायगी। पूरे फायदे के लिए इस दवा को ४० दिन तक खाना चाहिए। संग्रहणी की यह बहुत बढ़िया दवा है। हमने बहुत बार परीक्षा की है।

(२) **चित्रकादि गुटिका**—चित्रकमूल की छाल, पीपलामूल, जवाखार, सज्जीखार, पाँचों नमक, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, भूनी हुई हींग, अजमोद और चव्य—इन १५ दवाओं को समभाग लेकर महीन चूर्ण करें। फिर नीबू और अनार के रस में अच्छी तरह घोंट कर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। दिन रात में तीन या चार बार २ से ४ गोली तक जल के साथ या इसी तरह खाएँ। ये गोलियाँ संग्रहणी और मन्दाग्नि में बहुत फायदा करती है। खाये हुए पदार्थ को अच्छी तरह हजम करती तथा आँव का नाश करती हैं। —भै० र०

(३) **लाई चूर्ण**—शुद्ध गन्धक ११·७ ग्राम, शुद्ध पारा ५·८ ग्राम दोनों को पत्थर के खरल में घोंटकर अच्छी तरह कज्जली बना लें। बाद में सोंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक ११·७ ग्राम, पाँचों नमक प्रत्येक ११·७ ग्राम, भुनी हुई हींग, स्याह जीरा, सफेद जीरा—प्रत्येक १६·५ ग्राम, घी में भुनी हुई भाँग ९६ ग्राम—इन सबचीजों का महीन चूर्ण करके ऊपर वाली कज्जली में मिला दें। इसका नाम 'लाई चूर्ण' है। ९७२ मि. ग्रा. की खुराक शहद या मट्ठा के साथ लेनी चाहिए। इसमें भाँग मिश्रित है; अतः रोगी को जितना बर्दाश्त हो; उतनी ही मात्रा देनी चाहिए।

भाँग के नशे में अधिक भोजन न खा लेना चाहिए। यह संग्रहणी और मन्दाग्नि की प्रसिद्ध दवा है। भा० प्र०

(४) **दुग्ध बटी**—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, शुद्ध हरिताल, शुद्ध हिंगुल, सेमर का खार और अफीम-प्रत्येक समभाग लेकर दूध में घोंट कर आधे जौ के बराबर गोलियाँ बना लें। एक गोली दूध के साथ सेवन करने से शोथ सहित संग्रहणी रोग आराम होता है। इसमें पानी पीना और नमक खाना निषेध है। प्यास लगने पर दूध ही पीना चाहिए तथा दूध-भात का ही भोजन करना चाहिए। पानी की बहुत इच्छा हो तो बहुत थोड़ा गर्म पानी देना चाहिए। इससे शोथयुक्त संग्रहणी में बहुत लाभ होता है। पुरानी संग्रहणी में जब किसी तरह से रोग शान्त न हो तो इसको देना उत्तम होता है।

(५) **जातिफलादि चूर्ण**—जायफल, लौंग, छोटी इलायची, तेजपात दालचीनी, नागकेशर, कपूर, सफेद चन्दन, धोए हुए तिल, वंशलोचन, तगर, आँवला तालीसपत्र, पीपल, हर्रे, चीता की छाल, सोंठ, वायविडंग, मिर्च और कालाजीरा इन दवाओं को समभाग लेकर चूर्ण करें। फिर इस चूर्ण का जितना वजन हो, उसके समान वजन में धुली हुई भाँग का चूर्ण और मिला दें। भाँग मिलाने के बाद चूर्ण का जितना वजन हो उतनी ही मिश्री और मिलावें। ९७२ मि.ग्रा. चूर्ण को शहद के साथ चटावें। यदि भाँग का नशा अधिक मालूम हो, तो चूर्ण की खुराक कम कर दें। यदि रोगी बर्दास्त कर सके, तो चूर्ण की खुराक २.९ ग्राम तक बढ़ा सकते हैं। यह संग्रहणी में बहुत फायदेमन्द है। परन्तु भाँग के नशे में कुछ अंट-संट न खा लेना चाहिए। शा० ध०

(६) **बृहत् गंगाधर चूर्ण**—बेल की गिरी, मोचरस, पाठा, धाय के फूल, धनिया, सुगन्धवाला, सोंठ, मोथा, अतीस, अफीम, लोध, कच्चे अनार के फल की छाल, कुरैया (कुड़ा) की छाल, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक सब दवाएँ समभाग लेकर पहले पारा और गन्धक की कज्जली कर लें; फिर उसमें अफीम तथा अन्यान्य दवाएँ मिलाकर चूर्ण तैयार कर लेना चाहिए।

अनुपान--मठा या चावल भिगोया पानी। इसके सेवन से सब तरह के अतिसार, संग्रहणी, पेट के रोग और आठों तरह के ज्वर आराम होते हैं।

--भैं० र०

(७) **नृपतिबल्लभ रस**--जायफल, लवंग, नागरमोथा, दालचीनी, छोटी इलायची, आग पर फुलाया हुआ सुहागा, घी में भुनी हुई हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधा नमक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और ताम्र भस्म प्रत्येक ४७ ग्राम, और काली मिर्च ९४ ग्राम लेकर प्रथम पारा-गन्धक की कज्जली करें, बाद में अन्य औषधियों को मिलाकर बकरी के दूध में घोटकर पश्चात् आमला-रस की ७ भावना देकर ३६६ मि. ग्रा. प्रमाण की बटी बनाकर छाया में सुखाकर रख लें। यह संग्रहणी, मन्दाग्नि एवं अन्यान्य उदर रोगों की उत्तम दवा है। --भैं० र०

(८) पीयूषवल्लीरस (सि० स०) में देखें

अनुपान--जल, मठा या रोगानुसार।

(९) **स्वर्ण पर्पटी**--२३·५ ग्रा. शुद्ध पारा में ५·१ ग्रा. सोने की भस्म (कई वैद्य सोने का तबक डालते हैं) मिलाकर खरल करें। फिर २ तोला शुद्ध गन्धक मिला कर एक दिन घोटें। तदुपरान्त लोहे की कलछी में घी लगा कर इस कज्जली को डालकर बहुत मन्द अंगारों की आग पर रखें। थोड़ी देर बाद कज्जली गल कर पानी जैसी हो जायगी। गोबर के ऊपर केले का पत्ता रख कर इस पानी जैसी कज्जली को डाल दें। उस पर तुरन्त दूसरे केले का पत्ता रख कर गोबर से ढक दें। थोड़ी देर बाद जो चिपटा पदार्थ जम जायगा इसी को 'पर्पटी' कहते हैं।

(१०) बिल्वादि चूर्ण सि. २४ पेज

(११) कुटज घनवटी सि. २४ पेज

(१२) नागकेशरादि चूर्ण सि. ३१ पेज

मात्रा--एक रत्ती से आरम्भ करके चार रत्ती तक बढ़ाएँ।

अनुपान--मठा, धनिया और जीरे का काढ़ा। पर्पटी में बहुत वैद्य जरा-सी भुनी हींग और शंख भस्म भी मिलाकर रोगी को सेवन कराते हैं, जो अच्छा है। यह संग्रहणी की सर्वश्रेष्ठ दवा है। जब रोग किसी तरह भी अच्छा नहीं

होता हो तब इसका सेवन रोगी को प्राणदान कर सकता है। जब आँतों में घाव हो जाते हैं, खून व मवाद के दस्त आने लगते हैं, तब इसके सेवन से आँतों का घाव ठीक हो जाता है। सोना न डालकर पारे के बराबर भाग लौह भस्म मिला दिया जाय, तो इसी को 'लौहपर्पटी' कहते हैं। खाली पारा और गन्धक के रहने से 'रसपर्पटी' कहलाती है।

(१२) **पंचामृत पर्पटी**—शुद्ध गन्धक ९४ ग्राम, शुद्ध पारा ४७ ग्राम, लौह भस्म २३·५ ग्राम, अभ्रक भस्म ११·७ ग्राम और ताम्रभस्म ५·८ ग्राम—इनकी पर्पटी बनाने से 'पंचामृतपर्पटी' कहलाती है। —भै० र०

लाभ की दृष्टि से 'सबसे अच्छी 'पंचामृतपर्पटी' समझी जाती है। मन्दाग्नि-मूलक रोगी के लिए पंचामृत पर्पटी सर्वोत्तम दवा है।

पर्पटी का सेवन यदि कुशल वैद्यराज की देख-रेख में किया जाय, तो बहुत अच्छा रहता है। पर्पटी-सेवन के समय सिर्फ दूध या मट्ठा का सेवन किया जाय और अन्न बिल्कुल छोड़ दिया जाय, तो सर्वोत्तम फल होगा और किसी रोगी को निराश न होना पड़ेगा। पर्पटी-सेवन के समय अक्सर कब्जियत हो जाती है। इसके लिए कब्जियत अधिकार में लिखी 'भुवनेश्वर बटी' सेवन करनी चाहिए।

संग्रहणी रोग में मठा का सेवन अमृत के समान फायदा करता है। यदि रोगी को कफ, खाँसी, ज्वर और सूजन हो, तो मठा की जगह बकरी का दूध सेवन करना चाहिए। यदि कुछ भी दवा न ले कर संग्रहणी में सिर्फ मठा का ही सेवन किया जाय, तो भी रोग पूर्ण रूप से अच्छा हो सकता है।

रोगी की अवस्था के अनुसार घी निकाला हुआ या घी सहित मठा ही का सेवन कराना चाहिए। मठा बनाने के लिए दही न मीठा हो और न अत्यन्त खट्टा। मामूली कुछ खट्टा दही होना सर्वोत्तम है। दही से चौथाई भाग जल मिलाकर मठा बनाना होता है। घी सहित मठा अधिक गुण करनेवाला होता है, परन्तु जिसका हाजमा बहुत खराब हो गया हो, उसे घी निकालकर ही मठा देना चाहिए। सोंठ, चीतामूल की छाल और सेंधा नमक—इन तीनों का चूर्ण ९७२ मि.ग्रा. या लवणभास्कर चूर्ण ९७२ मि.ग्रा. हर बार मिलाकर मठा पीने से

बहुत लाभ होता है। अन्न का खाना धीरे-धीरे कम करके एकदम छोड़ देना चाहिए। अन्न की जगह मठा बढ़ाना चाहिए। हम बहुत-से रोगियों को ६.५ किलो तक दही का मठा पिला देते हैं। जब अन्न के बिना भूख बहुत लगे, अत्यन्त बेचैनी हो जाय, तब बार्ली का पानी, साबूदाना या कच्चे केले की रोटी देनी चाहिए। अन्न को छोड़कर सिर्फ मठा या दूध के आधार पर रहने से एक बार तो रोगी बहुत दुर्बलता का अनुभव करता है; परन्तु जल्दी—दो-तीन दिन के बाद ही कमजोरी हटने लगती है। फिर कुछ दिनों के बाद तो अन्न की जरा भी परवाह नहीं रहती। एकदम नीरोग हो जाने पर अन्न-ग्रहण करना चाहिए। उस समय पुराने चावल का भात और दही का भोजन होना चाहिए। मठा या दूध के सेवन-काल में भी संग्रहणी के रोगी को अन्न देने की जरूरत मालूम हो, तो दही-भात ही दिया जाना चाहिए। मठा या दूध रोगी को पिलाने की सबसे अच्छी विधि यह है कि हर एक घण्टा के अन्तर से मठा या दूध पिलाया जाय। जैसे—सुबह ५-६ बजे से ५८·३ ग्राम या ११६·६ ग्राम मठा या दूध; हर एक घण्टा बाद रात के ९,१० बजे तक पिलाया जाय। दूसरे दिन २३·३ ग्राम मठा या दूध वजन में हर बार बढ़ाकर देना चाहिए। जल जहाँ तक हो नहीं देना चाहिए। अगर जल देने की जरूरत हो तो सौंफ का अर्क या फलों का रस देना उचित है। जल की अत्यन्त आवश्यकता होने पर गरम जल जरा-सा पिला देना चाहिए। इस तरकीब से रोगी को मठा या दूध ७-८ सेर तक हजम हो जाता है। यह याद रखने लायक बात है कि दो-चार तोला अन्न देने पर भी दूध या मठा रोगी अधिक नहीं पी सकता है। दूध में मीठा न मिलाना चाहिए। फल या फलों का रस दिया जा सकता है। रोगी को शान्त चित्त से लेटे रहना चाहिए। रोगी इधर-उधर थोड़ा-बहुत टहल सकता है या मन बहलाव के लिए बैठ सकता है, लेकिन शारीरिक या मानसिक परिश्रम न करना चाहिए। इस तरह मठा या दूध—सेवन करने वाले संग्रहणी, मन्दाग्नि अम्लपित्त या पुराने आँव के रोगी निश्चय ही तन्दुरुस्त हो जाते हैं।

व्यवस्था—हम संग्रहणी के रोगी की नीचे लिखी व्यवस्था से चिकित्सा करते हैं, जिससे बहुत बढ़िया फल होता है। प्रातःकाल एक खुराक संग्रहणी की

दवा नं. (१) दही के साथ सेवन कराते हैं। दिन-भर में चित्रकादि वटी १०-१२ गोली खिला देते हैं। रात को सोते समय अतिसार-अधिकार की कपूर वटी एक या दो गोली धान्यपंचक काढ़े के साथ देते हैं। पान, सुपारी, इलायची की जगह रोगी को सौंफ चबाने को देते हैं। भोजन की रीति ऊपर लिखी ही जा चुकी है। इस प्रकार व्यवस्था करने से संग्रहणी का रोगी जल्द अच्छा हो जाता है।

पथ्यापथ्य—यह सोलह आने पूर्ण सत्य है कि संग्रहणी का रोगी यदि भूख का वेग न सह सके, तो अमृत से भी अच्छा नहीं किया जा सकता। संग्रहणी में दस्त लगने के कारण अच्छी कड़ाके की भूख लगती है। कुछ समय तक तो समझदार रोगी संयम से काम लेता है, परन्तु पुराना रोग होने से रोगी का मन चंचल हो उठता है और विचार-शक्ति मृतप्राय हो जाती है। बहुत दिन रोग भोगने के कारण रोगी बदपरहेजी और हठी हो जाता है। इसलिए घर वालों का कर्त्तव्य हो जाता है कि रोगी के खान-पान पर खूब ध्यान रखें, बुद्धिमान् रोगी का भी विश्वास न करें।

कच्चे केले को जल में पकाकर सुखा लें और महीन आटा बना लें। जरा-सी सूजी या आटा मिलाकर इसकी रोटी बनाकर रोगी को खिलाएँ। कच्चे केले को उबालकर मठा के संयोग से कढ़ी बनाकर रोगी को खिलाएँ। रात को मूंग के आटे की कढ़ी भी दी जा सकती है। बार्ली की रोटी भी बहुत हल्की होती है। जरूरत के समय दही-भात भी दिया जा सकता है। संग्रहणी रोग के साथ प्रायः दाँतों में पायरिया की बीमारी पायी जाती है। इसलिए दाँत के डाक्टर को दाँत जरूर दिखा लेने चाहिए। आगे मन्दाग्नि में जो नियम लिखे हैं, उन पर भी अच्छी तरह ध्यान रखना चाहिए; क्योंकि पहले ही कहा जा चुका है कि संग्रहणी भी मन्दाग्नि का ही एक भेद है। स्वच्छ जल से स्नान और ज्यों-ज्यों शक्ति आती जाय, त्यों-त्यों भ्रमण करना उत्तम है।

अर्श (बवासीर)

गुदा-द्वार की त्रिवली की नसें फूलतीं और बड़ी हो जाती हैं। वे मटर,

मुनक्का या इनसे भी बड़े आकार की देखने में होती है। इसको 'अर्श या बवासीर कहते हैं। एक या कई बवासीर के मस्से एक बार में हो जाते हैं। गुदा-द्वार के बाहर होने से बहिर्वलि और गुदा-द्वार के भीतर होने से अन्तर्वलि बवासीर' कहलाती है। ये दोनों बवासीर दो तरह की देखी जाती हैं—खूनी और **बादी**। **खूनी बवासीर** से समय-समय पर खून गिरता है। खूनी बवासीर प्रायः अन्तर्वलि की होती है। **बादी बवासीर** से खून नहीं गिरता, परन्तु दर्द बहुत होता है। बराबर कब्जियत के कारण टट्टी फिरने के समय मल निकालने के लिए बहुत जोर लगा कर काँखना पड़ता है। इसी काँखने से प्रायः बवासीर हो जाती है। बार-बार जुलाब लेना, चटपटी मसालेदार चीजों का अधिक खाना, मद्यपान, रात का जागना, बिना शारीरिक परिश्रम के जीवन बिताना, घी, मलाई आदि गुरुपाकी चीजें अधिक खाना, खूब सख्त या खूब नरम आसन पर बैठकर निरन्तर काम करना आदि कारणों से बवासीर उत्पन्न हो जाती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि यकृत् (लीवर) की खराबी से भी बवासीर उत्पन्न होती है।

मल-द्वार के पास कुटकुट करना, काँटा चुभनें जैसी वेदना कब्जियत, मन्दाग्नि, बार-बार दस्त जाने की इच्छा, गुदा में जलन और खुजली आदि बवासीर के लक्षण हैं।

चिकित्सा—बवासीर की सर्वोत्तम चिकित्सा यही है कि योग्य चिकित्सक द्वारा शस्त्र या क्षार सूत्र से कटवा कर सब मस्से निकलवा दिए जाएँ या जोंक लगाकर शमन कर दिये जायँ। बवासीर में वायु की गति प्रतिलोम हो जाती है, जिससे वायु की गति अनुलोम हो, वही चिकित्सा विधेय हैं। बवासीर के रोगी को प्रायः कब्जियत रहती है और मल खुश्क हो जाता है, इसलिए दस्त साफ और नरम होकर आवे, ऐसी दवा देनी चाहिए। बवासीर रोग में फायदा पहुँचाने वाली दवाइयाँ नीचे लिखी जाती हैं:—

(१) नीम की निबौली, रसौत, खूनखराबा, शुद्ध गुग्गुलु, बड़ी हरड़ का छिलका और मुनक्का—प्रत्येक दो-दो तोला, गुलाब के फूल और सनाय ११·७ ग्राम तथा पीपल १६·५ ग्राम—इन सब दवाओं का चूर्ण करके शेष में गुग्गुलु मिलाकर त्रिफला के काढ़े से बेर के बराबर गोलियाँ बना लें। सुबह-शाम जल

के साथ दो-दो या चार-चार गोलियाँ खाएँ। अगर ज्यादे कब्जियत रहती हो तो गरम पानी के साथ खाएँ। इससे दोनों तरह के बवासीर में अच्छा फायदा होता है। बहुत बार की परीक्षित दवा है।

(२) नीम के फलों (निबौली) की गिरी, खूनखराबा, मुनक्का, गेरु और कहरवा--इन पाँचों दवाओं को बराबर लेकर जल के संयोग से चने के बराबर की गोलियाँ बना लें। दो-दो या चार-चार गोली दोनों समय खाने से खूनी बवासीर में निश्चय फायदा होता है।

(३) नागकेशर १·५ ग्रा. या धुले हुए काले तिल ११·७ ग्राम, ताजा घी या मक्खन के साथ खाने से बवासीर से खून गिरना बन्द हो जाता है। निबौलियों के बीज १०-१५ करके दो-तीन बार जल के साथ खाने से भी खून गिरना बन्द हो जाता है।

(४) रीठा, जो रेशमी (सिल्क) कपड़े के धोने के काम में आता है--के छिलके को जलाकर भस्म ९७२ मि. ग्रा. शहद के साथ चटाने से बावासीर से खून गिरना बन्द हो जाता है।

(५) मोती की सीप को महीन चूर्ण कर गुलाब जल से घोटें। इसकी २४५ मि. ग्रा. खुराक मक्खन में डाल कर खाने से बवासीर में खून गिरना बन्द हो जाता है। यह रक्त प्रदर में बहुत फायदा करता है। परीक्षित दवा है।

(६) काली मिर्च ११·७ ग्राम, पीपल २३·४ ग्राम, सोंठ ३५ ग्राम, चित्रक ४६·८ ग्राम और सूरण ७० ग्राम इन सब पाँचों चीजों का महीन चूर्ण करके १८७·२ ग्राम गुड़ में मिलाकर ११·७ ग्राम की गोलियाँ बनालें। दूध या जल के साथ खाने से दोनों तरह की बवासीर में फायदा होता है।

(७) जमीकन्द (सूरण) का घी में भुरता बना कर दही के साथ खाने से दोनों तरह की बवासीर आराम होती हैं।

(८) भिलावा, त्रिफला, निशोथ और चीता—इनको सम भाग में ले कर सबों के वजन से दूना नमक मिला दें। फिर नारियल के खप्पर में भर कर कण्डे की आग में फूंक दें। नमक तैयार हो जायगा। यह नमक ५·८ ग्राम मठा या काँजी के साथ लेने से बवासीर में बहुत शीघ्र लाभ होता है।

(९) गेरू ५८·५ ग्राम को भृङ्गराज के रस में तीन भावना दें और टिकिया बना लें। फिर एक पाव कण्डे में रख कर फूंक दें। ४९० मि.ग्रा. की मात्रा में इसकी भस्म शहद के साथ चाटने से बवासीर से खून गिरना निश्चय बन्द हो जायगा। श्री गुरुजी का परीक्षित है ।

(१०) बवासीर में जलन, दर्द या खुजली हो, तो भाँग को जल के साथ पीसकर चक्राकार बनाकर थोड़ा गर्म करके गुदा पर बाँधना बहुत फायदेमन्द है। सुहागे के लावा को घी में मिलाकर लेप करना भी उत्तम है । गेंदा के पत्ते की लुगदी बांधना भी लाभकारी है ।

(११) लाल चन्दन, चिरायता, जवासा और सोंठ--इन चारों दवाओं का काढ़ा पीने से खूनी बवासीर ठीक होती है ।

(१२) ताकत की दवाओं में लिखा हुआ भिलावा खाना बवासीर में अत्यन्त लाभ पहुँचाता है ।

(१३) **बाहुशाल गुड़**--इन्द्रायण-मूल, नागरमोथा, जमालगोटे की जड़, हर्रें, निशोथ, कपूर कचरी, वायविडंग, गोखरू, चित्रक, सोंठ, और तेजबल इन ११ दवाओं का प्रत्येक ११·७ ग्राम, सूरण(जमीकन्द) १८७·२ ग्राम, विधारा ९३·६ ग्राम और भिलावा ९३·६ग्रा.--इन सब दवाओं को जौ-कुट कर ७·५कि. पानीमें पकाएँ। दो सेर पानी शेष रहने पर छानकर उस पानी में १·५ किलो पुराना गुड़ डाल कर लड्डुओं की जैसी चासनी बना लें । फिर चीता की छाल, निशोथ, दन्तीमूल और तेजबल--प्रत्येक २३·४ ग्राम, कालीमिर्च, सोंठ, पीपल, छोटी इलायची, आमला और दालचीनी प्रत्येक ७०·२ ग्राम--इन १० दवाओं का महीन चूर्ण करके मिला दें । बिल्कुल ठण्डा होने पर ४६६·५ ग्राम शहद और मिला दें । इसी का नाम 'बाहुशाल गुड़' है । ११·७ ग्राम सुबह-शाम बकरी के दूध या जल के साथ सेवन करें । इससे बवासीर, गुल्म, वातोदर, पेट की गैस,, प्रतिश्याय (जुकाम), पाण्डुरोग, आमवात, संग्रहणी, प्रमेह आदि नष्ट होकर शरीर बलवान हो जाता है । बवासीर रोग में वायु पेट में जमा हो जाता है । उसे अनुलोमन करने में बाहुशाल गुड़ प्रसिद्ध दवा है । शा० ध०

(१४) **सूरण मोदक**--जमीकन्द ९३·६ ग्राम, चित्रक ४६·८ ग्राम, सोंठ २३·४ ग्राम, काली मिर्च ११·७ ग्राम, शुद्ध भिलावा, पीपलामूल, वायविडंग, तालीस पत्र और पीपल-प्रत्येक २३·४ ग्राम, त्रिफला ७०·२ ग्राम, विधारा ९३·६ ग्राम, काली मुसली ४६·८ ग्राम और दालचीनी व छोटी इलायची के बीज ११·७ ग्राम--इन दवाओं का महीन चूर्ण करके १ किलो पुराने गुड़ में मिलाकर ११·७ ग्राम की गोलियां बना लें। इसका नाम 'वृ० सूरण मोदक' है। वैद्यक शास्त्र ने सूरण मोदक की बहुत तारीफ की है। यह खूनी और वादी दोनों तरह की बवासीर को नष्ट करके भूख बढ़ाता है। सचमुच ही मोदक काबिलेतारीफ है। भै० र०

(१५) **अभयारिष्ट**--उत्तम बड़ी हरड़ ५·८ किलो, मुनक्का २·९ किलो, वायविडंग ५८३ ग्राम, महुआ के फूल ५८३ ग्राम--इन सब को ५९·७ किलो जल में डालकर पकावें। जब १४·९ किलो बाकी रहे, तब छानकर उसमें गुड़ १४·९ किलो, गोखरू, निशोथ, धाय के फूल, इन्द्रायण की जड़, चव्य, सौंफ, सोंठ, दन्तीमूल, मोचरस--ये सब ११७ ग्राम लेकर कूट कर के मिला दें। फिर मिट्टी के भाँड़ (अमृतवान) में भरकर एक महीना रखा रहने दें। तैयार होने पर भर लें। मात्रा--१४·७ से २७·३ ग्राम तक; समभाग जल मिलाकर पीने को दें। इसका नाम 'अभयारिष्ट' है। यह सब तरह के बवासीर, उदर रोग, मल-मूत्र की कब्जियत को नष्ट करता तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

--भै० र०

(१६) **अर्शकुठार**-शुद्ध पारद ११·७ ग्राम, शुद्ध गन्धक २३·४ ग्राम, लौह भस्म ३५ ग्राम, अभ्रक भस्म ३५ ग्राम, बेलगिरी, चित्रकमूल की छाल, शुद्ध कलिहारी, कालीमिर्च, हरड़, दन्तीमूल, फूला हुआ सोहागा, जवाखार और सेंधा नमक--प्रत्येक ५८·५ ग्राम, गो-मूत्र ३७४·४ ग्राम, थूहर का दूध ३७४·४ ग्राम--इन सबको एकत्र करके मन्दाग्नि से पकाकर मटर के बराबर गोली बना लें। एक या दो गोली तक जल के साथ लेने से खूनी तथा वादी दोनों तरह की बवासीर अच्छी होती हैं।

(१७) **कांकायन गुटिका**--हरीतकी के फल का छिलका ५ भाग, काली मिर्च १ भाग, जीरा सफेद १ भाग, पिप्पली-पिप्पलीमूल-चव्य-चित्रक-शुण्ठी १-१

भाग, भिलावे के फूल ८ भाग, अण्डी के बीजों की मींगी १६ भाग, यवक्षार २ भाग सबको भिलावा फल को छोड़कर एवं भिलावा फल गुड़ मिलाते समय मिलावें, कूट-कपड़छान कर दो गुने गुड़ के साथ ९७२ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। यह कांकायन गुटिका उन अर्श के मस्सों को दूर करती है जो क्षार अग्नि और शस्त्र के द्वारा काट देने पर ठीक नहीं होते। ——यो० र०

पथ्यापथ्य—-बवासीर के रोगी को खान-पान पर अधिक ध्यान रखना चाहिए। बवासीर कटवाने पर भी जिन रोगियों का आहार-विहार अच्छा नहीं रहता, उनको फिर से बवासीर होते देखा गया है। पेट को साफ रखना जरूरी है; परन्तु उसके लिए जुलाब न लेना चाहिए। अन्न जब अच्छी तरह हजम हो जाता है, तब स्वतः ही दस्त साफ आने लगता है। मठा में लवण भास्कर चूर्ण मिलाकर पीना कब्जियत के लिए अच्छा है। रात को सोते समय ३ ग्राम इसबगोल की भूसी दूध के साथ लेना बहुत फायदेमन्द है। जमीकन्द, बथुआ, चौलाई, मूली, कच्चा पपीता आदि का साग खाना बहुत हितकर है। त्रिफला चूर्ण ५·८ से ११·७ ग्राम तक सोते समय गर्म दूध या गर्म पानी से लेने पर दस्त साफ हो जाता है। पाखाना जाने के बाद मध्यमांगुली की सहायता से गुदाचक्र को अच्छी तरह साफ कर देना चाहिए। मन्दाग्नि के आहार-विहार की तरह आचरण करना विधेय है। प्रतिदिन कुछ-न-कुछ व्यायाम करना चाहिए। हलका और पुष्टिकारक भोजन करना चाहिए। मसालेदार चटपटी चीजें न खानी चाहिए। कच्चे पपीते का साग और पका पपीता खाना तथा मूली में नमक लगाकर खाना बहुत गुणकारी है।

मन्दाग्नि (अजीर्ण)

मन्दाग्नि का अर्थ है परिपाक-शक्ति का वैलक्षण्य होना। जिन-जिन कारणों से खाया हुआ भोजन पाक होता है, उन-उन कारणों में गड़बड़ी पैदा हो जाती है, जिससे भोजन का अच्छा पाक नहीं होता। इसी का नाम 'मन्दाग्नि' है। भोजन से शरीर की वृद्धि होती है। यदि शरीर को उन पदार्थों की जगह जिनका कि काम-धन्धा करने से क्षय होता है, दूसरे खाद्य पदार्थ से पूर्ति न की जाय तो शरीर का क्षय होना निश्चित है। भोजन प्रतिदिन शारीरिक क्षय की पूर्ति

करता है, परन्तु जब मन्दाग्नि के कारण भोजन का पाक नहीं होता तब शरीर धीरे-धीरे क्षीण हो जाता है। इसका अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिए कि भोजन न करने से ही शरीर क्षीण हो जाता है। बल्कि चार-पाँच बार अच्छा स्वादिष्ट और बलकारक भोजन करने पर भी जब मन्दाग्नि के कारण भोजन का पाक नहीं होता, तब शरीर का क्षीण होना निश्चित है। आजकल मन्दाग्नि का रोग बहुत अधिक संख्या में फैला हुआ है। इसका खास कारण यही है कि लोगों ने प्राकृतिक सरल जीवन बिताना छोड़ दिया है। शहरों की गन्दी आब-हवा के साथ ही वर्त्तमान समय के लोगों को दिमागी काम भी बहुत करना पड़ता है। लोगों ने शारीरिक परिश्रम छोड़-सा दिया है अंग्रेजों की देखा-देखी आजकल के शिक्षित भारतवासी भी चार-पाँच बार भोजन करना जरूरी समझते हैं। भारतवासियों के लिए तो दो बार का भोजन काफी है। तीसरी बार, सुबह का जलपान भी किसी तरह ठीक माना जा सकता है। किन्तु चार-पाँच बार भोजन करना तो बीमारी को न्योता देना है। फिर, आजकल शहरों में विशुद्ध खाद्य पदार्थों का मिलना भी मुश्किल हो गया है। घी, तेल, मक्खन, दूध, दही आटा आदि सभी चीजों में मिलावट हो गई है। इससे भी मन्दाग्नि रोग की वृद्धि हुई है।

बुद्धिमान मनुष्य को यह समझना चाहिए कि उसका जीना सिर्फ चार-पाँच बार भोजन करने के लिए ही नहीं है, बल्कि जीवित रहने के लिए भोजन किया जाता है। यह भी समझना चाहिए कि भोजन के लिए जीवन नहीं है, बल्कि जीवन के लिए भोजन है। इस तरह की धारणा होने पर चटपटी, मसालेदार और स्वादिष्ट पकवानों की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जितनी भूख होती है, उतना भोजन खुद पेट माँग लेता है। भोजन को जबर्दस्ती पेट में उतारनेवाले मसालों की क्या जरूरत है? जो भोजन बिना किसी सहायता के अपने-आप पेट में चला जाय, वही सच्चा भोजन समझना चाहिए। साग, दाल, चटनी आदि में मसाले आदि तरह-तरह की चीजें इसीलिए तो डाली जाती हैं कि उनकी सहायता से अधिक-से-अधिक भोजन पेट में पहुँच जायँ। आवश्यकता से अधिक

भोजन पेट में जाते रहने पर कुछ समय बाद निश्चित ही मन्दाग्नि की बिमारी पैदा हो जायगी। खाली दिमागी काम करके ही जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिए। परमात्मा ने मनुष्य देह में सिर्फ दिमाग भर ही नहीं बनाया है और भी बहुत-से अंग बनाये हैं। उन सब अंगों से भी काम लेना चाहिए। शारीरिक परिश्रम न करके सिर्फ दिमागी काम करनेवालों को बहुत जल्द मन्दाग्नि का रोग हो जाता है।

मन्दाग्नि के साधारण लक्षण ये हैं--समय-समय पर दस्त का ठीक नहीं होना, कभी कब्जियत होना और कभी पतला दस्त होता, भूख का मारा जाना, पेट फूलना, पेट में वायु का संचय होना, पेट-दर्द, पेट का भारीपन, डकारें आना, जी मिचलाना, छाती में जलन, कै, मुख से पानी का उठना, आलस्य भाव, प्रश्वास में दुर्गन्ध, छाती का धड़कना, सिर-दर्द, अच्छी तरह नींद न आना आदि। मन्दाग्नि का रोगी धीरे-धीरे कमजोर और रक्तहीन हो जाता है।

चिकित्सा--मन्दाग्नि को चिकित्सा करना बिल्कुल व्यर्थ है, यदि नियम-पालन न किये जाएँ। सम्भव है कि कोई औषध मन्दाग्नि को दूर कर दे, परन्तु कुछ देर के लिए ही। इसलिए मन्दाग्नि के रोगी को औषध की अपेक्षा नियमों पर अधिक ध्यान देना चाहिए। नियमों का पालन करते हुए यदि साथ-साथ दवा का सेवन भी किया जाय, तो रोग में जल्दी आराम हो जायगा। सग्रहणी अधिकार में लिखा नं० १ नुस्खा मन्दाग्नि की उत्तम औषध है। संग्रहणी में लिखी पर्पटी भी मन्दाग्नि में बहुत फायदेमन्द है; इसलिए लौह पर्पटी आदि मन्दाग्नि में भी देना उचित है।

(१) **लवणभास्कर चूर्ण**--बिट्नमक, सेंधा नमक, धनिया, पीपल, पीपलामूल, स्याहजीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र और अम्लबेत--ये १० दवाएं प्रत्येक २३·२ ग्राम, समुद्र नमक ९३ ग्राम, संचर नमक ५८·३ ग्राम कालीमिर्च, जीरा और सोंठ ११·६६ ग्राम, अनारदाना ४६ ग्राम, दालचीनी और बड़ी इलायची ६-६ ग्राम--इन १८ दवाओं का महीन चूर्ण करके नीबू के रस की भावना दें। इसीका नाम 'लवण भास्कर चूर्ण' है। यह खाने में बहुत स्वादिष्ट

और अत्यन्त लाभकारी चूर्ण है। रोज भोजन के बाद यदि इसका सेवन किया जाय, तो किसी तरह का रोग उत्पन्न नहीं होगा। एक ग्राम से तीन ग्राम तक इसकी खुराक है। जरूरत के अनुसार ११ ग्राम तक दिया जा सकता है। मठा में मिलाकर इसका सेवन सर्वोत्तम है। काँजी, दही का पानी या शरबत के साथ भी सेवन किया जा सकता है। रात को सोते समय गर्म पानी में लिया जाय तो सुबह पाखाना साफ हो जाता है। यदि सम भाग पंचसकार चूर्ण मिलाकर रोगी को दिया जाय, तो दो-तीन दस्त खुलासा हो जाते हैं। यह मन्दाग्नि और संग्रहणी की बहुत अच्छी दवा है। प्राय: सभी लोग इसके गुणों को जानते हैं।

--शा० ध०

(२) **हिंग्वष्टक चूर्ण**--सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सेंधा नमक, स्याह जीरा, सफेद जीरा, अजमोद (अअवायन)--इन सात दवाओं को समभाग लेकर महीन चूर्ण करें। बाद में घी में भुनी हुई हींग आठवाँ भाग और मिला दें। इसीका नाम 'हिंग्वष्टक चूर्ण' है। इसकी मात्रा ३ ग्राम की है। भोजन के समय पहले ग्रास में इस चूर्ण को घी में मिलाकर खाएँ। तदुपरान्त भोजन करें। इससे वायु-प्रधान मन्दाग्नि अच्छी हो जाती है। पेट में वायु का जमा होना, डकार आना, भूख न लगना, आदि की यही उत्तम दवा है।

(३) **संजीवनी बटी**--वायविडंग, सोंठ, पीपल, हर्रे, आमला, बहेड़ा, वच, गिलोय, शुद्ध भिलावा और शुद्ध विष--इन १० दवाओं का महीन चूर्ण करके तीन दिन तक गो-मूत्र दे-देकर खूब घोटें। फिर १२१·५ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। यही 'संजीवनीबटी' है।

—शा० ध०

अनुपान--अदरख का रस एक गोली की खुराक अजीर्ण और वायुगोला के लिए, २ गोलियों की खुराक हैजा के लिए, ३ गोलियों की खुराक सांप के विष के लिए और ४ गोलियाँ एक साथ सन्निपात में देनी चाहिए ये गोलियाँ हर गृहस्थ के घर मे रहनी चाहिए। बहुत काम की दवा है। --शा० ध०

(४) **गन्धक बटी**--शुद्ध गन्धक २३·२ ग्राम, सेंधा नमक २३ तोला और सोंठ ४६·४ ग्राम इन तीनों चीजों का महीन चूर्ण करके तीन दिन तक नीबू के रस में अच्छी तरह घोटें। फिर चने के बराबर गोलियाँ बनालें। इसी का नाम 'गन्धक

बटी' है और इसी को 'राज बटी' भी कहते हैं। रोज दिन-रात में १-१ करके ४-५ गोलियाँ खायँ। अनुपान की जरूरत नहीं है। खाने में यह बहुत स्वादिष्ट होती है।
--यो० चि०

(५) शंख बटी--२३.३ ग्राम नीबू के रस में इमली का क्षार ४६.४ ग्राम और पाँचों नमक ४६.४ ग्राम डाल कर रखें। फिर उत्तम शंख के टुकड़े ४६.४ ग्राम को खूब गर्म करके उसमें डालें। इस तरह चार-पाँच-बार गर्म करके डालने से शंख गल जायगा। इस शंख के टुकड़ों का महीन चूर्ण कर लें। फिर भुनी हुई हींग, सोंठ, और कालीमिर्च और पीपल सब मिलाकर ४६.४ ग्राम, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और शुद्ध विष--प्रत्येक चार-चार ग्राम उसमें मिला दें।

बनाने की विधि--पहले पारा और गन्धक की कज्जली करें, बाद में सब चीजें मिला कर इमली के क्षार और पाँचों नमक मिले हुए नीबू के रस में (जिसमें कि शंख भी डाला गया है) खूब घोटें। यदि वह रस कम हो जाय, तो और नीबू का रस मिला दें। फिर चने के बराबर (१२१.५ मि. ग्रा) की गोलियां बना लें। इसी का नाम 'शंख बटी' है। यह संग्रहणी, अजीर्ण, पेट-दर्द, वायुशूल और पक्ति-शूल में बहुत फायदेमन्द है। ताजा या गरम जल के साथ, भोजन के बाद शंख बटी खानी चाहिए।
--भै० र०

(६) अग्निवर्धक बटी--काला नमक, नौसादर, कालीमिर्च, और आक के फूलों की लौंग (आक के फूलों के भीतर जो चतुष्कोणाकार होता है उसीको आक के फूलों की लौंग कहते हैं)--इन चारों को समभाग लेकर जल के संयोग से चने के बराबर की गोलियाँ बनालें। भोजन के बाद दो से तीन गोली तक खाएँ। यह मन्दाग्नि में बहुत अच्छा फायदा करती है। --सि०भै०म०मा०

(७) लहसुन बटी--(रसोनादि बटी)--छिलका निकाला हुआ लहसुन २३.२ ग्राम, स्याह जीरा, सफेद जीरा, शुद्ध गन्धक, सेंधा नमक सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, घी में भुनी हुई हींग--प्रत्येक ११.६६ ग्राम--इन सबको तीन दिन तक नीबू के रस में घोटकर ३६४ मि. ग्रा. की गोली बना लें। इसके खाने से मन्दाग्नि, उदर-वायु, पेट-दर्द आदि शीघ्र अच्छे होते हैं। यह उत्तम दीपन, पाचन और वायु-नाशक है।
—वै० जी०

चित्रकादि बटी--जम्भीर बटी (सि० स०) में देखें।

(८) **अग्नितुण्डी बटी**--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष, अजमोद, हरड़ बहेड़ा, आमला, सज्जीखार, सेंधा नमक, काला नमक, चीते की जड़ की छाल, जीरा, वायविडंग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और समुद्र लवण--इन १८ दवाओं को समभाग ले और इन १८ दवाओं के बराबर ही शुद्ध कुचले का चूर्ण डालें। पारा और गन्धक को पहले घोंटकर फिर सब दवाइयाँ मिला दें। फिर जम्बीरी नीबू के रस में घोंटकर २४३ मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। ये गोलियाँ मन्दाग्नि में बहुत फायदा करती हैं। भोजन के बाद एक गोली जल के साथ खानी चाहिए। इसके सेवन से भूख लगती हैं, खाया हुआ अन्न अच्छी तरह पच जाता है, पेट की वायु शान्त होती है और बल एवं वीर्य की वृद्धी होती है। कुचला जठराग्नि बढाने की बहुत ही उत्तम औषधि है। इसके सयोग से बनी हुई ये गोलियाँ बहुत अच्छी हैं। मन्दाग्नि के लिए शायद ही इससे उत्तम कोई दूसरी दवा हो। --शा० ध०

(९) **अग्निमुख चूर्ण**—भुनी हुई हींग १ भाग, वच २ भाग, पीपल ३ भाग, सोंठ ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हर्रे ६ भाग, चित्रकमूल की छाल ७ भाग और कूट ८ भाग---इनका महीन चूर्ण करके शराब, दही का जल या गर्म पानी के साथ ३ ग्राम से ६ ग्राम तक सेवन करें। इससे मन्दाग्नि और अजीर्ण में बहुत लाभ होता है। --यो० र०

(१०) **रामबाण रस**--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध बच्छनाग, लोंग--प्रत्येक ११·६६ ग्राम, कालीमिर्च २३·२ ग्राम, जायफल ५·८ ग्राम –इनका महीन चूर्ण करके इमली के पके फलों के रस में घोंटकर मूंग के बराबर गोली बना लें। यदि इसमें बिजौरा, सन्तरा, अनार, आक के फूल और अदरख के रस की एक-एक भावना और दे दी जाय, तो यह औषध अधिक प्रभावशाली बन जाती है। यह उत्तम दीपन, पाचन और ग्राही है। मन्दाग्नि के कारण पतले दस्त हों, तो विशेष लाभदायक है। —भै० र०

(११) **अग्निकुमार रस**--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, आग पर फुलाया हुआ सुहागा–प्रत्येक ११·६६ ग्राम, शुद्ध बच्छनाग ३५ ग्राम, कौड़ी और शंख भस्म

२३·२ ग्राम, कालीमिर्च ९३ ग्राम--इन सबको नीबू के रस में तीन दिन तक घोटकर १२१·५ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। यह रस मन्दाग्नि, अजीर्ण और पेट-दर्द की उत्तम दवा है। अनुपान में नीबू का रस या तक्र देना चाहिए।

--भै० र०

(१२) **क्रव्याद रस**--शुद्ध पारा ४६·४ ग्राम शुद्ध गन्धक ९३ ग्राम, ताम्र भस्म और लौह भस्म २३·२ ग्राम--पहले पारा और गन्धक की कज्जली बना कर फिर ताम्र और लौह भस्म डालकर खूब महीन पीसना चाहिए। इसके बाद पर्पटी की तरह गलाकर एरण्ड के पत्तों पर पर्पटी बनाएँ और इस पर्पटी का चूर्ण बनाकर एक लोहे के पात्र में डालकर उसमे ५१·३ किलो जम्बीरी नीबू का रस और डाल दें। यदि पात्र कलई किया हो तो अधिक अच्छा है। इस रस को मन्द-मन्द आँच से जलावें। जब गाढ़ा हो जाय, तब इसमें पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ के क्वाथ से ५० भावना और अम्लबेत के क्वाथ से ५० भावना दें और घोंटकर सुखा लें। सूखने पर भुना हुआ सुहागा १८७ ग्राम, विड्नमक ९३ ग्राम, कालीमिर्च का चूर्ण १८७ ग्राम--इसमें मिलाकर चणकाम्ल (चना क्षार)--रस में सात भावना देकर सुखाएँ और शीशी में भर लें। अब यह क्रव्याद रस तैयार हो गया।

इसकी मात्रा २४३ मि.ग्रा है। इसे सेंधा नमक मिले हुए मठे के साथ भोजन के अन्त में लेना चाहिए। यह रस गरिष्ठ-से-गरिष्ठ भोजन को अधिक मात्रा में खा लेने पर भी ६ घण्टे में पचा देता है। इसके सेवन करने वाले को दूध, फल वगैरह अच्छी मात्रा में सेवन करना चाहिए। यह रस अग्निमांद्य के साथ-साथ और भी अनेक रोगों को दूर करता है। (इसकी मात्रा मूल पाठ में ३ ग्राम लिखी गई हैं, किन्तु आजकल २४३ मि. ग्रा. की खुराक काफी है।) --यो० र०

पथ्यापथ्य--संग्रहणी के रोगी की तरह मन्दाग्नि के रोगी को भी जलवायु का बदलना बहुत उत्तम है। भोजन हल्का और पुष्टिकारक होना चाहिए। दूध या दही का भोजन सर्वोत्तम है। अन्न बहुत कम या बिल्कुल न खाना चाहिए। ऋतु के शाक सिर्फ उबालकर और नमक मिलाकर खाना चाहिए। हरी पत्तियों का शाक बहुत अच्छा है। फलों का खाना भी बहुत अच्छा है। मौसम के

अनुसार जो भी फल मिले, उन सबको खाना अच्छा है। परन्तु फलों का ताजा होना जरूरी है। कच्चे या सड़े हुए फल भूलकर भी न खाना चाहिए। वे लाभ की जगह बहुत नुकसान करते हैं। फलों में भी सन्तरा, मौसम्बी का सेवन सर्वोत्तम है। कच्चा या पका पपीता भी बहुत फायदेमन्द है। तेल, खोआ (मावा), मसाला, अचार, मिर्चा, मिठाई, गुड़, शराब, गाँजा, भाँग, तम्बाखू आदि छोड़ देना चाहिए। घी डेढ़ तोला से ज्यादा न खाना चाहिए। मोटे आटे की रोटी और बिना माँड़ निकाले चावल का भात खाना हितकारी है। नीबू, अदरख, हरा पुदीना या धनिया खाना लाभकारी है। बीच-बीच में उपवास करके पाकस्थली को विश्राम देना भी जरूरी है। जो कुछ भी खाया जाय, खूब धीरे-धीरे अच्छी तरह चबाकर खाना चाहिए भोजन के समय पानी ज्यादा न पीना चाहिए। भोजन के घण्टा-आध घण्टा बाद जब प्यास लगे, तब ताजा जल पीना चाहिए। मन्दाग्नि के रोगी को खाने का लोभ बिल्कुल नहीं करना चाहिए। उसको स्मरण रखना चाहिए कि खाया हुआ पदार्थ शरीर के लिए तब उपयोगी होता है, जब वह अच्छी तरह पच जाता है। अगर खाया हुआ अन्न पचता नहीं है, तो वह भोजन नाना प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न कर देता है। इसलिए हमेशा भूख से कम खाना चाहिए। मन्दाग्नि के रोगी को दांतों की परीक्षा जरूर करा लेनी चाहिए। क्योंकि मन्दाग्नि वालों को प्रायः दन्त-रोग हो जाता है या दन्त-रोग होकर मन्दाग्नि हो जाती है।

हैजा (कालरा)

वैद्यक-शास्त्र के मतानुसार जो मनुष्य बिना देश-काल का विचार किये पशु की तरह अधिक भोजन करता है, उसको अजीर्ण होकर हैजा उत्पन्न होता है। प्रायः देखा जाता है कि हैजा का अधिक प्रकोप जब अधिक गर्मी पड़ती है, तभी होता है। और यह तो सुप्रसिद्ध बात है कि अधिक गर्मी पड़ने के कारण मामूली खाना भी अच्छी तरह हजम नहीं होता—अजीर्ण हो जाता है। मेरा बहुत बार का देखा हुआ है कि गर्मी के मौसम में विवाह आदि उत्सवों में अधिक खाने के कारण अजीर्ण होकर बहुत आदमियों को एक-साथ हैजा हो गया।

आजकल वैज्ञानिकों ने निश्चय किया है कि हैजा पैदा करने वाले एक खास जाति के कीड़े होते हैं। वे जहाँ उत्पन्न हो जाते हैं, वहीं हैजा फैलाते हैं। जहाँ हैजा उत्पन्न हुआ कि गाँव के गाँव साफ हो जाते हैं। हैजे के कीड़े जिस तालाब या कुएँ में उत्पन्न हो जाते हैं, उस कुएँ या तालाब का पानी पीने वाले सभी लोगों को हैजा हो जाता हैं परन्तु जो लोग उसी पानी को खूब औटाकर और छानकर पीते हैं, वे इस रोग से बच जाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि यह रोग संक्रामक जाति का है। अजीर्ण के कारण जो हैजा उत्पन्न होता है, वह उतना प्राणघातक नहीं होता, जितना कि कीटाणु-जनित हैजा। कीटाणु-जनित हैजा बहुत भयानक होता है। तीन-चार घण्टे में रोगी को मार देता है। हैजा, प्लेग आदि संक्रामक रोगों में रोग के अलावा मरने का कारण भय भी है। बहुत-से लोग तो बिना रोग हुए ही सिर्फ भय से मर जाते हैं।

लक्षण--हैजा अधिकतर दो तरह का देखने में आता है--**सामान्य** और **कठिन**। **सामान्य** हैजा को प्रबल अजीर्ण ही समझना चाहिए। जब किसी कारण से अत्यन्त अजीर्ण हो जाता है, तब हैजे की तरह कै और दस्त होने लगते हैं, तथा अन्यान्य लक्षण भी हैजे के जैसे ही प्रकट हो जाते हैं। फिर भी अजीर्ण से पैदा होने वाले हैजे में प्रायः मृत्यु नहीं होती। हैजे की सभी अवस्था प्रकट होकर भी आखिर रोगी बच जाता है। दोनों तरह के हैजा में पेशाब बन्द हो जाती है।

कीटाणु-जनित हैजा बहुत भयानक होता है। इसमें प्रायः ६ से १० घण्टे के भीतर रोगी की मृत्यु हो जाती है। कै और दस्त के लिए रोगी को जरा भी बल नहीं लगाना पड़ता। बिना इच्छा और तकलीफ के कै दस्त होते हैं। शरीर की गर्मी एकदम कम हो जाती है। दो-एक दस्त और कै होने से ही रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। इस प्रकार का हैजा प्रायः ढलती रात में होता है।

सामान्य हैजे में इससे विपरीत लक्षण होते हैं, अर्थात् बहुत कै-दस्त होने पर भी रोगी कमजोर नहीं होता, कै और दस्त होने के समय जोर लगाना पड़ता हैं। इसमें चावल के धोवन जैसा दस्त होता है और दस्त के साथ या दस्त जाने के बाद ही तुरन्त कै का होना दोनों तरह के हैजे में वर्तमान रहता है।

एक तीसरी किस्म का हैजा भी कभी-कभी देखने में आता है, जिसको आयुर्वेद में "अलसक" और डाक्टरी में Dry Cholera कहते हैं। साधारण बोलचाल में सूखा या बन्द हैजा कहा जाता है। इसमें कै और दस्त नहीं होते, परन्तु हैजा के और सब लक्षण वर्तमान रहते हैं। पेट में भयानक दर्द, पेशाब न होना, कमजोरी प्यास, हाथ-पैर में ऐंठन, पेट फूलना आदि लक्षण होते हैं। यह भी कठिन हैजे की तरह भयानक होता है।

दोनों तरह के हैजे में नीचे लिखी ५ अवस्थाएँ देखी जाती हैं—

(३) **आक्रमण-अवस्था**——मामूली पतले दस्तों के साथ सिर्फ कमजोरी मालूम होती है। कै भी मामूली होती है।

(२) **पूर्ण विकसित अवस्था**——पूर्ण वेग के साथ दस्त और कै, हाथ-पैरों में ऐंठन (वायटे), प्यास, बेचैनी और आँखों का भीतर धँसना।

(३) **शीतांग-अवस्था**——इस भयानक अवस्था में रोगी का शरीर बर्फ के समान ठण्डा हो जाता है, नाड़ी छूट जाती है, ललाट पर पसीना आता है, दस्त और प्यास की अधिकता के कारण कै ज्यादे होती है।

इस अवस्था में रोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है। परन्तु जब रोगी अच्छा होने को होता है, तब नीचे लिखी चौथी अवस्था देखी जाती है।

(४) **प्रतिक्रिया-अवस्था**——कुछ देर तक शान्त रह कर रोगी का शरीर गर्म होने लगता है। पेशाब की थैली में पेशाब जमा होने लगता है या पेशाब हो जाता है। धीरे-धीरे रोगी आरोग्य लाभ करता है।

(५) **परिणाम अवस्था**—अच्छी तरह आराम नहीं होने पर रोग फिर आक्रमण कर देता है। पेशाब का न होना, तन्द्रा, हिचकी, कै आदि उपद्रव फिर हो जाते हैं। कई रोगी इस अवस्था को भोग कर भी ठीक हो जाते हैं; परन्तु अधिकतर इस अवस्था में मर ही जाते हैं।

चिकित्सा——आजकल विद्वानों का मत है कि हैजा में कै और दस्तों के कारण शरीर का जलीय पदार्थ सब निकल जाता है। जल का अंश कम होने के कारण खून बहुत गाढ़ा हो जाता है——खून गाढ़ा होने के कारण शरीर में रक्त का चक्कर लगना कम हो जाता है——फलतः शीघ्र ही शरीर की गर्मी नष्ट होकर

रोगी प्राण-त्याग देता है। इसलिए हैजे की सर्वोत्तम चिकित्सा यही है कि गाढ़े खून को फिर से पतला किया जाय। हाथ की धमनी के द्वारा रक्त में लवण जल मिलाकर रक्त को पतला किया जाता है। परन्तु यह काम कुछ सरल नहीं है। इसलिए कठिन हैजा के लक्षण प्रकट होते ही रोगी को पास के अस्पताल में जल्दी भेज देना चाहिए, जिससे समय पर उचित चिकित्सा हो सके।

हैजा के लिए नीचे लिखी दवाइयां बहुत अच्छी हैं। हमारी बहुत बार की आजमाइश की हुई हैं। हैजे के रोगी को कुछ घण्टे के अन्दर से डूस देकर आँत को धो देना बहुत लाभकारी है। अफीम आदि शुरू में देना उचित नहीं है। कै और दस्तों के द्वारा हैजा का जहर शरीर से निकल जाय, तब स्तम्भक दवा देनी चाहिए; क्योंकि रोग का जहर शरीर में रहना उचित नहीं। फिर जब तक जहर बाहर निकल नहीं जाता, तब तक वह बन्द भी नहीं होता, बन्द हैजा में कै और दस्त लगनेवाली दवा देनी चाहिए। इसके लिए इच्छाभेदी रस का प्रयोग अच्छा है। २३३ ग्राम गर्म जल में २९ ग्राम नमक डालकर पिला देने से भी कै और दस्त होकर रोग शान्त हो जाता है। नीचे लिखी दवाइयाँ हैजा में बहुत अच्छी साबित हुई हैं।

(१) **अर्क कपूर**--असली रेक्टीफाइड स्पिरिट (Rectified Spirit) ४४८ मि. लि. में ११२ मि. लि. कपूर डाल दें। यदि २८ मि. लि. फूल पिपरमिण्ट भी डाल दें, तो बहुत उत्तम रहे। कुछ समय में ही कपूर तैयार हो जायगा। बाजार में जितने अर्क कपूर बिकते हैं, वे सब इसी विधि से तैयार किये जाते हैं, परन्तु धूर्त्त लोग इसमें पानी और मिला देते हैं, जिससे अर्क कपूर पूरा फायदा नहीं करता। असली अर्क कपूर तुरत जल जायगा, परन्तु पानी मिला हुआ अर्क कपूर नहीं जलेगा। यह हैजा की अच्छी दवा है। ५ से २० बूंद तक को खुराक चीनी में मिला कर आवश्यकतानुसार ५-५ मिनट से लेकर २ घण्टे के अन्तर से दिया जा सकता है। अर्क कपूर सेवन करके तुरत जल न पीना चाहिए। इससे हैजा, गर्मी के दस्त, कै, पेट का दर्द आदि बहुत जल्दी अच्छे होते हैं।

(२) **अमृत धारा**--कपूर, फूल पिपरमिण्ट और अजवाइन का सत्व--ये तीनों चीजें समभाग लेकर शीशी में डालकर मुंह बन्द कर दें। थोड़ी देर

में अर्क तैयार हो जायगा। इसको ५ से १० बूंद तक चीनी या बताशे के साथ खिलाएँ। हैजे की यह उत्तम दवा है। कै, दस्त, पेट-दर्द, जी मिचलाना, बदहजमी आदि बहुत जल्द अच्छे होते हैं। यह खाने और लगाने दोनों तरह के काम में आता है।

(३) लहसुन, जीरा, सेंधा नमक, शुद्ध गन्धक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल और भुनी हुई हींग—इन आठ दवाओं को सम भाग लेकर नीबू के रस में चने के बराबर गोलियाँ बना लें। रोग के अनुसार एक बार में २ से ५ गोली तक ताजे जल के साथ खिलाएँ। यह गोली हैजा में फायदा करती है।

(४) शुद्ध कुचला, भुनी हुई हींग और फूल नौसादर--तीन दवाओं को जल के साथ घोंटकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें और हैजा में जल के साथ खिलाएँ।

(५) प्याज का रस २३·२ ग्राम से ७० ग्राम तक पिलाने से हैजा में बहुत अच्छा फायदा होता है।

(६) अपामार्ग (चिरचिरी) की जड़ को जल के साथ घोंटकर पिलाने से हैजा शान्त हो जाता है।

(७) पाँच लाल मिर्च को जल के साथ खूब महीन पीसकर ७ बताशे मिलाकर पिलाने से हैजा में फायदा होता है।

(८) अगर अजीर्ण के कारण हैजा हो गया हो, तो एरंड के तेल २९ ग्राम में जरासा सौंफ का अर्क मिलाकर रोगी को पिला दें। इससे दस्त साफ होकर शीघ्र फायदा होगा। आजकल दारु हल्दी का काढ़ा बहुत लाभकारी माना जा रहा है। आधुनिक विद्वानों का मत है कि दारुहल्दी से हैजे के कीड़े मर जाते हैं।

(९) अजीर्णकण्टक रस--इसकी अच्छी दवाई है।

हैजा के उपद्रवों की चिकित्सा

प्यास--पुराने पीपल के वृक्ष के सूखे छिलके को जलाएँ। जब अंगार हो जाय तब पानी में डालें। थोड़ी देर बाद धीरे-धीरे बगैर हिलाये इस पानी को मिट्टी के दूसरे बर्तन में छानकर रख दें। हैजे की प्यास या और किसी तरह की उत्पन्न हुई प्यास के लिए यह पानी अमृत की तरह गुण करता है और इससे

सब तरह के वमन में भी फायदा होता है। पानी को सावधानी से छानें, ताकि राख न जाने पावे। अथवा १०-१५ लौंग को पानी के साथ अच्छी तरह पीस कर १·८७ किलो पानी में मिलाकर औटाएँ। अच्छी तरह औंट जाने पर मिट्टी के नये बर्तन में रख दे, ताकि खूब ठण्डा हो जाय। हैजा या अन्य रोग की तृष्णा में यह जल बहुत फायदा करता है। सौंफ का अर्क, पुदीने का अर्क, गुलाब का अर्क या केवड़े का अर्क-- इन चारों में से कोई भी अर्क जल मिला कर देने से प्यास में शान्ति मिलती है। बर्फ डालकर ठण्डा किया हुआ जल भी प्यास के लिए उत्तम है। खाली बर्फ के टुकड़े मुख में रखने से प्यास में शान्ति आती है। नीबू का रस पानी में मिला कर एक-एक चम्मच थोड़ी-थोड़ी देर से दें, इससे भी प्यास शान्त होगी। ध्यान रहे कि रोगी को दिया जानेवाला पानी खूब औंटा कर ठण्डा किया हो।

ऐंठन--हाथ-पैरों की ऐंठन को दूर करने के लिए अर्क कपूर की मालिश करनी चाहिए। तेल में कपूर मिलाकर मालिश करना भी उत्तम है। गर्म पानी को बोतल में भर कर सेकना भी लाभदायक है।

शीताङ्ग होने पर--रोगी को हाथ-पैर में सोंठ के चूर्ण की मालिश करनी चाहिए तथा मकरध्वज, कस्तूरी और कपूर मिलाकर शहद के साथ चटाना चाहिए।

पेशाब बन्द होने पर--नाभी के नीचे पेशाब की थैली में पेशाब जमा है या नहीं, प्रथम इस बात की परीक्षा करनी चाहिए। यदि पेशाब जमा हो, तो सलाई द्वारा पेशाब निकाल देना चाहिए। दवा के लिए मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात-प्रकरण देखना चाहिए।

पथ्यापथ्य--हैजे के रोगी को रोग-काल में कुछ भी खिलाना निषिद्ध है। रोग की अवस्था में तो पानी का बर्फ या जल के सिवा कुछ देना ही न चाहिए। रोग शान्त होने पर भी नीबू और मिश्री का शर्बत, फलों का रस, दूध या दही की बर्फ मिली लस्सी, मठा बार्ली का पानी, साबूदाना आदि पेय प्रधान भोजन होना चाहिए। भात रोटी आदि तो कुछ दिन ठहर कर देना उचित है। नीबू

का रस देकर तैयार की गई पुदीना की चटनी भोजन के साथ खाना हितकारी है।

हैजा से बचने के उपाय

एक कहावत है कि इलाज की अपेक्षा रोगों को उत्पन्न न होने देना अधिक बुद्धिमानी है। वैद्यक-शास्त्र में हैजा को उत्पन्न करने के लिए मनुष्य को ही दोषी ठहराया गया है। इस तरह तो प्रायः सभी रोग मनुष्य की भूल के ही परिणाम हैं, परन्तु हैजा की भूल भयानक है। सावधान आदमी निश्चय ही हैजा से बच सकता है।

जहाँ बहुत अधिक गर्मी पड़ने लगी, वर्षा न हुई या गन्दगी अधिक होने लगी अथवा अजीर्णकारक भोजन बराबर होने लगा, वहाँ समझना चाहिए कि हैजा फैलने वाला ही है। हैजा शुरू होते ही लोगों को उससे बचने के उपाय में लग जाना चाहिए। डरपोक प्रकृति वाले आदमी को वह स्थान छोड़ देना चाहिए। हैजे को उत्पन्न करने वाले जो कीड़े कहे गये हैं, वे भी साहाय्य सामग्री बिना कुछ नुकसान नहीं पहुँचा सकते। कच्चे व सड़े फलों को खाना सड़ा व बासी भोजन, बाजार की मिठाई, दूषित वायु, मैले या खराब सड़े पानी का पीना, मादक चीजों का सेवन, रात्रि-जागरण ऋतु का परिवर्तन आदि इसके सहायक कारण हैं। बुद्धिमान आदमी को ऊपर लिखे कारणों से बचना एवं लोगों को बचने के लिए कहना चाहिए। भय या चिन्ता न करके भगवान् पर अटल विश्वास रखना चाहिए। मन को सदा प्रसन्न रखें। सुगन्धित चीजों का व्यवहार करें। कपूर सूंघते रहना बहुत उत्तम है। उत्तम धूप से घर की वायु को शुद्ध कर देना चाहिए। उपवास या व्रत न करना चाहिए। अधिक परिश्रम करने की तरह निकम्मा रहना भी खतरे से खाली नहीं है। दस्तावर दवा न लें। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात जल की है। हैजे के दिनों में भूलकर भी कच्चा पानी न पीना चाहिए। पानी खूब अच्छी तरह औटाएँ और उसी औटते हुए पानी से बर्तन को धोकर तब उसमें अच्छी तरह ढँक कर पीने का पानी रक्खें। रसोई बनाने के लिए भी उसी पानी को काम में लाएँ। परमेंगनेट ऑफ पोटाश उत्तम कृमिघ्न औषध है। २९ ग्राम एक कुएँ में डालने से पानी

शुद्ध हो जाता है। बिन बुझी कलई (पत्थर का चूना) १८·६६ किलो महीन पीसकर डालने से या २·३४ किलो फिटकरी का चूर्ण डालने से भी कुएँ का जल शुद्ध हो जाता है।

रोगी के मल-मूत्र और कै को गड्ढा खोद कर डाल दें या फिनाइल मिलाकर एक तरफ डालें। इसी तरह रोगी के कपड़ों से भी बचें। मकान में जो जगहें नीची, गीली या दुर्गन्धपूर्ण हों, उन सब जगहों में कारबोलिक एसिड या राख डाल दें। यदि माता को हैजा हो गया हो, तो उसका दूध बच्चे को न पीने दें। भोजन के साथ पुदीना की चटनी या प्याज खाएँ। भोजन हल्का और ताजा खाएँ। अजीर्ण न हो जाय इस बात पर पूरा ध्यान रक्खें। अर्क कपूर की दो-तीन बूंद रोज सुबह खाएँ और घर से खाली पेट बाहर न जाना चाहिए। कुछ खाकर ही हमेशा रोगी के यहाँ जाना चाहिए। इस तरह सावधान रहने से हैजा होने का भय बिलकुल नहीं रहता।

कृमिरोग

हमारा देश उष्ण कटिबन्ध में है। उष्ण प्रदेश के निवासियों के पेट में कीड़े या कृमि प्राय: पड़ जाते हैं इस कारण हमारे यहाँ भी उन लोगों में जो स्वास्थ्य के नियमों से शुद्ध जल और शुद्ध पेय की महत्ता से अनभिज्ञ हैं पेट के कृमियों के शिकार हो जाते हैं। ये कृमि कई प्रकार के होते हैं जो मनुष्य के मल में बराबर निकलते रहते हैं और उन्हें आसानी से देखा जाता है। कुछ कीड़ों को देख पाना कठिन भी होता है। इनके अण्डे या सुप्तरूप (सिस्ट) का ज्ञान सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र की सहायता से आजकल आसानी से कर लिया जाता है। आयुर्वेद में भी कृमियों का बहुत वर्णन मिलता है। परन्तु आधुनिक वर्णन बहुत खोजपूर्ण और विशाल है। कृमि होने पर निम्नलिखित लक्षण प्राय: मिलते हैं :--

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः।
भक्तद्वेषातिसारश्च संजातकृमिलक्षणम् ॥

अर्थात् ज्वर या हरारत का होना, शरीर का पीला पड़ जाना, पेट में दर्द, दिल में धक्-धक् होना, चक्कर आना, खाना अच्छा न लगना तथा यदा-कदा दस्त हो जाना।

उदर में पाये जाने वाले कृमियों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

१--**सूत्रकृमि**--सूत जैसे छोटे-छोटे ये कीड़े दल बाँधकर मलद्वार के पास निवास करते हैं। कभी-कभी मूत्रनली या योनि के पास भी पहुँच जाते हैं। वहाँ पहुँच कर खुजली तथा जलन पैदा कर देते हैं। ये छोटे-छोटे कीड़े (चुन्ने) बच्चों को बहुत होते हैं और बच्चों को तकलीफ भी बहुत देते हैं। गुड़ या चीनी का अधिक खाना इस रोग का प्रधान कारण है। इनका प्रधान लक्षण यह है कि नींद में सोते-सोते दाँत चबाना, नाक के अग्र भाग और गुदा-द्वार को बार-बार खुजलाना, साँस के साथ दुर्गन्ध आना, हाजमा की खराबी, कै, पतले दस्त, बुखार, शरीर में खून कम हो जाना आदि। ये छोटे-छोटे कृमि बड़ी उम्र वालों को भी होते हैं, परन्तु उनको कुछ नुकसान नहीं पहुँचा सकते।

२--**गण्डूपद कृमि**--केंचुए जैसा लम्बा और पतला कीड़ा छोटी आँतों में रहता है। कभी-कभी पाकस्थली की राह से चढ़कर मुंह से निकल जाता है। पेट में दर्द, नींद में चौंकना, नाक और गुदा में खुजली, पेट फूलना, बेहोशी, कभी भूख और कभी अरुचि, कमजोरी, शरीर का जीर्ण होना, मुंह में पानी आना, कै आदि इसके लक्षण हैं। इस कीड़े की लम्बाई ४ से १२ इंच तक की होती है।

३--**स्फीत कृमि**--फीते जैसा लम्बा कीड़ा होता है। इसकी लम्बाई ३१ से ६२ मि. मि. तक की होती है। यह मल के साथ गिर जाता है। यह आकार में चिपटा, गांठदार और रंग में सफेद होता है। इसमें भी दूसरे प्रकार के कृमि जैसे लक्षण प्रकट होते हैं।

सूत्र कृमि नर (२-५ मिमी) मादा (८-१३ मिमी) लम्बे सूत जैसे होते हैं। गण्डूपद कृमि (२०-३५ मिमी) भी नर और मादा दो प्रकार के होते हैं। स्फीतकृमि मांस खाने वालों को होता है गोमांस, शूकरमांस और मत्स्य के कारण ये होते हैं इसी कारण विभिन्न धर्मों में इसका सेवन निषिद्ध माना जाता है। स्फीत कृमि कई-कई मीटर लम्बे होते हैं।

अंकुशमुख कृमि--या हुकवर्म एक अन्य कृमि है जो छोटी आंत में चिपक जाता है और मानवरक्त पीता रहता है जिसके कारण इस कृमि रोग से पीड़ित

रोगी पीला पड़ जाता है और उसे रक्तक्षय हो जाता है। रक्त में लोहे की कमी हो जाती है। मल के साथ इसके अण्डे बाहर आते हैं उनसे झिल्लियां निकल कर बालकों या मनुष्यों के पैरों के फटे भागों से त्वचा को फाड़ कर शरीर में घुस जाते हैं वहाँ से ऊतकों (टिश्यूज) में होकर छोटी आँत में पहुँच कर पूर्ण कृमि बन जाते और चिपक कर खून पीते हैं। जिन क्षेत्रों में यह रोग हो वहाँ नंगे पैर मलत्याग के लिए जाने से लोगों को वरजना चाहिए। यत्र-तत्र टट्टी भी नहीं करने देना चाहिए।

उपरोक्त कृमि पैदा होने के कारण--बराबर कब्जियत, अधिकतर मिठाई खाना, मन्दाग्नि, कच्चे और सड़े फलों का खाना, दूषित मांस का खाना आदि। बालकों का कृमि-रोग बहुत-से रोगों का कारण होता है तथा बहुत-से रोगों के साथ पाया भी जाता है।

चिकित्सा--कृमि रोगवाले रोगी को मीठा दलिया खिलाकर सुबह मामूली जुलाब देना चाहिए। कृमि रोग का पेट खूब साफ रखना चाहिए। एनिमा (पिचकारी) से पेट साफ करना बहुत लाभकारी है; क्योंकि आँतों में मल-का जमा होना ही इस रोग की उत्पत्ति का प्रधान कारण है।

नीचे लिखी दवाओं की खुराक पूरी उम्र वाले जवान आदमी के लिए है। बच्चों को कृमि-रोग अधिक होता है। इसलिए आगे लिखी दवाइयाँ बच्चों को उम्र के लिहाज से दी जानी चाहिए बच्चे को दवा का चौथा भाग या उससे भी कम भाग देना चाहिए। फायदा न हो तो दवा की खुराक धीरे-धीरे बढ़ा देनी चाहिए। बच्चों के कीड़ों के लिए सबसे अच्छी एक जड़ी कश्मीर में पैदा होती है जिसको वहां के निवासी 'बुंइबूटी' कहते हैं, यह जड़ी सैकड़ों मन की तादाद में विलायत जाती है और विलायत से उसका सत्त्व बनकर आता है जिसको "सैण्टोनीन" (Santonine) कहते हैं। अब भारत में भी तैयार होने लगा है। इसकी दो ग्रेन (१२१५० मि. लि.) की मात्रा दस्तावर दवा के साथ मिलाकर देने से सब तरह के कीड़े बाहर आ जाते हैं। यह दवा विषैली होती है, इसलिए पेट में न रहनी चाहिए। दवा खाने के तीन-चार घण्टा बाद जुलाब दे देना चाहिए, जिससे कीड़े भी बाहर हो जायँ और दवा भी। दवा के प्रभाव से

मरे हुए कीड़े भी जुलाब से बाहर हो जाते हैं। सेंटोनीन के कारण कीड़े पेट में उथल-पुथल कर भयंकर स्थिति बना देते हैं, इसलिए इसके स्थान पर पिपरेजीन साइट्रेट २८ मि. लि. की एक मात्रा पिलाते हैं।

(१) सुबह उठते ही २३.२ ग्राम गुड़ खाकर १५ मिनट आराम करें। इससे पेट में सब कीड़े एक जगह जमा हो जायेंगे। फिर १ ग्राम खुरासानी अजवाइन ठंडे पानी के साथ खाएँ। इससे सब कीड़े गुदा द्वारा बाहर निकल जायेंगे और पेट के छोटे-छोटे कीड़े एकदम नष्ट हो जायँगे।

(२) २३.२ से ३५ ग्राम तक गुड़ खाकर १५ मिनट विश्राम करें। बाद में कबीला या वायविडंग का चूर्ण गर्म जल के साथ खाएँ। दोनों एक साथ मिलाकर भी खा सकते हैं। मात्रा ३ ग्राम से ११.६६ ग्राम तक। इससे पेट के कीड़े मर जायँगे। कबीला और वायविडंग पेट के कीड़ों की परीक्षित दवा है।

(३) प्याज का रस पिलाने से बच्चों के कीड़े (चुन्ने) मर जाते हैं।

(४) पलाश (ढाक) बीज का चूर्ण कृमि रोग में बहुत लाभ करता है। मात्रा ३ से ६ ग्राम। जामनगर में पलाश बीज के घनसत्व की गोलियाँ गण्डूपद कृमि निकालने की अचूक दवा मानी गई है।

(५) बकायन और नीम की जड़ की छाल को जल के साथ पीसकर समूचे पेट पर लेप कर दे। इससे पेट के कीड़े दस्त के साथ निकल जायेंगे। बकायन का बहुत ही आश्चर्यपूर्ण प्रभाव बताया गया है।

(६) **कृमिघातनी बटिका**--शुद्ध पारा ११.६६ ग्राम शुद्ध गन्धक २३.२ ग्राम अजवाइन ३५ ग्राम, वायविडंग ४६.४ ग्राम,पलाश के बीज ५८.३२ ग्राम और शुद्ध कुचला ७० ग्राम। ये सब द्रव्य शहद में मिलाकर १२१.५०मि.ग्राम की गोलियाँ बना ले। गोली खाकर प्यास लगने से नागरमोथा या मूषापर्णी का काढ़ा चीनी मिलाकर पीएँ। इससे बहुत जल्द उदरस्थ कृमि नष्ट हो जायँगे। --भै० र०

(७) **कृमिकुठार रस**--इन्द्रजौ, त्रायमाणा, अजमोद, वायविडंग, शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वच्छनाग, नागकेशर--प्रत्येक ११.६६ ग्राम, कपूर ९३ ग्राम, पलास-बीज के चूर्ण १७५ ग्राम—इन सबके चूर्ण में एक-एक भावना जलभंगरा, मूषा-

कर्णी और ब्राह्मी-रस का देकर १२१-५० मि. ग्रा रत्ती की गोलियाँ बना लें। इसे सत्यानाशी की जड़ के काढ़े के साथ या शहद से दें। इससे सब तरह के पेट के कीड़े (कृमि) नष्ट हो जाते हैं। यह खासकर बालकों के कृमि-रोग में विशेष लाभदायक है।

--र० रा० सु०

(८) **कृमिमुद्गर रस**--शुद्ध पारद १, शुद्ध गन्धक २, अजमोदा, ३, विडंग ४, शुद्ध विषमुष्टि (कुचला) ५, पलाशबीज ६ भाग कूट कपड़ छान कर १२१-५०मि.ग्रा. की मात्रा में मधु से लेने से तीन रात्रियों में ही समस्त कृमि रोगों को नष्ट करता और अग्नि दीप्त करता है। इसके ऊपर मोथा का क्वाथ पीना चाहिए। यह न केवल कृमिनाशक है अपितु कृमिजन्य विविध रोगों और रोग-लक्षणों को भी नष्ट करता है।

--भै० र०

पथ्यापथ्य--कृमि-रोग अधिकतर बालकों को तकलीफ देता है। अत: उनको ही कृमि-रोग से बचाने का प्रबन्ध करना चाहिए; अनुभव से कहा जा सकता है कि ज्यादा मीठा (मिठाई या चीनी) खाने के कारण बच्चों के पेट में कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। बालकों के पेट में कीड़े होने पर मीठी वस्तु खिलाना एकदम बन्द कर देना चाहिए। अजीर्ण के कारण भी कीड़े पैदा होते हैं। इसलिए बच्चों का पेट साफ रखना भी जरूरी है। बड़ी हरड़ को जल के साथ घिसकर और जरा-सा सुहागे का लावा मिलाकर देने से पेट साफ हो जाता है, एवं अजीर्ण भी नष्ट होता है। रुग्ण बच्चे मीठी चीजें न खाने पावें इस बात की पूरी सावधानी रखनी चाहिए।

कामला (पीलिया)

पीलिया रोग होने पर रोगी का चमड़ा, आँखों का सफेद भाग, नाखूनों का मूल भाग और पेशाब--ये सब पीले (हल्दी) रंग के जैसे देखने में आते हैं। रोग आरम्भ होने पर पहले-पहल पेशाब पीला होने लगता है एवं आँखों में पीलापन देखा जाता है। फिर ज्यों-ज्यों रोग की बढ़ती होती है त्यों-त्यों नाखून और शरीर के चमड़े पर भी असर होने लगता है। रोग बढ़ जाने पर रोगी को सब चीजें पीली ही पीली नजर आती हैं। आखिरी अवस्था में तो रोगी के पसीने से सफेद कपड़ा भी पीला हो जाता है।

निदान——यकृत् की क्रिया बिगड़ने पर पित्त अच्छी तरह आशोषित नहीं होता, वह पित्त खून में मिलकर खून के स्वाभाविक रंग को बदल देता है। इसीसे पाण्डु-रोग या पीलिया हो जाता है।

लक्षण——कब्जियत, मल काठिन्य और गाँठ-गाँठ, पतले दस्त, मुंह का स्वाद कड़वा, कमजोरी, ज्वर-भाव आदि लक्षण इस रोग में होते हैं। रोग पुराना होने पर पैर, हाथ, मुंह आदि पर शोथ हो जाता है।

चिकित्सा—सर्व प्रथम रोगी को अच्छी तरह जुलाब दें। फिर दवा का सेवन कराएँ। बहुत-से रोगी तो सिर्फ जुलाब से ही ठीक हो जाते हैं, औषध देने की जरूरत भी नहीं पड़ती। जरूरत होने पर नीचे लिखी दवाओं का सेवन कराने से निश्चित फायदा होगा।

(१) **मण्डूर भस्म**—— शास्त्र के अनुसार और हमारे अनुभव से सिद्ध हुआ है कि मण्डूर-भस्म पीलिया रोग की अव्यर्थ महौषधि है। मण्डूर-भस्म बनाना बहुत आसान है। लोहे के मैल को मण्डूर कहते हैं। यदि लौह-मैल १०० वर्ष का पुराना हो तो उत्तम माना जाता है। अंग्रेजों के आने के पहले भारत में लोहा बहुतायत से पुराने ढंग से तैयार किया जाता था। उन स्थानों में आज भी लाखों मन उत्तम मण्डूर मिल सकता है। इस मण्डूर को प्रथम लोहे के इमामदस्ते में डाल कर चूर्ण कर लें। तदुपरान्त लोहे की कड़ाही में डालकर खूब गर्म कर लें और उस गर्म-गर्म मण्डूर को गोमूत्र में डालें। इस तरह सात बार डालने से मण्डूर शुद्ध हो जाता है फिर कुमारी के रस में घोटकर तथा टिकिया बनाकर गजपुट में फूंक दें। ३ या ४ पुट में भस्म तैयार हो जाती है। यह बहुत काम की वस्तु है। २४३ मि. ग्रा. से १ ग्राम तक की खुराक समभाग पीपल का चूर्ण मिलाकर गोमूत्र या मठा के साथ सेवन कराना चाहिए। यह मण्डूर-भस्म खाली पाण्डु-रोग की ही महौषधि नहीं वरन् सूजन, खून की कमी, बदहजमी, यकृत् की खराबी, संग्रहणी आदि रोगों की भी शर्तिया दवा है। ताजा आंवला के रस की भावना देने से अधिक लाभकारी हो जाता है।

(२) **वर्धमान पिप्पली**——दूध में बराबर पानी डालकर तीन पीपल डाल दें। गर्म करने से जब पानी जल जाय और दूध मात्र शेष रह जाय तब पीपल

खाकर ऊपर से दूध पी जाएँ। क्रमशः रोज एक-एक पीपल बढ़ाएँ। जब दस पीपल हो जाएँ तब एक-एक पीपल कम करें। यदि रोगी बलवान् और कष्ट-सहनशील हो तो दो-दो, तीन-तीन पीपल भी बढ़ा सकते हैं। इसी क्रम का नाम 'वर्धमान पिप्पली' है।

बर्धमान पिप्पली की दूसरी विधि यह है कि पिप्पली को जरा कूटकर गोमूत्र या मट्ठा में भिगो दें। २४ घण्टे भीगने पर खूब महीन पीस कर, जरा-सा नमक मिलाकर पानी के साथ पी जाएँ। पिप्पली बढ़ाने या घटाने का क्रम पहले जैसा ही रखें। यह विधि श्रेष्ठ है। हम इस विधि से रोगियों को सेवन कराते हैं। इसके सेवन से पीलिया, यकृत्, प्लीहा, पुराना बुखार, मन्दाग्नि, संग्रहणी आदि कठिन बीमारियाँ अच्छी होती हैं। पुराने ज्वर में तो बहुत लाभ करती हैं। हमारी बहुत बार की परीक्षित है।

(३) **नवायस लौह**—सोंठ, पीपल, कालीमिर्च, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, वायविडङ्ग और चित्रकमूल की छाल इन ९ दवाओं का प्रत्येक ११.६६ ग्राम और लौह-भस्म १०५ ग्राम—इन सबको एक साथ घोंटकर २४३ मि. ग्राम की गोलियाँ बना लें या महीन चूर्ण बना कपड़छान कर रख लें।

अनुपान—शहद और घी। इसके सेवन से पाण्डुरोग निश्चय अच्छा होता है। बहुत बार की परीक्षित है। इसको २४३ मि. ग्राम से आरम्भ कर दो ग्राम तक खाना चाहिए। यह यकृत् रोग की अच्छी दवा है। —भैं० र०

(४) **ताप्यादि लौह**—हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, चित्रकमूल, वायविडङ्ग—प्रत्येक २९ ग्राम, नागर मोथा १७.५ ग्राम, पीपलामूल, देवदारु, दारुहल्दी, दालचीनी, चव्य प्रत्येक ११.६ ग्राम, शुद्ध शिलाजीत, स्वर्णमाक्षिक-भस्म, रौप्य-(चाँदी)भस्म, लौह-भस्म—प्रत्येक ११६.६४ ग्राम, मण्डूर भस्म २३३.३ ग्राम, मिश्री ३७३ ग्राम सबको बारीक घोंटकर छान लें। इसकी १२१.५० से ३६४.५० मि.ग्रा. तक की मात्रा दिन में दो बार मूली के रस या गोमूत्र के साथ देने से पाण्डु, कामला, यकृत् एवं प्लीहा-विकार, खून की कमी, शोथ (सूजन), स्त्रियों के मासिक धर्म की गड़बड़ी आदि रोग शीघ्र आराम होते हैं। मलेरिया के बाद उत्पन्न रक्ताल्पता की भी यह अच्छी दवा है। इससे खून की वृद्धि

होकर शरीर की सब इन्द्रियाँ बलवान् हो जाती हैं। यह बालकों के धनुर्वात एवं बाल-ग्रह में भी लाभदायक है। --औ० गु० ध० शा०

(५) **पुनर्नवादि मण्डूर**--पुनर्नवा, निशोथ, सोंठ, पीपल, मिर्च, वायविडङ्ग, देवदारु, चित्रक, पुष्करमूल, हर्रे, बहेड़ा, आमला, हल्दी, दारुहल्दी, जमालगोटे की जड़, चव्य, इन्द्रजौ, कुटकी, पीपलामूल, नागरमोथा--इन २० दवाओं का ११.६६ ग्राम और मण्डूर-भस्म ४६७ ग्राम लें। **बनाने की विधि** यह है कि ऊपरवाली सब दवाओं का महीन चूर्ण करके रख लें। मण्डूर-भस्म ४६७ ग्राम को ३.७३ किलो गोमूत्र में डालकर लोहे की कड़ाही में पकाएँ। जब द्रव-भाग गाढ़ा हो जाय तब नीचे उतारकर ऊपरवाला चूर्ण मिला दें और ३६४.५मि. ग्राम की गोलियाँ बना लें। गोमूत्र के अनुपान से रोगी को खिलाएँ। इससे पाण्डु-रोग, शोथ, उदर-रोग, अफरा, शूल-रोग आदि अच्छे होते हैं। परीक्षित है। --भै० र०

(६) **आरोग्यवर्धिनी**--(यकृत रोगाधिकार) पीलिया की परीक्षित शास्त्रीय औषध है।

(७) **आमलक्यवलेह**--आँवले का रस ३.७३ किलो पकाएँ। ४६७ ग्राम शेष रहने पर उतार कर पीपल २३३ ग्राम, मुनक्का २३३ ग्राम, मुलेठी २९ ग्राम, वंशलोचन २९ ग्राम और सोंठ २९ ग्राम-- (इनमें मुनक्का पीसकर और शेष ४ चीजों का महीन चूर्ण करके) डाल दें। फिर ७२९ ग्राम चीनी की चासनी अलग करके मिलाएँ और २३३ ग्राम शहद भी मिलाएँ। इसी का नाम 'आमलक्यवलेह' है। ५.८ ग्राम से ११.६६ ग्राम तक गोमूत्र या मट्ठा के साथ सेवन करने से पाडु-रोग अच्छा हो जाता है। --यो० र०

(८) त्रिफला, गिलोय, अडूसा, कुटकी, चिरायता और नीम की छाल-- इन ८ दवाओं का काढ़ा शहद के साथ पीने से पीलिया अच्छी होती है।

(९) सनाय ११.६६ ग्राम, खजूर ५८ ग्राम और मजीठ ३ ग्राम २३३ ग्राम जल में अच्छी तरह मिलाकर रात को रख दें। सुबह बिना हिलाये उस पानी को छानकर पीने से पाण्डु-रोग आराम होता है।

(१०) कड़वी तुम्बी (गदव्याली) का चूर्ण, नस्य की तरह सूंघने से पाण्डु-रोग आराम होता है।

(११) कुटकी का महीन चूर्ण कर लें। सुबह और शाम तीन-तीन ग्राम चूर्ण को जल के साथ लें। यह पीलिया की परीक्षित औषध है। निश्चित लाभकारी है।

(१२) गोमूत्र २९ ग्राम से ५८·३२ ग्राम तक पीनेसे पाण्डु रोग अच्छा होता है।

(१३) ताजा आँवला का रस ५८·३२ ग्राम में २३ ग्राम शहद मिलाकर पीने से आराम होता है। सहजने की छाल, पीली सरसों, एलवा, देवदारु, एरण्ड-मूल, पुनर्नवामूल--ये सब समान भाग बकरी के दूध में पीसकर कुछ गरम करके बढ़े हुए यकृत् पर मोटा लेप करने से लाभ होता है।

पथ्यापथ्य--जौ, गेहूँ, चना आदि की रोटी खानी चाहिए। आटा मोटा और भूसी सहित खाया जाय तो उत्तम है। दलिया या खिचड़ी. पुराने चावल का भात और हरी पत्तियों का शाक, लोहे की कड़ाही में गर्म किया हुआ दूध, नमक मिलाकर मट्ठा पीना उत्तम है। परन्तु मट्ठे में घी का भाग न होना चाहिए। मछली, मांस, गरम मसाला, मिर्चा, तेल, मिठाई, पूड़ी, कचौड़ी आदि खाना मना है। जिससे कब्जियत पैदा होती हो, ऐसा आहार-बिहार न करना चाहिए। शक्ति के अनुसार घूमना-फिरना और मेहनत करना अच्छा है। गाय का ताजा दही या मट्ठा बहुत लाभ करता है।

रक्तपित्त

अधिक व्यायाम, कड़ी धूप में घूमना, अधिक शोक या मैथुन करना, लाल मिर्च आदि चीजों का अधिक खाना, गर्मी का अधिक पड़ना आदि कारणों से पित्त दूषित होकर रक्त को दुष्ट कर देता है। यह दुष्ट रक्त नाक, मुंह, लिंग, योनि और गुदा आदि द्वारों से निकलता है। इसी का नाम 'रक्तपित्त' है। नाक तथा मुंह से खून गिरने को उर्ध्वगामी तथा योनि, लिंग या गुदा द्वारा खून गिरने से अधोगामी रक्तपित्त कहलाता है। कभी-कभी पित्त अत्यन्त दूषित होकर रक्त को शरीर के रोम-रोम से भी बहाने लगता है। इस तरह का रोगी शीघ्र ही मर जाता है।

रक्तपित्त ऊपर लिखे सभी मार्गों से बहता है; परन्तु नाक से बहने वाला रक्तपित्त अधिकतर देखने में आता है। इसको नकसीर भी कहते हैं, गर्म प्रकृति

वाले मनुष्य को गर्मी के मौसम में प्रायः नाक से खून गिरा करता है खून की कै करने वाले रोगी भी देखे जाते हैं। बहुधा इस बात का निश्चय नहीं होता कि वमन में आया हुआ खून पेट से आया है या फेफड़ों से ? इसकी पहचान यह है कि पेट से आने वाले रक्तपित्त के खून का रंग काला, झाग रहित और भोजन का अंश मिला हुआ होता है। खून की कै होने के पहले जी मिचलाता है और कै करने की इच्छा होती है; परन्तु राजयक्ष्मा रोग में फेफड़े से आने वाले खून का रंग लाल-सुर्ख, झाग और कफ मिला होता है। कै होने के पहले छाती में दर्द और श्वास लेने में तकलीफ होती है। इस तरह दोनों का भेद समझकर चिकित्सा करनी चाहिए। आमाशय में व्रण (अलसर) होने पर भी मुंह से खून आता है।

चिकित्सा—रक्तपित्त रोग की सर्वोत्तम चिकित्सा यही है कि ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में जुलाब दें और अधोगामी रक्तपित्त में कै कराएँ, इससे रोग में तुरन्त लाभ होगा। नीचे लिखी दवाओं का सेवन करने से दोनों प्रकार के रक्तपित्त में शीघ्र लाभ होता है।

(१) बासक (अडूसा) की जड़ की छाल को पुटपाक रीति से पकाकर रस निकाल लें। यह रस ११·६६ ग्राम सम भाग शहद में मिलाकर रोगी को दिन-रात में ३-४ बार पिलावें। इससे रक्तपित्त में बहुत फायदा होता है। बासक (अडूसा) रक्तपित्त रोग की उत्तम दवा है। इसका काढ़ा (स्वरस), फाण्ट, हिम आदि किसी तरह से भी दिया जाय शीघ्र लाभ पहुँचाता है।

दुर्वा (दूब) का २९ ग्राम स्वरस भी रक्तपित, खूनी बवासीर तथा यक्ष्मा के रक्त को बन्द करता है। सितोपलादि चूर्ण के अनुपान में बहुत लाभ करता है।

(२) **कामदुधा रस**—सोनागेरू के चूर्ण को थोड़े घी में भूनकर आँवला-रस की सात भावना देकर धूप में सुखाकर घोंटकर रख लें। इसकी ७२९ मि. ग्रा. की मात्रा, मिश्री, दूब का रस, घी और शहद के साथ देने से अम्लपित्त, रक्त-पित्त, रक्तप्रदर, बवासीर, नकसीर, जीर्णज्वर एवं अन्यान्य पित्त-विकार शीघ्र नष्ट होते हैं। —र० यो० सा०

(३) **बोलबद्ध रस**---शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, गिलोय सत्व--तीनों ११.६६ ग्राम; खूनखराबा (हीराबोल) ३६.४५ ग्राम लेकर सेमल के रस या छाल के काढ़े में तीन दिन घोंटकर २४३ मि. ग्राम प्रमाण की बटी बनावें। दो से चार गोली मक्खन, मिश्री, शहद, गुलकन्द आदि रोगानुकूल अनुपानों द्वारा दें। यह रक्तप्रदर, रक्तपित्त, नाक, मुंह, गुदा आदि किसी भाग से खून का गिरना, प्रमेह, अम्लपित्त, खूनी बवासीर, भगन्दर तथा अन्यान्य पित्तजन्य विकारों को बहुत आराम करता है। यह रक्तप्रदर की प्रसिद्ध दवा है। (अनुभूत है)

--नि० र०

(४) **कूष्माण्डखण्ड**—बढ़िया सफेद कुम्हड़ा (पेठा) के ऊपर का छिलका उतार दें। फिर कलईदार ताँबे के बर्तन में जल डालकर और उसमें पेठा डाल कर औटाएँ, बाद को उसका रस निकालकर थोड़ी देर धूप में सुखाएँ। इस रसरहित द्रव्य को ४.६७ किलो वजन करके ९३३ ग्राम घी में भूनें। फिर १५किलो पेठे के रस में ४ ६७किलो चीनी डालकर चासनी बनाएँ। चासनी तैयार होने पर नीचे उतारकर उपरोक्त भुना हुआ कुम्हड़ा डाल दें। तदुपरान्त पीपल, सोंठ, जीरा प्रत्येक ९३.२ ग्राम दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्ता, कालीमिर्च और धनियाँ प्रत्येक ४६.४ ग्राम--इन ७ दवाओं का चूर्ण और ४६७ ग्राम शहद मिला दे। इसी को 'कुष्माण्डखण्ड' कहते हैं। ११ से २३ ग्राम तक की मात्रा बकरी के दूध के अनुपान से सेवन करें। यह रक्तपित्त की बहुत अच्छी दवा है। जिन लोगों को बराबर रक्तपित्त की शिकायत रहती है, उनको इसे सेवन करके देखना चाहिए। यह पुष्टिकारक और बलप्रदायक भी है।

--भैं० र०

(५) गुलाब जल तथा केवड़े का अर्क ११६.६४ ग्राम, जल ३५० ग्राम चीनी ३५० ग्राम, ५ कागजी नीबू का रस और गुड़हल (जपा) की छाल (कई वैद्य फूल लेते हैं) २९ ग्राम--इन सब चीजों को दो बोतल में भरकर अच्छी तरह मुंह बन्दकर ३ दिन पानी में डुबाकर रखें। फिर छानकर दूसरी बोतल में रख दें। यह रक्तपित्त की उत्तम दवा है। इसमें से ११.६६ ग्राम करके दिन-रात में तीन-चार बार पीना चाहिए।

(६) पीली मिट्टी--(जिसके वर्तन तैयार होते हैं) सूंघने से नांक से खून गिरना बन्द हो जाता है।

(७) घास (दूर्वा) का रस पीने व सूंघने से नाक से खून गिरना बन्द हो जाता है। पीने के लिए ११.६६ ग्राम रस में उतना ही शहद भी मिला देना चाहिए।

(८) आंवले को जल के साथ पीसकर समूचे शिर पर लेप करने से नाक से खून गिरना बन्द हो जाता है। शिर के बाल (केश) मुड़ाकर लेप करना चाहिए।

(९) सिर को मुड़ाकर ताजा गौ का घृत प्रति सप्ताह मालिश करे। इससे नाक से खून का गिरना बन्द हो जायगा।

(१०) नारायण तेल की सिर में मालिश करने से नाक से खून का गिरना बन्द हो जायगा।

(११) ताजा मखन या घी में वंशलोचन १॥ ग्राम और मिश्री २९ ग्राम मिलाकर रोज सुबह चाटें। इससे नाक से खून गिरना बन्द हो जायगा।

(१२) जवासे के पत्ते को जल के साथ घोंटकर पीने से खून का पेशाब होना बन्द हो जायगा।

(१३) लाह (लाख) का चूर्ण १ ग्राम शहद के साथ चाटें। इससे खून की कै जरूर बन्द हो जायगी।

पथ्यापथ्य—ठंडा आहार और विहार लाभदायक है। गौ का ताजा दूध पीना सुन्दर पथ्य है। दूध और दही में बराबर जल और उचित मात्रा में चीनी मिलाकर पीना फायदेमन्द है। रक्त-वमन की हालत में बार्ली का पानी, साबू-दाना आदि पेय पदार्थों का पथ्य देना चाहिए। पेट पर शीतल जल की पट्टी देनी चाहिए। जौ का सत्तू या मिश्री और जल मिलाकर पीना अच्छा है। धूप में घूमना, कसरत करना, गरम चीजें खाना आदि निषिद्ध है।

राजयक्ष्मा तपेदिक

यह रोग छुआछूत से हो जाने वाला है। एक बार राजयक्ष्मा के रोगी का बचा हुआ खाना बराबर एक कुत्ते को खिलाया गया। फलस्वरूप उस कुत्ते को भी राजयक्ष्मा हो गया। राजयक्ष्मा रोग वाली गाय का दूध पीने से भी राजयक्ष्मा होते देखा गया है। घर के एक आदमी को तपेदिक होने पर उस घर के और

आदमियों को दो-चार साल के बाद तक रोग प्रकट होते देखा गया है। इसलिए राजयक्ष्मा के रोगी से खूब सावधान रहना चाहिए। क्षय रोग के कीड़ों के फेफड़े में पैदा होने से इस रोग की उत्पत्ति होती है। वे कीडे रोगी के फेफड़े का भक्षण करते रहते हैं, जिससे रोगी जल्दी-जल्दी क्षय को प्राप्त हो जाता है। पहले खुर-खुर खांसी का होना, दिन-रात ज्वर सायंकाल में ज्वर का बढ़ना, भूख की कमी, छाती में दर्द, सांस लेने में तकलीफ, कमजोरी आदि लक्षण प्रकट होते हैं। धीरे-धीरे खांसी का वेग बढ़ता है, पीले रंग का सादा कफ बहुतायत से आता है। किसी-किसी को कफ में खून भी आता है, छाती में दर्द अधिक होने लगता है और खांसी होने के कारण स्वर-नली में जख्म होकर कंठ की आवाज बैठ जाती है। रात को पसीना आता है। रोगी के कफ या थूक में राजयक्ष्मा के कीटाणु होते हैं जिनसे यह रोग हवा या पानी या दूध द्वारा फैलता है। इस रोग से बहुत दिन कष्ट पाकर रोगी मर जाता है।

दूषित वायु एवं गीले स्थान में रहना, श्वास के साथ धूल-कणों का फेफड़ों में जाना, अधिक स्त्री-प्रसंग, अपुष्टकर भोजन, शक्ति से अधिक परिश्रम, वारम्वार सन्तान का जन्म तथा तपेदिक रोगी के साथ आहार-विहार आदि कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—बहुत दिनों के अनुभव से देखा गया है कि राजयक्ष्मा रोग की कोई ऐसी खास दवा नहीं है कि जिससे रोग शर्तिया आराम हो जाय। आजकल वैज्ञानिकों ने नई खोजें कर स्ट्रेप्टो माइसीन, आइसोनिकोटिनिक एसिड हाइड्रेजाइड आदि नई दवाएं दी हैं जिनसे यह रोग अब नियन्त्रित किया जा सकता है। तब अवस्था के अनुसार स्वर्णवसन्तमालती, मृगांक, मकरध्वज, हिरण्यगर्भ-पोट्टली, च्यवनप्राश, द्राक्षासव, वासावलेह, स्वर्णपर्पटी, विजयपर्पटी, सितोपलादि चूर्ण केवल या अभ्रक-भस्म संयुक्त आदि दवाएँ किसी विद्वान् अनुभवी वैद्य की सलाह से देनी चाहिए।

(१) **मृगांक रस**—शुद्ध पारा ११·६६ ग्राम, शुद्ध गन्धक २३·२ ग्राम, मोती-पिष्टी २३·२ ग्राम, स्वर्ण-भस्म ११·६६ ग्राम और सुहागे का लावा ३ ग्राम—५ चीजों को कांजी में घोंटकर, गोला बनाकर सुखा लें। फिर उस गोले को मूषा में रखकर

नमकपूर्ण घड़े में रक्खें। आधा नमक नीचे रखकर मूषा में रख दें और फिर आधा नमक ऊपर से डाल दें। इस घडे को चार पहर आग से पकाएँ। घड़ा ठंडा होने पर दवा निकाल लें। इसी का नाम 'मृगांक रस' है। २४३ से ४८६ मि. ग्रा. मृगांक रस को १० काली मिर्च या १० पीपल चूर्ण और शहद से मिलाकर चटावें यह राजयक्ष्मा में उपकारी है। —भै० र०

(२) **हेमगर्भपोट्टली रस**—स्वर्ण-भस्म, ताम्र-भस्म तथा गन्धक ११·६६ ग्राम और रससिन्दूर ३४·८ ग्राम—ये सब द्रव्य चित्रक-रस में दोपहर तक खरल करके कौडी में भरकर सुहागे से मुंह बन्द करके हांडी में रख गजपुट में फूंक दें। ठंडा होने पर निकाल कर कौड़ियों सहित पीसकर बोतल में रख लें और २४३ मि. ग्रा. सेवन करें। यह राजयक्ष्मा में बहुत फायदा करता है।

—भै० र०

(३) **चन्दनवाला लाक्षादि तैल**—चन्दन सफेद, खरेटी-मूल, लाख, लामज्जक (लज्जालू)—प्रत्येक ९३३ ग्राम १५ किलो जल में डालकर क्वाथ करें; ३·७३ किलो शेष रखे। गौदुग्ध ३·७३ किलो तिल तेल १·८७ किलो में नीचे लिखा हुआ कल्क डालकर पकावें। सफेद चन्दन, खश, मुलेठी सोया, कुटकी, देवदारु, हल्दी, कूठ मजीठ, अगर, नेत्रवाला, असगन्ध, खरेटी, दारु हल्दी, मूर्वा, नागरमोथा, मूली, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, रास्ना, लाख, अजमोद, चम्पक, अनन्तमूल, शिला रस, सेंधा नमक और विड्नमक—ये २८ द्रव्य मिलाकर ४६७ ग्राम लेकर कल्क कर लें। फिर तैलपाक विधि से पाक करें। इस तैल की मालिश करने से रस-रक्तादि—सप्त धातुओं की वृद्धि होती है। जीर्णज्वर, कास, श्वास राजयक्ष्मा आदि रोग नष्ट होते हैं। यह तैल पित्तशामक और पुष्टिकारक है।

—यो० र०

(४) **रसोनक्षीरयोग**—८४ पेज सि. सं में देखें।

पथ्यापथ्य—राजयक्ष्मा के रोगी को पथ्यापथ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए, बल्कि पथ्यापथ्य को ही चिकित्सा समझनी चाहिए। सूर्य का प्रकाश स्वच्छ वायु, उचित आहार और पूर्ण विश्राम—इन चार की सम्मिलित सहायता से राजयक्ष्मा नष्ट किया जा सकता है। इन चारों की सहायता न मिले तो खाली दवा के बल से कुछ भी लाभ नहीं होता। सूर्य का प्रकाश याने रोगी

के सिर को बचाकर तमाम शरीर पर धूप पड़नी चाहिए। रोगी को नंगा करके इस तरह धूप में लिटाना चाहिए, जिससे सिर पर तो धूप लगे नहीं, लेकिन सारे शरीर पर—विशेष कर छाती, पीठ और बगलों पर खूब धूप लगे। गर्मी के मौसम में सुबह-शाम धूप का सेवन कराएँ, इससे बहुत फायदा होता है।

स्वच्छ वायु—पहले कहा गया है कि फेफड़े का प्रधान भोजन स्वच्छ वायु है और राजयक्ष्मा फेफड़े का रोग है, इसलिए जिसमें रोगी को दिन-रात—२४ घण्टे स्वच्छ हवा मिलती रहे, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए। कमरे की अपेक्षा बरामदे को हवा, बरामदे की अपेक्षा बाहरी, शहर की अपेक्षा गांव और गांव की अपेक्षा मैदान तथा सबसे उत्तम समुद्र-तट की और ऊँचे पहाड़ों की हवा को शुद्ध समझना चाहिए। इसलिए यदि रोगी खर्च बर्दाश्त कर सके, तो उसे समुद्र के किनारे या ठण्डे पहाड़ पर जरूर चला जाना चाहिए। अगर रोगी गरीब हो, तो उसे कम-से-कम पास के देहात में तो जाना ही चाहिए ताकि स्वच्छ हवा के सेवन से रोग अच्छा हो जाय।

उचित आहार—रोगी को जल्दी पचने वाला हल्का और पुष्टिकारक आहार देना जरूरी है। रोग के कारण रोगी पौष्टिक खुराक हजम नहीं कर सकता। इसलिए दवा की सहायता से भोजन को पचाना चाहिए। दूध, अण्डे. मांस-रस, मक्खन, फल, रोटी, साग, दाल, भात आदि सब तरह का भोजन रोगी की रुचि के अनुकूल देना चाहिए। उसे किसी वस्तु से परहेज न कराया जाय। भोजन थोड़ा-थोड़ा करके कई बार देना उचित है। सुबह, दिन के १० बजे और २ बजे शाम को ५ बजे और रात को भी १० बजे—इस तरह ४-५ बार रोगी को भोजन देना उचित है। भोजन में दूध का भाग जितना ही अधिक होगा, उतना ही ज्यादा लाभ होगा।

दूध जैसा जल्द हजम होनेवाला, पुष्टिकारक भोजन दूसरा नहीं है। दूध के साथ १-२ अण्डे भी दिये जायँ, तो बहुत उत्तम हो। मछली का तेल भी एक तरह का भोजन है। यह राजयक्ष्मा के लिए बड़ा लाभकारी है। अगर रोगी खालिस मछली का तेल न पी सके, तो मछली-तेल के समिश्रण से तैयार हुआ ईमल्शन देना चाहिए। ईमल्शन को दूध या फलों के रस में मिलाकर देना बड़ा

लाभदायक है। फलों का खाना भी इस रोग में बड़ा लाभदायक होता है। रोगी को अजीर्ण से बचने का ख्याल रखना जरूरी है।

पूर्ण विश्राम--राजयक्ष्मावाले रोगी को चुपचाप शान्त भाव से आराम करना चाहिए, क्योंकि जरा भी परिश्रम करने से ज्वर बढ़ जाता है। ज्वर न रहे तब रोगी बैठ सकता है और आसपास जरा-सा घूम भी सकता है। परन्तु ज्वर की हालत में तो लेटे रहना ही उचित है। रोगी में जैसे-जैसे शक्ति आती जाय, वैसे-वैसे उसे धीरे-धीरे टहलने का अभ्यास करना चाहिए। जल्दबाजी भूलकर भी न करनी चाहिए।

स्त्री-प्रसंग से और तम्बाकू पीने से सख्त परहेज करने की जरूरत है। बहुत-से रोगी तन्दुरुस्त होने पर विषय-भोग में फँसकर फिर रोगी हो जाते हैं। कहना न होगा कि दुबारा लौटकर रोग होनेवाले रोगी बहुत कम बचते हैं। इस समय भारतवर्ष में यह रोग बहुत फैला हुआ है। ऊपर लिखे पथ्यापथ्य पर ध्यान देने से बहुत-से देशवासी निःसन्देह लाभान्वित होंगे।

खाँसी (कास)

खाँसी भयानक रोग न होते हुए भी उपेक्षा योग्य नहीं है। खांसी का कुछ दिन इलाज न कर इसी तरह रहने से फिर उसका इलाज होना मुश्किल हो जायेगा। बहुत कड़े परहेज और दवा खाने से पुरानी खाँसी आराम होती है। इसलिए बुद्धिमानी इसी में है कि खाँसी होते ही तुरन्त इलाज किया जाय।

गले की नली की खराबी, फेफड़े की जलन, यकृत् की पीड़ा, सर्दी, जुकाम आदि रोगों में खाँसी मौजूद रहती है। खाँसी कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है—दूसरे रोगों का लक्षण मात्र है। तब भी खांसी कुछ दिन स्थायी रहने से अनेक तरह के रोग उत्पन्न कर देती है। खाँसी प्रायः दो तरह की देखी जाती है--सूखी और कफवाली। सूखी खांसी में बहुत बल लगाने पर मुश्किल से कच्चा थूक जरा-सा निकलता है; परन्तु कफवाली तर खांसी में जरा-सा खांसने से ही कफ निकल जाता है। खांसी पुरानी होने से प्रायः कफवाली हो जाती है। नयी खांसी प्रायः सूखी होती है। एक तरह की खांसी एक और भी होती है, जिसको

कुकुर खांसी या हूपिंग कफ कहते हैं। यह खांसी २ वर्ष से १५ वर्ष तक की उमरवालों को होती है। खांसी के साथ लम्बी-सी आवाज आती है और मुँह खुल जाता है। एक तरह का बर्तन गिरने के जैसा खास शब्द इस खांसी में होता है। खांसते-खांसते आखिर में वमन हो जाता है। यह कुकुर खांसी बड़ी कठिन होती है, जल्दी आराम ही नहीं होती; अच्छी तरह इलाज करने पर एक-दो महीने में अच्छी होती है। गलंग्रन्थि (कव्वा या-टॉन्सिल) के बढ़ जाने से भी खाँसी पैदा हो जाती है। इस खाँसी में गले में कोई वस्तु छूती हुई-सी मालूम होती है। गले की सरसराहट के साथ जल्दी-जल्दी सूखी खांसी चलती है। बहुत खाँसने से कच्चा झागदार थूक आता है, कफ बिल्कुल नहीं आता। देखने में तालु-ग्रन्थि या टॉन्सिल बढ़ी हुई मालूम होती है।

चिकित्सा—जिस कारण से खाँसी पैदा हुई हो, उसकी तरफ ख्याल करके चिकित्सा करनी चाहिए। वैद्यक-शास्त्र का औषध-विधान इतना सुन्दर है कि खाँसी के निदान में आपको अधिक दिमाग खर्च करने की जरूरत नहीं होगी। खुश्क या तर खाँसी देकर जो भी खाँसी हो उसी की दवा दीजिए, फौरन लाभ होगा। पाठकों की सुविधा के लिए हमने प्रत्येक दवा के अन्त में साफ-साफ लिख दिया है कि यह दवा सूखी या तर खाँसी में फायदा करेगी। तालु-ग्रन्थि की टॉन्सिल बढ़ जाने के कारण जो खाँसी पैदा होती है, उसमें खाने की दवा से कुछ भी लाभ नहीं होता, लगाने की दवा से आराम होता है। सुहागे को फुलाकर लावा बना लें। उस लावे का महीन चूर्ण करके शहद में मिलाकर तालु-ग्रन्थि या टॉन्सिल पर लगाने से तालु-ग्रन्थि या टॉन्सिल संकुचित होकर खाँसी आराम हो जायगी। **बैद्यनाथ गुल्लरीन** या **टिंचर आयोडीन** लगाना भी लाभकारी है। सरसों की खली अंगारों पर डालकर उसका धुआँ तालु-ग्रन्थि से स्पर्श कराएँ। इससे खाँसी अच्छी होगी। उत्तम ब्राण्डी का फाहा कव्वे पर लगाने से वह बैठ जाता है। गर्म पानी, गर्म दूध, गर्म चाय, गरमागरम भोजन आदि गर्म चीजें कंठ में होकर जाने से तालु-ग्रन्थि या टॉन्सिल का सेक हो जाता है। इस सेक से तालु-ग्रन्थि या टॉन्सिल छोटी होकर खाँसी ठीक हो जाती है। यदि किसी उपाय से कव्वा या टॉन्सिल ठीक न हो, तो किसी योग्य चिकित्सक से कटवा डालना चाहिए।

(१) **भागोत्तर गुटिका**--सिद्धयोग सं. पेज ७१ में देखें,

(२) **वासावलेह**—१.८ किलो अडूसे की जड़ की छाल को १५ किलो पानी में औटावें ३.७३ किलो पानी शेष रहने पर उनमें १ सेर चीनी डालकर चासनी बनाएँ। गाढ़ा हो जाने पर नीचे उतार कर पीपल का चूर्ण, ताजा घी २३३ ग्राम और शहद ९३३ ग्राम मिला दें। **मात्रा**--५.८ से ११.६६ ग्राम तक। यह सब तरह की खाँसी, श्वास, रक्तपित्त, प्रदर आदि में पूर्ण लाभ पहुँचता है। यह पुरानी कफवाली खाँसी की अचूक दवा है। इसमें छोटी कण्टकारी, अडूसा की जड़ के समान भाग मिलाने से अधिक लाभ होता है। —भै० र०

(३) **चन्द्रामृत (रस)**—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, चव्य, धनियाँ, जीरा और सेंधा नमक--ये १० दवाएँ प्रत्येक ११.६६ ग्राम, शुद्ध पारा शुद्ध गन्धक लौह भस्म प्रत्येक २३ ग्राम सुहागे का लावा ९३ ग्राम और कालीमिर्च ४६ ग्राम--इन सब दवाओं को चूर्णकर बकरी के दूध में पीसकर ४८६ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। —भै०र०

अनुपान--रक्तोत्पल का रस, नीलोत्पल का रस, अदरख का रस, बकरी का दूध, पीपल और शहद के साथ दवा खाकर ऊपर से निम्नलिखित काढ़ा पिया जाय, तो बहुत उत्तम रहे।

अडूसा, गुर्च, भारंगी, नागरमोथा और कण्टकारी--ये सब चीजें २३ ग्राम लेकर काढ़ा बना लें, चन्द्रामृत खाकर पीवें। उपरोक्त चन्द्रामृत रस खाँसी-रोग के लिए सचमुच अमृत के समान है। ऊपर लिखी विधि से सेवन करने पर किसी तरह की खाँसी हो, तुरन्त लाभ होता है। सर्दी-जुकाम से जब नाक बहती हो और शरीर में हरारत हो तथा खाँसी का जोर हो तब चन्द्रामृत रस को मिश्री के साथ मुंह में रखकर रस चूसें; इस प्रकार दिन-रात में चार-पाँच गोलियाँ खाएँ। बहुत जल्द तबीयत ठीक हो जायगी।

(४) **शृंगाराभ्र**--अभ्रक भस्म ९३ ग्राम, कपूर, जावित्री, सुगन्धबाला, गजपीपल, तेजपत्ता, लौंग, जटामांसी, तालिसपत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूठ और धाय के फूल--ये १२ दवाएँ प्रत्येक ५.८३ ग्राम हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल ये ६ दवाएँ प्रत्येक ३ ग्राम, इलायची,

जायफल और शुद्ध गन्धक--ये तीनों प्रत्येक ११.६६ ग्राम और शुद्ध पारा ५.८३ ग्राम सब चीजों को पान के रस या पानी के संयोग से भिगोकर चने के बराबर की गोलियाँ बना लें। इसी का नाम 'शृंङ्गाराभ्र' है। अदरख और पान के रस के साथ दवा खाकर ऊपर से थोड़ा गुनगुना पानी पीना चाहिए। इससे सब तरह की खाँसी आराम होती है। --भैं० र०

(४) **सर्वाङ्गसुन्दर रस**--शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक ११.६६ ग्राम, फूला सुहागा २३ ग्राम, मोती पिष्टी और प्रवाल भस्म ११.६६ ग्राम, शंख-भस्म ११.६६ ग्राम, सुवर्णभस्म ६ ग्राम, इन सबको खरल में डालकर नीबू के रस में घोंटकर एक गोला बनाकर सराव-सस्पुट में बन्द करके गजपुट में फूंक दें। शीतल होने पर निकाल लें। फिर लौह भस्म छः ग्राम, शुद्ध हिंगुल तीन ग्राम को उसी में मिलाकर खूब खरल करें। इसकी १२१.५ मि. ग्रा. की मात्रा शहद और अदरख के रस में मिलाकर खाने से किसी भी तरह की श्वास-कास रह नहीं सकती। पुरानी खांसी और दमा में विशेष लाभ करता है। --भैं० र०

(५) **लवंगादि बटी**—लौंग, काली मिर्च और बहेड़े का छिलका ११.६६ ग्राम और सफेद पपरिया कत्था ३५ ग्राम को बबुल (कीकर) की छाल के काढ़े से घोंटकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। एक या दो गोली मुंह में रखकर चूसें। इस प्रकार दिन-रात में ८-१० गोलियाँ चूस डालें। सब तरह की खाँसी आराम होगी। --वै० जी०

(६) **मरिचादि गुटिका**--कालीमिर्च और पीपल ११.६६ ग्राम, अनार का छिलका (बहुत से वैद्य अनार के बीज–अनारदाना लेते हैं) २३ ग्राम, जवाखार ५.८३ ग्राम और पुराना गुड़ ९३ ग्राम--सबों का अलग-अलग चूर्ण करके मिला लें। तदुपरान्त चूर्ण ही रहने दें या बेर के बराबर की गोलियाँ बना लें। एक गोली मुंह में रख लें और उसका रस धीरे-धीरे पेट में जाने दें। दिन-रात में पाँच-छः गोलियाँ चूस डालें। दोनों तरह की खाँसी में लाभ होगा। खाँसी की यह मशहूर दवा है। —शा० ध०

(७) **एलादि बटी**--बड़ी इलायची, तेजपत्ता, दालचीनी ये सब दवा ६-६ ग्राम, पीपल २३ ग्राम, मिश्री, मुलेठी, खजूर, मुनक्का–प्रत्येक ४६ ग्राम।

बनाने की विधि यह है कि इलायची से लेकर मुलेठी तक की औषधियों को कूट कर कपड़छान कर लें और खजूर तथा मुनक्के को सिल पर पीसकर खरल में सब वस्तुओं को मिला दें और उसमें शहद अन्दाज से इतना डालें, जिससे गोली बन जाय। सुबह-शाम एक-एक गोली चूसें। ये गोलियाँ शुष्क कास में आश्चर्य-जनक लाभ पहुँचाती हैं तथा रक्तपित्त और यक्ष्मा के कास की सुप्रसिद्ध दवा है। स्वरभंग मे चूसें।

--भा० प्र०

(८) सीतोपलादि चूर्ण—मिश्री १८५.४ ग्राम वंशलोचन ९२.८ ग्राम, पीपल ४६.४ ग्राम, छोटी इलायची २३.२ ग्राम और दालचीनी ११.६६ ग्राम—इन पाँचों दवाओं का चूर्ण कर लें। यह चूर्ण ११.६६ ग्राम, ताजा घी ११.६६ ग्राम और शहद २३.२ ग्रामें मिलाकर दिन-रात में पाँच-छः बार चाटें। यह बहुत ही गुणकारी दवा है। सब तरह की खाँसी, दमा, पुराना ज्वर, बदहजमी, अरुचि, रक्तपित्त आदि रोगों में उत्तम फल देता है। यदि अधिक जोर की खाँसी हो तो २४३ मि. ग्राम अभ्रकभस्म मिला देने से तत्काल फायदा होता है। यह सूखी खाँसी में विशेष लाभकारी है।

--शा० ध०

(९) लवंगादि चूर्ण—लौंग, शुद्ध कपूर, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, जायफल, खश, सोंठ, स्याह जीरा, अगर, वंशलोचन, जटामांसी, निलोफर, पीपल, सफेद चन्दन, तगर सुगन्धवाला और शीतल मिर्च--इन १८ दवाओं का सम-भाग लेकर चूर्ण कर लें। इसका जितना वजन हो, उससे आधा मिश्री मिला दें। १॥ ग्राम से ३ ग्राम तक यह चूर्ण ताजा जल के साथ खाएँ या शर्बत बनफशा के साथ चाटें। गर्म तबियत वाले रोगियों की खाँसियों में तथा सूखी खाँसी में विशेष लाभ होता है। यह खाँसी, दमा, अजीर्ण, कै आदि रोगों में बहुत फायदे-मन्द है। गर्भिणी स्त्रियों के कै और मिचली की अक्सीर दवा है। --शा० ध०

(१०) तालीसादि चूर्ण—तालीसपत्र ११.६६ ग्राम, कालीमिर्च २३.२ ग्राम सोंठ ३५ ग्राम, छोटी पीपल ४६.४ ग्राम, वंशलोचन ५८ ग्राम दालचीनी और इलायची ५.८ लेकर चूर्ण करके २७३.१ ग्राम बढ़िया चीनी इनमें मिलाए। इसमें से ३ ग्राम की मात्रा में जल के साथ लेने से सब तरह की खाँसी, विशेष करके सूखी खाँसी जल्द आराम होती है।

--शा० ध०

(११) कण्टकारी (कटेरी) और अड़ूसा (वासक) का काढ़ा शहद तथा पीपल का चूर्ण डालकर पीने से कफवाली पुरानी खाँसी में आराम होती है।

(१२) कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी और पीपल--इनका महीन चूर्ण शहद से चटाएँ। कफवाली खाँसी और दमा में अच्छा फायदा होता है। मामूली कास-श्वास तो तुरन्त अच्छा हो जाता है। यह 'कटफलादि चूर्ण' है।

(१३) गुलबनफशा, गाजवाँ, मुनक्का, अंजीर, लिसोड़ा, उन्नाव, मुलेठी, अड़ूसे की छाल, कुटकी, गिलोय, नीलोफर, कंटकारी की जड़ और बहेड़े का छिलका--इन १३ दवाओं का काढ़ा मिश्री और शहद मिलाकर पीने से खाँसी में आशातीत लाभ होता हैं। जुकाम लगकर होनेवाली खांसी की तो शायद ही इससे अच्छी दवा दूसरी हो। काढ़ा बनाकर उपरोक्त औषधियों को जल में डालकर रख दें तथा दुबारा उसी का काढ़ा बनाकर पीवें, वैसा ही लाभ होगा।

(१४) कालीमिर्च, सुहागे का लावा, फिटकरी का लावा, काकड़ासिंगी, लौंग, भारंगी, हरड़ का छिलका, पीपल और सेंधानमक--प्रत्येक ११·६६ ग्राम और सौंफ १०४·२ ग्राम--इनको नींबू के रस से घोंटकर जंगलीबेर के बराबर की गोलियां बना लें और दिन-रात में तीन-चार गोलियां जल के साथ खाएँ। दोनों तरह की खांसी आराम होगी। अजीर्ण या यकृत् के कारण होनेवाली खांसी में अच्छा लाभ होता है।

(१५) सुहागे का लावा या फिटकरी का लावा २४३ मि.ग्रा में १२१·५० मि. ग्रा. अभ्रकभस्म मिलाकर चाटने से सूखी खांसी आराम होती है।

(१६) हल्दी ११·६६ ग्राम, सज्जीखार तीन ग्राम और पुराना गुड़ २३·२ ग्राम की बेर के बराबर गोलियाँ बनालें। इस को मुंह में रखकर चूसने से सब तरह की खाँसी विशेष करके हर वर्ष शीतकाल में होनेवाली खाँसी आराम होती है।

पथ्यापथ्य—श्वास-रोग के अन्त में पढ़िए।

श्वास रोग (दमा)

फेफड़े को वायु पहुँचानेवाली नलियाँ छोटी-छोटी मांस-पेशियों द्वारा ढकी हुई हैं। इन मांस-पेशियों में आक्षेप होने के कारण जो साँस लेने में तकलीफ होती है और गला साँय-साँय करता है, उसको श्वास या दमा कहते हैं। छाती

की बीमारी के कारण जो साँस लेने में तकलीफ होती है, उसे दमा नहीं कहा जाता। दमा से दम तो नहीं निकलता, परन्तु कष्ट दम निकलने से कम नहीं होता। दमा का रोगी बहुत दिन जीता अर्थात् दीर्घायु होता है। दमे का दौरा होने का कोई नियम नहीं है। कोई रोगी गर्म-ऋतु में अच्छे रहते हैं और शीत-ऋतु में ही दमा से बहुत कष्ट पाते हैं। इसके विपरीत बहुत-से रोगी गर्म ऋतु में ही दमा से कष्ट पाते हैं और शीतकाल में एकदम ठीक रहते हैं। सब ऋतुओं में निरन्तर कष्ट पानेवाले रोगी भी बहुत पाये जाते हैं। वर्षा ऋतु में तो दमा के सभी रोगियों को अधिक कष्ट होता है। दमा का रोग जब नया होता है, तब दमा का वेग बहुत काल पर होता है; परन्तु ज्यों-ज्यों रोग पुराना होता है, त्यों-त्यों दमा का वेग जल्दी-जल्दी होने लगता है। यहाँ तक कि आखिर में दमा का दौरा कुछ-कुछ प्रतिदिन बना ही रह जाता है।

दौरा के समय साँस लेने में तकलीफ, गले में साँय-साँय होना, छाती पर वजन-सा मालूम होना, दमा के साथ-साथ पेट का फूलना, बदहजमी, जुकाम का जल्दी-जल्दी होना, सिर का जकड़ना, कै करने की इच्छा आदि लक्षण वर्तमान रहते हैं। रोगी वायु पाने की आशा से दोनों कन्धों को ऊँचा करता है। दमा के कारण लेट नहीं सकता, लाचारवश किसी के सहारे बैठा रहना पड़ता है। खाँसते-खाँसते बड़े कष्ट से जरा-सा कच्चा कफ निकलता है, जिससे कुछ आराम मालूम होता है।

जो कारण खाँसी पैदा करने के लिए बतलाये गये हैं, वे ही कारण श्वास-रोग को भी पैदा कर देते हैं। खाँसी की चिकित्सा न होने के कारण जब वह पुरानी और स्थायी हो जाती है, तब वही दमा को उत्पन्न कर देती है। खाँसी के कारणों के अलावा माता-पिता को दमा होना, रक्त के श्वेताणुवों का बढ़ना तीव्र गन्ध सूंघना आदि कारणों से भी दमा उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—पुराना दमा होने पर यकृत् वृद्धि हो जाती है तथा हृदय की दुर्बलता से भी दमा होता है। इनकी चिकित्सा होने से स्थायी लाभ होता है। दमा के दौर के समय ऐसा इलाज कराना चाहिए जिससे दमा का दौरा शीघ्र शान्त हो। फिर बाद में ऐसी दवा का सेवन करना योग्य है, जो स्थायी रूप से

लाभ पहुँचा सके। दमा का रोग नया होने से बिलकुल ठीक होने की आशा है; परन्तु पुराना दमा का निर्मूल हो जाना कठिन है। कई दमे के पुराने भुक्तभोगी रोगियों ने बताया है कि प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा वे एकदम अच्छे हो गये हैं। मेरा निजी कुछ अनुभव नहीं होने के कारण प्राकृतिक चिकित्सा के विषय में कुछ लिखना अनुचित है। प्राकृतिक नियमों का पालन करने से भी बहुत रोगी एकदम रोगमुक्त होते देखे गये हैं। लिखने का अभिप्राय यह है कि केवल दवाइयों के बल से ही दमा को एकदम दूर करने की आशा करना व्यर्थ है। दवा सेवन के साथ-साथ रोगी यदि आहार-आचार का पालन भी प्राकृतिक नियमों के आधार पर रक्खे, तो सदा के लिए रोगमुक्त हो सकता है।

दमा के दौरे के समय ऐसी दवा देनी चाहिए, जिससे कफ पतला होकर निकल जाय। गर्म पानी में रोगी का पैर रखवाकर कुछ समय तक बैठाये रखें, इससे दमे का वेग कम होगा। धतूरा और जवासे का पत्ता मिला कर अंगारों पर डालें और उस धुआँ को फेफड़े में पहुँचाएँ, इससे दौरा शान्त होगा। धतूरे के पत्ते की सिगरेट बनाकर भी पी सकते हैं। धतूरे के पत्ते में जवासे का पत्ता मिलाने से भ्रम-रोग होने का भय नहीं रहता। पहले रोगी को जरा सा धुआँ पीकर आजमाइश कर लेनी चाहिए, क्योंकि धतूरा एक प्रकार का जहर है। जरा-सा धुआँ पीने से लाभ हो तो अधिक पीना चाहिए, अन्यथा छोड़ देना चाहिए। एक दमा का पुराना रोगी हमारा पड़ोसी है। वह जब तक धतूरे के बीजों को तम्बाकू की तरह हुक्के में नहीं पीता, तब तक उसका दौरा शान्त नहीं होता। धतूरे के पत्तों की अपेक्षा बीज और भी जहरीला होता है। इसलिये बिना परीक्षा किये प्रयोग न करना चाहिए। धूम्र योग—(सिद्ध सं० देखें)

गर्मागर्म दूध, चाय या गरम पानी भी दमा में दौरे के समय लाभदायक होते हैं। दमा के दौरे को बन्द करने के लिए हिमालय पहाड़ में पैदा होनेवाली "सोमलता" (Ephedra Vulgaris) नाम की जड़ी रामबाण की तरह फायदा करती है। इस जड़ी का चूर्ण ३६४ मि. ग्रा. से १ ग्राम तक १२१·५० मि.ग्रा रससिन्दूर मिलाकर जल या मधु के साथ तीन-चार घण्टे के अन्तर से रोगी को खिलाना चाहिए। यह जड़ी हजारों मन की संख्या में हिन्दुस्तान और चीन से विलायत

जाती है। वहाँ से इसका सत्त्व एफेड्रीन (Ephedrin) नाम से बन कर वापस आती है। अब भारत में इसका सत्त्व बनता है। हिन्दुस्तान में यह जड़ी काश्मीर राज्य से मूल्य द्वारा प्राप्त हो सकती है। "वैद्यनाथ श्वासकल्प" में यही जड़ी प्रधान रूप से डाली जाती है।

दमा के दौरे के समय रोगी को गर्मी बहुत अधिक मालूम होती है। इस कारण बहुत-से लोग समझते है कि दमा गर्म रोग है, परन्तु यह समझना भूल है। दमा वायु का रोग है। वायु का रोग होने के कारण ही इसमें गर्म आहार-उपचार से लाभ पहुँचता है। ईट को गर्म करके और कपड़े में लपेट कर छाती को सेंकना लाभदायक है। चन्दनादि तैल की मालिश करके हाथ की हथेली को अग्नि में तपाकर सेंकना भी लाभदायक है। हल्दी का हलवा बनाकर सेंकना भी उत्तम होगा। छाती पर पुराने घी की मालिश करना फायदेमन्द है। यदि किसी रोगी को गर्म आहार और उपचार अनुकूल नहीं होता हो, तो कोई नियम नहीं है कि उसे भी गर्म आहार और उपचार ही करना चाहिए। नीचे लिखी दवाओं का सेवन बहुत लाभदायक होगा।

(१) **कफकर्त्तरी**–जावित्री २३·२ ग्राम, इलायची २३·२ ग्राम, पुराना बाँस ४६·४ ग्राम, पुर्ननवामूल ४६·४ ग्राम, कण्टकारि फल २३·२ ग्राम और गाँजे की भस्म (गाँजे को पीकर नशेबाश लोग जो राख डाल देते हैं वही भस्म) २३·२ ग्राम। बनाने की विधि यह है कि सूखा हुआ अपामार्ग ९३३ ग्राम, लोहे की कड़ाही में डालकर ऊपर लिखी ६ दवाइयाँ डालकर ९३३ ग्राम सूखा अपामार्ग (चिड़चिड़ी) और डालकर अग्नि लगा दे। बाँस के डण्डे से आग को इधर-उधर करके अच्छी तरह जला दें ताकि कोई कोयला न रहने पावे। अगर कोई दवा अच्छी तरह न जली हो तो और अपामार्ग देकर अच्छी तरह भस्म कर लें। फिर सब चीजों को महीन पीस लें और शीशी में भर दें। जैसे कतरनी कपड़े को काटती है, वैसे ही यह दवा कफ को काटती है, इसी से इसका नाम "कफकर्त्तरी" रखा गया है।

एक या आधे पान के टुकड़े में इस दवा को एक चुटकी (अन्दाज २४३ मि. ग्रा. डालकर रोगी को दें और कहे कि इस पान को बहुत धीरे-धीरे चबाकर

रस पेट में पहुँचाएँ। बहुत जल्द दवा का चमत्कार देखने में आएगा। यहाँ तक कि दो या तीन खुराक खाते-खाते दमा का दौरा शान्त हो जायगा। दौरा शान्त होने पर भी रोज चार खुराक दवा रोगी को खिलाएँ। इससे दिन-रात में ९३३ ग्राम तक कफ निकल जाता है। कफ निकलने में कष्ट नहीं होता, जरा खाँसने से ही पका कफ निकल जाता है। कफ निकलने से रोगी कमजोर और दुर्बल अवश्य हो जाता है। इस दवा के प्रभाव से दमा का दौरा कई वर्ष तक बन्द होते देखा गया है।

(२) **भार्गी गुड़**--भारङ्गी की जड़ ४ कि. ६६४ ग्राम, दशमूल ४ कि. ६६४ ग्राम और हरडा एक सौ नग—इन सब चीजों को कलईदार बर्तन में डालकर ४१ किलो ५२ ग्राम जल मिलाकर औटाएँ। १० कि. २६३ ग्राम पानी शेष रहने पर नीचे उतारकर छान लें। हरड़ तो रख लें और बाकी दवाओं को फेंक दें। इस काढ़े में उक्त हरड़ और ४ कि. ६६४ ग्राम गुड़ मिलाकर पुनः औटाएँ। गाढ़ा हो जाने पर सोठ, कालीमिर्च, पीयल, दालचीनी, तेजपान और इलायची--ये ६ दवाएँ प्रत्येक ४६·४ ग्राम और जवाखार २३·२ ग्राम--सबों को चूर्ण करके मिला दें। २८० ग्राम शहद भी मिला दें। एक हरड़ और आधा तोला से २३·२ ग्राम तक चटनी बकरी के दूध के साथ खाएँ। यह दमा की बहुत उत्तम दवा है। सब तरह की खाँसी अच्छी होती है। परीक्षित है।

--भा० प्र०

(३) **कनकासव**--धतुरे का फल, पत्ता, जड़ की छाल और शाखा ४६६·५ ग्राम, अडूसे की जड़ की छाल मुलेठी, पीपल, कण्टकारि, नागकेशर, सोंठ, भारङ्गी जौर तालीसपत्र—इन सात दवाओं का प्रत्येक २३३ ग्राम, धाय के फूल १.८७ किलो मुनक्का २ कि. ३३३, ग्राम चीनी ११·६८५ कि. (दो तुला), शहद ५·८३ कि. (एक तुला) और जल ६० कि० ये सब द्रव्य एक पात्र में रखकर मुंह बन्द करके एक महीना तक रखें। बाद में छान कर बोतल में भर लें। भोजन के बाद १७·५ से २८·५० ग्राम तक पीएँ। इसके निरन्तर सेवन से श्वासरोग में बहुत लाभ होता है। खाँसी में भो बहुत फायदा करता है। --भै० र०

(४) **द्राक्षासव**---मुनक्का ४·६६५ किलो, शहद ४.६७७ किलो, मिश्री या चीनी ४·६७७ किलो, घाय के फूल ९३३ ग्राम शीतल मिर्च (कबाबचीनी), लौंग

जायफल, कालीमिर्च, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, पीपल, चित्रक, चव्य, पीपरामूल, और रेणुका––प्रत्येक ४६·४ ग्राम। पहले मुनक्का को ६० किलो जल में पकाएँ, जब १५ कि. जल शेष रहे. तब उसको उतार लें और शीतल होने पर मुनक्का को खूब मर्दन कर फिर जल को छान लें और एक घड़े में भर दें। शहद और चीनी भी उसमें डाल दें। बाकी दवाओं का मोटा चूर्ण बनाकर उसी घड़े में भर दें और कपड़मिट्टी लगाकर मुंह बन्द कर एक महीने तक रहने दें। एक महीना बाद छानकर बोतल में भर लें। इसकी मात्रा २३·२ ग्राम से ५८·३२ ग्राम तक है।

यह श्वास-कास और मन्दाग्नि में अच्छा फायदा करता है। यह बलवर्द्धक है और कब्जियत को दूर करता है। अर्श आदि रोगों में भी अच्छा फायदा करता है। ––शा० ध० सं०

(५) **श्वासचिन्तामणि रस**––लोह भस्म २३·२ ग्राम, शुद्ध गन्धक ११·६६ ग्राम, अभ्रकभस्म ११·६६ ग्राम, शुद्ध पारद ५·८ ग्राम, स्वर्णमाक्षिक भस्म ५·८ ग्राम, मोतीभस्म ३ ग्राम, स्वर्णभस्म ३ ग्राम ––इन सबको खरल में डाल कर छोटी कटेरी के रस, अदरक के रस, बकरी का दूध और मुलेठी के क्वाथ से क्रमशः भावना देकर १२१·५ मि· ग्रा. की गोली बना लें। बहेड़े के चूर्ण और शहद के साथ देने से श्वास, कास तथा राजयक्ष्मा में बहुत फायदा होता है। पुराने दमा में यह शर्तिया फायदा करता है। ––भै० र०

(६) **श्वासकुठार रस**––शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध मीठा विष, सुहागे कावा, शुद्ध मनःशिला––प्रत्येक ११·६६ ग्राम, सोंठ, पीपल––प्रत्येक ७० ग्राम कालीमिर्च ९२·८ ग्राम लेकर अडूसा के क्वाथ से दिन भर घोंटे और १२१·५ मि. ग्रा. की गोली बना लें। एक गोली प्रातःकाल और एक गोली शाम को लेकर गर्म जल से अथवा कटेली के क्वाथ से सेवन करें।

यह रस सब तरह के पुराने श्वास-कास और सिर-रोग में लाभ पहुँचाता है। इसे धैर्यपूर्वक निरन्तर लेना चाहिए। ––भै० र०

(७) **च्यवनप्राश (रसायन)**—बेलगिरी, अरणी, अरलू, खंभारी, पाटला, बला (खरेंटी), शालपर्णी, पृश्निपर्णी, माषपणी, मुद्गपर्णी, छोटी पीपल, बडी

पीपल, गजपीपल, गोखरू, छोटी कटेली, बडी कटेली, काकड़ासिंगी, भुई आमला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, गिलोय, बड़ी हर्रे, ऋद्धि (अभाव में वराही-कन्द), जीवक, ऋषभक (दोनों के अभाव में विदारीकन्द), कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, महामेदा, (अभाव में शतावरी), छोटी इलायची, नीलोफर, सफेद चन्दन, विदारीकन्द, अडूसे की जड़, ककोली, क्षीरकाकोली, (अभाव में असगन्ध), काकनासा——ये सब दवा प्रत्येक ५८·३२ ग्राम, पके हुए उत्तम बड़े आँवले गिनकर ६२५ तथा जल १५ सेर——इन सब को कलईदार बर्त्तन में डालकर पकाएँ, जब ३·७३ किलो पानी रह जाय, तब चूल्हे पर से उतार लें। आँवलों को एक तरफ रख लें और छानकर ३·७३ किलो पानी को एक जगह रख लें। आँवलों के अन्दर की गुठली निकालकर एक मोटे कपडे से रगडे ताकि आँवलों का छिलका और तन्तु अलग हो जाय। फिर कपड़े से निकले हुए गूदे में तिल तैल ३५० ग्राम और गाय का घी ३५० ग्राम डालकर मन्द-मन्द आग से तब तक भूनते रहें जब तक पानी का अंश बिल्कुल जल न जाय। पानी अंश जलने पर तेल और घी बर्तन में फिर दीखने लगता है। अच्छी तरह पक जाने पर इसे उतारकर नीचे रख दें।

ऊपर जो काढ़ा का पानी ३·७३ किलो लिखा है, उस पानी में ३ किलो मिश्री डालकर चासनी बना लें, तब उसमें भुने हुए आँवले मिला दें और वंशलोचन २३३ ग्राम, पीपल ११६·६ ग्राम, दालचीनी १७·५० ग्राम, तेजपत्ता १७.५ ग्राम, नागकेशर १७·५ ग्राम, छोटी इलायची १७·५ ग्राम——इन सबका महीन चूर्ण कर कपड़छान करके मिला दें। ३५० ग्राम शहद ठंडा होने पर मिलाएँ। यह च्यवनप्राश (रसायन) तैयार हो गया। इसकी मात्रा ११·६६ ग्राम खाकर ऊपर से बकरी या गाय का दूध पीना चाहिए। शास्त्र में इसके बहुत गुण लिखे हैं। च्यवन ऋषि इसको खाकर बूढ़े से जवान हो गये थे। इसलिए इसका नाम च्यवनप्राश हुआ। यह फेफड़े को मजबूत करता है, दिलको ताकतवर बनाता है, पुरानी खाँसी और पुराने दमा में बहुत फायदा करता है, दस्त साफ लाता है। अम्लपित्त में बड़ा फायदेमन्द है। वीर्य-विकार और स्वप्न-दोष नष्ट करता है। राजयक्ष्मा में लाभकारी है। बल, वीर्य, कान्ति, शक्ति

और बुद्धि को बढ़ाता है। हम अनुभव से कह सकते हैं कि उत्तम रीति से बना हुआ च्यवनप्राश सचमुच बहुत लाभ करता है।

(८) श्वासकुठार—शास्त्रोक्त श्वासकुठार रस हम भी व्यवहार करते हैं। जब से इस श्वासकुठार का प्रभाव हमने देखा है, तब से यह निश्चय हो गया है कि श्वास के लिए यह सचमुच कुठार (कुल्हाड़ी) है। १२१·५ मि. ग्रा. संखिया में १·८२ ग्राम खाने का सोड़ा मिलाकर अच्छी तरह पीसकर १६ पुड़िया बाँध लें। एक पुड़िया सुबह और एक पुडिया शाम जल के साथ या मलाई में खिलाएँ। रोगी को अनुकूल होने पर १६ पुड़िया की जगह ८ ही बना सकते हैं। शीत के समय में दमा के रोगी को ४० दिन या ६० दिन यह दवा खिलाएँ। भगवान् की दया से दमा एकदम जाता रहेगा। मेरे अनुभव में दमा रोग में स्थायी लाभ पहुँचाने वाली दवा इससे उत्तम अभी तक नहीं आई है। इस दवा को सेवन करा कर और साथ में रोगी का आहार-विहार ठीक रखकर मैंने कई दमा के रोगियों को आराम किया है। रोगी को अग्नि के बलानुसार ताजा घी भी पिलाना चाहिए। सावधान ! दवा को अच्छी तरह मिलाकर तैयार करें। यदि एक ही खुराक में मात्रा से अधिक संखिया रोगी के पेट में पहुँच जायगा, तो रोगी प्राण-त्याग कर सकता है।

(९) कटेली का रस, अड़ूसे की छाल का रस, चिड़चिड़ी का रस, मुनक्के का काढ़ा और मिश्री—प्रत्येक ४६६·५ ग्राम लेकर औटाएँ और जब गाढ़ा हो जाय, तब उतार लें। मुलेंठी, वंशलोचन, पीपल, भारंगी, आँवला और सुहागे का लावा—ये ६ दवाएँ प्रत्येक २९ ग्राम लेकर चूर्ण कर उसमें मिला दें। ठण्डा हो जाने पर ४६६·५ ग्राम शहद भी मिला दें। ११·६६ ग्राम सुबह और ११·६६ ग्राम शाम को चटाकर ऊपर से बकरी का दूध पीने से दमा और खाँसी में बहुत ही लाभ होता है। यह औषध अनुभूत है।

(१०) ३१४ पृष्ठ के आरम्भ में लिखा हुआ नुस्खा कफकर्तरि दमा के दौरे के समय बहुत लाभ करता है। उसमें इतना परिवर्तन करें कि चार खुराक की जगह आठ खुराक दें और एक-एक या दो-दो घण्टे के अन्तर से पीने को दें

यदि समय पर अपामार्ग का क्षार न मिले, तो अडूसा, कण्टकारि या जवाखार मिला सकते हैं।

(११) सन्निपात-प्रकरण में लिखा अष्टांगावलेह २३·२ ग्राम, अभ्रकभस्म ४८६ मि. ग्रा. और लौहभस्म ४८६ मि. ग्रा. मिलाकर चटाएँ। इससे कफ निकल कर दमा का दौरा जल्दी शान्त हो जायगा।

(१२) सुहागे का लावा, वंशलोचन, छोटी इलायची के बीज और मुलेठी का चूर्ण शहद के साथ चटाने से दौरा में फायदा होता है।

(१३) छोटी पीपलों का चूर्ण शहद के साथ निरन्तर चाटने से दमा में लाभ होता है।

(१४) बाजरा अन्न का पीसा हुआ आटा ११६ ग्राम को आक (मन्दार) के दूध में भावना देकर सुखा ले, उसको मिट्टी की छोटी हंडिया में भरकर हल्की आँच में रखकर भस्म बना लें। यह भस्म २४३ मि. ग्रा. पान में खावें, इससे दमा का दोष शान्त हो जाता है। ५ दिन से ७ दिन तक इसे खाना चाहिए। दवा खाते समय ठंडा पानी न पीवें।

(१५) साबित हल्दी को बालू से हल्की सी भूनकर और चूर्ण बनाकर मात्रा ३ ग्राम से ११·६६ ग्राम तक २ बार पानी के साथ देने से दमा में लाभ होता है।

(१६) शरबत जूफा —सि. यो. सं. पेज ७३

पथ्यापथ्य—रोगी के पेट को बराबर साफ रखें, कब्जियत न रहने दें। रोगी को ठंड से बचाएँ, अधिक देर से पचनेवाली चीजें न खिलाएँ। रात्रि का भोजन जल्दी पचनेवाला और कम होना बहुत जरूरी है। सूर्य छिपने से पहले भोजन कर लेना चाहिए। गर्म पानी पीना लाभदायक है। दूध के सेवन से कफ और खाँसी बढ़ती हो तो दूध के बराबर जल मिलाकर गर्म करें एक या दो पीपल भी जरा-सा कूट कर डाल दें। जब पानी जल जाय और दूध मात्र शेष रह जाय, तब छानकर मिश्री मिलाकर प्रथम उपरोक्त सिद्ध पीपल खाकर दूध पीएँ। इससे कफ-खाँसी की वृद्धि नहीं होगी। खाँसी और दमा फेफड़ों के रोग हैं, इसलिए शुद्ध हवा में शक्ति के अनुसार भ्रमण करना बहुत लाभदायक है। तम्बाखू बिलकुल न पीना चाहिए। बहुत-से रोगियों का ख्याल होता

हैं कि सुबह तम्बाखू पीने से कफ निकलकर शान्ति आ जाती है; परन्तु यह भ्रम है। मैंने बहुत श्वासकास के रोगियों को तम्बाखू पीना छुड़ाया है। दो-चार रोगी तो सिर्फ तम्बाखू पीना छोड़ने के कारण ही बिना किसी दवा के एकदम अच्छे हो गये हैं और तम्बाखू पीना छोड़ने से न्यूनाधिक फायदा तो सभी रोगियों को हुआ।

श्वास रोग पर विशेष अनुभव

मेरे पूज्यपाद आचार्य श्री मणिरामजी महाराज ने मु. रतनगढ़ जि. चुरु (राजस्थान) में श्री मणिराम धन्वन्तरि भवन की स्थापना की है १० लाख से अधिक का अस्पताल है इसमें १५ वर्ष से श्वास रोग पर शोध हो रहा है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि. झाँसी से १३ हजार रुपया प्रतिवर्ष दिया जाता है। मै स्वयं संस्था का ट्रस्टी भी हूँ। श्वास रोगियों पर जो विशेष अनुभव हुए हैं वे संक्षेप से लिख रहा हूँ—

(१) ब्रोंकाइटिस तथा ब्रोंकोन्यूमोनिया का पूर्ण चिकित्सा न होने से फेफड़ों में कफ शेष रहकर श्वासरोग कर देता है इसमें कफ अधिक होता है। इसलिये अर्क (मदार) दूध से भावित बाजरा अन्न के आटा की भस्म या अर्क दूध भावित लवण भस्म बहुत लाभ करती है मात्रा ६१ मि.ग्रा. पान में दो बार ले। बिना नमक जौ की रोटी और गर्म जल लेकर ७ दिन रहे। चमत्कारिक लाभ होता है।

(२) रक्त में श्वेत कणों की वृद्धि (ईसनोफेलिया) से प्रातः सूखा दमा होता है। रक्त परीक्षा से स्पष्ट मालूम हो जाता है इसके लिये संखिया घटित दवा बहुत लाभ करती है। १२२मि.ग्रा. शुद्ध मनःशिला सितोपलादि चूर्ण के साथ देने से बहुत शीघ्र लाभ होता है मनःशिला में संखिया होता है। श्वासकुठार में भी मनःशिला पड़ता है। मल्ल सिन्दूर आदि भी लाभ करती है।

(३) एर्लाजिक (असहिष्णुता) श्वास रोगों में हल्दी बहुत फायदेमन्द है। बालु से भुनकर हल्दी का चूर्ण ६ से १२ ग्राम तक दो बार दें। हल्दी का चूर्ण सभी तरह के श्वास में लाभ करता है।

(४) स्वर्ण घटित दवा—वृ. श्वासचिन्तामणि। बसन्तमालती आदि से कठिन और पुराना श्वास रोग आराम होता है।

(५) श्वासवेग जोर का हो और ऊपरवाली दवाओं से वेग शान्त न हो तो सोम (अफेल्ड्रावालगरिस) चूर्ण १॥ से ३ ग्राम की मात्रा से तुरन्त लाभ हो जाता है।

(६) रतनगढ में पंचकर्म चिकित्सा का भी प्रबन्ध है। जो जटिल तथा बहुत पुराने दमा में सफल होती है।

(७) वृद्धावस्था तथा दुर्बलता के कारण भी क्षुद्र श्वास होता है जिसकी कोई दवा नहीं है। रोगी को सबल बनाना चाहिये। परिश्रम न करें।

हिक्का (हिचकी)

लाल मिर्च गरम मसाला आदि तीक्ष्ण पदार्थों के खाने, उत्तेजक दवा अधिक मात्रा में खाने, अधिक कुनैन खाने और अम्लपित्त रोगों के कारण हिचकी पैदा हो जाती है। हिचकी किसी तरह भी उत्पन्न हो, उसमें पाकस्थली का उत्तेजित होना निश्चित है। बहुत-से रोगों के साथ हिचकी अधिक देखने में आती है तथा स्वतन्त्र, बिना किसी रोग के साथ भी हो सकती है। हिचकी मामूली और भयंकर दोनों तरह की होती है। मामूली हिचकी प्राय: बिना किसी तरह की दवा से अपने-आप आराम हो जाती है। परन्तु हिचकी बहुत कष्ट देती है, यहाँ तक कि रोगी की मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—हिचकी के रोगी को गर्म दूध या गर्म जल के अलावा खाने को कुछ भी मत दें। इससे पाकस्थली की उत्तेजना शान्त होकर हिचकी भी अपने-आप शान्त हो जायगी। दूध या जल भी अधिक गर्म न होना चाहिए। हिचकी के रोगी को पेट भर न खाना चाहिए। आरम्भ में जुलाब देकर दशमूल वगैरह वातनाशक औषधियाँ सेवन करें।

(१) मोर (मयूर) के पंख के चाँदों को जलाकर भस्म कर लें। यह भस्म २४३ मि. ग्रा. और पीपल का चूर्ण १२१·५ मि. ग्रा. शहद में मिलाकर चाटने से हिचकी बन्द हो जायगी।

(२) बिजौर नीबू का रस २३·२ ग्राम में तीन ग्राम नमक मिलाकर पिलाने से हिचकी शान्त होती है।

(३) जल के साथ सोंठ घिसकर सूंघने से हिचकी बन्द होती है।

(४) आक के फूल के चावलों को तेल से चिकना करके निगल जाने से हिचकी बन्द होती हैं।

(५) साँस रोककर प्राणायाम करने से हिचकी में लाभ होता हैं।

(६) हिचकी वाले रोगी का ध्यान निश्चित रूप से एक ओर जाने से भी हिचकी तुरन्त बन्द हो जाती है।

(७) पोटासियम ऑफ परमागमेट ६१ मि. ग्रा. को जल में घोलकर सूंघने से अत्यधिक छीके आने लगती हैं, जिससे छींक की ओर रोगी का ध्यान चला जाता है और हिचकी बन्द हो जाती है।

(८) सोंठ, पीपल, आमला और मिश्री—इन चार दवाओं का महीन चूर्ण शहद के साथ तीन ग्राम चाटने से हिचकी में फायदा होता है।

(९) हालम ११·६६ ग्राम को साबूदाना की तरह पका कर खाएँ; इससे हिचकी बन्द होगी।

नोट——जो दवाएँ श्वास-प्रकरण में लिखी गई हैं, वे सब हिचकी रोग में भी व्यवहार की जाती हैं।

सर्दी (जुकाम)

कारण——सर्दी अथवा जुकाम होने के दो कारण हैं——पूर्व संचित दोष तथा तात्कालिक अपथ्य।

पूर्व संचित दोष——श्वास, पेट की बीमारी (कब्जियत), टॉन्सिल का बढ़ना, नासा-रोग, कमजोरी आदि कारणों से रोगी के सावधान रहते हुए भी बार-बार जुकाम होता रहता हैं।

तात्कालिक अपथ्य—वर्षा के जल में भींगना, ठण्ड लगना, कडी धूप में घूमना, रात्री-जागरण, दिवा-स्वप्न, अजीर्ण, एकाएक पसीना बन्द करना आदि कारणों से तत्काल जुकाम हो जाता है। कस्बे या शहरों में आजकल धूंआ तथा धूल-मिश्रित वायु में अधिक रहना पड़ता है, इसलिए स्वच्छ वायु के अभाव में यह रोग उत्पन्न होता है और देहात की अपेक्षा नगर के बासिन्दे इस रोग से विशेष पीड़ित होते हैं।

इन पूर्व संचित और तात्कालिक अपथ्य के कारण नाक और श्वास-नलिका के कुछ हिस्सों की श्लैष्मिक-कला का प्रदाह होकर जुकाम उत्पन्न हो जाता है। नासा और गले की श्लैष्मिक-कला में शोध होने से सर्दी और ज्वर दोनों हो जाते हैं। जुकाम होने पर बेचैनी, सम्पूर्ण शरीर में दर्द, अंगड़ाइयों का आना, नाक और आँखों से जल बहना, छींक, सिर-दर्द, सिर का भारीपन, खुश्क खाँसी, स्वरभंग, अरुचि आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अगर समय पर उचित उपचार न हो, तो जुकाम से अनेक प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। इन रोगों में मन्द ज्वर, अरुचि, कफ, खाँसी, बलगम गिरना, नाक से दुर्गन्ध आना तथा दुर्गन्धयुक्त स्राव का होना, सिर-दर्द आदि प्रधान हैं। जुकाम एक संक्रामक रोग है, इसलिए रोगी को नासास्राव से दूषित वस्तु तथा उसके श्वास के सम्पर्क में रहने वालों को भी यह रोग हो जाता है।

चिकित्सा—रोग के मूल कारण पर ध्यान रख कर ही चिकित्सा करनी चाहिए। यदि श्वास, पेट की बीमारी, टॉन्सिल-वृद्धि, नासा रोग और कमजोरी के कारण जुकाम हुआ हो, तो जुकाम की चिकित्सा करते हुए उस मूल रोग की चिकित्सा करनी चाहिए; क्योंकि जब तक मूल रोग रहेगा, जुकाम की दवा से कोई लाभ नहीं होगा। तात्कालिक कारणों से होने वाले जुकाम में गर्म जल का सेवन और उपवास सबसे अच्छा इलाज है। अगर रोगी को कब्जियत हो, तो साधारण दस्तावर दवा देकर पेट साफ कर देना चाहिए। साधारणतया जिस रोज जुकाम लगता है, उसके दूसरे रोज नाक अधिक बहकर तीसरे दिन पककर आप-से आप ठीक हो जाता है। जुकाम की आरम्भिक अवस्था में ही गर्म और खुश्क दवा लेने से जुकाम बिगड़ जाता है। फलतः कई रोग पैदा हो जाते हैं। अगर दवा लेने की जरूरत महसूस हो, तो निम्नलिखित दवा लेनी चाहिए—

(१) २३·२ ग्राम खूबकलाँ को ४६६·५ ग्राम पानी में औंटकर दो छटाँक शेष रहने पर छान लें। फिर मिश्री मिलाकर पी जाना चाहिए।

(२) उन्नाब ७ अदद, लिसोड़ा ७ अदद, बनफशा, गाजवाँ, मुलेठी, खशखश और सौंफ—प्रत्येक ६-६ ग्राम, तुरंजबीन ११·६६ ग्राम—सबको २९ ग्राम

लेकर २३३ २ ग्राम पानी में काढ़ा करें। ५८ ग्राम शेष रहने पर पीना चाहिए। मिश्री के साथ मिलाकर आधा सबेरे और आधा शाम को पीना चाहिए। यह जुकाम में तरी और तुरन्त फायदा पहुँचानेवाली श्रेष्ठ औषधि है।

गोजिह्वादि क्वाथ. (सि. यो.) पेज नं० १६

(३) सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, अम्लवेत, चव्य, तालीसपत्र, चित्रकमूल, सफेद जीरा और इमली——प्रत्येक १२·६६ ग्राम, दालचीनी, छोटी इलाइची और तेजपत्र——तीनों मिलाकर ९ ग्राम——इन सबको कूटकर कपड़छान करना चाहिए। फिर २३३ ग्राम गुड़ मिलाकर छोटे बेर के बराबर गोली बना लें। दिन भर में ४-५ गोली चूसने से जुकाम और खाँसी में बहुत फायदा होता है। इस योग का नाम 'व्योषादि बटी' है। —शा० ध०

(४) चन्द्रामृत रस को तालमिश्री या केवल मिश्री के साथ चूसने से सर्दी-जुकाम खाँसी में फायदा होता है।

(५) तुलसी के पत्ते के एक पाव स्वरस में ७०० ग्राम मिश्री मिला चासनी बनाकर बोतल में भर लें। इस शर्बत में से २३·२ ग्राम दिन में तीन-चार बार लेना चाहिए। इससे जुकाम-कास में बहुत फायदा होता है।

(६) चित्रकमूल, आँवला, गिलोय और दशमूल——प्रत्येक १·२७ किलो लेकर जौकुट कर लें। फिर ४६·६५ किलो जल में डालकर उसका काढ़ा बनावें और चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। उस काढ़े को फिर औटाएँ। जब कुछ गाढ़ा हो जाय, तब ९३३ ग्राम बड़ी हरड़ का चूर्ण तथा ९३३ ग्राम गुड़ मिलाकर कुछ देर आग पर रहने दें। उतारने के बाद सोंठ, मिर्च, पीपल, छोटी इलायची, तेजपत्ता, दालचीनी और जवाखार——प्रत्येक १४·६ ग्राम महीन चूर्ण करके मिलाएँ। ठंडा होने पर एक पाव शहद मिलाकर रख दें। इसका नाम "चित्रक हरीतकी" है। यह साधारण और बिगड़े हुए जुकाम की सर्वश्रेष्ठ दवा है। १२·६६ ग्राम दूध या गर्म जल से दोनों समय लेना चाहिए।

(७) बिगड़े और पुराने जुकाम के लिए स्वर्णघटित लक्ष्मीबिलास रस बहुत अच्छी दवा है। इसमें २४३ मि.ग्रा. गोदन्तीभस्म मिलाकर लिया जाय, तो और भी शीघ्र लाभ होता है।

(८) काश्मिरी पाठा और उस्तखद्दूस ११·६६ ग्राम, जटामांसी, गुल-बनपशा ५·८ ग्राम--इन चारों दवाओं का खूब महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। इनको सूंघनी (नस्य) की तरह सूंघने से जुकाम में फायदा होता है।

(९) लक्ष्मीविलास रस पान के रस और मधु के साथ सुवह-शाम लेना चाहिए।

(१०) षड्बिन्दु तैल५-७ बूंद सूंघने से सर्दी जुकाम में बहुत फायदा होता है।

(११) तालिसादि चूर्ण--सि० स० पेज ७७ देखें।

स्वरभंग (आवाज बैठना)

सर्दी, जुकाम, अधिक खाँसी, गले में घाव आदि कारणों से बोलने की शक्ति कम हो जाती है किसी समय तो रोगी की आवाज इतनी कम हो जाती है कि रोगी के बहुत जोर लगाकर बोलने से भी सुनने वाला बिल्कुल नहीं समझ पाता। बहुत-से मनुष्यों की आवाज जन्म से ही इतनी कम होती है कि वह किसी तरह की दवा से भी ठीक नहीं होती। यदि किसी कारण स्वर नष्ट या खराब हो गया हो तो औषध-सेवन से फायदा हो सकता है। गले में कैंसर हो जाने से भी स्वरभंग हो जाता है।

चिकित्सा--(१) रात को बिछावन पर सोते समय १० से २० तक कालीमिर्च और उतने ही बताशे चबाकर सो जायँ। इससे सर्दी जुकाम का स्वरभंग ठीक हो जायगा। कालीमिर्च और बताशे खाकर पानी नहीं पीना चाहिए।

(२) बच का टुकड़ा मुंह में रखकर पान की तरह धीरे-धीरे चबाकर उसका रस पेट में जाने दें। इससे आवाज ठीक होगी। परन्तु बच अधिक मात्रा में नहीं खाना चाहिए, अधिक खाने से कै हो जायगी।

(२-A) एलादि बटी के चूसने से स्वरभंग में लाभ होता है।

(३) गोलमिर्च ७, छोटी इलायची ५, मुलेठी ३ ग्राम, कुलिंजन १॥ ग्राम और गेहूँ की भूसी ११·६६ ग्राम--इन पाँचों दवाओं का काढ़ा २९ ग्राम मिश्री डालकर पीने से आवाज खुल जाती है।

(४) वच, कुलिंजन, बाकुची और कत्था--इनको समभाग लेकर पान के

रस में घोंटकर चने के बराबर की गोलियां बना लें। इन गोलियों के चूसने से आवाज बहुत जल्द ठीक हो जाती है।

(५) सुबह उठते ही २० जौ चबाकर निगल जाएँ। इससे आवाज ठीक हो जायगी।

(६) ब्राह्मी, बच, छोटी हरड़, अडूसे की जड़ की छाल और पीपल इन पाँचों दवाओं का चूर्ण २ से ४ ग्राम तक शहद के साथ चाटने से आवाज ठीक होती है।

(७) वासावलेह या ब्राह्मीघृत का सेवन भी आवाज को ठीक करता है। (वासावलेह कास-प्रकरण और ब्राह्मीघृत उन्माद-प्रकरण में देखिए।)

(८) सर्दी-जुकाम की सभी दवाएं स्वरभंग में लाभ करती हैं।

वमन (कै)

अधिक भोजन, अजीर्ण, अम्लपित्त, कृमिरोग, यकृत् की पीड़ा, स्त्रियों की जरायु की पीड़ा, स्नायुमण्डल का रोग, गर्भधारण, कमजोरी, विष या विष मिली चीजों का उदरस्थ होना, रेल, जहाज, मोटर आदि की सवारी से सफर करना आदि कारणों से पाकस्थली उत्तेजित होकर वमन होता है। कै करने से जब सब पदार्थ पेट से बाहर आ जाता है, तब सूखी कै होने लगती है। सूखी कै से रोगी को अधिक कष्ट होता है, क्योंकि पाकस्थली में आक्षेप होने से बार-बार कै करने की इच्छा होती है, परन्तु कै के साथ कोई वस्तु नहीं आती, बार-बार कष्टमात्र होता रहता है।

चिकित्सा—वमन रोग में केवल वमन बन्द कर देने की दवा देने मात्र से ही कार्य सिद्ध नहीं होता। कारण पर ध्यान रखकर चिकित्सा करने से सफलता मिलती है। विष या विष मिली चीजों के खाने के कारण वमन होता हो तो वमन व दस्त कराएँ। इससे विष बाहर होकर शान्ति मिलेगी। यदि अजीर्ण के कारण वमन होता हो, तो मन्दाग्नि की चिकित्सा करें। इसी तरह अम्ल-पित्त, कृमि, यकृत् की पीड़ा आदि से वमन होने पर मूल रोग का इलाज करें। मूल रोग अच्छा होने पर कै खुद ही अच्छी हो जायगी। गर्भ के कारण होने वाला वमन समय पर खुद ही अच्छा हो जाता है। रेल आदि सवारी के कारण होने-

वाले वमन में खाने को बहुत कम दें और फलों का सेवन अधिक कराएँ। साधारण कै में नीचे लिखी दवाइयाँ बहुत जल्दी फायदा करती है।

(१) अर्क कपूर या अमृतधारा चीनी डालकर देने से प्राय: सब तरह के वमन ठीक हो जाते हैं।

(२) जल के साथ जायफल घिसकर पीने से वमन बन्द हो जाता है।

(३) लौंग ७, छोटी इलायची के छिलके ७ और अदरख ११.६६ ग्रा. को जल के साथ खूब महीन पीसकर २३.२ ग्राम मिश्री मिला दें। फिर २३३ ग्राम पानी में मिलाकर गर्म करें, औटने पर छानकर दूसरे पात्र में रख लें। इस पात्र को जरा-सा गर्म रखें। ५-१० मिनट के अन्तर से एक-एक चम्मच रोगी को पिलाने से सूखी कै तुरन्त अच्छी हो जायगी। वमन में भी फायदा होता है। स्मरण रहे कि रोगी को दिया जाने वाला यह जल निरन्तर गर्म ही रहे, ठंडा न होने पावे। परीक्षित है।

(४) इलायची, लौंग, नागकेशर, बेर की गिरी, धान का लावा (खोई), फूलप्रियंगु, कपूर, सफेद चन्दन और पीपल--इन सब दवाओं का समभाग लेकर चूर्ण करें। तीन ग्राम की मात्रा में समभाग मिश्री और शहद मिलाकर चाटें। इसका नाम 'एलादि चूर्ण' है। यह वमन की अच्छी दवा है। —भैं० र०

(५) सौंफ, पुदीना और बड़ी इलायची—तीनों चीजें ११.६६ ग्राम लेकर काढ़ा बना ले। २९ ग्राम मिश्री डालकर पीने से वमन में लाभ होता है।

(६) छोटी इलायची १०, मुनक्का १०, कालीमिर्च १५, लौंग १०, सेंधा नमक ३ ग्राम, अदरख ५ तोला, मिश्री ५ तोला और भुना हुआ जीरा १ तोला—इन वस्तुओं को महीन कूट करके २३३ ग्राम सौंफ या पुदीना के अर्क में मिलाकर रख दें। कुछ समय के बाद सफेद कपड़े से छानकर बोतल में भर दें। वमन होने पर इस पानी को ११.६६ ग्राम रोगी को पिलाने से कै फौरन बन्द हो जाती है।

(७) बर्फ के टुकडों को मुंह में रखकर चूसने से भी वमन बन्द होता है।

(८) सूखा वमन करने वाले रोगी को भरपेट पानी पिला दें। इससे वमन बन्द हो जायगा; क्योंकि वमन में पाकस्थली संकुचित होती रहती है।

जल के कारण पेट पूरा भर जाता है। इसलिए पाकस्थली संकुचित नहीं हो सकती। फलतः कै बन्द हो जाती है। किसी समय इस क्रिया से बड़ा चमत्कारपूर्ण फल होता है।

(९) रसादि वटी (ज्वराधिकार) की पित्तजन्य वमन में लाभ करती है।

(१०) कपूरकचरी का महीन चूर्ण करवा करके चन्दनादि अर्क से वटी बनाकर देना भी लाभदायक है।

(११) लाजमण्डूर--सि० यो० पेज ४८ देखें

पथ्यापथ्य--जब तक रोगी को वमन होता रहे, तब तक ठंडे पानी के सिवा कुछ न देना चाहिए। एक गिलास पानी में ५८.३२ ग्राम चीनी और नीबू का रस मिलाकर पीना उत्तम है। यदि किसी खास रोग के कारण कै होती हो, तो उसी रोग का पथ्यापथ्य सेवन करना उचित है। पाकस्थली को ठीक रखने के लिए यह आवश्यक है कि भोजन में पेय पदार्थ ही हों। रोटी, दाल, भात, पूड़ी, कचौड़ी, मिठाई आदि चबाने योग्य वस्तु लाभदायक नहीं है। दूध, साबूदाना, खोई, दलिया, खिचड़ी आदि पतली वस्तु खाना लाभदायक है।

मूर्च्छा (बेहोशी)

चलते-फिरते या बैठे-बैठे ही एकाएक गिरकर पूर्ण या आंशिक रूप से ज्ञान-हीन होने का नाम **मूर्च्छा** या **बेहोशी** है। मूर्च्छा होने पर भी रोगी की नाड़ी और साँस ठीक तरह से चलती ही रहती है। यह मूर्च्छा स्वतः या उपाय करने से शीघ्र दूर हो जाती है। पक्षाघात उपस्थित होने पर होने वाली मूर्च्छा बहुत समय तक बनी रहती है।

अत्यन्त चिन्ता-फिक्र, अधिक मद्य पीना, सहसा भय या शोक का होना, मासिक धर्म का रुकना, हृदय की क्रिया-विषमता और अनियमित आहार-आचार आदि करने से मूर्च्छा उत्पन्न होती है। स्नायु-दौर्बल्य विशेष कारण है।

चिकित्सा--रोगी के बेहोश होते ही सर्वप्रथम उसको चैतन्य करने का प्रयत्न करना चाहिए। रोगी के इर्द-गिर्द भीड़ न जमा होने दें; क्योंकि शुद्ध हवा के द्वारा प्रकृति जो स्वतः इलाज करती है, भीड़ के कारण उसमें बाधा

उपस्थित होती है। रोगी के पहने हुए कपड़े ढीले कर दें; विशेषतः कमर का कपड़ा विशेष ढ़ीला कर दें। मुँह पर ठंडे पानी के छींटे मारें, सर पर जल डालें, कपूर, स्मेलिंग साल्ट (Smelling Salt) या अमोनिया सुंघाएं। बिना भींगा पत्थर का उत्तम चूना एक तोला और नौसादर एक तोला अलग-अलग पीसकर शीशी में भर दें और सुगन्ध के लिए जरा-सा कपूर या लवेण्डर डालकर शीशी का कार्क जोर से बन्द कर दें। कुछ समय बाद इसको सूंघने से मूर्च्छा दूर होती है। अगर किसी तरह मूर्च्छा भंग न होती हो, तो कालीमिर्च का महीन चूर्ण करके कागज की नालिका में रखकर रोगी की नाक में फूंक दें और लोहे को गर्म करके रोगी के त्वचा पर रखें। मूर्च्छा दूर होते ही १२१.५० मि.ग्रा. मकरध्वज, ६१ मि. ग्रा. कपूर और शहद के साथ तुरन्त चटा दें इससे फिर मूर्च्छा होने की आशंका न रहेगी। मकरध्वज न हो, तो उत्तम ब्राण्डी २८ मि. लि. या अर्क कपूर ५ बूंद करके पिलाएँ। चैतन्य होने पर रोग का अच्छी तरह निदान करके जिस कारण से मूर्च्छा हुई हो, उसे दूर करें तो मूर्च्छा स्वतः अच्छी हो जायगी। मूर्च्छा रोग में प्रायः स्नायुमण्डल निर्बल हो जाता है। इसके लिए अश्वगन्धारिष्ट २९ ग्राम भोजन के बाद निरन्तर सेवन करें। यह मूर्च्छा को समूल नष्ट करने के लिए सिद्ध योग है। स्त्रियों की मूर्च्छा के लिए हिस्टीरिया-प्रकरण देखना चाहिए। मूर्च्छा के साथ यदि रोगी के हाथ-पैर ठण्डे पड़ जाएँ, तो बोतल में गर्म पानी भरकर हाथ-पैरों के अगल-बगल में रखें। मांस्यादि क्वाथ से भी मूर्च्छा रोग में बहुत लाभ होता है। (सि०यो० पेज १०९ देखें)

पथ्यापथ्य—दूध, दही, घी, ताजी मछली का शोरवा, अण्डे, अच्छे चावल का भात, रोटी, चीनी आदि बलकारक और स्नायुमण्डल-पुष्टि कारक भोजन दें। मद्य, चाय, काफी, तेल, गुड़ और मसालेदार चटपटी चीजें भोजन की दृष्टि से कुपथ्य हैं। रोगी को दिमागी काम न करने दें। शक्ति के अनुसार योग्य व्यायाम जरूर कराएँ।

हिस्टीरिया (Hysteria)

यह रोग कोमल स्वभाव वाली स्त्रियों को प्रायः होता है। पुरुष स्वभावतः ही कठिन स्वभाव के होते हैं। परन्तु पुरुषों में भी कोई-कोई कोमल स्वभाव के

होते हैं। कोमल स्वभाव वाले पुरुष को भी हिस्टीरिया-रोग का होना सम्भव है।

यह रोग प्राय: उन जवान लड़कियों को होता है, जिनके मनमें पूर्ण विश्वास होता है कि हमारी रक्षा करने वाले या सहानुभूति रखने वाले अवश्य हैं। यदि हिस्टीरिया वाले रोगी के मन में यह विश्वास बैठ जाय कि उसकी रक्षा करने वाला या सहानुभूति रखनेवाला जब कोई नहीं है, तो यह रोग तत्क्षण जाता रहे।

जिन जवान स्त्रियों की संभोग-इच्छा तृप्त नहीं होती, उनको ही अधिकतर हिस्टीरिया होती है। इसके अलावा चिन्ता, शोक, भय, पारिवारिक कष्ट, आकस्मिक मानसिक आघात, गर्भमूलक रोग, मासिक धर्म की गड़बड़ी, अजीर्ण आदि कारणों से भी यह रोग पैदा हो जाता है। कहीं-कहीं पति-विद्वेष के कारण भी हिस्टीरिया होती देखी गई है।

लक्षण—हिस्टीरिया रोग का खास ऐसा कोई निश्चित लक्षण नहीं है, जिससे रोग की पहचान बिना संदेह हो सके। किसी रोगी को कोई लक्षण होता है, तो किसी को कोई। एक रोगी में जो लक्षण होते हैं, वे दूसरे में बिल्कुल भिन्न प्रकार के होते हैं। संक्षेप में यह कहा जाय, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिस्टीरिया में किसी भी रोग के लक्षण हो सकते हैं, लेकिन वास्तव में कोई रोग नहीं होता। आज के मनोवैज्ञानिक इस रोग को रोगी द्वारा झूठे ही पैदा हुआ मानते हैं।

हिस्टीरिया का दिमाग से घनिष्ट सम्बन्ध है। दिमाग अधिक परेशान हुआ, तो रोग प्रबल रूप से प्रकट होगा और दिमाग की परेशानी मामूली हुई तो रोग भी मामूली हालत में होगा। इसलिए रोग-परीक्षा करते समय दिमाग पर खास दृष्टि रखनी चाहिए। जो मनुष्य मानसिक स्थिति को अच्छी तरह समझता है, वही इस रोग की परीक्षा और चिकित्सा करने का अधिकारी है। हिस्टीरिया में किसी भी इन्द्रिय में विकार पैदा हो सकता है। परन्तु रोग आराम होते ही उस इन्द्रिय-विकार का कुछ भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। दिमाग ज्ञान और चेतना का केन्द्र है। दिमाग की गड़बड़ी के कारण ही ज्ञानेन्द्रियों में गड़बड़ी पैदा होती है। इसी कारण हिस्टीरिया-रोग में देखने, सूंघने, सुनने, बोलने या छूने में विकार पैदा हो जाता है। किसी हिस्टीरिया-रोग में बगल

की दृष्टि मारी जाती है, तो किसी में सामने देखने की दृष्टि में फर्क हो जाता है। कोई ऊँचा सुनने लगता है, तो कोई बिलकुल ही नहीं सुनता। किसी के बोलने में फर्क हो जाता है, तो किसी की बोली ही बंद हो जाती है। किसी को छूने की शक्ति मारी जाने के कारण चीटी काटने या सुई चुभाने पर भी कुछ मालूम नहीं देता। किसी रोगी की घ्राण-शक्ति मारी जाती है और किसी रोगी की स्वाद-शक्ति लोप हो जाती है। स्नायु-मंडल के विकार के कारण किसी-किसी रोगी में लकवा के लक्षण भी पैदा हो जाते हैं।

हिस्टीरिया में अक्सर वैसे लक्षण पैदा होते हैं, जिनको रोगी ने तन्दुरुस्त हालत में अधिकतर देखा या सुना है। हिस्टीरिया के लक्षण रोगानुसार नहीं, बल्कि रोगी की इच्छानुसार होते हैं। रोगी की मानसिक स्थिति की रोग के लक्षणों में प्रधानता होती है। रोगी की मानसिक स्थिति ठीक होते ही सब लक्षण जाते रहते हैं, उनका कुछ भी प्रभाव शरीर पर नहीं देखा जाता।

हिस्टीरिया का प्रधान लक्षण मूर्च्छा या बेहोशी का दौरा है। यह दौरा २४ घण्टे से लेकर ४८ घण्टे तक निरन्तर होता देखा गया है। बहुत-से रोगियों में बार-बार और जल्दी-जल्दी दौरा होता है। ऐसी अवस्था में होश आते ही कुछ समय के बाद रोगी फिर मूर्च्छित हो जाता है। बेहोशी की हालत में रोगी के दाँत बैठ जाते हैं और शरीर अकड़ जाता है। रोगी हाथ-पैर पटकता है और कभी-कभी मृगी रोग की तरह मुँह से फेन भी आ जाता है। परन्तु हिस्टीरिया रोग में मृगी-रोग की तरह शरीर का नीलापन या आँखों की पुतली नहीं फिरती। मृगी-रोग की तरह इस रोग में एकदम अज्ञानावस्था नहीं होती, रोगी को दौरे की अवस्था में भी कुछ-न-कुछ ज्ञान बना ही रहता है। बेचैनी, चित्तभ्रम, घबराहट, अनिद्रा आदि मानसिक अशान्ति के लक्षण भी होते हैं। मूर्च्छा हिस्टीरिया का निश्चित लक्षण नहीं है, बहुत-से हिस्टीरिया के रोगियों को मूर्च्छा नहीं होती।

चिकित्सा—जैसा कि रोग के लक्षण में कहा गया है कि यह रोग कोमल स्वभाव के मनुष्यों को ही होता है, इसलिए रोगी का दृढ़ संकल्पशील बनना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। रोगी जिस संरक्षक पर निर्भर करता हो, उसके संरक्षण से हटाकर दूसरे के संरक्षण में दे देना उचित है।

बहुत सावधानी से रोगी के मन में यह विश्वास दिला देना चाहिए कि रोगी को खुद ही अपनी देखभाल करनी होगी, संरक्षक कोई नहीं है।

बड़े घरों के बाल-बच्चों का लालन पालन अत्यन्त रखवाली के साथ नौकर लोग करते हैं, जिससे वे बड़े होने पर भी स्वावलम्बी न होकर परावलम्बी ही बने रहते हैं। इस प्रकार के लोग जरा-सी विपत्ति आ जाने पर बेहद घबड़ाकर इस रोग के जाल में फँस जाते हैं। इनकी दशा बड़ी दयनीय हो जाती है। इन पर क्रोध न करके दयापूर्वक उपचार करना विधेय है। एक ऐसे चतुर उपचारक की इस रोग में आवश्यकता है, जो प्रेमपूर्वक रोगी के स्वभाव को दृढ़ स्वभाव-वाला बनावे। अनुभवी वैद्य की ही चिकित्सा होनी चाहिए; क्योंकि इस रोग में दवा से अधिक वैद्य का विश्वास लाभ करता है। रोग का मूल कारण जानकर चिकित्सा होनी चाहिए।

कामवासना की अतृप्ति से रोग हुआ हो, तो उसकी पूर्ति का प्रबन्ध करना विधेय है। मन्दाग्नि के कारण रोग हुआ हो, तो उसकी चिकित्सा होनी चाहिए। मूल कारण पर ध्यान रखकर चिकित्सा करने से अवश्य सफलता मिलती है।

खाने के लिए अश्वगन्धारिष्ट, दशमूलारिष्ट, सारस्वतारिष्ट, चिंतामणि चतुर्मुख रस, लीलाविलास रस, ब्राह्मी घृत, मकरध्वज, स्वर्णभस्म, मोतीपिष्टी, लौहभस्म, आदि अवस्थानुसार देना चाहिए।

मूर्च्छा के समय मूर्च्छा-रोग में लिखा उपचार करना चाहिए। उससे लाभ न हो, तो रोगी को छोड़कर सब लोगों को वहाँ से हट जाना चाहिए। इससे बहुत जल्द रोगी अपने-आप होश में आ जायगा।

हिस्टीरिया-नाशक अनुभूत योग—मकरध्वज, कस्तूरी और शुद्ध मनःशिला—तीनों सम भाग लेकर पान के रस में घोंटकर गोला-सा बनाकर सुखा लेना चाहिए। फिर एरण्ड के पत्तों में लपेटकर धान के ढ़ेर में १५ दिन दबाकर रखना चाहिए। इसकी १२१.५० मि. ग्रा. खुराक शहद के साथ रोगी को चटा देनी चाहिए। यह हिस्टीरिया-रोग में बहुत फायदा करता है।

अपतन्त्रकारि बटी—घी में सेंकी हुई हींग, कपूर, गांजा प्रत्येक ११.६६ ग्रा. खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती २३.२ ग्राम, तगर (यूनानी

आपारून) २३.२ग्रा.–पत्रको बारीक चूर्ण कर जटामांसी के फाण्ट के साथ घोटे। फिर २३.२ ग्रा. की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें। यह हिस्टीरिया-रोग की सबसे अच्छी दवा है। इसकी १-२ गोली दिन में दो-तीन बार आवश्यकतानुसार मांस्यादि काढ़ा के साथ देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

–सि० यो० सं०

मांस्यादि क्वाथ—जटामांसी ११.६६ ग्रा. असगन्ध ३ ग्रा. खुरासानी अजवायन १॥ ग्रा.—इनको जौकुट कर ११६.६४ ग्रा. जल में पकाकर ४६.४ ग्रा. पर कपड़े से छान लें। इसीका नाम 'मांस्यादि क्वाथ' है। हिस्टीरिया, बालकों रहने का आक्षेप तथा निद्रानाश आदि में इसको अनुपान रूप से देना अत्यन्त लाभदायक है। यकृत्-रोग में लिखित अगदक्षार भोजन के बाद देना बहुत लाभकारी है।

–सि० यो० सं०

पथ्यापथ्य—हलका और बलकारक भोजन देना चाहिए। दूध में चीनी की जगह शहद डालना लाभदायक है। दिमाग को स्वस्थ रखने के लिए वीर रस-प्रधान कथा और और बड़े लोगों का जीवन-चरित्र पढ़ना चाहिए। सुबह-शाम स्वच्छ हवा में भ्रमण करना चाहिए। फलों का खाना लाभदायक है।

अनिद्रा-उन्माद-पागलपन तथा भूतोन्माद

वात, पित्त, कफ विकृत होकर शारीरिक रोग पैदा करते हैं वैसे ही सत्व, रज, तम तीनों से मानसिक रोग होते हैं। इनमें सत्व से रोग नहीं होते रज और तम की वृद्धि से मन के रोग होते हैं। मानसिक आवेशों में काम, क्रोध और लोभ तीन प्रबल आवेश है। इनमें एक के अत्यधिक बढ़ने से मनुष्य पागल हो जाता है। शारीरिक रोगों मे वात वृद्धि में पित्त वर्धक दवा सेवन से वात वृद्धि कम हो जाती है वैसे ही कामवासना के अधिक वृद्धि से उन्माद होने पर विपरीत धर्मी क्रोध या लोभ की वृद्धि से कामवासना शान्त होकर रोगी स्वस्थ्य हो जाता है। अत्यधिक क्रोध के कारण उन्माद में कामवासना या लोभ भाव वृद्धि से रोग शान्त हो जाता है। अत्यधिक लोभ के कारण उन्माद होने पर काम-वासना या क्रोध भाव से रोगी को लाभ होता है।

भारतवर्ष में अज्ञानतावश भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, पितर आदि देवता के आवेश से भी पागल जैसी हालत हो जाती है। ये सब मानसिक शक्ति की दुर्बलता से होते हैं। पाश्चात्य शिक्षा से शिक्षितों में भी भयानक मानसिक विकार देखे जाते हैं। वे देवी देवता को नहीं मानते फिर भी मानसिक तनाव से पीड़ित होते हैं। इसमें कई पागल हो जाते हैं। मानसिक रोगी की औषधि द्वारा चिकित्सा के साथ दैवी चिकित्सा भी लाभ करती है। महाशक्ति दुर्गा का आराधन और हनुमानजी की स्तुति से रोगी को शान्ति मिलती है। मूर्ख और व्यवसायी भूत प्रेत झाड़ने वालों से बचना चाहिये। ये लोग अवैज्ञानिक विधि से बहुत से रोगियों के स्वास्थ्य और धन को नष्ट करते हैं।

यह रोग शिक्षित कहे जानेवाले लोगों में विशेष रूप से पाया जाता है। शारीरिक परिश्रम बिल्कुल न करने तथा दिमागी काम अत्यधिक करनेवाले मनुष्य इस रोग के शिकार विशेष बनते हैं। प्रायः ३० से ५० वर्ष की अवस्था के बीच में पागलपन का रोग हो जाता है। पागलपन के रोगी को कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। रोगी खुद नहीं समझ सकता कि वह पागल है, परन्तु उसकी बातचीत से पागलपन प्रकट होता है। पागलपन के रोगी को निद्रा बिल्कुल नहीं आती। यदि कुछ समय तक नींद आती हो या आने लगे, तो शुभ लक्षण समझना चाहिए।

अत्यन्त मानसिक चिन्ता, दुःख, शोक, भय, कार्य में दिन-रात अत्यन्त लिप्त रहना, गाँजा, भाँग, शराब आदि का अधिक व्यवहार करना, अति स्त्री-प्रसंग, माथे में चोट लगना, पुराना आतशक आदि कारणों से पागलपन का रोग उत्पन्न होता है। धतूरा खाकर मरने से बचे हुए आदमी प्रायः पागल हो जाते हैं।

चिकित्सा—देखा गया है कि पूर्ण पागलपन का रोगी बहुत कठिनता से ठीक होता है। इसलिए उत्तम यही है कि रोगी को किसी उत्तम जलवायु वाले अच्छे पागलखाने में भर्ती करा दिया जाय। निम्नलिखित अवस्था में दवा का प्रयोग भी लाभ पहुँचायेगा :—

दिमाग ठीक काम न करे, भूल पर भूल होती जाय, बहुत जरूरी कामों में भी भूल हो, चित्त अस्थिर, चंचलता के कारण किसी काम में जी न लगे, आलस्यभाव, नींद न आवे या बहुत कम आवे, चिन्ताओं का प्रवाह जारी रहे आदि। ऐसी अवस्थावाले नये रोगी की शुरू-शुरू में चिकित्सा करना सफल हो सकता है।

दवा का प्रयोग और उत्तम जलवायु के सेवन के साथ ही साथ जिस कारण से रोग उत्पन्न हो गया हो, उसे तत्काल ठीक कर देना चाहिए। अधिक दिमागी परिश्रम करने के कारण यदि पागलपन के लक्षण प्रकट होने लगे हों, तो रोगी को बिना विलम्ब उस स्थान से हटा देना चाहिए। प्रेम के कारण उन्माद हो, तो प्रेमी का सम्मिलन होना आवश्यक है। कामोन्माद होने पर कामशान्ति विधेय है। जिस कारण से रोग पैदा हो गया हो, उसे छोड़ना प्रधान कर्त्तव्य है। रोगी की सेवा में एक ऐसे चतुर आदमी का रहना जरूरी है, जो बराबर रोगी को सान्त्वना देता रहे।

सारस्वत चूर्ण—कूठ, असगन्ध, सेंधा नमक, अजमोद, सफेद जीरा, स्याह जीरा, सोंठ, कालीमिर्च पीपल, पाठा और शंखपुष्पी—इन ११ दवाओं का प्रत्येक ११.६६ ग्रा. और बच २२१.३६ ग्रा.—सबों का चूर्ण करके ब्राह्मी के रस की तीन भावना दें। यह चूर्ण ३ ग्राम शहद और १॥ ग्राम घी के साथ चाटने से उन्माद में बहुत फायदा होता है। शास्त्र में इसकी प्रशंसा लिखी है। जिन लड़कों की बुद्धि पढ़ने-लिखने में कमजोर होती है, वे इसके खाने से तेज दिमागवाले हो जाते हैं।

—भा० प्र०

चन्द्रावलेह—सि. ९९ देखे।

सर्पगन्धा चूर्ण योग—सि. सं. १०२ देखे।

(२) **ब्राह्मी घृत**—गाय का घी ९३३ ग्रा. ब्राह्मी का रस ३.७३ किलो और बच, कूठ, शंखाहुली तीनों का कल्क २३३ ग्रा.। इन सब को लोहे की कड़ाही में डालकर पकाएँ। जब घी मात्र शेष रह जाय, तब उतारकर छान लें। इसका नाम 'ब्राह्मीघृत' है। ११.६६ ग्रा. यह घृत कुछ समय तक नियमित रूप से सेवन

करने से उन्माद में बहुत फायदा होता है। मृगी, स्वरभंग आदि ठीक होते हैं तथा बुद्धि, मेधा और स्मृति बढ़ती है।

(३) वैद्यनाथधाम के जंगल में धनबरुआ या धवलबरुआ (सर्पगन्धा) नाम की एक जड़ी होती है। यह जड़ी बिहार और यू०पी० दोनों राज्यों के हिमालय की तराई में बहुत होती है। सर्पगन्धा इसका प्रसिद्ध नाम हैं। बंगाल में छोटी चाँदर के नाम से यह मशहूर है। इस जड़ी का चूर्ण ३ ग्राम ५८.३२ ग्रा. गुलाबजल में दिन भर भिगोकर सोते समय पी जाएँ। दिमागी दोष के कारण नींद न आती हो या कम आती हो, तो उसके लिए यह सर्वोत्तम है। Potassium bromide में नींद लाने के लिए गुण के साथ और अनेक दुर्गुण हैं, परन्तु इस जड़ी में दुर्गुण बिल्कुल नहीं हैं। यह निद्रा की निर्दोष दवा है। उन्माद के रोगी को भी नींद लाने की शक्ति इस जड़ी में देखी गई है। नींद आने से पागलपन में निश्चय ही फायदा होता है। पागलपन की इससे अच्छी दवा दूसरी नहीं है। हिस्टीरिया और न्यूरेस्थीनिया (भ्रम रोग) में भी बहुत लाभदायक है। ब्लड-प्रेशर देखकर दवा दें—ब्लडप्रेशर कम हो तो इसका प्रयोग न करें।

(४) ब्राह्मी की ताजी पत्तियाँ ३ ग्राम (सूखी १ ग्राम), १५ कालीमिर्च मिलाकर पीसें और जल के साथ पी जाएँ। इससे दिमाग ठीक होता है। ११.६६ ग्रा. ब्राह्मी के रस में ११.६६ ग्रा. शहद मिलाकर पीने से भी दिमाग दुरुस्त होता है।

(५) बच का चूर्ण १ ग्राम शहद में मिलाकर चाटें। इससे बुद्धि ठीक होगी। बच का चूर्ण अधिक खाने से कै होने का भय रहता है।

(६) बकरी का मूत्र २३.२ से ४६.४ ग्राम तक जरा-सी भुनी हींग मिलाकर पीने से उन्माद में शान्ति आ[illegible]।

(७) सिर के बाल को उस्तरे से अच्छी तरह मुड़ाकर निरन्तर नारायण तेल की मालिश करें। इससे दिमाग ठीक होता है।

(८) ताजा शंखपुष्पी का रस या सूखी हुई शंख पुष्पी के चूर्ण से भी निद्रा आती है; मेधा बढ़ती है।

पथ्यापथ्य— पुष्टिकर विटामिन प्रधान भोजन और उचित व्यायाम करना चाहिए। पहले ही लिखा जा चुका है कि रोगी के पास एक चतुर मनुष्य

का रहना बहुत जरूरी है। उसका अभिप्राय यह है कि उन्माद मानसिक रोग है और उसके लिए मानसिक भोजन भी होना जरूरी है। जैसे उत्तम ज्ञान, सांसारिक अनुभव, श्रेष्ठ पुरुषों की गाथाएँ आदि सुमधुर वाक्यों का सुनाना अमृत समान हैं। मानस रोगों में ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि द्वारा चिकित्सा का विधान है।

अपस्मार (मृगी रोग)

एकाएक चिल्लाकर या इसी तरह चुपचाप मृगी का रोगी बेहोश होकर गिर पड़ता है। रोगी को गिरने का जरा भी ख्याल नहीं रहता। किसी-किसी को मृगी का दौरा होने से पहले इस रोग का पूर्वाभास होता है। जैसे—सिर घूमना, अँधेरा छा जाना, कान सों-सों करना, सिर में कीड़े रेंगते-से मालूम होना, सिर-दर्द आदि। शरीर का काँपना, गर्दन का कड़ा और टेढ़ा होना, आँखों की पुतलियों का नीचे आना या ऊपर चढ़ जाना, हाथ-पैरों का इधर-उधर डालना, पसीना निकलना मुँह से झाग आना आदि लक्षण मृगी रोग में पाये जाते हैं। मुंह से फेन (झाग) आना मृगी रोग का प्रधान लक्षण है। २०-३० मिनट तक मृगी के वेग से रोगी छटपटाता रहता है। बाद में एकदम शान्त हो जाता है। फिर कुछ समय के बाद रोगी को चेतना प्राप्त होती है। मृगी का रोग पुराना होने पर रोगी को लकवा मार जाता है या रोगी पागल हो जाता है।

हिस्टीरिया और मूर्च्छा-रोग में भी बेहोशी होती है; परन्तु उन रोगों में मुंह से झाग (फेन) आना और शरीर काँपना—ये दो लक्षण नहीं होते।

चिकित्सा—मूर्च्छा दूर करने के जो उपाय बतलाये हैं, उन उपायों से मूर्च्छा दूर करनी चाहिए। वेग शुरू होते ही दाँतों के बीच कपड़े की गड्डी या कोई नरम चीज—कार्क आदि बना के रख देनी चाहिए, ताकि जीभ कटने का भय न रहे। उन्माद रोग की तरह इस रोग का आराम होना भी महा कठिन है। महापैशाच घृत और स्मृतिसागर रस देना चाहिए। इससे वेगों में फायदा होता है याने दौरे का समय बढ़ जाता है। समय-समय पर निम्नलिखित दवाओं से भी लाभ होता है:—

(१) गौ का घी, दूध, दही, मूत्र और गोबर समभाग घोलकर "पंचगव्य" कहा जाता है। एक-दो वर्ष तक रोज प्रातःकाल ११६.६४ ग्रा. पंचगव्य पीने से मृगी में फायदा होता है। पंचगव्य द्वारा दो-तीन रोगी अच्छे हुए हैं।

(२) उन्माद-प्रकरण में लिखा "सारस्वत चूर्ण" और "ब्राह्मी घृत" मृगी रोग में लाभ पहुँचाता है। बच का चूर्ण भी लाभदायक है। अपतंत्रक वटी भी लाभ करती है।

(३) कई उत्तम वैद्यों का ऐसा मत है कि खटमलों को मारकर उनके खून का नस्य लेना मृगी में लाभदायक है।

(३) खर मूत्र का प्रयोग भी लाभ करता है।

(५) **अश्वगन्धारिष्ट**—असगन्ध २.९२ किलो मूसली १.२ किलो, मजीठ, बड़ी हरड़, हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, रास्ना विदारीकन्द, अर्जुन की छाल, नागरमोथा और निशोथ–प्रत्येक ५८३.६४ ग्राम अनन्तमूल, श्यामलता, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, बच और चित्रक–प्रत्येक ४६७ ग्राम—इन सबको कूटकर ११९.३६ किलो जल में औटाएँ। जब १५ किलो जल शेष रहे, तब छानकर एक घड़े में भर दें और नीचे लिखी दवाओं को कूट-छानकर उसी में डाल दें।

धाय के फूल ९३३ ग्रा. शहद ११.६७ किलो, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल–तीनों मिलाकर ११६.६४ ग्रा. दालचिनी, इलायची, तेजपत्र—तीनों मिलाकर २३३ ग्रा. फूल प्रियंगु २३३ ग्रा. और नागरमोथा ११६.६४ ग्रा.।

फिर घड़े के मुंह पर सिकोरा लगाकर कपड़मिट्टी कर दें और एक महीने तक पड़ा रहने दे। इनके बाद छानकर बोतलों में भर दें और २९ ग्राम की मात्रा में रोगी को पिलाएँ। यह अरिष्ट अपस्मार, उन्माद, मूर्च्छा, यक्ष्मा तथा वायु के प्रत्येक रोग में निःसंदेह लाभ पहुँचाता है।—**भै० र०** (किंचित्परिवर्तित)

(५) **स्मृतिसागर रस**—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, हरिताल भस्म (अभाव में रसमाणिक्य), शुद्ध मनःशिला ताम्र भस्म—प्रत्येक सम भाग लेकर बच के क्वाथ की २१ भावना देनी चाहिए। फिर २१ ही भावना ब्राह्मी के क्वाथ का भी

दें। इसके बाद मालकाँगनी के तेल की भावना देकर १२१.५० मि. ग्रा. की गोली बना लें और पंचगव्य या महापैशाचिक घृत से सुबह-शाम चाटें। यह अपस्मार, मूर्च्छा, उन्माद आदि की बड़ी अच्छी दवा है।
—यो० र०

पथ्यापथ्य—पुष्टिकारक भोजन और खुली हवा में व्यायाम करने से मृगी रोग में लाभ होता हैं। भय, शोक, चिन्ता आदि न करनी चाहिए। रोगी को अकेले नदी, कुआँ, आम सड़क आदि जगहों पर न जाना चाहिए और न घोड़े, साइकिल आदि की ही सवारी करनी चाहिए। अग्नि के पास बैठना, पहाड़ या वृक्ष आदि पर चढ़ना भी मना है।

(६) वातकुलान्तक रस—सि० यो० सं० (पृष्ठ १०७ देखें)

वातव्याधि

वातव्याधि शब्द से सभी वात-रोग समझना चाहिए। ८० प्रकार के वात-रोगों में प्रायः होनेवालों के नाम लिखे जाते हैं। ठोड़ी का जकड़ना, मिनमिनापन, स्वाद का नष्ट होना, बहरापन, सुनबहरी (शुन्यता) आफरा, मुँह का टेढ़ा होना होना, ग्रीवा स्तम्भ, कमर का दर्द, एक पैर का दर्द, पैर की कपालिका का बड़ा होना, समूचे शरीर का डंड़े की तरह जकड़ जाना, आक्षेप (काँपना), भीतर या बाहर की तरफ झुक जाना, धनुष्य की तरह टेढ़ा होना पक्षापात (लकवा), दर्द, चित्त-चांचल्य आदि। पक्षापात और ग्रन्थिवात रोग बहुत होते हैं तथा इनकी चिकित्सा भी गम्भीर है, इसलिए उनको अलग ही लिखा गया है।

ठंड़े और रूखे पदार्थों का खाना उपवास, कम खाना, अधिक स्त्री-प्रसंग, बहुत जागना, मल-मूत्र आदि वेगों का रोकना, भय, शोक या चिन्ता का अधिक होना, चोट लगना, शरीर से खून का अधिक निकल जाना, अधिक कसरत, अधिक भ्रमण, रस, रक्त आदि धातुओं की कमी आदि कारणों से वायु कुंपित होकर ऊपर लिखे रोग पैदा कर देता है। शरीर में चर्बी अधिक होना भी वात-रोगों का कारण है।

चिकित्सा—सभी तरह के वात रोगों में सेंकना और मालिस करना बहुत

अच्छा फायदा करता है। सेंकने की विधि यह है कि ईंट को खूब गर्म करें। फिर पानी के छींटे देकर कुछ ठंडी कर इस ईंट को सूती या ऊनी कपड़े में लपेट कर वायु के स्थान पर सेक करें, वातघ्न तैल मालिश करते समय हाथ से सेक करने से बहुत फायदा होता है। वातघ्न तैल, जो आगे लिखे जाएंगे उनका मर्दन वात-व्याधि में बहुत लाभकारी हैं। रबड़ की थैली में गर्म पानी भर सेकना भी लाभदायक है।

स्वेद अर्थात् पसीना लेना भी वातव्याधि में बहुत अधिक गुण करता है। वैद्यक-शास्त्र में स्वेद लेने की अनेक विधियां लिखी हैं। मैंने नीचे लिखी डा० लुईकुनी की स्वेद-विधि से बहुत उत्तम अनुभूत की है। डा० लुईकुनी का इस विधि से सभी रोगों के आराम करने का दावा हैं। परन्तु मैंने सिर्फ वातव्याधि पर इस विधि को अजमाया है, जो बहुत गुणकारी सिद्ध हुई है। रोगी को नग्न करके बिना बिस्तरे की खाट पर सुलाकर सिर के नीचे तकिया रखें और मुंह को छोड़कर सारे शरीर को कम्बल से अच्छी तरह ढंक दें। तीन घड़ों में वातघ्न दवा एरण्ड, रास्ना, प्रसारणी आदि डालकर औंटाएं। जब भाप जोरों से उठने लगें, तब रोगी की खाट के नीचे एक घड़ा पीठ, एक कमर और एक पैरों के निचे घड़ा रखें। घडों के मुंह पर बर्तन रख दे, ताकि सहसा जोर की भाप से रोगी व्याकुल न हो जाय। यदि आवश्यकता मालूम हो, तो घड़े से नीचे आग भी रख दें। इस प्रकार भाप के कारण तमाम शरीर से पसीना अच्छी तरह चूने लगेगा। पहले सूखे मोटे तौलिये से शरीर के पसीने को पोंछकर तुरन्त ठंड़े पानी में भिगोये हुए तौलिये से समूचे शरीर को रगड़ डालें, जिससे गर्म हुआ शरीर ठंडा हो जाय। फिर तुरन्त कपड़े पहन कर यदि रोगी घूमने लायक हो, तो घूमकर शरीर को गर्मा ले। घूमने की सामर्थ्य न हो, तो गर्म कपड़े से शरीर को गर्म कर ले, पसीना आते हुए गर्म शरीर को ठंडे पानी में भिगोये तौलिये से पोंछने में भय का कोई कारण नहीं है। पूरा लाभ तभी होता है, जब पसीने के बाद तुरन्त ठंडे जल के तौलिये से शरीर को मला जाय। इससे तमाम शरीर के छिद्र खुल जाते हैं और रोग में बहुत जल्द आराम होता

हैं। इस प्रकार स्वेदन-मर्दन और सेंक से वातव्याधि में बहुत लाभ होता है। निम्नलिखित दवाओं का प्रयोग अनुभूत है।

(१) **रास्नादि क्वाथ**–रास्ना, पुनर्नवा सोंठ, गिलोय और एरण्ड की जड़ की छाल का काढ़ा सब तरह की वातव्याधि, कमर, संधि आदि की पीड़ा में लाभदायक है।

(२) **रास्नादि चूर्ण**–रास्ना, पुष्करमूल, सहजना, बेलगिरी, चित्रकमूल की छाल, सेंधा नमक; गोखरू और पीपल—इन ८ दवाओं का चूर्ण १॥ ग्राम, घी के साथ चाटने से वातरोग शमन होता है।

(३) लहसुन को पीसकर तिल तैल में मिलाकर खाने से वात-रोग-शीघ्र आराम होता है। परिक्षित है।

(४) रेंडी के बीज को पीसकर और सोंठ मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से कमर का दर्द दूर होता है।

(५) चोपचीनी और असगन्ध का चूर्ण बराबर मात्रा में मिश्री मिलाकर सेवन करने से कमर का दर्द दूर होता है।

(६) गुग्गुल २ ग्राम, त्रिफला और गिलोय के काढ़े के साथ निरन्तर सेवन करने से पैर की कापालिका का बड़ा होना (क्रोष्टुशीर्ष) अच्छा होता है।

(७) **षड्धरण योग**–चित्रकमूल की छाल, इन्द्रजौ, पाठा, कुटकी, अतीस और हरड़–इन दवाओं का चूर्ण वातव्याधि में विशेष लाभ पहुँचाता है। मात्रा ३ माशा; गर्म जल से दें। —भा० प्र०

(८) **त्रिफलागुग्गुलु**—हरड़, बहेड़ा और आँवला—इन तीनों के बराबर उत्तम गुग्गुलु मिलाकर और रेंडी का तेल दे-देकर लोहे के इमामदस्ते में खूब कूटे। जितनी कुटाई होगी, उतना ही अधिक लाभ होगा। इसकी ३ माशा की गोलियाँ बनाकर गर्म दूध के साथ सेवन करें। इससे कमर, पीठ, गठिया आदि के दर्द में बहुत लाभ होता है। अमावात में भी लाभ होता है। यदि इसमें शुद्ध गन्धक त्रिफला के बराबर और मिला दिया जाय, तो यह वातरक्त की भी बढिया दवा हो जाती है। हमारा अनूभूत है।

(९) **महा योगराज गुग्गुलु**—सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रकमूल की

छाल, भुनी हुई हींग, अजमोद, सरसों, स्याह जीरा, सफेद जीरा, रेणुका, अतीस, भारङ्गी, बच, मूर्वा-मूल, इन्द्रजौ, पाठा, वायबिडंग, गजपीपल और कुटकी—इन २० दवाओं का प्रत्येक ३-३ ग्राम, त्रिफला ११६.६ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु १७४.७० ग्राम, वंगभस्म, चांदी-भस्म, सीसा (नाग) -भस्म, लौह-भस्म, अभ्रक-भस्म, मण्डूर-भस्म और रससिन्दूर—इन ७ दवाओं का प्रत्येक ४६.४ ग्राम (यदि सब भस्म न मिल सकें, तो बिना भस्म के भी तैयार कर सकते हैं; परन्तु भस्मवाला गुग्गुलु बहुत अधिक गुण करता है)—इन सबों को रेंडी का तेल दे-देकर लोहे के इमामदस्ते में ५-७ रोज खूब कुटवाएँ। भस्म रहित की ३ ग्राम और भस्म सहित की एक ग्राम की गोलियाँ बना लें। इसका नाम महा 'योगराज गुग्गुल' है। यह बात रोगों की संसार-प्रसिद्ध दवा है। जो रोगी वात रोग के कारण घूमने-फिरने लायक न रहा हो, वह भी इसके सेवन से नीरोग हो जायगा। इसके भिन्न-भिन्न अनुपान नीचे लिखे जाते हैं। इस योग में भस्म न डाली जाय तो उसका नाम केवल—"योगराज गुग्गुलु" होगा। —शा० ध०

(१) **अनुपान**—वात-रोग में—रास्नादि काढ़ा या गर्म दूध के साथ, (२) प्रमेह में—दारुहल्दी के काढ़े के साथ, (३) वातरक्त में—गिलोय के काढ़े के साथ, (४) पाण्डु रोग में—गोमूत्र के साथ, (५) मेदोवृद्धि में—शहद के साथ, (६) कोढ़-रोग में—नीम के छाल के काढ़े के साथ, (७) शोथ और पेट-दर्द में—पीपल के काढ़े के साथ, (८) नेत्र-रोग में—त्रिफला के काढ़े के साथ, (९) पेट-रोग में—पुनर्नवादि काढ़े के साथ, (१०) पित्त-रोग में—काकोल्यादि काढ़े के साथ और (११) कफ-रोग में—आरग्वधादि काढ़े के साथ दें।

विशेष गुण—इससे पुरुषों के वीर्यदोष और स्त्रियों के रजोदोष आराम होते हैं। इससे बवासीर, संग्रहणी, वायुगोला, मृगी, मन्दाग्नि, अरुचि आदि में बहुत फायदा होता है।

पंचामृत लौह गुग्गुलु—सि. १०४ रसोन पिण्ड सि. सं. पेज १०६

वातहर उपनाह— सि. ११५

(१०) **कैशोर गुग्गुलु**—त्रिफला २.८किलो और गिलोय ९९३ग्राम को कूटकर

लोहे की कड़ाही में २२·३९ किलो जल मिलाकर काढ़ा बनाएँ। जब ११·२० किलो जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लें। उस काढ़े में ९३३ ग्राम उत्तम गुग्गुलु डालकर मन्द आग में पकाएँ। जब गुग्गुलु गलकर द्रव हो जाय, तब छानकर उसको फिर चूल्हे पर चढ़ाकर मन्द आग से औटाएँ और करछुली से चलाते रहें, जिससे जलने या लगने का भय न रहे। जब गुग्गुलु गाढ़ा याने गुड़ पाक के समान हो जाय, तब कड़ाही से निकाल लें। फिर उसमें नीचे लिखा चूर्ण मिला दें।

त्रिफला ९३ ग्राम गिलोय ४६·४ ग्राम सोंठ, कालीमिर्च और पीपल——प्रत्येक २३·२ ग्राम, वायविडंग २३·२ ग्राम, जमालगोटे की जड़ ११·६६ ग्राम, निसोथ ११·६६ ग्राम इन सब दवाओं का चूर्ण करके ऊपर वाली गुग्गुलु में मिला दें और ३-३ ग्राम की गोलियाँ बना लें। इसे दूध, गर्म जल या मंजिष्ठादि क्वाथ के साथ खाना चाहिए। इससे वात रोग और सब तरह का कोढ़, वातरक्त, रक्तविकार, फोड़े-फुन्सी, नासूर, भगंदर आदि नष्ट होते हैं। ——शा० ध०

(११) **एरण्ड पाक**——एरण्ड के बीजों के छिलके अलग करके ९३३ ग्राम लें, उनको महीन पीस कर ७ किलो दूध में डालें, चूल्हे पर चढ़ा कर मन्द-मन्द आग से खोआ बना लें। इस घन-द्रव्य को ४६७ ग्राम घी से अच्छी तरह भून लें। इसमें १·८७ किलो चीनी की कड़ी चासनी मिलाकर नीचे लिखी दवाओं का चूर्ण और मिला दें।

सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागकेशर, पीपलामूल, चित्रक, चव्य, सोआ, सौंफ, कपूरकचरी, बेल गिरी, अजवायन, स्याह जीरा, सफेद जीरा, दारुहल्दी, असगन्ध, खरेटी (बला), पाठा, हाउबेर, वायबिडंग, पोहकरमूल, गोखरू, कूठ, त्रिफला, देवदारु, काला विधारा, एलुआ और शतावरी-इन सब दवाओं का प्रत्येक ११·६६ ग्राम लेकर महीन चूर्ण करके मिला दें। यह सब तरह की वातव्याधि में बहुत फायदा करता है। आमवात, शोथ, उदररोग आदि में भी फायदा होता है जिनको सख्त कब्जियत रहती हो, शुष्क गांठ-गांठ करके मल आता हो उसमें विशेष लाभदायी है। मात्रा——१ से २३·२ ग्राम तक गर्म दूध या जल के साथ देना चाहिए। माजूम कुचला——११६ (सि० यो०)

(१२) **अमरसुन्दरी बटी**——सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, रेणुका, पीपलामूल, चित्रक, लौह-भस्म, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर,

शद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सिंगीमोहरा, वायबिडंग, अकरकरा, नागरमोथा--इन २० दवाओं का प्रत्येक ११·६६ ग्राम, पुराना गुड़ ४६७ ग्राम—सब यथाविधि मिलाकर चने के बराबर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ जल के साथ खाने से मृगी, सन्निपात, कास, श्वास, उन्माद और ८० तरह के वातरोगों को नष्ट करती हैं। ये गोलियाँ मारवाड़ प्रान्त में बहुत प्रसिद्ध हैं। मोतीझरा (सन्निपात ज्वर) पर अच्छा लाभ करती हैं। सन्निपात आदि में अनुपान रूप से दशमूल का काढ़ा विशेष लाभदायक है। --यो० चि०

(१३) **नारायण तैल**---३·७३ किलो तैल को लोहे की बड़ी कड़ाही में डालकर खूब औंटाएँ। कच्चा रहने से उफान का भय रहता है। फिर तेल का संस्कार करें। बाद में कूठ, इलायची, रक्तचन्दन, छारछरीला (शैलेय), बच, जटामांसी, सेंधा नमक, असगन्ध, खरेंटी, रास्ना, सौंफ, देवदारु, शालपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी और तगर---इन १७ दवाओं का प्रत्येक ४६·४ ग्राम लेकर जल के साथ कल्क बना लें। इस कल्क को १५ किलो पानी में मिलाकर तेल में डालकर पकाएँ। पानी जल जाने पर १५ किलो दूध और ३·७३ किलो शतावरी का रस डालकर फिर पकाएँ। गोखरू अतिबला, नीम की छाल, अरणी, पुनर्नवा, प्रसारणी, सोनापाठा, असगन्ध, खरेटी(बला), बेल की छाल, पाटला, छोटी कटेली और बड़ी कटेली---इन १३ दवाओं का प्रत्येक ४६७ ग्राम लेकर ६० किलो पानी डालकर औंटाएँ। १५ किलो जल शेष रहने पर छानकर उपरोक्त तेल में डालकर पकाएँ। आखिर में जब तेलमात्र शेष रह जाय, तब गर्म-गर्म तेल को मोटे कपड़े से छानकर रख लें। जब तेल का सब पानी जल जाता है, तब तेल के कल्क को अग्नि में डालने से शब्द नहीं करता। दूसरे, अँगुलियों से मलने पर बत्ती-सा हो जाय, तो समझें कि तैल तैयार हो गया है। यह 'नारायण तेल' बहुत काम की चीज है। वात व्याधि में इसकी मालिश से बहुत ही बढ़िया फल होता है। शरीर का सूखना, पक्षाघात (लकवा), फालिज, गठिया, सम्पूर्ण शरीर का दर्द आदि ८० प्रकार के वात रोगों में कोई भी वात-रोग हो, इसकी मालिश से निश्चय फायदा होता है। हमारा बहुत बार का परीक्षित है। इसकी १० से २० बूंद खायी भी जाती है। —भा० प्र०

(१४) **विष तैल**—९३३ ग्राम सरसों के तेल को खूब औंटाकर ठण्डा कर रस-कपूर, अजवायन, जावित्री, अफीम, मदार की जड़ की छाल, कनेर की जड़ की छाल, गुंजा, तेलिया मीठा विष, कुचला, धतूरे का फल, कायफल, लहसुन, रेंडी की जड़ की छाल और तम्बाकू--इन १४ दवाओं का प्रत्येक ११.६६ ग्राम लेकर जल के संयोग से कल्क बनाकर और ९३३ ग्राम धतूरे का रस और मिला दें। इस कल्क को तेल में डालकर पकाएँ। तेल में सब दवा जल जाने पर छानकर बोतल में भर लें। जिस रोगी से चला-फिरा नहीं जाता हो, इसके मर्दन से वह भी ठीक हो जाता है। कठिन वात रोगों की यह उत्तम दवा है।

(१५) **संखिया का तैल**—जावित्री, जायफल, लौंग, कालीमिर्च और दालचीनी--इन ५ दवाओं का प्रत्येक ४६.४ ग्राम लेकर महीन चूर्ण करें। एक आस्मानी रंग की आतसी बोतल पर तीन कपरौटी करके उसमें आधा चूर्ण भर दें। बीच में संखिया के तीन तोले का चूर्ण डालकर उसके ऊपर गुग्गुलु और गन्धक ६-६ ग्राम डाल दें। तदुपरान्त शेष चूर्ण भरकर झाड़ू की पतली सींकों से बोतल का मुंह बन्द कर दें और पाताल-यन्त्र की विधि से तेल निकाल लें, जल जैसा तेल निकलेगा। यह तेल बहुत उग्र और तत्काल फल दिखाने वाला है। वात-वेदना में १० बूंद यह तिल तेल में मिलाकर लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होगा। नीम के पत्तों की शलाका (सींक) तेल में डालकर पान में रगड़ दें। उस पान के खाने से दमा में तत्काल लाभ होता है। बराबर खाने से बल की वृद्धि होती है। नपुंसकता में इन्द्रिय का मुंह छोड़कर मालिश करे तथा एक-एक बूंद खाने को दें--आराम होगा। यह तैल प्रत्येक वैद्य के पास रहना चाहिए। १ पंचगुण तैल २ वातघ्न लेप के लिये सिद्धयोग संग्रह पेज ११४ देखें।

(१६) ४६७ ग्राम सरसों का तेल चूल्हे पर चढ़ाएँ और उसमें धीरे-धीरे २३३ ग्राम कायफल का चूर्ण जला दें। फिर छानकर तेल की मालिश करें और उस जले हुए कायफल की पोटली बनाकर तवे पर गरम करके सेक करें। यह गृध्रसी वात के लिए बहुत लाभकारी है। हारसिंगार (पारिजात) वृक्ष की पत्ती ११६.६४ ग्राम को ९३३ ग्राम जल में पकावें। ४६७ ग्राम पानी रहने पर उतार कर १२१.५० मि.ग्रा. केशर घोट कर मिला दें। २९ ग्राम की मात्रा में दो बार दें।

यह गृध्रसी वात की दिव्य दवा है। गृध्रसी (साइटिका) का भयानक दर्द एक सप्ताह में निश्चित रूप से कम हो जाता है, ४० दिन में पूर्ण आरोग्यता होती है। मेरा बहुत अनुभव है।

(१७) **कुचले की गोलियाँ**—शुद्ध कुचला ५८ ग्राम और सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आँवला तथा लोहबान के फूल--इन ७ दवाओं के प्रत्येक ११.६६ ग्राम को जल के संयोग से मटर के बराबर गोलियाँ बना लें। यह सब तरह के वात रोगों मे बहुत लाभ पहुँचाती है। विशेषकर अग्नि को बहुत प्रबल करती है।

(१८) **चतुर्मुख रस**—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह-भस्म, अभ्रक-भस्म, ये चारों चीजें प्रत्येक ११.६६ ग्राम और सोना-भस्म ३ ग्राम--सबको घीकुमार के रस में घोंटकर एरण्ड के पत्तों में लपेट कर ३ दिन धान की ढेर में रक्खें। फिर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। शहद और त्रिफला के पानी के साथ लेने पर सब तरह के वात-विकार नष्ट होते हैं। —भै० र०

(१९) **वातगजांकुश**—रससिन्दूर, शुद्ध गन्धक, लोह-भस्म, स्वर्णमाक्षिक, शुद्ध हरताल, बड़ी हरड़, काकड़ासिंगी, शुद्ध मीठा विष, सोंठ, मिर्च, पीपल, अरणी और सुहागे का लावा-- इन १३ दवाओं को समभाग लेकर गोरखमुण्डी और निर्गुण्डी के रस में एक-एक दिन खरल करके २४३ मि.ग्रा. की गोलियाँ बना लें। पीपल का चूर्ण और मंजीठ का काढ़ा के अनुपान से लेने पर ये गोलियाँ वातव्याधि में बहुत लाभ पहुँचाती हैं। (आ० सा० सं०)

(२०) **वृहद्वातचिन्तामणि रस**--स्वर्ण भस्म १ भाग, रौप्य भस्म २ भाग, अभ्रक भस्म २ भाग, मोती की भस्म या पिष्टी ३ भाग, प्रवाल की भस्म या पिष्टी ३ भाग, लोह-भस्म ३ भाग, कस्तूरी १ भाग, अम्बर १ भाग, चन्द्रोदय ७ भाग लेवें। प्रथम चन्द्रोदय को खूब महीन पीसकर उसमें कस्तूरी और अम्बर डालकर ग्वारपाठे के रस में मर्दन करें। जब वे अच्छी तरह मिल जायें तब इसमें अन्य द्रव्यों को मिलाकर एक दिन ग्वार पाठे के रस में मर्दन कर १२१·५० मि. ग्रा. की गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा और अनुपान--१ गोली यथावश्यक दिन में तीन-चार बार शहद में मिलाकर चटावें।

--सि० यो० सं०

गुण और उपयोग--यह रस गृध्रसी, अपतानक, अर्दित, पक्षाघात आदि कठिन वात रोगों में निश्चित लाभकारी योग है। आक्षेपक, अपतंत्रक (हिस्टीरिया) में मांस्यादि क्वाथ से दें। सन्निपात ज्वर में जब प्रलाप, मोह, नाड़ी की क्षीणता, हाथ-पांव कांपना, पसीना अधिक होकर शरीर का ठण्डा पड़ जाना इत्यादि लक्षण हों तो इसके प्रयोग से लाभ होता है। प्रलापावस्था में तगरादि क्वाथ से दें।

वक्तव्य--बृहद्वात चिन्तामणि रस का योग भै० र० में भी है, परन्तु उसमें लोह-भस्म ३ भाग के बजाय ५ भाग है, चन्द्रोदय के स्थान पर रससिन्दूर है। कस्तूरी और अम्बर ये दोनों उसमें नहीं हैं। अत: उस योग से यह सि० यो० सं० वाला उपरोक्त योग विशेष गुणकारी है।

(२१) **योगेन्द्र रस**--रससिन्दूर २३·२ ग्राम, स्वर्णभस्म, कान्तलौह-भस्म, अभ्रकभस्म, मोतीभस्म, वंगभस्म प्रत्येक ११·६६ ग्राम इन सबको खरल में डालकर ग्वारपाटे के रस में घोंटकर गोला बनाकर एरण्ड के पत्तों को लपेटकर गेहूँ या चावल आदि (धान्यराशि) के ढेर में तीन दिन तक दबाकर रखें पश्चात् गोला को निकालकर खरल में ग्वारपाठे के रस से घोटकर १२१·५० मि. ग्रा. की गोलियां बना-सुखाकर शीशी में भरकर रख लें। सुबह-शाम एक-एक गोली इस दवा को रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन करने से अर्दित, पक्षाघात, अपस्मार, उन्माद, अपतन्त्रक, मूर्च्छा, गृध्रसी, दण्डापतानक आदि कठिन वातरोगों में एवं प्रमेह, मूत्राघात, राजयक्ष्मा, स्नायु-दौर्बल्य आदि अनेक रोगों में बहुत उत्तम लाभ करता है। यह रस योगवाही तथा रसायन होने से रस-रक्तादि शारीरिक धातुओं की अभिवृद्धि कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट और कान्तियुक्त बना देता है।

--भै० र०

पक्षाघात (लकवा) रोग

वातव्याधि का यह महारोग मनुष्य को निकम्मा कर देता है। यह दो तरह का होता है--स्थान विशेष का पक्षाघात और सर्वाङ्ग का पक्षाघात। मुख

का आधा भाग, कमर, मूत्राशय, पैर आदि के एक स्थान में रोग होने को स्थान विशेष का पक्षाघात और समस्त शरीर में रोग होने पर सर्वाङ्ग का पक्षाघात कहा जाता है। किसी अंग का स्पर्श-ज्ञान-रहित और बेवश होने का नाम ही पक्षाघात है। प्रायः शरीर का ठीक आधा भाग अर्थात् एक आंख, एक नाक, एक कान और एक हाथ पैर विवश हो जाता है। इस विवश भाग से मनुष्य अपनी इच्छानुसार कुछ भी काम नहीं ले सकता। पक्षाघात शब्द का यथार्थ मतलब भी यही है और इसी प्रकार का पक्षाघात अधिक देखने में भी आता है।

पक्षाघात का आक्रमण सहसा होता है, जिससे रोगी हठात् मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है। यह मूर्च्छा बहुत प्रयत्न करने से भी जल्दी दूर नहीं होती; बहुत देर तक बनी रहती है। मूर्च्छा दूर होने पर भी रोगी की बोलने की शक्ति मारी जाती है। रोगी चुपचाप पड़ा कराहता रहता है। यह अवस्था ५ से १२ दिन तक बनी रहती है। फिर रोगी के बेवश अंगों में कुछ शक्ति का संचार होने लगता है तथा कुछ काल बाद बेवश अङ्गों में कुछ कार्य करने की भी शक्ति आ जाती है और इसी प्रकार की हालत में मनुष्य जीवन-यापन करता है। १५ दिन महीना या वर्ष-दो वर्ष बाद पक्षाघात का फिर से आक्रमण होते देखा गया है। इस आक्रमण में प्रायः रोगी मर जाता है।

कारण--दिमाग को ढँकने वाली झिल्ली का प्रदाह, मेरुदण्ड की मज्जा का प्रदाह या सूख जाना, पारा, शीशा आदि का खाना, हिस्टीरिया, मूर्च्छा और मृगी आदि रोगों को बहुकाल पर्यन्त भोगना, खास करके ब्लड प्रेसर याने रक्त का दबाव बढ़ जाना आदि कारणों से पक्षाघात उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—प्रथम ५-७ दिन तक किसी प्रकार की दवा न देकर रोगी को ऐसे ही रखना चाहिए। जब रोगी में कुछ शक्ति आ जाय, तब पहले जुलाब देना चाहिए। जुलाब के लिए रेंडी का तेल उचित है, दूसरा रूक्ष जुलाब ठीक नहीं रहता। फिर वात नाशक तैलों का मर्दन और वातघ्न औषधियों का सेवन कराना चाहिए। रसराज का सेवन और माषादि तैल का मर्दन इस रोग में

अत्यन्त लाभ करता है। समयानुसार योगराज गुग्गुल, एरण्डपाक, कुचले की गोलियाँ आदि भी दी जाती हैं।

(१) **रसराज रस**––रससिन्दूर ४६.२ ग्राम अभ्रक-भस्म ११.६६ ग्राम और सोना-भस्म २३.२ ग्राम मोतीपिष्टी, प्रवालपिष्टी ५.८३ ग्राम को एक जगह घीकुमारी के रस में खरल करें। फिर लौह-भस्म, चाँदी-भस्म, वंग-भस्म, असगंध, लौंग जावित्री, जायफल और क्षीरकाकोली (अभाव में शतावरी)––इन आठ वस्तुओं का प्रत्येक ५.८३ ग्राम लें और मकोय के रस तथा घृतकुमारी के रस में घोंटकर २४३ मि. ग्राम की गोलियाँ बना लें। इसको दूध और चीनी के शर्बत के साथ सेवन करने से पक्षाघात, अर्दित, हनुस्तम्भ, मस्तकभ्रम आदि आराम होते हैं। यह बल-वीर्यवर्द्धक तथा उत्तम बाजीकरण है। ––भैं० र०

(२) **निरामिष महामाष तैल**—तिल तैल ३.७३ किलो को खूब औटाकर संस्कार कर लें। फिर असगन्ध, कपूरकचरी (शठी), देवदारु, खरेटी (बला), रास्ना,प्रसारणी, कूठ, फालसा, भारंगी, कुम्हड़ा, भुईकुम्हड़ा,पुनर्नवा, बिजौरानीबू, जीरा, स्याह जीरा, हींग, सौंफ, शतावरी, गोखरू, पीपलामूल, चित्रक, सेंधा नमक और जीवनीयगण––इस सब दवाओं को समभाग मिलाकर ९३३ ग्राम का कल्क करके तैल में डालें। ७.४७किलो दशमूल को ६०किलो जल में पकाएँ। जब १५किलो जल शेष रह जाय तब उक्त तैल में डालकर पकाएँ। फिर बढ़िया माष (उड़द) ७.४७किलो को ६० किलो जल में औटाएँ और जब १६ किलो जल शेष रहे तब तैल में डालकर पकाएँ। इसी प्रकार १५ किलो दूध भी तैल में डालकर पकाएँ। पकते-पकते जब तैलमात्र शेष रह जाय, तब गर्म-गर्म ही छानकर बोतलों में भर दें। बहुत से वैद्य तैल को ठंडा होने पर छानते हैं, परन्तु ऐसा होने पर तैल बहुत-सा कल्क में ही रह जाता है। यह 'महामाष तैल'—पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्र आदि कठिन रोगों में लाभ पहुँचाता है। इस तैल में अंगों को सजीव करने की अद्‌भुत शक्ति है। निरन्तर बहुत दिन मर्दन होना चाहिए। कठिन वात रोग में भी यह फायदा करता है। ––भैं० र०

(३) **कल्याणावलेह**—हल्दी, बच, कूठ, पीपल, सोंठ, अजमोद, स्याह जीरा, मुलेठी और सेंधा नमक––इन ९ दवाओं का चूर्ण ६ ग्राम घी में मिलाकर चाटने

से पक्षाघात के कारण जो बोलने में तुतलापन होता है वह अच्छा हो जाता है। हमने इसका बहुत प्रयोग किया है। यह कभी लाभ करता है और कभी नहीं। इसका सेवन गाने वालों की आवाज में भी मधुरता लाता है। नारायण तैल, प्रसारणी तैल आदि भी इस रोग में लाभ पहुँचाते हैं।

(४) खंजनकारिरस (सि.सं.पेज १०९ में देखें)।

गठिया वात (सन्धिवात और आमवात)

हाथ-पैर की सन्धि अथवा जोड़ों में यह रोग उत्पन्न होता है और दो-चार या प्रत्येक सन्धि में भयानक वेदना होती है। रोग आरम्भ होते ही बुखार आता है तथा जोड़ों में दर्द और फूलना आरम्भ हो जाता है। रोगी चलने-फिरने में असमर्थ हो जाता है। लाचार हो चारपाई पर पड़े रहने को बाध्य हो जाता है। रोगी रोग के कारण करवट लेने में भी महान दुःख पाता है। पैरों में विशेष कष्ट होता है। दुर्गन्धयुक्त पसीना, प्यास, कब्जियत, सिर दर्द आदि लक्षण वर्तमान रहते हैं। कम्प देकर बुखार आता है। शुरू-शुरू में १०४-१०५ डिग्री तक बुखार हो जाता है। दो-तीन सप्ताह बाद रोग आराम होने लग जाता है। यदि ठीक चिकित्सा की जाय, तो यह रोग आराम हो जाता है; नहीं तो पुराना आकार धारण कर लेता है। रोग पुराना होने पर ज्वर चला जाता है और दर्द भी कम हो जाता है; परन्तु जोड़ों पर सूजन अधिक हो जाती है।

कारण--पानी में भींगना, ठंड लगना, भीगे वस्त्र धारण करना आदि कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है; परन्तु गठियावात का प्रधान कारण आतशक और सूजाक का होना है। इतने दिनों की चिकित्सा में मैंने बिना आतशक और सूजाक के कारण गठियावात का होना प्रायः नही देखा। आतशक और सूजाक का जहर जब शरीर में फैल जाता है, तब गठिया उत्पन्न होती है। आममल संचित होते होते जब पुराना हो जाता है तब भी आमवात हो जाता है। आमवात के रोग में शरीर के जोड़ों में तो दर्द होता ही है विशेषता यह है कि आमवात समस्त शरीर में वेदना करता है और साथ में शोथ भी अवश्य होता है यह वृद्धावस्था में अधिक होता है।

चिकित्सा---नूतन सन्धि वात में ज्वर आदि उपद्रवों के साथ ही चिकित्सा की जाती है। बाज-बाज समय रोगी को निमोनिया भी हो जाता है। उस हालत में प्रथम निमोनिया की चिकित्सा करके फिर मूल रोग की चिकित्सा करनी चाहिए।

वातव्याधि की दवा से लाभ न होने पर रक्त शुद्ध होने की दवा का प्रयोग करना शास्त्र की आज्ञा है। अनुभव से देखा गया है कि बिना रक्त शुद्ध हुए इस रोग में लाभ नहीं होता। लेखक को दुर्भाग्यवश प्रायः ऐसे ही रोगी प्राप्त हुए हैं, जिनके शरीर में आतशक या सूजाक का विष वर्तमान था और जो आतशक और सूजाक की चिकित्सा से पूर्ण आरोग्य हो गये। ऐसे रोगियों की चिकित्सा में भी खून साफ करना आवश्यक है। बीच-बीच में जुलाब देकर रोगी का कोष्ठ शुद्ध कर देना चाहिए।

(१) अमीर रस, जो आतशक के प्रकरण में लिखा जायगा इस रोग की रामबाण दवा है। आतशक या सूजाक के कारण उत्पन्न होनेवाले गठिया-वात की इससे उत्तम दवा और दूसरी नहीं है। बहुत बार का परीक्षित है।

(२) उसवा और चोपचीनी का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से गठियावात में लाभ होता है। उसवा असली होना चाहिए।

सुरंजान मीठी, सोंठ, एलुवा और हरड़ की छाल इन ४ दवाओं का चूर्ण ४८६ से ७२९ मि. ग्रा. तक गर्म जल के साथ देने से गठिया तथा आमवात में बहुत लाभ करता है।

(३) सुरंजान सीरी (मीठा) का चूर्ण ३ से ६ ग्राम तक गर्म पानी से देना चाहिए।

गोरख नाम का वृक्ष विंध्याचल-मिर्जापुर के समीप होता है उसकी छाल का काढ़ा आमवात में बहुत लाभकारी है। बहुत परीक्षित है।

(४) योगराज गुग्गुल को रास्नादि क्वाथ के साथ बहुत दिनों तक सेवन करने से यह रोग निर्मूल हो जाता है। जो लोग बारम्बार गठिया-वात से दुःखी होते हैं, उनके लिए यह योग सर्वश्रेष्ठ है। इसका दो-तीन मास तक सेवन करना चाहिए।

(५) माजूम कुचला (सि.यो.सं.) ११६ में देखें।

(६) घी कुंवार में गेहूँ का आटा गोंदकर वटक बनाकर घी में भून लें; उसका चूर्ण बनाकर देशी खाण्ड मिलाकर ५८ ग्राम मात्रा में लें। बहुत लाभकारी है।

पथ्यापथ्य--वातव्याधि मात्र में स्निग्ध और पुष्टिकर आहार करना चाहिए। उड़द की दाल, मांस का रस, घी, तैल आदि पदार्थ लाभदायक हैं। चावल आदि वायुवर्धक चीजें खाने से नुकसान होता है। ज्वर आदि उपद्रव होने पर दूध आदि हल्का पथ्य विधेय है।

शूल-रोग (पेट दर्द)

पेट में शूल गड़ने जैसी वेदना को शूल-रोग या पेट-दर्द कहते हैं। शूल-रोग अधिकतर अजीर्ण के कारण पैदा होता है। गुरुपाकी द्रव्यों का भोजन, अधिक भोजन, तथा सामान्य भोजन का भी किसी कारण से पाक न होना आदि कारणों से या मन्दाग्नि के कारण से जो वेदना होती हैं, उसे अजीर्ण-शूल कहते हैं। अम्ल-पित्त रोग में भी पेट-दर्द होता है जिसे अम्ल-शूल कहते हैं। भोजन के १/२ घंटा बाद नियमित रूप से जो भयानक पेट दर्द होता है उसको पक्तिशूल कहते हैं। वह वमन होते ही शान्त हो जाता है। यकृत् (लीवर) से एक नली पक्वाशय में आयी है। उसी नली द्वारा यकृत् से पित्त पक्वाशय में गिरकर भोजन को पकाने में सहायता करता रहता है। कभी-कभी वह पित्त सूखकर पत्थर जैसा कठिन हो जाता है और यकृत् के मुंह या नली के बीच आकर अटक जाता है, तब बड़ा भयानक शूल होता है। इस शूल में पित्त-वमन या जी-मिचली होती है। इसे पित्त-शूल कहते हैं। इसी तरह जो नली वृक्क (गुर्दे) से मूत्राशय में गई है उसमें भी पत्थरी होकर भयानक दर्द होता है। वह दर्द वृक्क के स्थान (चूतड़ों के ऊपर पेट की तरफ) से उठकर जननेन्द्रिय तक जाता है इस दर्द में भी कै होती है। साथ ही पेशाब में जलन और दस्त जाने की शंका रहती है और पेशाब जरा-जरा-सा होता है। इन शूलों को स्थान-भेद से पहचानना चाहिए। पेट में कीड़ों के कारण या कब्जियत

के कारण भी शूल होता है। भोजन के ३ घण्टे बाद नियम से होनेवाले शूल को परिणामशूल कहते है।

चिकित्सा––शूल-रोग में कारण को अच्छी तरह जानें बिना चिकित्सा करने से कुछ भी लाभ नहीं होता। किसी भी प्रकार का शूल-रोग हो, बोतल में गर्म पानी भरकर सेंकना लाभदायक है। शूल-रोग की अवस्था की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि प्राणहर अवस्था न हो, तो जल्दी करने की कोई आवश्यकता नहीं है, दो-चार घण्टे बाद खुद ही दर्द मिट जाता है। केवल रोगी के विश्वास के लिए कुछ मामूली दवा दे देनी चाहिए। किन्तु शूल फिर पैदा न हो, इसकी चिकित्सा करना आवश्यक है। मूल कारण नष्ट होने से फिर शूल पैदा नहीं होता, इसलिए मूल रोग की ही चिकित्सा विधेय है। शूल-रोग को तत्काल शान्त करने के लिए नीचे लिखी दवाएँ देनी चाहिए।

(१) ६१ मि. ग्रा. या १२१.५० मि. ग्रा. फूल-पिपरमिन्ट जल या बतासे में डालकर खाने से पेट का दर्द आराम होता है। अमृतधारा की ५ से १० बूंद खाने से लाभ होता है।

(२) हरड़, बहेड़ा, आमला और राई––इन चारों का चूर्ण ६ ग्राम गर्म पानी के साथ देने से पेट-दर्द आराम होता है। यह कब्जियत के लिए विशेष लाभकारी है।

(३) शंख, काला नमक, भुनी हुई हींग, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल–– इन ६ वस्तुओं का सम भाग लेकर चूर्ण करें। ३ ग्राम की मात्रा में गर्म जल के साथ लेने से अजीर्ण-शूल बन्द हो जाता है।

(४) भींगे हुए पत्थर के चूने में समभाग अजवायन का चूर्ण मिलाकर एक ग्राम की गोलियां बना लें। यह पेट-दर्द में बहुत फायदा करती हैं।

(५) पक्तिशूल में सज्जी खार या सोडावाईकार्व ३ से ६ ग्राम देने से लाभ होता है।

(६) ६ ग्राम सोंठ के चूर्ण में १ ग्राम नमक मिलाकर गर्म जल के साथ खाने से पित्तज-शूल में आश्चर्यजनक लाभ होता है। इससे मारफिया के इन्जेक्शन

की तरह फायदा होता है। सोडाबाईकार्ब भी ३ ग्राम गर्म पानी से खाना लाभदायक है।

(७) असली जवाखार १।। ग्राम गर्म जल के साथ प्रत्येक घण्टे में देने से वृक्क शूल (दर्द गुर्दा) आराम होता है। पेशाब उतारनेवाली दवा से भी लाभ होता है। इसमें मूत्रकृच्छ् रोग की दवा से बहुत फायदा होता है।

(८) **जामुन का सिरका**—पके हुए जामुन से घड़ा भरकर ४६७ ग्राम नमक डालकर अच्छी तरह हिला कर रख दें। फिर दूसरे दिन उसका रस निकाल कर बोतल में भर लें। इन बोतलों का मुंह बन्द करके धूप में रखें और रोज एक बार मोटा कपड़ा मुंह में लगाकर दूसरी बोतल में बदल दें। १५-२० दिन बाद सिरका तैयार हो जायगा। चूने के फर्श पर डालने से जब तेजाब की तरह बुलबुला उठने लगे, तब समझना चाहिए कि सिरका तैयार हो गया है। इसी तरह अंगूर, ईख आदि हरेक वस्तु का सिरका तैयार किया जा सकता है। ५.८३ या ११.६६ ग्राम सिरका जल के साथ मिलाकर देने से पेट-दर्द में बहुत लाभ होता है।

(९) **कुचले का चावल**—कुचले को पानी और बालू में ७ रोज भिगो कर ऊपर का छिलका व भीतर की जीभ निकाल डालें और चाकू या छुरी से महीन चावल बनाकर घी में सेंक लें। ये चावल पेट-दर्द या मन्दाग्नि में बहुत लाभ पहुँचाते हैं। पुराना हो जाने से चावल इतने सख्त हो जाते हैं कि पेट में गलते नहीं, वैसे ही पाखाने से निकल जाते हैं। इसलिए महीन चूर्ण करके समभाग चीनी मिला दी जाय तो कुछ आपत्ति न रहेगी।

(१०) **शूलवज्रिणी बटी**—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक और लौह-भस्म या शंख-भस्म प्रत्येक २३.२ ग्राम शुद्ध सोहागा, शुद्ध हींग, सोंठ मिर्च, पीपल, हरड, बहेड़ा-आमला, दालचीनी इलायची, तेजपत्ता, तालीस-पत्र, जायफल, लौंग, अजवायन, जीरा और धनियाँ प्रत्येक ११.६६ ग्राम। सब का चूर्ण कर आंवले के रस में घोंटकर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बनालें।

अनुपान—बकरी का दूध या ठंडा पानी। इससे सब तरह के शूल आराम होते हैं। हमारा अनुभव है कि जिन रोगियों को मन्दाग्नि के कारण पेट में

मन्द-मन्द दर्द बना रहता है उन्हें ये गोलियां विशेष लाभ करती हैं। हम भोजन के बाद अजवायन-अर्क या गर्म पानी के साथ इस बटी को देते हैं।

(१०) **समुद्रादि चूर्ण**--पाँचों नमक, जवाखार, सज्जीखार, दन्तीमूल, लौह-भस्म, मंडूर-भस्म, त्रिवृत् (निशोथ) और जमीकन्द--इन बारह वस्तुओं के प्रत्येक ११·६६ ग्राम को गोमूत्र, दही और दूध--इन तीनों द्रव्यों में अच्छी तरह भिगोकर मन्द-मन्द अग्नि से पकाएँ। चूर्ण की तरह हो जाने पर नीचे उतार कर रख लें। १॥ से ३ ग्राम तक की मात्रा में गर्म जल के साथ दें। शास्त्र में इस चूर्ण को शूल-रोग की महौषधि बतलाया है। हमारे अनुभव में भी यह बहुत उत्तम गुणकारी सिद्ध हुआ है। परिणाम-शूल की यह उत्तम दवा है।

(११) अग्नितुण्डी बटी भी लाभ करती है।

(१२) **शिवाक्षार पाचन चूर्ण**--छोटी हरड़ का चूर्ण, सज्जीक्षार या सोडा बाइ कार्ब (खाने का सोडा) प्रत्येक को एक-एक भाग लेकर मिलाकर रख लें। उदरशूल, अजीर्ण, आनाह (अफारा), उदर वात वृद्धि (पेट में गैस बढ़ना) आदि में यह उत्तम गुणकारी सुपरीक्षित योग है। आ० नि० मा०

मात्रा और अनुपान--२ से ४ ग्राम तक चूर्ण को सुबह-शाम अथवा भोजन के बाद सुखोष्ण जल के साथ लें। सुखोष्ण जल एक कप में आधे कागजी निम्बू का रस निचोड़ कर उसके साथ लेने से विशेष लाभ करता है।

(१३) **शान्तिवर्द्धक चूर्ण**—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, बड़ी इलायची, लौंग प्रत्येक ११·६६ ग्राम लें, गैरिक (गेरूँ) ३५ ग्राम, नौसादर ४६·४ ग्राम, नीबू का सत्व ११·६६ ग्राम, चीनी ३५ ग्राम, सूखा पोदीना ११·६६ ग्राम--इन सबको कूटकर मिलाकर रख लें। पेट दर्द, अजीर्ण, उदर वात वृद्धि, अरुचि आदि में इसके सेवन से बहुत अच्छा लाभ होता है। अम्लपित्त रोग में होने वाली अन्नप्रणाली की जलन (प्रदाह) और खट्टी डकारों में भी यह लाभकारी है।

मात्रा और अनुपान—२ से ४ ग्राम तक चूर्ण को जल के साथ सेवन करें या चुटकी से थोड़े-थोड़े चूर्ण को मुंह में डालकर खायें।

पथ्यापथ्य--जब तक पेट-दर्द अच्छी तरह शान्त न हो जाय तब तक खाने को कुछ न देना चाहिए। सोडावाटर पीना अच्छा है। दर्द शान्त होने पर

बहुत जल्दी हजम होनेवाला पथ्य खाना चाहिए। परिणाम-शूल में आमाशय के रस को कम बनाने वाला आहार देना उचित है। इसके लिए अम्लपित्ता-धिकार देखें।

कोष्ठबद्धता (कब्जियत)

बहुत तरह के कारणों से कब्ज रहता है। कब्ज अनेक रोगों के लक्षणों में गिना जाता है। कुछ आदमियों की प्रकृति ही ऐसी हो जाती है कि उनको दस्त साफ नहीं होता, दो-दो चार-चार रोज में दस्त साफ होता है। असल में कब्जियत नाम भी इसी का है। किसी विशेष कारण से एक-दो रोज दस्त का कब्ज होना कोई कब्जियत नहीं है। निरन्तर कोष्ठ साफ न होना ही कब्जियत की गणना में आता है। कब्जियत होने से मन में ग्लानि, आलस्य-भाव, मुंह से जल तथा दुर्गन्ध का आना, ज्वरभाव, अरुचि, सिर-दर्द आदि लक्षण प्रकट होते हैं। निरन्तर कब्जियत रहने से बवासीर और गृध्रसी-वात उत्पन्न हो जाते हैं।

किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम न करना, निकम्मा बैठें रहना, दिमागी काम में अधिक व्यस्त रहना, गुरुपाकी चीजों का भोजन, काफी या चाय का अधिक पीना, यकृत् या तिल्ली की बीमारी, शोक, चिन्ता, भय आदि का होना—इन कारणों से दस्त की कब्जियत उत्पन्न हो जाती है। जो लोग साधारण स्वास्थ्य के नियमों का पालन नहीं करते, वे ही इस बीमारी के जाल में अधिक फँसते हैं। खाये हुए अन्न का अच्छी तरह पाक न होने से कब्जियत का होना या पतले दस्तों का होना निश्चित है। अर्थात् कब्जियत का असल कारण भोजन का पाक न होना ही है।

चिकित्सा——कब्जियत की चिकित्सा सर्वसाधारण को सीधी-सी यह जान पड़ती है कि मामूली या तेज जुलाब लेकर पेट साफ कर लिया जाय। बहुत-से रोगी तो रोग का विवरण कहना भी अनावश्यक समझ कर चिकित्सक से या बाजार से जुलाब की दवा ले लेते हैं। बराबर कब्जियत रहने वाले रोगी को जुलाब देना भयंकर भूल है। इससे बहुत नुकसान होता है। एक तो कब्जियत की बीमारी रहती ही है, दूसरी दवा खाने की एक बीमारी और हो जाती है। यानी विना दवा के दस्त होता ही नहीं। निरन्तर दस्तावर दवाओं को खाकर

पेट साफ करने से प्राकृतिक शक्ति जो अँतड़ियों में होती है, वह भी मारी जाती है। दस्तावर दवाएँ स्वभावतः गर्म और उत्तेजना पैदा करने वाली होती हैं। उनके सेवन से बवासीर, धातु का पतलापन-स्वप्नदोष आदि अनेक विकार पैदा हो जाते हैं। इसलिए जहाँ तक हो सके कब्जियत को निर्मूल करने के लिए दवाएँ न खाई जाएँ, प्रकृति की सहायता से ही कब्जियत का रोग दूर करना चाहिए। किस कारण से कब्जियत रहती है---इसका भली-भाँति विचार करें। जब मूल कारण मालूम हो जाय, तो फौरन उसकी चिकित्सा करके उसे हटा दें---कब्जियत आप ही आप दूर हो जायगी। यकृत् और तिल्ली की बीमारी के कारण होने वाले कब्ज में यकृत् और तिल्ली की चिकित्सा करनी चाहिए, दस्तावर दवा खाने से कुछ लाभ नहीं। यकृत् और तिल्ली ठीक होने से कब्जियत खुद मिट जायगी। विशेष करके बदहजमी के कारण लोगों को कब्ज होता है। उसके लिए खान-पान पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसमें मन्दाग्नि की औषध और आहार-विहार बहुत लाभ पहुँचायेगा। इस प्रकरण का पथ्यापथ्य भी बहुत लाभकारी सिद्ध होगा। यदि कोष्ठ साफ करने की पूर्ण आवश्यकता हो, तो गर्म पानी में साबुन मिलाकर उसे डूस की सहायता से गुद-द्वार के भीतर पहुँचायें। इससे बृहदन्त्र का सम्पूर्ण मल निकल जायगा और आतें धुलने से साफ और ताकत वाली हो जाएँगी। यह क्रिया भी हफ्ते में एक बार से अधिक न करनी चाहिए; वरना यह भी जुलाब की तरह अवगुण करेगी। डूस या एनिमा लेना कुछ कठिन काम नहीं है, बहुत सरल है। जिससे डूस खरीदें, वही बतला देगा या पास के वैद्य अथवा डॉक्टर से पूछ सकते हैं।

यह कब्जियत का प्रकरण है, इसलिए स्वभावतः ही लोग दस्तावर दवा इसी प्रकरण में खोजेंगे और बहुत-से रोगों में जुलाब देना भी आवश्यक हो जाता है। इसलिए नीचे जुलाब की दवाएँ लिखी जाती हैं, परन्तु कब्जियत के शिकार रहने वाले रोगी इन दवाओं का सेवन न करें, तो उनके लिए अच्छा रहेगा।

(१) रेंडी का तैल २९ से ५८ ग्राम तक, त्रिफला गर्म चाय या गर्म दूध में मिलाकर पीने से दो-चार दस्त हो जाते हैं। अन्य सभी जुलाब रूक्ष हैं; परन्तु

यह स्निग्ध है। इसलिए शास्त्र में इसकी बहुत प्रशंसा लिखी है। यह पेट साफ करने के लिए बहुत उत्तम है। रेंडी का तेल पतला और निर्गन्ध (Caster oil) शोधित व्यवहार होता है, लेकिन अनुभव से देखा गया है कि इस तेल की अपेक्षा घाणी से निकाला हुआ तैल बहुत अधिक लाभ करता है। इसलिए गन्ध का खयाल न करके घाणी का तैल ही पीना उचित है। दस्त कब्जियत के पुराने अभ्यस्त रोगी जिनके मल की गाँठ बँध जाती है सोते समय १ चम्मच एरण्ड तेल लेते रहें तो २-४ मास में पूर्ण लाभ सम्भव है।

(२) आजकल सनाय से वैज्ञानिक विधि से उसका मरोड़ लाने वाला अंश निकाल कर गोली बनाई जाती हैं उनसे बिना मरोड़ १-२ बार साफ दस्त आता है।

(३) छोटी हरड़ और काला नमक समभाग मिला कर चूर्ण करें। ११·६६ ग्राम या ५·८३ ग्राम गर्म पानी के साथ लेने से दो-चार दस्त हो जाते हैं।

(४) सनाय, सोंठ, सौंफ, सेंधा नमक और शिवा (हरड़)—इन पाँचों चीजों को समभाग लेकर महीन चूर्ण करें। इसका नाम 'पंचसकार चूर्ण' है। ३ ग्राम पंचसकार चूर्ण और ३ ग्राम लवणभास्कर चूर्ण मिलाकर रात्रि को सोते समय गर्म पानी के साथ खाने से प्रातःकाल दस्त साफ हो जायगा। केवल यही चूर्ण ११·६६ ग्राम गर्म पानी के साथ लेने से भी दो-चार दस्त हो जायेंगे।

(५) ३ ग्राम सनाय की पत्ती को दूध में औटाएँ। फिर छान कर पत्तियाँ फेंक दें और दूध में चीनी मिला कर पी जाएँ, तो दो-तीन दस्त हो जायेंगे।

(६) गुलाब का गुलकन्द २३·२ ग्राम रात को सोते समय गर्म दूध या गर्म पानी के साथ खाने से सुबह दस्त साफ हो जायगा।

(७) ईसबगोल ५·८३ ग्राम जल में २४ घण्टे भिगोकर समभाग मिश्री मिला कर जल या दूध के साथ लेने से दस्त साफ होता है। आम की शिकायत के कारण या यकृत् के कारण जिन गर्ममिजाज लोगों को केवल एक दस्त लेना हो, वे ईसबगोल का सेवन करें। बहुत सुन्दर दवा है। पेट को ठण्डा रखने में यह सर्वश्रेष्ठ है।

(८) कालादाना को भाड़ी में भून कर चूर्ण कर लें और समभाग मिश्री मिला कर गर्म पानी के साथ लें। यह दस्तावर है।

(९) त्रिफला ३५ ग्राम, अजवाइन और काला नमक ११·६६ ग्राम, जवाखार ३ ग्राम, सब मिला कर महीन चूर्ण करें। ३ ग्राम से लेकर ११·६६ ग्राम तक गर्म जल के साथ खाने से दस्त साफ होता है और पाचनशक्ति बढ़ती है। केवल त्रिफला चूर्ण से इस चूर्ण का सेवन अधिक लाभदायक है।

(१०) **मधुयष्टयादि चूर्ण**—मुलेठी ५८·३२ ग्राम, सौंफ २९ ग्राम, सनाय ५८·३२ ग्रा. शुद्ध गन्धक २९ ग्राम और मिश्री १७५ ग्राम लेकर महीन चूर्ण करें। यह चूर्ण कोष्ठ-शुद्धि के लिए बहुत उत्तम है। एक विलायती कम्पनी ने इसी चूर्ण की बोतलें हिन्दुस्तान में बेचकर बहुत रुपया कमाया है। ठीक यही नुस्खा है। यह आम के दस्त में विशेष लाभकारी है।

(११) **अमलतास की चटनी**——९३३ ग्राम नीबू के रस में अमलतास का गूदा ४६७ ग्राम डाल २४ घण्टे भिगोकर रखें। फिर कपड़े से छान लें। दालचीनी, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, भूनी हुई हींग और बड़ी इलायची के बीज इन ६ दवाओं में से प्रत्येक २९ ग्राम, सेंधा नमक, काला नमक, भूना हुआ कालादाना, भूना हुआ जीरा और अजमोद—इन पाँच दवाओं में से प्रत्येक ५८·३२ ग्राम को चूर्ण करके उपर्युक्त लुआब में मिला दें और ११६·६४ ग्राम काले मुनक्कों का बीज निकाल और महीन पीस कर मिला दें, तो उत्तम चटनी तैयार हो जायगी। इसको खाकर गर्म जल पीने से दस्त साफ हो जाता है। जिनको बदहजमी के कारण कब्जियत रहती हो, उनके लिए यह सर्वोत्तम दवा है।

(१२) **वृहत् इच्छाभेदी रस**—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सुहागा, कालीमिर्च, त्रिवृत (निशोथ)—ये पाँच चीजें ११·६६ ग्राम, सोंठ २३·२ ग्राम और शुद्ध जमालगोटा १०४·७२ ग्राम—सबको जल के साथ घोंटकर आक के पत्तों पर लेप करें और कण्डे की आँच से तपाएँ। फिर जल के संयोग से एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना लें। इसे ठण्डे पानी के साथ खाने से दस्त आते हैं। इसमें दही-भात का पथ्य विधेय है। यह तेज जुलाब है, ५ से १० दस्त होंगें। ——रसे० चि०

(१३) **अभया मोदक**——बड़ी हरड़ की छाल, काली मिर्च, सोंठ, वायबिडंग,

आँवला, पीपल, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपत्ता, नागरमोथा--इन १० दवाओं के प्रत्येक ११·६६ ग्राम, जमालगोटा की जड़ २३·२ ग्राम, निशोथ ९३ ग्राम एवं मिश्री ७० ग्राम–इन सब का महीन चूर्ण करके शहद के संयोग से ११·६६ ग्राम की बटक बना लें। ये गोलियाँ दस्तावर हैं। शास्त्र में इनके गुण बहुत लिखे हैं। पेट साफ करने के लिए यह बहुत अच्छी दवा है। --शा० ध०

पथ्यापथ्य--कब्जियत के रोगी की दवाओं की अपेक्षा पथ्यापथ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए। खाने में ऐसी वस्तुओं का व्यवहार करना चाहिए, जिससे खुद ही पेट साफ होता रहे। कब्ज वाले रोगी के लिए अन्नों में सबसे अधिक उपकारी चना है। इसे भिगो कर खाना सर्वश्रेष्ठ है। यदि भीगा हुआ चना ठीक हजम न हो, तो उस हालत में चना को उबाल लेना चाहिए और नमक व जरा-सी अदरख मिलाकर खाना चाहिए। बहुत-से लोग चने की दाल को भिगोकर खाते हैं; परन्तु समूचा चना अधिक गुणकारी है। प्रत्येक अन्न के छिलके में सेल्यूलोज के कारण कब्ज मिटाने की प्रचुर शक्ति रहती है। गेहूँ और चने का मोटा आटा रोटी के लिए सर्वोत्तम है। उबाले हुए चने या गेहूँ मिले चने के आटे की रोटी कब्ज के लिए सचमुच बहुत उपकारी है। किसी भी अन्न के आटे की रोटी खायी जाय, उसकी भूसी अलग न करनी चाहिए। भूसी सहित आटे की रोटी कब्ज वालों के लिए विशेष उपकारी है। मशीन से पीसे हुए आटे में कब्ज को नष्ट करने की शक्ति नहीं होती। गेहूँ का दलिया भी फायदेमन्द है। गेहूँ को उबाल कर और नमक मिलाकर खाना सबसे सुन्दर विधि है। हाथ की चक्की से पीसे हुए गेहूँ की भूसी (चोकर) सहित आटे की रोटी खाना भी कब्जियत वालों के लिए परम हितकारी है। प्रातःकाल उठते ही ठंडा पानी पीना और ठंडे जल से अच्छी तरह स्नान करना लाभदायक है। यदि तैर कर स्नान किया जाय, तो बहुत ही उत्तम रहे। भोजन को खूब अच्छी तरह चबा-चबा कर खाना चाहिए। सूखे मेवे, अंजीर, खजूर, पिस्ता, अखरोट, नारियल आदि खाना हितकर है। मुझे यकृत् की बीमारी के कारण अन्न अच्छी तरह हजम न होकर कब्ज की शिकायत बहुत दिनों तक रही है। पेट में वायु जमा हो जाती थी, जिससे दस्त साफ नहीं होता था। मैंने प्रातःकाल भ्रमण और दौड़ने का

व्यायाम आरम्भ किया तथा प्रति दिन ५८·३२ ग्राम पिश्ता खाया और मट्ठे का सेवन किया, बीमारी एकदम जाती रही। व्यायाम अभी तक जारी है जिससे खोई हुई तन्दुरुस्ती फिर प्राप्त हो गई है। सभी प्रकार के ताजे फल कब्जियत के लिए विशेष लाभकारी हैं। पपीता तो सर्वोत्तम है। सागों में हरी पत्तियाँ खाना विशेष लाभदायक है। बथुआ, चौलाई, कच्चा पपीता आदि के साग भी कब्जियत वालों के लिए सर्वोत्तम सेवनीय हैं। कच्चे और पके पपीते का सेवन अन्न को पचाने की शक्ति उत्पन्न करता है। दस्त की कब्जियत वाले को विटामिन 'बी' वाला पदार्थ खाना अति लाभदायक है। बेल का शर्बत तो इतना गुण करता है कि तारीफ नहीं हो सकती। यह अँतड़ियों में जरा-सा भी मल नहीं रहने देता; एक दम पेट साफ कर देता है। बेल पका हुआ और ताजा होना चाहिए। बराबर कब्जियत वालों के लिए ईसबगोल का सेवन बहुत फायदेमन्द है। ईसबगोल के बीज ६ घण्टे भिगोकर लेना उचित है। ईसबगोल की भूसी बिना भिगोये मिश्री मिलाकर ले सकते हैं। यह दस्तावर चीज नहीं है। पुराने आँव के कारण होने वाले कब्ज के लिए इससे उत्तम कोई चीज नहीं है। दाल, घी और चीनी अधिक न खानी चाहिए। दूध, दही और मट्ठा का व्यवहार उत्तम है क्योंकि ये कब्जनाशक हैं। प्रातःकाल खुले मैदान में मील-दो-मील मन्द-मन्द रफ्तार से दौड़ना कब्जनाशक और परीक्षित उपाय है। मांस, मदिरा, चाय, काफी, लालमिर्च, मसाले, मिठाई, चावल, मैदा, भूसी रहित मशीन का आटा, रात्रि-जागरण और भोजन के बाद दिन की निद्रा निषेध है। अभ्यस्त कब्जियत रोगी को सोते समय १ चम्मच एरण्ड तेल लेने से आँतें मुलायम हो जाती हैं। कब्ज का नाश हो जाता है।

हृद्रोग (छाती का दर्द)

शरीर के बाएँ भाग में स्तन के पास हृदय (दिल) का स्थान है। सावधानी से उस जगह हाथ रखने से हृदय धड़कता हुआ मालूम होता है। हृदय निरन्तर खुलता और बन्द होता रहता है। हृदय रक्तसंचालक यन्त्र है। हाथ की नाड़ी का हृदय से सीधा सम्बन्ध है। इसका आकार बहुत कुछ शरीफा के

जैसा है। अंगूठा बाहर रखकर हाथ की मुट्ठी बाँधने पर ठीक हृदय का आकार बन जाता है। इसी हृदयपिंड में रोग होने से छाती में दर्द और दिल का सर्वदा धुक्-धुक् करना होता है। यद्यपि छाती में और-और बीमारी के कारण या चोट के कारण भी दर्द उत्पन्न हो जाता है; परन्तु इसके लक्षण भिन्न हैं। थोड़ा परिश्रम करने से ही हृदय का धुक्-धुक् करना, बायीं पसली और हाथ में दर्द का होना, पसीना आना, मन चंचल, मृत्यु-भय, मूर्च्छा होने के लक्षण, निद्रा की कमी, पसली और छाती में दर्द तथा नाड़ी की गति तेज होना हृद्रोग के लक्षण हैं।

अधिक कसरत, भय, शोक, अत्यन्त गर्मी आदि कारणों से हृद्रोग उत्पन्न हो जाता है। हृदय की गति बन्द होने के कारण तत्काल मृत्यु हो जाती है, जिसको 'हार्टफेल' होना कहते हैं। बाज-बाज समय हृद्शूल के कारण भी तत्क्षण मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा—हृद्रोगी को जरा भी परिश्रम न करने दें। यदि हृदय की दुर्बलता बहुत अधिक हो, तो बिस्तरे पर ही रखें। टट्टी-पेशाब भी बिस्तरे पर ही करने का बन्दोबस्त करें, नहीं तो रोगी की तत्काल मृत्यु हो जायगी। हृद्रोगी को सीढ़ियाँ चढ़ना और दौड़ना सख्त मना है। नीचे लिखी दवाइयाँ सेवन कराकर रोगी का हृदय मजबूत करें, फिर भय नहीं।

(१) मकरध्वज १२१·५० मि. ग्रा., सोना-भस्म ३०·३ मि. ग्रा., मोती-पिष्टी १२१·५० मि. ग्रा. और कपूर ६१ मि. ग्रा. मिलाकर दिन-रात में दो-तीन बार रोगी को चटाएँ। यह हृदय के रोगों को ताकत पहुँचाने में उत्तम दवा है।

(२) मोतियों को गुलाब-जल के साथ घोंटकर मोती-पिष्टी बना लें। यह मोती-पिष्टी हृदय को अच्छी ताकत पहुँचाती है। सीप की पिष्टी भी मोती से जरा ही कम गुण करती है।

(३) हृदय-रोग से होने वाले छाती के दर्द में बारहसिंगा या हरिण के सींग की भस्म शहद के साथ चटाने से बहुत लाभ होता है।

(४) २३३ ग्राम दूध में २३३ग्राम पानी मिलाकर ११·६६ ग्राम अर्जुन की छाल

डाल दें। ओटाने से जब दूधमात्र शेष रह जाय, तब छानकर शेष मिश्री मिला कर पिलाएँ। यह हृद्रोग में लाभकारी है।

(५) अर्जुन घृत और च्यवनप्राश का सेवन भी गुणकारी है

(६) अर्जुनारिष्ट—अर्जुन की छाल ५·८३ किलो, मुनक्का २·९२ किलो, महुवे का फूल १·१७ किलो—इन सबको कूटकर ६० किलो जल में क्वाथ करें और चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। इस क्वाथ को एक घड़े में भरकर १·१७ किलो धाय के फूल और ५·८३ किलो गुड़ मिलाकर मुंह बन्द कर दें और एक महीने तक पड़ा रहने दें। बाद में छानकर इसे बोतल में भर लें। यह 'अर्जुनारिष्ट' हृदय रोग में बहुत अधिक लाभदायक है। —भै० र०

(७) खमीरे गाजवान (अम्बरी)—गुलाब के फूल, श्वेत चन्दन, बालछड़ (जटामांसी) उस्तखुददूस, आबरेशम, नीलोफर, छरीला प्रत्येक ११·६६ ग्राम, बादरंजबूया १७·५० ग्राम, गावजवान के फूल ९३ ग्राम—इन सब द्रव्यों को ४६७ ग्राम गुलाब अर्क (गुलाब जल) में रात को भिगो दे और प्रातः मन्द आँच पर पकाएँ, जब एक तृतीयांश द्रव शेष रहे तब नीचे उतार शीतल होने पर हाथ से मसलकर कपड़े से छान लें, पश्चात उसमें चीनी ५८३·६४ ग्राम डालकर मन्द अग्नि पर अवलेह जैसा पकाएँ। जब अवलेह शीतल हो जाय तब उसमें कपूर १॥ ग्राम, अम्बर १॥ ग्राम, केशर ३ ग्राम—इन सबको गुलाब-जल में पीसकर मिला दें और लकड़ी के घोटने (कलछे) से इतना घोटें कि अवलेह की चाशनी सफेद मायल (श्वेताभ) हो जाय पश्चात् कांच की बरनी में भरकर रख लें। —सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान—३ से ६ ग्राम तक आवश्यकतानुसार दिन में २-३ बार चाटकर अनुपान में गो-दुग्ध पीयें।

गुण और उपयोग—यह खमीरा हृदय, मस्तिष्क और पाचक-संस्थान को बल देता है। हृदय-रोग मस्तिष्क की कमजोरी, भ्रम-रोग अनिद्रा आदि में उत्तम गुणकारी है।

खमीरे गाजवान (सादा)—गावजवान का पत्ता ४०·७६ ग्राम गावजवान का फूल, छिली हुई शुष्कधनियाँ (कश्नीजखुश्क मुक्कसर), सफेद बहमन, बहमनलाल,

श्वेत चन्दन, आबरेशम कतरा हुआ, बालंगूबीज, फरजमुश्क (राम तुलसी के बीज), बिल्ली लोटन (बादरंजनूया), प्रत्येक ११·६६ ग्राम लेकर इनको रात को १·८३ किलो जल में भिगों कर प्रातः क्त्राथ करें। जब तृतीयांश जल शेष रहे तब उतारकर ठंडा होने पर मसल छानकर ९३३ ग्राम चीनी और २३३ ग्राम भर मधु मिलाकर चार तार की चाशनी बनाकर लकड़ी के डंडे से घोंटकर ठंडी होने पर बरनी में भरकर रख लें। —यू० सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान---इस खमीरा ११·६६ ग्राम में चांदी का वर्क १ नग मिलाकर खाकर १४० ग्राम अर्क गावजवान या ताजा जल पीयें।

गुण और उपयोग--यह खमीरा दिल और दिमाग को पुष्ट बनाता है। दृष्टि को लाभ पहुँचाता है और विद्वेष (वहशत) को नष्ट करता है।

(९) **नागार्जुनाभ्ररस**--वज्राभ्रक भस्म सहस्र पुटी को अर्जुन वृक्ष की छाल के स्वरस या क्वाथ से ७ दिन तक घोटकर १२१·५० मि. ग्रा. रत्ती परिमाण की गोलियाँ बना छाया में सुखाकर रख लें। यह हृद्रोग और अम्लपित्त में विशेष गुणकारी है। --भै० र०

मात्रा और अनुपान--एक-एक गोली सुबह-शाम मधु में मिलाकर चाटें पश्चात् अर्जुन-छाल ३ ग्राम को जौकुट कर ११६·६४ ग्राम दूध व ११६.६४ ग्राम जल में पकाकर दूध मात्र शेष रहने पर छानकर पीयें।

(१०) **प्रभाकर वटी**—स्वर्णमाक्षिकभस्म, लौहभस्म, अभ्रकभस्म, वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत इन सबको समान भाग में लेकर खरल में डालकर अर्जुनछाल के क्वाथ से भावना देकर घोटकर ३६४·५० मि. ग्रा. परिमाण की गोलियाँ बना, सुखाकर रख लें। सब प्रकार के हृदय रोगों में उत्तम लाभदायक है।

मात्रा और अनुपान--एक-एक गोली सुबह-शाम मधु में मिलाकर चाटना चाहिये अथवा अर्जुन छाल क्वाथ के साथ लेना चाहिये। —भै० र०

(११) असली मोती को गुलाबजल में घोटकर १२१·५० मि. ग्रा. मात्रा में लेने से बहुत लाभ होता है तथा जवाहिर मोहरा भी स्थायी लाभ करता है।

पथ्यापथ्य—हृदय रोग में हलका सुपाच्य भोजन देना चाहिए। घी के

स्थान पर तैल का प्रयोग आजकल बहुत होता है। परिश्रम बन्द, आराम अधिक तथा वात शामक दवाओं का प्रयोग करना चाहिए।

मूत्रस्तम्भ और मूत्रनाश

बस्ति याने पेशाब की थैली में पेशाब संचित हो, किन्तु कारण विशेष से निकल न सकता हो, उसको 'मूत्रस्तम्भ' और बस्ति में मूत्र के अभाव को 'मूत्रनाश' कहते हैं। मूत्रस्तम्भ में नाभी के नीचे तल-पेट फूल जाता है और पेशाब करने की इच्छा होती है; परन्तु पेशाब नहीं होता है। बेचैनी, तन्द्रा मोह, बेहोशी आदि लक्षण पैदा होने लगते हैं। सूजाक में मवाद के नि:सरण का एकाएक बन्द हो जाना, पौरुष ग्रन्थि का बड़ा होना, जननेन्द्रिय-पथ का छोटा होना, पथरी आदि कारणों से भी मूत्रस्तम्भ होता है।

चिकिसा—मूत्रस्तम्भ होने पर जननेन्द्रिय के पथ में रबर की सलाई चढ़ाने से पेशाब हो जायगा। गरम पानी टब में भर कर उसमें रोगी को कमर तक बैठाएँ, पेशाब खुल जायगा। मूत्रनाश होने पर ईख का रस, फलों का रस, कच्चे नारियल का पानी, दूध की लस्सी आदि रोगी को यथेष्ट परिमाण में पिलाएँ; ताकि पेशाब तैयार होने लगे। साथ ही नीचे लिखी दवाओं का सेवन कराएँ, शीघ्र लाभ होगा। विवन्ध में दस्त कराने से पेशाब भी हो जाता है।

(१) कलमी शोरा को जल में मिलाकर कपडा भिगो लें और उनको पेशाब की थैली पर रखें, पेशाब हो जायगा।

(२) मिट्टी में कलमीशोरा मिलाकर लेप करने से पेशाब हो जाता है।

(३) भैंस के कान का मैल नाभी पर लगाने से पेशाब हो जाता है।

(४) कपूर को पेशाब के रास्ते में रखने से पेशाब हो जाता है।

(५) कम्बल के सेक से रुका हुआ पेशाब हो जाता है।

(६) कलमी शोरा ५८·३२ ग्राम और फिटकिरी ११·६६ ग्राम को एक जगह करके मिट्टी के बर्तन में पका लें; जब पक जाय तब केले के पत्ते पर डाल दें। १ से २ ग्राम तक गरम पानी के साथ खाने से पेशाब बनने लगेगा।

(७) जवाखार या मूलीखार पेशाब बनाने के लिये अक्सीर है।

(८) असगन्ध का काढ़ा पिलाने से बहुत पेशाब होता है।

(९) गोखरू के काढ़े में जवाखार ३ ग्राम डालकर पिलाएँ, बहुत पेशाब होगा।

(१०) कुश, काश, मूंज की जड़, ईख और दूर्वा—इनका काढ़ा पीने से बहुत पेशाब होता है। इसका नाम 'पंचतृण' है।

(११) शुद्ध शिलाजीत २४३–३६४·५० मि. ग्रा. दूध के साथ सेवन करने से पेशाब खुलासा होने लगता है।

(१२) जवाखार और कलमी शोरा समभाग एक बर्तन में रखकर आग पर चढ़ाएँ। जब पानी जैसा हो जाय, तब उसमें जरा सी फिटकरी मिला दें। चीनी की चासनी में जिस तरह मैल आता है, उसी तरह उसमें मैल आता है। उसको हटाकर एक चौड़े बर्तन में डालकर फैलाकर जमा दें इसे बहुत-से वैद्य 'वज्रक्षार' या 'श्वेत पर्पटी' कहते हैं। यह पेशाब बहुत पैदा करता है। अम्ल-पित्त, अजीर्ण, शोथ आदि में भी यह बहुत फायदा करता है।

(१३) गोक्षुरादिगुग्गुलु सि. यो. सं, ९४ देखें।

(१४) मूत्रहर कषाय—सि. यो. सं. ९६ में देखें।

(१५) अश्मरीहर कषाय—सि. यो. सं. ९८ में देखें।

मूत्रकृच्छ्र (पेशाब की वेदना)

मूत्रकृच्छ्र में बारम्बार पेशाब करने की इच्छा होती है और कष्ट के साथ बूंद-बूंद पेशाब होता है या बिल्कुल होता ही नहीं है। पेशाब करते समय भयानक वेदना होना इस रोग का प्रधान लक्षण है।

सूजाक, पथरी, कृमि, मूत्रग्रन्थि का प्रदाह, जरायु की विकृति, वृक्क (गुर्दे) का विकार, आंव आदि से मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न होता है।

सूजाक के मूत्रकृच्छ्र में सूजाक के अन्यान्य लक्षण, कृमि रोग में कृमि के लक्षण और जरायु के विकार में मासिक धर्म की गड़बड़ी वर्त्तमान रहती है। प्राय: मूल रोग की चिकित्सा से ही रोग आराम हो जाता है।

वृक्क (गुर्दे) के विकार से जब मूत्रकृच्छ्र होता है, तब कै और दस्त की हाजत होती है। गुर्दे से वेदना उठकर वस्ति तक या जननेन्द्रिय तक जाती है। इसमें जवाखार या अन्य मूत्रल दवा देने से लाभ होता है।

बस्ति के पास में जब आँव आकर संचित हो जाता है, तब पेशाब में भयानक वेदना होती है। एक रोगी को दो साल से पेशाब में जलन होती थी परन्तु किस कारण से वेदना होती थी इसका कुछ पता न लगा। बहुत जिरह करने पर आँव का होना और अफीम लेने से आरोग्य होना रोगी ने स्वीकार किया। तब दस्त कराए गए और जलन बन्द हो गई। यह रोगी बहुत चिकित्सा करा के हमारे पास आया था। पथरी को शस्त्र-क्रिया से निकलवा देना चाहिए। नये पथरी रोग में चन्द्रप्रभा बटी को गोखरू के काढ़े के साथ सेवन करने से पथरी गल जाती है। कुलथी का काढ़ा भी लाभदायक है। सब तरह के मूत्रकृच्छ्र में गर्म पानी पीना अत्यन्त लाभदायक है। गर्म जल बस्तिशोधक है। पानी जरा गुन-गुना पीया जाय। इससे पेशाब की वेदना में लाभ होता है। बहुत-से गर्म प्रकृति वाले रोगियों को गर्म पानी बर्दास्त नहीं होता। इसलिए गर्म जल पीने सें लाभ न हो तो छोड़ देना चाहिए। इस रोग में सूजाक, मूत्रस्तम्भ और मूत्रनाशक रोग की दवाइयाँ लाभकारी हैं।

प्रमेह या धातुस्राव (पेशाब में धातु जाना)

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता।

८० प्रकार के प्रमेहों में पेशाब का अधिक होना और पेशाब का गंदलापन (साफ न होना) होना प्रधान लक्षण है। इसके उत्पन्न होने के कारणों में अधिक बैठना (आस्यासुख) अधिक सोना (स्वप्नसुख) अधिक दही का खाना, ग्रामीण जल पीना, आनूप पशु का मांस रस सेवन आदि से प्रमेह रोग होता है। अधिक और साफ पेशाब न हो तो प्रमेह जानकर चिकित्सा करनी चाहिये। आगे जो दवाएँ लिखी गयी हैं वे सब प्रमेह रोग की है।

वर्तमान समय में प्रमेह रोग को धातुस्राव-पेशाब में धातु जाना आदि नाम देकर ठगी का व्यापार चल रहा है जो आयुर्वेद और यूनानी को बदनाम कर रहे हैं।

आजकल जिधर देखिए उधर ही इस रोग का दौरदौरा है। किसी समाचार-पत्र को देखिए, किसी दवाखाने का सूचीपत्र देखिए धातुपुष्टि की दवाइयों की भरमार रहती है।

मैंने इस रोग के विषय में बहुत-कुछ अन्वेषण किया है और शास्त्रों के अध्ययन, गम्भीर वादविवाद तथा स्वतन्त्र बुद्धि से चिन्तनपूर्वक विचार किया है। हजारों रोगियों की चिकित्सा भी की है। फलस्वरूप यह सत्य छिपाने को तैयार नहीं हूँ कि धातुस्राव के विषय में सर्वसाधारण जनता को अत्यन्त भ्रम हो गया है। आजकल के विज्ञापनबाजों ने इस भ्रम को और भी पुष्ट कर दिया है, क्योंकि इस भ्रम से उन लोगों का खासा लाभ है। मूर्ख लोग जो वैद्यक-शास्त्र का जरा भी ज्ञान नहीं रखते, इस भ्रम से अच्छी आमदनी कर लेते हैं। असल में आजकल के धातुस्राव के रोगी अधिकतर मन्दाग्नि के रोगी हैं। खाना अच्छी तरह हजम नहीं होता; बराबर कब्ज की शिकायत बनी रहती है अथवा जितना भोजन सुखपूर्वक हजम कर सकते हैं उससे बहुत अधिक भोजन करते हैं। घी, मलाई, दूध, रबड़ी, मिठाई, बादाम आदि इतना खाते हैं जिसका १/२ भाग खाना चाहिए था। ऐसा पुष्टिकर भोजन करना और दिन भर निकम्मा बैठे रहना इस तरह के रोग का खास कारण है। इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर पेशाब में धातु जैसा सफेद पदार्थ जाता हुआ मालूम होता है। टट्टी में कब्ज होने के कारण काँखना पड़ता है। काँखते समय दो-चार बूंद वीर्य जैसा पदार्थ निकल जाता है। पेशाब में मठा जैसा सफेद पदार्थ निकलता है, जिसे देखते ही रोगी धातुस्राव का निश्चय कर लेता है। भोजन करने के बाद जो पेशाब होता है या सायंकाल टट्टी जाते समय जो पेशाब होता है प्रायः उसमें धातु जैसा पदार्थ जाता है।

बच्चों के पेट में कीड़ा होने से भी ऐसा ही पेशाब होता है। यकृत् की बीमारी या मन्दाग्नि की बीमारी में भी मठा जैसा पदार्थ पेशाब के साथ जाता है इस प्रकार का पेशाब होने पर इसी को धातुस्राव की बीमारी समझना बड़े दुर्भाग्य की बात हो जाती है। क्योंकि धातु-पुष्टि करने वाली दवाएँ—चूर्ण, पाक, मोदक आदि खुद मुश्किल से जीर्ण होती हैं। उस पर जब इस तरह का रोगी धातुपुष्टि की दवा खाता है, तो उसे लाभ के स्थान पर हानि ही होने लगती है। अपने आपको धातुस्राव का रोगी समझनेवाले सज्जनों से हमारा अनुरोध है कि वह मन्दाग्नि की दवा और आहार-विहार का सेवन करें।

सर्वप्रथम कब्जियत हटावें, इसके लिये ईसबगोल का सेवन या छोटी हर्रों का चूर्ण सम भाग काला नमक मिलाकर सोते समय लेने से पेट साफ हो जायगा। स्वास्थ्य को ठीक रखने वाले नियमों का पालन करें, कुछ व्यायाम करें और खानपान पर विशेष दृष्टि रखें। यदि इस प्रकार के आहाराचार से लाभ न हो, तो आगे लिखे क्रम से चिकित्सा करें; भूलकर भी विज्ञापनबाजों की दवा का सेवन न करें। विज्ञापन पढ़कर कुछ का कुछ दवा खाना जीवन के आनन्दों से हाथ धोना है।

अब हम इस धातुस्रावक रोग के लक्षण और उत्पत्ति का पूरा-पूरा विवरण लिखते हैं। दिन या रात में सोते समय जननेन्द्रिय उत्तेजित होकर स्वप्नदोष हो जाता है। गुप्तांग का उत्तेजित न होना अथवा हो तो शीघ्र ही शिथिल हो जाना; काम-सम्बन्धी बातों के चिन्तनमात्र से वीर्य का निकल जाना, स्त्री-सहवास के समय अतिशीघ्र वीर्यपात, वीर्य का पानी के सदृश पतला होना, स्वच्छ कपड़े पर वीर्य लगकर सूख जाने पर कपड़े पर निशान (चिह्न) का न होना, शरीर जीर्ण-शीर्ण, कमर में दर्द, स्मरण-शक्ति की कमी, बिना कारण नाना प्रकार की चिन्ताओं का होना, चित्त उदास, पागलपन का आभास होना, बिना कारण भय, कार्य करने की शक्ति का नाश, आँखों का भीतर धँस जाना, कपोलों का चिपक जाना, और उन पर निशानों का होना, दृष्टि में कमी, जरा सा काम करते ही थक जाना, निर्जन स्थान में रहने की इच्छा, बातें करने की अनिच्छा, हृदय का धुक्-धुक् करना, जीवन से निराशा, कब्जियत और अजीर्ण आदि इस रोग के लक्षण हैं। मन को चंचल करनेवाली पुस्तकों का पढ़ना, विषयभोग-सम्बन्धी बातों का निरन्तर चिन्तन, स्त्रियों को कामवासना की दृष्टि से देखना, अश्लील गाने गाना आदि कामवासना के प्रबल विचारों से ही इस धातुस्राव नामक रोग की उत्पत्ति होती है। बुरी संगति के कारण हस्तमैथुनादि प्रकृति विरुद्ध काम करने से भी धातुस्राव रोग उत्पन्न हो जाता है।

अहंकार या यौवन के उत्साह के कारण बहुत-से युवा मर्द लोग अधिक स्त्री-संगम करते हैं। इससे भी धातु में पतलापन और नपुँसकता उत्पन्न हो जाती है। दूसरे रोगों के कारण भी धातुस्राव उत्पन्न हो जाता है। पेट के गर्म

होने से या मन्दाग्नि के कारण धातु का पतलापन देखा गया है। जो नव-युवक शरीर की पुष्टि के ख्याल से बहुत उत्तम भोजन, घी, मलाई, दूध, बादाम आदि खाते हैं; परन्तु शारीरिक परिश्रम भोजन के अनुरूप नहीं करते, जिससे वह उत्तम भोजन सुखपूर्वक जीर्ण हो जाय। यदि ऐसे नवयुवकों को स्त्री-संगम करने का अवसर नहीं मिलता है तो उन्हें धातुस्राव का रोग होना अवश्यम्भावी है। ऐसी अवस्था में दिन-रात विषय-भोग की चिन्ता बनी रहती है। विषयभोग की चिन्ता के कारण जननेन्द्रिय उत्तेजित होकर वीर्य अण्डकोश में आ उपस्थित होता है। महर्षि सुश्रुत ने शारीरस्थान में लिखा है कि जैसे दूध में घृत के परमाणु मिले होते हैं, ईख के रस में गुड़ मिला होता है, ठीक उसी तरह शरीर के प्रत्येक परमाणु में शुक्र मिला होता है। मन में जब विषय-भोग की इच्छा उत्पन्न होती है, तब सारे शरीर में एक तरह का उबाल होने लगता है और उबाल के फलस्वरूप वीर्य उत्पन्न होकर अण्डकोष में एकत्रित हो जाता है। जब वह उत्पन्न होकर एकत्रित हो गया, तब किसी न किसी प्रकार से बाहर हो ही जायगा। उसे रोकने के सभी उपाय व्यर्थ हैं। इससे निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कुत्सित विचारों के कारण धातुस्राव की उत्पत्ति होती है। मेरा जन्म-स्थान एक छोटे से गाँव में है। अतः किसानों की चिकित्सा करने का अवसर बहुत मिला है। परन्तु मुझे स्मरण नहीं होता कि आजतक किसी किसान ने मुझसे धातुपुष्टि की कोई चिकित्सा कराई हो। इससे रोगोत्पत्ति के निश्चयपूर्वक तीन कारण स्थिर किए जा सकते हैं। (१) पौष्टिक पदार्थों का अधिक खाना, (२) शारीरिक परिश्रम न करना और (३) विषय-भोग का अधिक चिन्तन। ये तीनों कारण किसानों में नहीं पाए जाते। किसानों को अच्छा भोजन नहीं मिलता और बिना परिश्रम किए तो उनका जीवन-निर्वाह भी नहीं होता है। शिक्षित और शहरी जीवन में ये तीनों कारण एकत्रित होते ही धातुस्राव का रोग उत्पन्न हो जाता है। धातुस्राव के फलस्वरूप नपुंसकता, पक्षाघात और राजयक्ष्मा आदि रोग हो जाते हैं।

चिकित्सा--किसी भी प्रकार की चिकित्सा व्यर्थ है; "संक्षेपतः क्रियायोगो निदानं परिवर्जनम्" (जिस कारण से रोग उत्पन्न हो गया हो, उसको छोड़

देना ही मुख्य चिकित्सा है) यह सुश्रुत का वचन है। इसलिए सर्व प्रथम (१) मामूली खाना खाएँ, (२) शारीरिक परिश्रम करें और (३) उत्तम विचारों से दिमाग को भरें। फिर कदाचित् ही दवा लेने की आवश्यकता पड़ेगी। रोग आप ही आप शान्त हो जायगा। फिर भी दवा लेने की जरूरत समझी जाय तो शास्त्रीय दवाओं का ही सेवन उचित है। मैंने भी इस की रामबाण दवा के लिए बहुत चेष्टा की है; परन्तु शास्त्रीय दवाओं से उत्तम नुस्खा मुझे नहीं मिला। वास्तव में शास्त्रोक्त दवाइयाँ ही रामबाण की तरह काम करती हैं; देश, काल, अवस्था, दोष आदि के विचार से उसमें उचित परिवर्तन किया जा सकता है। पहले ही लिखा जा चुका है कि मन्दाग्नि के रोगी अपने आपको धातुस्राव का रोगी समझकर धातुपुष्टि की दवाओं का सेवन करने लग जाते हैं। धातुस्राव के रोगियों के बहुत-से पत्र हमारे पास आया करते हैं, जिनमें लिखा होता है कि "हमने विश्वासपात्र दवाखानों से खरीद कर धातु-पुष्टि की दवा खाई, परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। अब आपके ऊपर विश्वास करके दवा मँगाते हैं, धातुपुष्टि की अमुक दवा भेजिये।" कहना न होगा कि ऐसे रोगी दवा खाकर फिर पत्र में लिखते हैं कि "आपकी दवा से कुछ लाभ नहीं हुआ, आपकी दवा भी किसी काम की नहीं है।" फिर पत्र-व्यवहार से पता लगता है कि धातु-स्राव का तो भ्रम था, असल रोग दूसरा है। प्रायः मन्दाग्नि का होना साबित होता है। धातुस्राव के रोग में नीचे लिखी दवाएँ परीक्षित हैं। नियमपूर्वक सेवन की जायँ तो निश्चय फायदा दिखाएँगी --

(१) त्रिफला (हरड़, बहेड़ा और आमला) का चूर्ण ५·८३ ग्राम से ११·६६ ग्राम तक शहद या गरम जल के साथ सेवन करने से धातुस्राव ठीक हो जाता है।

(२) गिलोय (गुडूची) का स्वरस ११·६६ ग्राम समान भाग शहद मिला पीने से धातुस्राव में बहुत लाभ होता है। गिलोय का काढ़ा भी लाभकारी है।

(३) कच्ची हल्दी का स्वरस ११·६६ ग्राम समभाग शहद मिलाकर पीने से धातु पुष्ट होता है। सूखी हल्दी के चूर्ण को घी में भूनकर तथा समभाग मिश्री मिलाकर सेवन करने से भी उपकार होता है।

(४) आमले का स्वरस ११·६६ ग्राम समभाग शहद मिलाकर पीने से धातु-

स्राव अच्छा होता है। सूखे आमले का चूर्ण भी लाभकारी है। आमले के चूर्ण को आमले के रस में जितनी बार भावना दे सकें, दें। यदि १० बार भावना दे सकें, तो फिर क्या कहना है। यह धातुस्राव की परमौषधि है। वीर्य के विकारों को नष्ट करके शरीर में बल-वीर्य की वृद्धि करता है। भारतवर्ष जैसे गर्म देश के निवासियों के लिए इससे उत्तम धातु-पुष्टि की दवा शायद ही कोई हो। यह दिल, दिमाग और मेदे को अपूर्व ताकत देती है और धातुस्राव को जड़ से उखाड़ फेंकती है। यह चरक का नुस्खा है। काष्ठौषधिवर्ग में इससे उत्तम दवा दूसरी नहीं है। यह हमारा बहुत परीक्षित प्रयोग है।

(५) शुद्ध असली शिलाजीत १ से ३ ग्राम तक शहद में मिलाकर चाटने से धातुस्राव आराम होता है। यह नुस्खा विषय-वासना-प्रेमियों को ही सेवन करना चाहिए, क्योंकि इससे उत्तेजना बहुत होती है। केवल रोग की चिकित्सा कराने वाले को इसके सेवन की आवश्यकता नहीं है। उनके लिए और दवाइयाँ बहुत हैं। शिलाजीत, वंशलोचन, छोटी इलायची के बीज और सालम मिश्री· इन चारों चीजों को समभाग लेकर गोलियाँ बनाकर खाने से अधिक गुण करती हैं।

(६) २३३ ग्राम कोंच (कपिकच्छु) के बीजों को १२ घण्टे गो-दुग्ध में भिगो कर ऊपर के छिलके उतार लें तथा महीन पीसकर पिट्ठी बना लें। इसे घी में पकाकर ११·६६ ग्राम के बड़े बनाएँ और शहद में डाल दें। एक या दो बड़े रोज सुबह दूध के साथ खाएँ यह धातुपुष्टि के लिए उत्तम औषध है।

(७) १२१·५० मि. ग्रा. मकरध्वज, ४८६ मि. ग्रा. कबाबचीनी का चूर्ण और जरा-सा कपूर शहद में मिलाकर चाटें और ऊपर से २९ ग्राम चूने का पानी पीएँ। यह स्वप्नदोष की अचूक दवा है। ५८·३२ ग्राम चूना को एक बोतल पानी में मिला दें कुछ समय बाद चूना बोतल के तले में बैठ जायगा और स्वच्छ पानी ऊपर रहेगा। यही चूने का पानी है। रात को सोने के समय उपर्युक्त दवा चाटें और सुबह चन्द्रप्रभा बटी गिलोय के काढ़े के साथ खाएँ तो स्वप्नदोष में शर्तिया लाभ होगा। कबाबचीनी स्वप्नदोष में बहुत लाभ पहुँचाती है।

(८) **धातुपुष्टि चूर्ण**—शतावरी, गोखरू, बीजबन्द, वंशलोचन, कबाबचीनी

चोपचीनी, कौंच के बीज. सफेद मूसली, स्याह मूसली, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सालम मिश्री और विदारीकन्द इन १४ दवाओं का प्रत्येक ११·६६ ग्राम, निशोथ ७० ग्राम और मिश्री २३३ ग्राम--सबको कूटकर चूर्ण कर लें। यह चूर्ण ११·६६ ग्राम ताजा गोदुग्ध के साथ सेवन करने से पतला धातु गाढ़ा हो जाता है। जिसका हाजमा अच्छा हो उसके लिए इसका सेवन करना लाभदायक है।

(९) **चन्द्रप्रभा वटी**—कपूर, बच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पीपलामूल, चित्रकमूल की छाल, धनियाँ, हरड़, बहेड़ा, आमला, चव्य, वायविडंग, गजपीपल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, सोनामक्खी की भस्म, जवाखार, विड्नमक, सेंधा नमक और संचर नमक--इन २७ दवाओं का प्रत्येक तीन-तीन ग्राम; निशोथ (त्रिवृत), दन्तीमूल, तेजपत्र, छोटी इलायची के बीज, दालचीनी और वंशलोचन--इन ६ दवाओं का प्रत्येक ११·६६ ग्राम, लौह-भस्म ३२·२ ग्राम, मिश्री ४६·४ ग्राम, शुद्ध शिलाजीत ९३ ग्राम और शुद्ध गुग्गुलु ९३ ग्राम लें। सोनामक्खी, लौह-भस्म, शिलाजीत और गुग्गुलू को छोड़कर सब चीजों का चूर्ण कर लें। फिर सोनामक्खी आदि मिलाकर लोहे के इमामदस्ते में जरा-जरा घी देकर खूब कूटकर एक-एक ग्राम की गोलियां बना लें। ये गोलियां दूध के साथ सेवन करने से पेशाब से धातु का जाना, कमजोरी आदि नष्ट होते हैं। यह धातु-क्षीणता की परीक्षित दवा है। स्वप्नदोष में भी लाभ-कारी है।

--शा० ध०

(१०) **मेहमुद्गर वटिका**--रसौत, वायविडंग, देवदारु, बेल की गिरी, गोखरू, अनारदाना, चिरायता, पीपलामूल, त्रिकटु, हरड़, बहेड़ा. आमला और त्रिवृत्त (निशोथ)--इन १३ दवाओं का प्रत्येक ११·६६ ग्राम, लौह-भस्म १५१·६४ ग्राम और गुग्गुलु ५८·३२ ग्राम—इन सबको घी में मिलाकर एक-एक ग्राम की गोलियां बना लें और बकरी के दूध या जल के साथ खाएँ। इससे पेशाब के साथ धातु का जाना रुक जाता है।

(११) **स्वर्ण राज बंगेश्वर**--शुद्ध वंग १४० ग्राम को गलाकर पारा ७० ग्राम में मिला दें। फिर खरल में डालकर उसमें थोड़ा नमक और नीबू का रस डालकर मर्दन करें फिर पानी से धोवें, जब तक कालापन रहे तब तक धोवें।

फिर नौसादर और गन्धक प्रत्येक ४६·४ ग्राम मिलाकर कज्जली बना लें। फिर सब को कपरौटी की हुई बोतल में भरकर बालुकायन्त्र से पाक कर लें। स्वांग-शीतल होने पर शीशी तोड़कर निकाल लें। सोना जैसा पदार्थ मिलेगा। इसे 'स्वर्णवंग' कहते हैं। १२१·५ से ३६४·५ मि. ग्राम पर्यन्त मलाई आदि में खाने से धातुपुष्ट होता है। इससे नपुँसकता में भी लाभ होता है।

(१२) बसन्तकुसुमाकर रस—सोनाभस्म २३·२ ग्राम, चांदीभस्म २३·२ ग्राम, वंग, सीसा और लौह-भस्म—प्रत्येक ३५ ग्राम तथा अभ्रक प्रवाल और मोती भस्म, रससिंदूर प्रत्येक ४६·४ ग्राम—इन ८ दवाओं को पत्थर के खरल में डाल कर शतावरी का रस, ऊख का रस, अड़ूसे के पत्ते का रस, हल्दी का रस, केले के फूल का रस, श्वेत कमल का रस, मालती फूल का रस, केशर का पानी इन चीजों की क्रमशः अलग-अलग सात-सात भावना देकर २३·२ ग्राम कस्तुरी मिला कर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। घी, चीनी और शहद इसका अनुपान है। यह बसन्तकुसुमाकर धातुपुष्टि की सर्वोपरि औषध है। यदि इससे धातुस्राव का रोग आराम न हो, तो फिर औषधमात्र से फायदा होना कठीन है। इससे पेशाब में चीनी का जाना बन्द हो जाता है, नपुंसकता, नामर्दी दूर हो जाती है और संतान उत्पन्न करने की शक्ति आति है। — भै० र०

(१३) प्रमेहमिहिर तैल—२·८ किलो तिल के तेल को खूब औंटाकर संस्कार कर लें। फिर सोआ, देवदारु, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वामूल, कूठ, असगन्ध, श्वेत चन्दन, लालचन्दन, रेणुका, कुटकी, मलेठी, रास्ना, दालचीनी, छोटी इलायची, भारंगी, चव्य, धनियां, इन्द्रजौ, करंजबीज, अगर, तेजपत्ता, हरड़, बहेडा, आमला, नलिका, नेत्रवाला, बला, (बरियारा), अतिबला (कंघी), मजीठ, सरलकाष्ठ, पद्मकाष्ट, लोध, सौंफ, बच, जीरा, खश, जायफल, अड़ूसा की छाल और तगर-इन ४१ दवाओं का प्रत्येक २३·२ ग्राम लेकर कल्क करें। इस कल्क को तेल-पाक-विधि से तेल में डालकर पकाएँ। ३·७३ किलो लाख को ३० किलो पानी में डालकर काढ़ा करें। जब ७·५ किलो बचे तब छानकर इसी तेल में पकाएँ। फिर शतावरी का रस १·८७ किलो, दूध १·८७ किलो और दही का पानी ७·४६ किलो डाल कर पकाएँ। जब तेलमात्र रह जाय तब छानकर

रख लें। यह "प्रमेहमिहिर तैल" है। इसके मर्दन से धातु पुष्ट होता है। विशेष करके जब पेशाब में चीनी जाने लगती हैं, तब इसका मर्दन करना बहुत लाभकारी है। धातुस्राव को बन्द करके शरीर को बल-वीर्य युक्त करता है। शरीर की जलन, पित्ताधिक्य, प्यास, मुंह का सूकना आदि नष्ट होते हैं। हमारा अनुभव है कि इस तेल की मालिश से उतना ही गुण होता है जितना दवा खाने से। -भै० र०

पथ्यापथ्य--धातुस्राव के रोगियों के लिए दवाओं की अपेक्षा पथ्यापथ्य विशेष लाभदायक है। यदि इस पथ्यापथ्य के साथ शास्त्रोक्त ऊपर लिखी किसी दवा का भी सेवन किया जाय, तो कोई हताश नहीं होगा। अधिक न खाएँ, सोने से तीन घण्टे पहले खाना खाकर सोएँ और चित्त को पवित्र रखें। परमात्मा ने मन पदार्थ को इस प्रकार बनाया है कि वह निरन्तर कुछ न कुछ सोचा करता है। अत: मन से अच्छी बातें सोचें। मन में यदि दूषित विचारों का प्रवाह आने लगे तो उसे तुरन्त हटाकर उसकी जगह ब्रह्मचर्य का प्रभाव, पराक्रम, संसार में बल-प्रधान मनुष्य की आवश्यकता, भगवद्भक्ति आदि उत्तम विचारों को स्थान दें। स्त्रियों को कामवासना की दृष्टि से न देखें।। विचार करे, क्या मनुष्य विषयभोग के लिये ही पैदा हुआ हैं? पशु भी ऋतु के बिना सहवास नहीं करते। तब क्या मनुष्य पशु से भी अधम है? यह रोग अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने का ही घोर परिणाम है।

कठोर जीवन व्यतीत करें। मुलायम बिस्तरे पर न सोएँ। स्वप्नदोष होता हो तो अधिक देर न सोएँ। नियमपूर्वक शीर्षासन करें। दूध, घी, मलाई, रबड़ी, पेड़ा आदि पौष्टिक पदार्थ न खाएँ। चाय, काफी, पान, तम्बाखू, भांग, गाँजा, चण्डू, चरस, अफीम, कोकेन, ताड़ी, शराब आदि नशामात्र से घृणा करें। नाटक, उपन्यास, किस्से-कहानी आदि मन को चंचल करने वाली पुस्तकों से सख्त परहेज करें। कामदेव को भड़काने वाले दृश्य--नग्न चित्र, सिनेमा आदि से बचें। अधिक दवा खाने से भी परहेज करें। निकम्में न रहे। कुछ न कुछ काम करते रहें। कुछ काम ऐसा भी करें, जिससे शरीर में थकावट आ जाय। पहले ही लिखा गया है कि परिश्रमी किसानों को यह रोग पैदा नहीं होता। यह सच है कि सब लोग किसान नहीं हो सकते। किन्तु दो-एक घण्टा शारी-

रिक व्यायाम प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। घोड़े और साइकिल की सवारी जैसा परिश्रम निषेध है।

मधुमेह (पेशाब में चीनी जाना)

मधुमेह दो प्रकार का होता है—मधुमेह और मूत्रमेह। पेशाब के साथ चिनी जैसा मधु पदार्थ निकलता है उसे मधुमेह और केवल पेशाब अधिक होने को मूत्रमेह या मूत्रातिसार कहा जाता है। अधिक ठण्डी वस्तु खाने या सहसा ठण्डी ऋतु होने से बाज समय बहुत पेशाब हो जाता है, परन्तु वह कोई रोग नहीं है। दो-एक दिन में स्वतः ठीक हो जाता है। मधुमेह रोग बहुत धीरे-धीरे उत्पन्न होता है। यहाँ तक कि बहुत वर्षों तक रोगी को ख्याल भी नहीं होता कि उसे कोई रोग हो गया है। मधुमेह के आरम्भ में रोगी को पेशाब के लिए दो-एक बार रात को उठना पड़ता है। फिर धीरे-धीरे पेशाब अधिक होने लगता है और बढ़ने-बढ़ते रात-दिन में ३·७३ से १८·६६ किलो तक पेशाब हो जाता है। साथ ही सिर दर्द, कब्जियत, भूख की अधिकता, चमड़ा खुश्क और खुरखुरा, प्यास की अधिकता आदि लक्षण प्रगट होने लगते हैं। रोग बढ़ने पर शरीर जीर्ण-शीर्ण, भूख की कमी, पेशाब में चीनी का आधिक्य, दृष्टि कमी, पीठ का फोड़ा आदि लक्षण होते हैं। पेशाब की परीक्षा करने से चीनी का अंश साफ मालूम हो जाता है। मधुमेही रोगी जहाँ पेशाब करता है, वहाँ चीनी जैसा सफेद पदार्थ जम जाता है और उस जगह पर चींटियाँ और मक्खियाँ बैठती हैं। अन्त में पृष्ठ-व्रण या राजयक्ष्मा होने से रोगी की मृत्यु हो जाती है। मधुमेही रोगी का जरा-सा घाव भी भयंकर घाव हो जाता है; क्योंकि रक्त में चीनी होने के कारण घाव ठीक होने की प्राकृतिक शक्ति नष्ट हो जाती है। इस रोग की उत्पत्ति का कारण अग्न्याशय (पँक्रियस) में उत्पन्न होने वाले तत्व इन्सुलीन की कमी माना जाता है। आधुनिक चिकित्सक इन्सूलीन की सुई लगा कर इस रोग का नियन्त्रण करते हैं। किन्तु इन्सूलीन का प्रयोग भी खतरे से खाली नहीं। केवल योग्य चिकित्सक को ही इसका प्रयोग करना चाहिए। विद्यासागर और बाल गङ्गाधर तिलक जैसे मेधावी महापुरुषों की मृत्यु का कारण मधुमेह

ही है, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि अधिक मानसिक परिश्रम करने वालों को यह रोग होता हैं।

चिकित्सा—मधुमेह के रोगी को जहाँ तक हो सके दिमागी काम करना छोड़ देना चाहिए। चूंकि रोग जल्दी आराम होने वाला नहीं है, इसलिए लोक फिर दिमागी काम में लीन हो जाते हैं और इसी प्रकार जीवन व्यतीत कर देते हैं। नीचे लिखी दवाएँ चीनी को निश्चय कम कर देती हैं। परन्तु रोग के निर्मूल होने की गारण्टी नहीं दी जा सकती। मधुमेह रोग के लिए 'गुड़मार जड़ी' लाभदायक सिद्ध हुई है। यह विचित्र प्रभावशाली जडी है। इसको जरा-सा खाकर ऊपर से गुड़, चीनी, मिश्री आदि वस्तु कितनी ही खायी जाय स्वाद में जरा-सा भी मीठापन नहीं आता। इस जड़ी का चूर्ण १ ग्राम और स्वर्ण वंग भस्म ६१ मि. ग्रा. मिलाकर सेवन करने से मधुमेह में बहुत लाभ होता है।

(१) मकरध्वज १२१·५० मि. ग्रा. और काले जामुन की मींगी का चूर्ण १ ग्राम मधु के साथ सेवन करने से मूत्र में चीनी का जाना कम होता है एवं मूत्र के परिमाण भी कम होते हैं। काला जामुन का फल इस रोग से बहुत उपयोगी हैं।

(२) करेला २३३ ग्राम को पानी ४६७ ग्राम में पकावें, ११६·६४ ग्राम पानी शेष रहने पर छानकर पी लें। करेला भी खावे तो अच्छा है। मधुमेह में बहुत लाभ करता है।

(३) धातुस्राव-प्रकरण में लिखा बसन्तकुसुमाकर रस निरन्तर सेवन करने से मधुमेह में बहुत-कुछ लाभ होने की सम्भावना है।

(४) तिल ११·६६ या २३·२ ग्राम बराबर गुड़ मिलाकर खाने से मूत्रमेह में लाभ होता है। तिलों में पेशाव कम करने की विचित्र शक्ति है।

(५) **हेमनाथ रस**—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोना भस्म और सोनामक्खी-भस्म-प्रत्येक ११·६६ ग्राम तथा लोह भस्स, प्रवाल, कपूर और बंग भस्म-प्रत्येक ५·८३ ग्राम—इन ८ चीजों को एकत्रित करके पोस्त डोडा का काढ़ा, केले के फूल का रस और गूलर के फल का रस-प्रत्येक की सात-सात भावना दें और १२१·५० मि. ग्राम की गोलियाँ बना लें। यह मधुमेह और मूत्रमेह की अपूर्व

दवा है। गिलोयरस और मधु के साथ सेवन करें। यदि पारा और गन्धक की जगह मकरध्वज डाला जाय, तो उत्तम गुण करता है। --भैं० र०

(६) **शिलाजित्वादि वटी**—त्रिबंग भस्म ३५ ग्राम, छाया में सुखायी हुई नीम की पत्ती का चूर्ण ११६·६४ ग्राम, गूड़मार की पत्ती का चूर्ण ११६·६४ ग्राम और शुद्ध शिलाजीत १७५ ग्राम लें। प्रथम शिलाजीत में त्रिवंग भस्म मिलायें। पश्चात् अन्य चीजों के चूर्ण मिलाकर ४८६ मि. ग्रा. की गोलियाँ बनावें। यदि इस योग में ५·८३ ग्राम सुवर्ण भस्म भी मिलाकर गोलियां बनाई जायें तो विशेष गुणकारी बनता है। ४-४ घंटे के अन्तर से तीन-तीन गोलियाँ करके दिन भर में १२ गोलियाँ ठण्डे पानी के साथ देवें। —सि० यो० सं०

बहुमूत्र, इक्षुमेह और मधुमेह में इस दवा के सेवन से बहुत अच्छा लाभ होता है। आचार्य श्री यादवजी त्रिकमजी का यह बहुपरीक्षित योग है।

पथ्यापथ्य—चीनी, गुड़, मिश्री आदि मिष्टमात्र वस्तु न खाएँ। दूध, आदि में चीनी का व्यवहार न करे मीठे फल-- अंगूर आदि भी त्याज्य हैं। घी बहुत कम खाना चाहिए। नये चावल का भात, मैदा की रोटी, कचौड़ी, मछली आदि हानिकारक है। भूसी सहित आटे को रोटियाँ खानी चाहिए। ,हरे साग और ताजे फलों का सेवन लाभदायक है। पुराने चावल का भात, सत्तू, लावा, शहद, छाछ आदि पथ्य है। मक्खन निकाला हुआ दूध भी यथेष्ट पिया जा सकता है। नीबू मिला जल और आंवले के खाने से प्यास में शांति आती है। शारीरिक परिश्रम करना नितान्त आवश्यक है। ५--७ मील पैदल भ्रमण रोज करना चाहिए। यह रोग जैसा खराब है, वह किसी से छिपा नहीं है, लेकिन सुबह-शाम दोनों समय नियमित रूप से पैदल घूमने वालों का यह कुछ बिगाड़ नहीं सकता। यह अच्छी तरह देखो हुई बात है कि मधुमेह का सबसे अच्छा इलाज पैदल घूमना और कम भोजन करना ही है। इस प्रकार का आहार-आचार करके औषध का निरन्तर सेवन किया जाय, तो शायद भगवान् की इच्छा से रोग आराम हो जाय। प्रमेहमिहिर तैल पृष्ठ ३८५ का मर्दन भी लाभकारी है।

प्लीहा (तिल्ली बढ़ना)

तिल्ली बाएँ भाग की पसलियों के नीचे होती है। जब यह बढ़ती है तब बहुत बड़ी हो जाती है। पेट के बाएँ भाग में पत्थर का टुकड़ा रक्खा हुआ है

ऐसा मालूम होता है। प्रारम्भ में ज्वरभाव, शरीर रक्तशून्य और पांडुवर्ण, बदहजमी, कब्जियत, मुंह के मसूढ़ों का फुलना और उनसे रक्तस्राव होना आदि लक्षण देखे जाते हैं। अन्त में आँव, खून के दस्त, सारे शरीर में शोथ और जलोदर होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है। तिल्ली बढ़ने का कारण अधिकतर मलेरिया बुखार होता। मलेरिया बुखार में जब रोगी को ठण्ड लगती है तब उस समय रक्तकण टूटते हैं। उनको दुरुस्त करने में जो श्रम लीप्हा को करना होता है उससे उसका आकार बड़ा हो जाता हैं। कालाजार, बवासीर में रक्त का बन्द होना, मासिकधर्म का रुकना आदि कारणों से भी तिल्ली बढ़ जाती है। आजकल ल्युकीमिया (रक्त का कैंसर) प्लीहावृद्धि का प्रमुख कारण है।

चिकित्सा–यदि मलेरिया बुखार वर्तमान हो और उसके कारण तिल्ली बढ़ गई हो तो मलेरिया की दवा करें। जब तक मलेरिया नहीं जायगा तब तक तिल्ली अच्छी नहीं होगी।

(१) जवाखार ३ ग्राम गोमूत्र के साथ लेने से तिल्ली में लाभ होता है।

(२) ५८·३२ ग्राम नीबू के रस में शंख का चूर्ण ३ ग्राम डालकर पानी से बढी हुई तिल्ली ठीक हो जाती है। यह मात्रा यदि अधिक मालूम हो तो कम लेनी चाहिए।

(३) अजवायन, चित्रकमूल की छाल, जवाखार, बच और दन्ती-इनका चूर्ण ३ से ६ ग्राम तक दही के पानी के साथ सेवन करने से प्लीहा छोटी हो जाती है।

(४) मदार (आक) के पत्तों को बराबर नमक के साथ हाँडियों में भर दें और गोयठों (उपलों) में रखकर फूंक ले। इसका चूर्ण ३ग्राम जल के साथ खाने से तिल्ली आराम होगी।

(५) काच या मिट्टी के पात्र में ९३३ ग्राम नीबू के रस में सुहागे का लावा ११६·६४ ग्राम और ४० कौडी डालकर मूंह बन्द करके जमीन मे गाढ़ दें १५-२० दिन तक उसी तरह रहने दें। फिर उसे मथकर छान लें। इसमें से ५·८३ से ११·६६ ग्राम तक देने से तिल्ली में लाभ होता है।

(६) रोहित (रुहेड़ा) वृक्ष की छाल का काढ़ा जवाखार मिलाकर पीने से तिल्ली में बहुत फायदा होता है।

(७) **प्लीहारि बटी**——एलुआ (मुसब्बर) अभ्रकभस्म, कसीस, लहसुन——सबको सम भाग लेकर तीन पहर द्रोणपुष्पी (गूमा) के रस में घोंटकर ७२९ मि. ग्रा. के प्रमाण की बटी बना लें। इसका प्रातः सायंकाल जल के साथ सेवन करने से प्लीहा, यकृत्, गुल्म, अग्निमांद्य आदि रोग आराम होते हैं।

(८) **बृहत् लोकनाथ रस**——शुद्ध पारा ११·६६ ग्राम, शुद्ध गन्धक २३·२ ग्राम और अभ्रकभस्म ११·६६ ग्राम–इनको घीकुमार के रस में खरल करें। फिर ताम्रभस्म २३·२ ग्राम, लोहभस्म २३·२ ग्राम और कौड़ी की भस्म १०५ ग्राम मिलाकर काकमाची मकोय के रस में घोंटकर एक गोला बना लें और इस गोले को शराव सपुट में रखकर गजपुट में फूंक दें। इसमें २४३ मि. ग्रा. की मात्रा शहद में चाटने से प्लीहा, यकृत् और अग्निमांद्य रोग आराम होते हैं।

(९) **शंखद्राव**——नौसादर, कलमीसोरा, फिटकिरी और यवक्षार सबका बराबर भाग लेकर रिटोर्ट या नलिकायन्त्र से अर्क निकालें। यह गुल्म, आफरा, शूल, यकृत्दोष, प्लीहा, अश्मरी (पथरी) आदि को नष्ट करने में अत्यन्त लाभदायक है। ५ से १० बूंद तक चीनी या २९ से ५८ ग्राम तक जल में मिलाकर दिन में दो बार इसे पिलाना चाहिए। यह दवा दांत में नहीं लगने पावें क्योंकि यह एक प्रकार का तेजाब है। दाँतों में लगने से दाँत गिर जायेंगे। अतः जल में मिलाकर पीने से इसका भय नहीं रहता।

(१०) **लोहासव**——लोहे का बुरादा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, अजवायन, वायबिड़ंग, नागरमोथा, चित्रकमूल——इन ११ दवाओं में से प्रत्येक २३३ ग्राम, धाय का फूल १·१६ किलो, शहद ३·७३ किलो, गुड़ ५.८३ किलो, जल ३० किलो–इन सबको एक मिट्टी के घड़ा में भरकर एक महिना रखें, फिर छानकर बोतल में भर लें। मात्रा——१४.६३ से २९ ग्राम तक भोजन के बाद बराबर जल मिलाकर पिएँ। यह अग्नि को दीपन करने और खून को बढ़ाने वाला है तथा तिल्ली, यकृत्, पाण्डु, शोथ, गुल्म, आदि रोगों को नष्ट करता है।

मलेरिया, आँव, कालाजार, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग आदि के बाद शरार का खून कम हो जाता है। उस हालत में यह बड़ा फायदा करता है। --भैं० र०

यकृत्-पीड़ा--जिगर (लीवर) की बीमारी

प्राचीन ग्रन्थों में यकृत् रोग के विषय में अत्यन्त सूक्ष्म विवरण है। लिखा है कि प्लीहा के जैसे इस रोग के लक्षण और चिकित्सा समझनी चाहिए। वर्तमान समय में शहर और कस्बों के निवासी यकृत् रोग से बहुत पीड़ित रहते हैं। बहुत कम लोगों का यकृत्, जैसा कार्य करना चाहिए वैसा करता है। अधिकतर लोगों का यकृत् पूर्ण कार्य करने की क्षमता नहीं रखता। प्राचीन समय में लोग देहातों में परिश्रमी जीवन व्यतीत करते थे। उन्हें शुद्ध आहार, शुद्ध जल और शुद्ध हवा वहाँ मिलती थी। परन्तु इस वाणिज्य युग में न तो शुद्ध जल है, न शुद्ध आहार और न शुद्ध वायु ही। अनुमान है कि प्राचीन समय में यह रोग बहुत कम होता था, यही कारण है कि इसका विवरण अत्यन्त अल्प है। जिस प्रकार शरीर के बाएँ भाग की पसलियों के नीचे तिल्ली होती है, उसी तरह दाहिने भाग की पसलियों के नीचे यकृत् या जिगर है। मनुष्य शरीर में यकृत् जैसा बड़ा और उपयोगी यन्त्र दूसरा नहीं है। यकृत् रोग शुरू होते ही कम्प देकर बुखार आता है। बाद में बुखार तो शान्त हो जाता हैं, परन्तु यकृत् की बीमारी बनी रहती है। रोग जब धीरे-धीरे पुराना आकार धारण कर लेता है; उस समय यकृत् कठोर और पहले से बड़ा हो जाता है, परन्तु तिल्ली की तरह यह बहुत बड़ा नहीं होता, मामूली बड़ा होता है। यकृत् के स्थान को दबाने से दर्द करता है। परिश्रम करने से यकृत् में वेदना होती है। अपने-आप भी बिना परिश्रम के दर्द होता रहता है। साथ-साथ मन्द-मन्द ज्वर या ज्वर जैसी मामुली गर्मी बनी रहती है। सिर-दर्द, सफेद मैल से ढकी हुई जीभ, दुर्बलता, रक्त की कमी, मन्दाग्नि, दाहिने स्कन्ध में वेदना, कीचड़ जैसी टट्टी, आँवयुक्त मल, मुँह का स्वाद खराब आदि लक्षण प्रकट होते हैं। कब्जियत रहना और पेट में वायु का जमा होना इस रोग के खास लक्षण हैं। रोग जब बढ़ता है तो भयानक आकार धारण कर लेता है और अंत में यकृत् का संकोचन

होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है। अमेबिक प्रवाहिका पुराना होने पर अमेबा रोगाणु यकृत् में पहुँच जाने से पुराना मलेरिया बुखार, कुनैन या पारे का अपव्यवहार, अधिक मद्यपान, गर्म स्थान का निवास, अधिक मिठाई या मलाई, रबड़ी, भैंस का गाढ़ा दूध आदि का अधिक खाना आदि कारणों से यकृत् रोग की उत्पत्ति होती है। आजकल शहरों में विशुद्ध खाद्य पदार्थों का मिलना मुश्किल हो गया है। अशुद्ध खान-पान और अनियमित जीवन ही इस रोग की उत्पत्ति का प्रधान कारण है। दो-तीन वर्ष से लेकर पाँच-सात वर्ष की अवस्था के भीतर बहुत-से बच्चों का यकृत् खराब हो जाता है; जिससे बच्चे पुष्ट नहीं हो पाते। बराबर रोगी बने रहते हैं। शरीर में खून कम हो जाता है। आँखें व चेहरा सफेद और रक्तहीन दिखाई देता है। यह याद रखने की बात है कि बच्चों का बड़ा यकृत् भी ठीक चिकित्सा से अच्छा हो जाता है। परन्तु बड़ी उम्रवालों को हो जाने से कठिनाई और सुचिकित्सा से अच्छा होता है।

चिकित्सा—पहले कहा गया है कि यकृत् से पित्त निकलकर भोजन के पाक में सहायता करता रहता है। परन्तु यकृत् की शक्ति कम होने से भोजन का पाक अच्छी तरह नहीं होता। इसलिए यकृत् रोग में मन्दाग्नि का खान पान और मन्दाग्नि की दवा से अच्छा फायदा होता है। यकृत् रोगी के मल की परीक्षा कराके निश्चय करना चाहिए कि उसके मल में आंव तो नहीं आता है? यदि आंव हो तो धान्यपंचक क्वाथ को पकाकर ११.६६ ग्रा. की मात्रा में निरन्तर सेवन करना चाहिए। साथ ही आंव-दस्त प्रकरणोक्त आहार-विहार भी करना चाहिए। यकृत् रोग में नीचे लिखी दवाएँ लाभदायी हैं:--

(१) पाण्डु रोग में लिखित 'वर्धमान पिप्पली' इस रोग में बहुत लाभ करती है।

(२) जवाखार ३ ग्राम जल या मट्ठे के साथ खाना अति लाभदायक है।

(३) कबर ४ भाग, कासनी बीज ४ भाग, मकोय २ भाग, कासमर्द १ भाग, अर्जुन की छाल २ भाग, बिरंजासिफ १ भाग, झाऊ क्षार १ भाग और मण्डूर भस्म २ भाग ले कूट कपड़छान कर घृत कुमारी के स्वरस तथा मूली पत्र रस में ३ दिन घोंट २५० मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। २ गोली दिन रात में ३ बार

तक दें। यह यकृत् की समस्त बीमारियों को दूर करती है। यकृत् शोथ, यकृद्दाल्युदर (सिरोसिस), अंगरेजी दवाओं के विष से पीड़ित यकृत् ठीक हो जाता हैं तथा शरीर भाग में वृद्धि होकर अमित स्वास्थ्य लाभ होता है।

(४) पुराने यकृत् रोग में पेट में वायु बहुत संचित होती है। जब तक वह गुदा के मार्ग से निकल नहीं जाती तबतक बेचैनी बनी रहती है। अगर वह डकारों के रूप में ऊपर को होती है, तो और भी खराब है। इसके लिये चित्रकमूल-छाल ३ ग्राम और सोंठ ३ ग्राम १२ घण्टे तक नीबू के रस में भिगोकर चटनी की तरह पीसकर कल्क करके सेवन करना अति लाभदायक है।

(५) **यकृदरि लौह**—लोह भस्म ४६·४ ग्राम, अभ्रक भस्म २३·२ ग्राम ताम्र भस्म ११·६६ ग्राम, जम्बीरी नीबू की जड़ की छाल ४६·४ और अन्तर्धूम से भस्म किया हुआ कृष्णसार मृग का चर्म भस्म ४६·४ ग्राम इन सबको एकत्रित करके जल के साथ २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। यह पीपल और मधु के साथ सेवन करने से यकृत् रोग में अत्यन्त लाभदायक है। —भै० र०

(६) **आरोग्यवर्द्धिनी**—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, और ताम्र भस्म-ये सब प्रत्येक ११·६६ ग्राम, त्रिफला ७० ग्राम, शिलाजीत ३५ ग्राम, शुद्ध गुग्गुलु ४६·४ ग्राम, चित्रकमूल ४६·४ ग्राम, कुटकी १५६·४ ग्राम, सब काष्ठ दवाओं के महीन चूर्ण को खरल में डाल दें तथा उसमें पारागंधक की कज्जली को मिलाकर दो दिन तक नीम के पत्तों के स्वरस में अच्छी तरह घोंटकर बेर के बराबर ४८६ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। यह गुटिका यकृत् रोग में बहुत लाभ करती है। शास्त्र में कुष्ठ रोग में यह गुटिका लिखी है, लेकिन सभी वैद्य यकृत् की विकृति में इसको देते है और पूर्ण लाभ उठाते हैं। —र०र० स०

(७) **क्षारागद**—देवदारु, निशोथ, दन्ती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोंठ, सज्जीक्षार, यवक्षार, बड़ी हरड़, पाठा, जीरा, कूठ, नाई (नाकुली)—ये सब औषधियाँ २३·२ ग्राम, सेंधा नमक, काला नमक, विड् नमक, समुद्र नमक, प्रत्येक ४६·४ ग्राम इन सबको कूट कर घृत, तैल और दही में मिलाए। घृत, तैल और दही उतने ही परिमाण में लेना चाहिये, जिससे चूर्ण गिला हो जाय। फिर एक हाँड़ी में भरकर ढक्कन लगाएं और कपड़मिट्टी कर दें। चूल्हे पर

चढ़ाकर इसमें तबतक आँच लगाते रहें, जबतक की हाँड़ी नीचे से लाल वर्ण की न दिखने लग जाय। इसके बाद आँच बन्द कर दें और शीतल होने पर हाँड़ी के भीतर से क्षार निकाल लें। इसकी मात्रा १ ग्राम से ३ ग्राम तक है। यकृत्वाले रोगी को तक्र के साथ खिलाने से आराम होता है। अवस्थानुसार गोमूत्र तथा आसवारिष्टादि के साथ भी इसे दे सकते हैं। यह क्षार गुल्म, अपस्मार, उन्माद, उदर रोग और अश्मरी आदि में भी अच्छा लाभ पहुँचाता है। परीक्षित है।

(७) **वज्रक्षार**—काच नमक, जवाखार, समुद्र नमक, संचर नमक, सेंधानमक, सुहागा और सज्जीखार-ये ७ चीजें सम भाग लेकर मदार (आक) और सेहुंड (स्नूही) के दूध की ३ भावना देकर इन्हें सुखा लें। हंडिया में नीचे मदार के पत्ते रखकर दवा को रखें और उस पर फिर मदार के पत्ते रखकर मुँह बन्द कर दें और ९.३३ कि. गोयठों (उपलों) में रखकर फूंक दें। सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, जीरा, हल्दी, चित्रक—इन ९ चीजों का सम भाग लेकर चूर्ण करें। जितना वजन उस फूँके हुए ऊपर वाले नमक का हो, उसका आधा इन चीजों का चूर्ण मिला दें। इसमें ६ ग्राम की मात्रा में पानी या गोमूत्र के साथ देने से यकृत् प्लीहा, वायुगोला, आदि अच्छे होते हैं। —र० सा० सं०

(८) **कुमार्यासव** —सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, लौंग, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची के बीज, नागकेशर, चित्रकमूल की छाल, पीपसा मूल, वायविडंग, गजपीपल, चव्य, हाऊबेर, धनियाँ, सुपारी, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आमला, रास्ना, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वामूल, मुनक्का, मुलेठी, दन्ती, पोहकरमूल, बला, नागबला, कोंच के बीज, गोखरू, सौंफ हिंगुपत्री, अकरकरा, उटंगन के बीज, पुनर्नवा—शफेद, पुनर्नवा लाल, सोनामक्खी—इन सब दवाओ में से प्रत्येक २३·२ ग्राम,और धाय के फूल १५६·४८ ग्राम, इनका एकत्रित चूर्ण करें। फिर घीकुमारी का रस ११·६६ किलो, गुड़ ४·६७ किलो, शुद्ध लोहे का चूर्ण २·३३ किलो और शहद २·३३ किलो, सब को एक घड़े में डालकर मुँह बन्द करके जमीन में या धान के ढेर में रख दें। एक महीना बाद छानकर रोगी को दें। इसकी मात्रा २३·२ से ५८·३२ ग्राम तक की हैं। इससे सब तरह के उदर

रोग नष्ट होते हैं। यह यकृत् और प्लीहा में विशेष फायदा करता है। यह शोथ-शामक एवं बल तथा रक्तवर्द्धक है। परीक्षित है। --शा० ध०

पथ्यापथ्य--मुझे ५-६ वर्ष तक यकृत् रोग रह चुका है। एलोपैथिक, होमियोपैथिक, हकीमी, आयुर्वेदीय आदि दवाएँ खाते-खाते नाक में दम हो गया था। दवाई सेवन से लाभ होता था; परन्तु महीने-दो महीने बाद फिर वही हालत हो जाती थी। स्वास्थ्यप्रद स्थान में रहने से स्वास्थ्य अच्छा रहता था परन्तु कलकत्ते आते ही फिर वही हालत हो जाती थी। इस प्रकार बहुत कष्ट उठाने एवं खर्च करने के बाद प्रकृति की शरण ली। प्रात:कालीन चार-पांच मील का भ्रमण, अल्प वेग से धावन आदि व्यायाम तथा खान-पान के नियमों में परिवर्तन किया। आरोग्यदायक सभी नियम दृढता के साथ पालन किये। फलस्वरूप आज मेरी तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी है। यकृत् के रोगी को जहाँ तक हो सके घी और चीनी बहुत कम खानी चाहिए। बाजार के मिठाई से तो एकदम परहेज रखना जरूरी है। मन्दाग्नि के रोगी की तरह आहार-विहार रखना चाहिए।

शोथ (सूजन)

स्थानिक और सर्वांगिक भेद से दो तरह की सूजन होती है। स्थानिक शोथ-पैर, हाथ, पेट, मुख आदि शरीर के किसी एक भाग में होता है। सारे शरीर में एक साथ सूजन होने को सर्वांगिक सूजन कहते हैं। सूजन वाला स्थान प्राय: फुलावटयुक्त और पिलपिला होता है तथा हाथ से दबाने पर बैठ जाता है। सूजन की जगह जलांश विशेष संचय होकर वह स्थान फूल जाता है।

हृदय की बीमारी के कारण होनेवाली सूजन पहले जाँघ और हाथों पर होती है। तिल्ली और जिगर के कारण उत्पन्न होनेवाली सूजन पहले पेट पर होती है। वृक्क की बीमारी के कारण उत्पन्न होनेवाली सूजन पहले मुख पर होती है। रज की खराबी के कारण उत्पन्न होने वाली स्त्रियों की सूजन पहले हाथ, पैर और मुँह पर होती है। शोथ के साथ अरुचि, प्यास, ज्वरभाव, दुर्बलता, शरीर का चमड़ा शष्क होना आदि लक्षण वर्तमान रहते हैं।

चिकित्सा—जिस मूल रोग के कारण शोथ हो गया हो उसकी चिकित्सा से शोथ खुद आराम हो जाता है। जगली गोयठों (उपलों) को जलाकर राख बांधने से जलाँश का शोषण होकर शोथ मात्रा में लाभ होता है। इसी प्रकार वातव्याधि में लिखित विधि से पसीना निकाले, तो शोथ रोग में अवश्य लाभ होगा।

(१) जुलाब देकर पेट साफ करने से सब तरह के शोथ-रोग में लाभ होता है।

(२) गौमूत्र २९ ग्राम से ५८ ग्राम तक पीने से सूजन में फायदा होता है। यदि इसके साथ लोहभस्म भी दी जाय तो बहुत उपकार होता है।

(३) पुनर्नवा का काढ़ा पीने से और पुनर्नवा का रस लगाने से शोथ-रोग में लाभ होता है।

(४) पाण्डु रोग में लिखा पुनर्नवामण्डूर शोथ-रोग में विशेष लाभ करता है।

(५) पुनर्नवा, नीम की छाल, पटोलपत्र, सोंठ, कुटकी, गिलोय, दारुहल्दी, बड़ी हर्रे-यह पुनर्नवाष्टक काढ़ा पीने से सब तरह के शोथ आराम होते हैं। पुनर्नवा और कुटकी २ भाग लें, रोहितक छाल, शरपुंखामूल अपसंतीन एक-एक भाग और मिलाकर आरोग्यवर्धिनी या पुनर्नवामण्डूर के साथ देने से अधिक लाभ होता है (यादवजी)

(६) **दुग्ध बटी**—शुद्ध मीठा विष १·४६ ग्राम, अफीम १·४६ ग्राम, लौह भस्म ३०८ मि. ग्रा. और अभ्रकभस्म ७·३० ग्राम—सबको खरल में डालकर दूध के साथ घोंटकर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें और दूध साथ खाएँ। जल और भोजन की जगह दूध ही सेवन करें। अत्यावश्यक होने से भोजन में भात और पीने के लिए जरा-सा गरम पानी ले सकते हैं। रोग आराम न होने तक नमक खाना मना है। इससे शोथ, संग्रहणी, मन्दाग्नि आदि रोग आराम होते हैं। —भैं० र०

(७) **मण्डूर वटक**—हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चव्य, पीपलामूल, चित्रक-सूल, देवदारु, स्वर्णमाक्षिकभस्म, दारुहल्दी, नागरमोथा, वायविडंग—ये प्रत्येक दवाएँ ११·६६ ग्राम लें। बारीक पीसा हुआ शुद्ध मंडूर सब दवाओं से दुगुना ३२५·८ ग्राम लें।

बनाने की विधि--पहले मण्डूर को अठगुने गोमूत्र में पकाकर गाढ़ा करें। बाद में सब दवाओं का चूर्ण डालकर १-१ ग्राम के प्रमाण की गोली बना लें। इसकी १-१ गोली मट्ठा के साथ देने से शोथ, पाण्डु और कामला रोग में आराम होता है। यकृत्-प्लीहा में भी फायदेमंद है। --शा० ध०

(८) **शोथारि मण्डूर**--गोमूत्र में ७ बार शोधी हुई मण्डूरभस्म १५३ ग्राम को निर्गुण्डी, मानकन्द, अदरख और जमीकन्द (सूरण) के रस की तीन-तीन भावना दें। १·४ किलो गोमूत्र में डालकर औंटाएँ। जब वह गाढ़ा हो जाय तब उतारकर हरड, बहेड़ा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल और चव्य-ये ७ दवाइयां प्रत्येक ११·६६ ग्राम का चूर्ण करके ऊपर वाले मण्डूर गोमूत्र में मिला दें। ठण्डा होने पर ४६·४ ग्राम शहद भी मिला दे। उचित मात्रा में पानी के साथ सेवन करने से सब तरह के शोथ रोग आराम होते हैं। किसी भी कारण से शोथ हो, इससे अवश्य लाभ होता है। परीक्षित है। --भै० र०

(९) **महाशुष्कमूलकाद्य तैल**--तिल तैल ३·७३ किलो को खूब गरम करके संस्कार करें। फिर सोंठ, मिर्च, सेंधानमक, पुनर्नवा, काकमाची, शेलुत्वक् (चालता की छाल), पीपल, गजपीपल, कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, रास्ना, जवासा, काला जीरा, हल्दी, दारुहल्दी, करंज, नाटाकरंज, श्यामलता और अनन्तमूल--ये २० दवाइयाँ प्रत्येक ११६·६४ ग्राम लेकर कल्क करें। सूखी मूली का काढ़ा ३·७३ किलो, सहजने की छाल, धतूरे का पत्ता, फरहद की छाल, निर्गुण्डी, करंज, बरुण की छाल और पुनर्नवा--इन दवाओं का स्वरस या काढ़ा ३·७३ किलो. और दशमूल का काढ़ा ३·७३ किलो.--इन सब का यथाविधि पाक करके मालिश करने से सब तरह के शोथरोग तथा व्रण, कामला, पाण्डु और उदर को आराम होता है। --भै० र०

(१०) **मूत्रल कषाय** (सि० यो० सं०)-पुनर्नवामूल, गन्ने की जड़, वला मूल, खुरासानी अजवाइन, रक्तचन्दन, अनन्तमूल, देवदारु, सौंफ, धनिया, कुश की जड़, कास की जड़, छोटे गोखुरू, सागौन के फल, मकोय, कासनी के बीज, ककड़ी या खीरा के बीज, गिलोय, पाषाण भेद, काकनज, कमल के फूल, सब बराबर बराबर ले जौकुट (मोटा) कूट लें। इसमें से २३·२ ग्राम, १५ किलो

पानी में औटावें। ४६·४ ग्राम शेष रहने पर छान कर ६०७·५० मि. ग्रा. से १·२१ ग्राम तक शिलाजीत या क्षारपर्पटी मिलाकर दें। दिन में २-३ बार दे सकते हैं।

यह योग अच्छा मूत्रल योग है। गुर्दे (वृक्क) के कारण सर्वांगशोथ में इसका अच्छा उपयोग है। अश्मरी के कारण होने वाले दर्द में भी इस काढ़े का प्रयोग किया जाता है, उसके लिए इसमें जटामांसी २ भाग, खुरासानी अजवाइन के बीज या पत्ती २ भाग मिलाते हैं। क्वाथ में ४८६–९७२ मि. ग्रा. हजरूलयहूद भस्म डालने से विशेष लाभ होता है।

पथ्यापथ्य—जिस मूल रोग के कारण शोथ हो, उसका पथ्यापथ्य लेना चाहिए। शोथमात्र में अन्न छोड़कर सिर्फ दूध का ही भोजन दिया जाय तो बहुत सुन्दर फल होता है; साथ में ताजा फल और हरे शाक दे सकते हैं। गरम पानी से स्नान और मूंग की दाल, परवल, बैंगन आदि का शाक देना अच्छा है। नमक बिल्कुल न खावें। शाक में पुनर्नवा और मकोय का साग दवा जैसा गुण करता है। गो-मूत्र भी दवा है। दही-छाछ न लें।

व्रण, फोडे फुन्सी और घाव

शरीर में रक्त-विकार के कारण छोटी-छोटी फुन्सियां और बड़े बड़े फोड़े हो जाते हैं। कभी वे पककर बह जाते है और कभी घाव का आकार धारण कर लेते हैं। चोट लगने, कट जाने या जल जाने आदि से भी घाव हो जाता है। उपयुक्त उपचार न होने के कारण यह घाव नासूर (नाड़ी व्रण) का रूप धारण कर लेता है। प्राकृतिक नियम है कि मवाद (पूय) जिस स्थान में उत्पन्न होता है, यदि उस स्थान को साफ न रखा जाय तो आस-पास भी सड़न पैदा कर देता है। भीतर ही भीतर जब बहुत दूर तक सड़न हो जाती है, तब नासूर हो जाता है। एक तरह का भयानक फोड़ा पीठ पर होता है, उसे अदृष्ट व्रण या कारबंकल कहते हैं। यह बत्तक के अण्डे जैसा या सन्तरे जैसा होता है। प्रायः ४० वर्ष की अवस्था के बाद यह होता है। मधुमेह के रोगी को तो यह घाव होने से प्रायः मृत्यु ही हो जाती है।

चिकित्सा—शरीर के किसी भी भाग में बड़े फोड़े के उठते ही नीम के पत्तों या तीसी की गरम-गरम पुल्टिस बांधने से वे पककर खुद बह जायेंगे या शस्त्र

से कटाकर बहा दे। फोड़े को बैठाने की चेष्टा न करनी चाहिए, क्योंकि जिस खराब जहर को प्रकृति फोड़े के द्वारा बाहर निकालने की चेष्टा करती है, उसे अन्दर ही रोकना बुद्धिमानी नहीं है। नीम के पत्तों को पानी में डालकर गरम कर लें, इस पानी से दो वार घाव को धोकर साफ करें और खूब सूख जाने पर टिंचर आयोडिन लगाकर कपड़ा बाँध दें। यदि घाव गहरा हो तो एडोफार्म की रूई बाँध दें। पुराने और सडे हुए तथा फैलने वाले घाव को गरम पानी में जरा-सा पोटासियम परमेगनेट डालकर दोनों समय साफ करें तो बहुत लाभ होता है। कोई चिपकने वाली दवा मत लगाएँ। इससे घाव का मुँह बन्द होकर नासूर हो जाता है। घाव आप ही आप भरता है। दवा की सहायता से घाव जल्दी भर जाता है, यह भ्रम है। घाव को खूब स्वच्छ रखें तो वह खुद जल्दी अच्छा हो जायगा। घाव में धूल, तिनका, कंकड़ आदि न गिरे, इसलिए उस पर कपड़ा रखें। घाव को आरोग्य करने की यह सर्वोत्तम विधि है। मदयनयादि चूर्ण—११९, काला मलहम—१२५, विरोजे का लाल मलहम—१२६, श्वेत मलहम १२७, लिनिमेन्ट रेवन्द चिनी—१२९। सि. यो. सं. देखें।

(१) **महात्मा प्रदत्त मलहम**—उत्तम राल ११६·६४ ग्राम का खूब महीन कपड़छान चूर्ण करें और ५·८३ ग्राम पारा को २९ ग्राम तूतिया के साथ खूब घोंट कर राल के चूर्ण में मिला दें। फिर घी डालकर पत्थर की लोढ़ी-सिल से भाँग की तरह ६ घण्टे तक मेहनत से घोंटें। घी इस अन्दाज से डालें जिससे दवा रोटी बनाने के लिए जल मिले आँटे की तरह हो जाय। घोंटने के लिए बलवान आदमी की जरूरत है; क्योंकि मलहम पत्थर से बहुत चिपक जाता है। तैयार होने पर इसे टीन के डिब्बे में रख दें। फिर कपड़े को गोलाकार काटकर बीच में जरा-सा छेद रहने दें और मलहम को उस कपड़े पर लगाकर अग्नि की सहायता से जरा तपाकर फोड़े पर चिपका दें। बहुत जल्दी फोडा पककर बह जायगा। यदि मामूली सूजन ही होगी तो बैठ जायगा। यह बहुत सुन्दर चमत्कारिक दवा है। बतलाने वाले महात्माजी का कथन है कि इसको बेचना धर्मविरुद्ध है। प्रत्येक व्यक्ति को धर्मार्थ ही बाँटना चाहिए। अगर यह मलहम न हो तो सिर्फ गन्धाविरोजा को भी इसी तरह लगा दें, बहुत लाभ करता है।

(२) **व्रणराक्षस तैल**—पारा, गन्धक, हरताल, सिन्दूर, मैनसिल, लहसुन, सिंगीमोहरा विष, तांबे का चूर्ण—प्रत्येक ११.६६ ग्राम लेकर, और महीन चूर्ण करके २३३ ग्राम सरसों के तेल में मिलाकर तेज धूप में ३ दिन तक रहने दें। तीन दिन के बाद इसको बोतल में भर कर रख दें। यह तैल घाव व नासूर में बहुत फायदेमन्द है। खाज, खुजली, फोड़े, फुन्सी, मांसवृद्धि, विचर्चिका (Eczema) आदि में भी यह अत्यन्त लाभकारी है। —मैं० र०

(३) **घाव का तैल**—हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक ५८·३२ ग्राम; नीम की पत्ती ३५० ग्राम, निर्गुण्डी की पत्ती १७५ ग्राम—सबको ४·६७ किलो जल में डाल कर क्वाथ करें। चतुर्थांश (१·१६ किलो) जल शेष रहने पर छान लें फिर इसको ९३३ ग्राम तिल तैल में डालकर उसमें गुग्गुलु, राल, शिलारस, गन्धा-विरोजा और मोम प्रत्येक ५८.३२ ग्राम डालकर मन्दाग्नि से पकावें। तैल तैयार होने पर उतार कर छान लें। बाद में कार्बोलिक एसिड २९ ग्राम और कपूर ५८.३२ ग्राम मिलाकर बोतल में भर लें। जब दोनों मिलकर जलवत् हो जाय तो तैल में मिला दें। यह सब प्रकार के घाव की उत्तम दवा है। चोट लगना, छूरा, चाकू आदि से घाव हो जाने पर रक्त का निकलना, मोच आ जाना, अग्नि से जलना, गर्मी के कारण पैदा हुई फुन्सियाँ, कान से मवाद का बहना एवं सब प्रकार के सड़े-गले घाव आदि की यह सबसे अच्छी दवा है। यह व्रण को शुद्ध करता एवं सड़ते हुए मांस को रोक कर घाव को भर देता है।

(४) **घाव का उत्तम मलहम**—मुरदाशंख, सुहागा, तूतिया, कत्था, कबीला, मरिच, अजवायन—ये ७ चीजें ३५ ग्राम, कपूर ९ ग्राम, सफेद काजल (जो जयपुर में बहुत मिलता है) १७.५ ग्राम सुपारी नग ४, एवं पीली कौड़ी ४ नग लें।

बनाने की विधि—मरिच, अजवायन और सुपारी इन तीनों को अधजली कर लें, पीली कौड़ी की भस्म कर लें. फिर सबको कपड़छान चूर्ण करके गो-घृत में मिला दें। यह मलहम सब तरह के घाव में फायदा करता है। नीम के पत्ते के पानी से घाव को अच्छी तरह धोकर दो बार मलहम को लगाएँ इनसे सड़े और पुराने घाव भी अच्छे हो जाते हैं।

पामा (खुजली)

यह छूत का रोग है। खुजलीवाले का कपड़ा पहनने या मवाद लगने से यह रोग तुरन्त हो जाता है। खुजली को पैदा करने वाला एक तरह का कीड़ा होता है, जो सूक्ष्म और कोमल चमड़े के नीचे रहता है। यही कारण है कि पहले पहल यह रोग हाथ की अंगुलियों में होता है फिर चूतड़ों पर प्रकट होता है। पश्चात् शरीर के तमाम भाग में फैल जाता है, पहले छोटी-छोटी फुन्सियाँ उठती हैं, जिनमें बहुत खुजलाहट होती है। रात को खुजली का वेग प्रायः अधिक होता है और खाज के बाद जलन होती है।

चिकित्सा—खुजली के रोगी को सर्वप्रथम जुलाब देकर पेट साफ कर देना चाहिए। इससे तुरन्त लाभ मालूम होगा। फिर रक्तशुद्धि की दवा का सेवन और दवा के लगाने से रोग निर्मूल हो जायगा। कारबोलिक साबुन से प्रतिदिन दो बार धोने से भी शीघ्र लाभ होता है। सारवादिहिम—पृ. १२०

रसादिप्रलेप—पृ. १२३। जीवन्त्यादि मरहम—पृ. १२३ सि. यो. सं. में देखें

(१) ताजा अनन्तमूल २९ ग्राम का फाँट पीने से खाज, खुजली, फोड़ा, फुन्सी आदि रक्तविकार अच्छे हो जाते हैं।

(२) अनन्तमूल और गोरखमुण्डी का काढ़ा या अर्क पीने से भी खून साफ हो जाता है।

(३) आमलासार गन्धक ५८·३२ ग्राम और घी ५·८३ ग्राम को लोहे की कड़छुल में डालकर मन्द अङ्गारों पर रखकर मन्द ताप से तपाएँ। अधिक ताप से गन्धक जल जायगा। एक मिट्टी के बर्तन में ४६७ ग्राम दूध डालकर मुंह पर महीन कपड़ा लपेट दें। मन्द ताप से गन्धक जब जल जैसा हो जाय तब उसे कपड़े पर डाल दें। कपड़े से छनकर गन्धक दूध में जा गिरेगा। इस प्रकार ७ बार या ३ बार करने से गन्धक शुद्ध हो जाता है। इसको ३ से ६ ग्राम तक शहद के साथ चटाने से खुजली निर्मूल हो जायगी। इससे सब तरह के रक्तविकार शान्त होते हैं।

(४) मंजीठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कुटकी, बच, दारुहल्दी, नीम की छाल

और गिलोय—इन ९ दवाओं का काढ़ा पीने से रक्त-विकार शान्त होता है तथा खुजली निर्मूल हो जाती है।

(५) तुख्मलङ्गा ११.६६ से २९ ग्राम तक खाने से खुजली में फायदा होता है।

(६) आमलासार गन्धक को महीन पीसकर वेसलिन या घी में मिलाकर मालिश करने से खुजली में तत्काल लाभ होता है।

(७) **पामारि चूर्ण**—अशुद्ध गन्धक २३.२ ग्राम, मैनसिल, कालीमिर्च, कवीला और दारुहल्दी—प्रत्येक ११.६६ ग्राम, नीलाथोथा (तूतिया), मुर्दाशंख, सुहागा और सिन्दूर—प्रत्येक ५.८३ ग्राम—इन ९ दवाओं का चूर्ण करें। यह 'पामारि चूर्ण' है। इसे सरसों के तेल में मिलाकर खुजली पर मालिश करने से तीन-चार दिन के अन्दर ही खुजली आराम हो जाती है। यह तेज दवा है, इसलिए पहले बहुत कम चूर्ण तैल में मिलाकर मालिश करें। जब सह्य हो जाय तब अधिक चूर्ण मिलाकर लगाना चाहिए। यह अमीर प्रकृति के लोगों के काम की दवा नहीं है।

(८) **मरिचादि तैल**—आगे रक्तविकार में देखें।

दद्रु (दाद-दिनाय)

यह चर्म रोग मात्र है। इसमें दवा खाने की आवश्यकता नहीं है। सिर्फ लगाने की दवा से ही लाभ हो जाता है। साबुन से अच्छी तरह स्नान करना, तैल लगाना, भीगे वस्त्रों को न पहनना आदि बातों में सावधानी रखकर इस रोग से बचा जा सकता है। टट्टी की बदबू के कारण भी दाद हो जाती है।

(१) चक्रमर्द (चकवड़) के बीज को महीन पीसकर लगाने से दाद तथा एक्जीमा में लाभ होता है।

(२) सुहागे का लावा, राल, गन्धक और पारसी अजवायन—इन ४ चीजों को जल के साथ महीन पीसकर लगाने से दाद आराम हो जाती है।

(३) पारा और गन्धक की कज्जली करके दोनों के बराबर सुहागे का लावा मिला दें। इसे घी या तैल में मिलाकर लगाने से दाद, खाज, फोड़ा-फुन्सी, घाव आदि शर्तिया अच्छे होंगे।

(४) इमली के बीज को नीबू के रस में पीसकर लगाने से दाद में आराम हो जाता है।

सफेद कोढ़

शरीर के ऊपर जो सफेद-सफेद दाग हो जाते हैं वे कोढ़ नहीं हैं, चर्म रोग मात्र ही है। फिर भी लोग इसे कोढ़ के नाम से ही पुकारते हैं। इसमें छुआ-छूत के रोग होने का डर नहीं है। यह रोग किस कारण से पैदा होता है इसका निश्चय अभी तक नहीं हुआ है। इस रोग की बाकुची (बड़ा दानावाली-बावची, तुख्मलङ्गा नहीं) बहुत अच्छी दवा है। बाकुची का चूर्ण ३ से ६ ग्राम तक जल के साथ सेवन किया जाय और गोमूत्र में पीसकर लगाया जाय तो शीघ्र ही रोग अच्छा हो जाता है। यह दवा खाने से गर्मी करती है एवं लगाने से छोटी-छोटी फुन्सियाँ हो जाती हैं। किन्तु इसमें भय की कोई बात नहीं है। गर्मी तो स्वतः शान्त हो जाती है और छोटी-छोटी फुन्सियाँ हुए बिना चमड़े का रंग ही नहीं बदलता। मरिचादि तैल की मालिश भी लाभदायक है। जलने के कारण उत्पन्न हुए सफेद दाग प्रायः अच्छे नहीं होते।

पथ्यापथ्य—खाज-खुजली के रोगी के लिए ठंडे जल में स्नान करना बहुत लाभकारी है। पीड़ित स्थान को त्रिफला, नीम का काढ़ा या कार्बोलिक साबुन से धो लेने के बाद दवा लगाना बहुत फायदेमन्द है। नारियल के तैल को कपूर मिलाकर मालिश करने से भी खाज-खुजली में फायदा होता है। बिना नमक डाले चने की रोटी बहुत लाभ पहुँचाती है। यदि चने की रोटी का निरन्तर सेवन किया जाय तो बिना किसी दवा के भी रोग अच्छा हो सकता है। खुजली के रोगी के लिए दूध या दही का सेवन हानिकारक है। क्योंकि दूध या दही से शरीर में अधिक रस तैयार होता है और इससे बहुत खाज होती है। इसमें ताजा घी खाना बहुत उत्तम है। शहद खाना भी लाभदायक है। नमक, तैल, गुड़, खट्टा, मिर्चा आदि खाना निषेध है। पेट साफ रखना चाहिए, क्योंकि कब्जियत से बीमारी बढ़ती है।

रक्तविकार (खूनखराबी)

रक्त मनुष्य का जीवन है। प्राण के साथ ही रक्त भी शरीर से बिदा हो

जाता है। शुद्ध हवा फेफड़े में जाकर रक्त के दूषित अश को अपने में मिलाकर वापस लौटती है। शुद्ध हवा के अभाव में या कब्ज आदि के कारण जब रक्त दूषित हो जाता है, तब अनेक रक्तज रोग पैदा कर देता है। फोड़ा, फुन्सी, लाल-लाल गोल चकत्ते (मंडल), कोढ़, खाज, खुजली, आदि रक्तविकार पैदा हो जाते हैं।

रक्तविकार

आयुर्वेद में वात, पित्त और कफ तीन दाष हैं। कुछ आचार्य रक्त को भी दोष मानते हैं। यूनानी (हिकमत) तो रक्त को भी दोष मानती है। सारांश यह है कि रक्त दूसरी धातुओं को विकृत करके रोग पैदा करता है तथा स्वयं भी वात पित्त कफ द्वारा दूषित होकर रोग पैदा करता है। इन रोगों में प्रधान रोग गलित कुष्ठ है। जो भारत में ४० लाख से अधिक मनुष्यों को कष्ट दे रहा है। प्रारम्भ में कुछ मालूम नहीं होता जब मालूम हो जाता है तब भी बहुत से रोगी घर में ही रहकर रोग को फैलाते रहते हैं। बच्चों को खिलाते हैं मुंह में मुंह देते हैं। घर के स्वस्थ लोगों के बिस्तरों पर सोते हैं। साथ खाते हैं, रहते हैं इसलिये रोग फैल रहा है। कुष्ठ का ज्ञान होते ही रोगी को कुष्ठाश्रम में चला जाना चाहिये। कुष्ठाश्रम में रोग आरोग्य होने पर फिर घर में रहना उचित है गलित कुष्ठ का प्रधान लक्षण शून्यता है। शून्यता पैर-हाथ आदि में होती है नाक और कान के नीचे वाला भाग विवर्ण हो जाता है। वैद्य. डाक्टर से रोग निर्णय कराके रोगी को कुष्ठाश्रम में भेज दें। यदि घर में रखकर ही चिकित्सा करें तो रोगी का निवास स्थान सबसे अलग हो। "खदिरः कुष्ठघ्नानाम्" खैर कुष्ठ की सर्व श्रेष्ठ दवा है। इसके काष्ठ के चूर्ण के निरन्तर सेवन से लाभ होता है। आयुर्वेद तथा यूनानी में रक्त शुद्धि की बहुत अच्छी दवाएँ है। दवा एक दो वर्ष खाये बिना पूरा लाभ नहीं होता। लम्बा इलाज है। कुष्ठ के रोगी को बहुत समय तक औषध सेवन करना चाहिये। इस समय सभी कुष्ठाश्रमों में डाक्टरी दवाओं का व्यवहार हो रहा है। आयुर्वेद और यूनानी में गलितकुष्ठ की चिकित्सा सर्वश्रेष्ठ है। दुर्भाग्यवश वैद्य हकीम कुष्ठ को पाप रोग मानकर इलाज नहीं करते। यह देशी चिकित्सा तथा रोगियों के प्रति बड़ा

भारी अन्याय है। चित्रकूट के जंगल में निर्गुण्डी (सम्भालु) की जड़ में हलदी रंग का पराश्रयी कन्द होता है। कुष्ठ के सैकड़ों रोगियों पर अनुभूत है। ५-७ रोगी तो इस कन्द से मैंने स्वयं ठीक किये हैं। खदिर के अतिरिक्त शु० तवकिया हरिताल से भी निरोग हुए रोगी मैंने देखे हैं। रसमाणिक्य बहुत लाभ करता है। पंचकर्म करके कुष्ठरोगी की विधिवत् चिकित्सा की जाय तो अवश्य लाभ होता है।

चरक संहिता में नीचे लिखे रोगों को रक्तविकार बतलाया गया है :—

मुखपाक (मुंह में छाले होना), आंख का लाल होना, नाक से बदबू आना, मुख से दुर्गन्ध आना, गुल्म, उपकुश (मसूड़ों में दाह-पाक), विसर्प, रक्तपित्त, प्रमीलक, विद्रधि, रक्तमेह, प्रदर, वातरक्त, विवर्णता, अग्निसाद, पिपासा, शरीर का भारीपन, ज्वर, अत्यधिक दुर्बलता, अरुचि, शिरःशूल, अन्नपान के बाद पेट में दाह (जलन) होना तिक्त-अम्ल डकारों का आना, थकान (क्लम), अत्यधिक क्रोध, संमोह, मुख का नमकीन रहना, पसीना अधिक आना, शरीर से दुर्गन्ध आना, मद या नशा, कम्प, स्वरक्षय, तन्द्रा, अतिनिद्रा, कई बार आंखों के आगे अंधेरा आना, खुजली, अरुषिका (फुंसियां), कोठ (चकत्ते), पिडका, कुष्ठ चर्मदल (छाजन-उकौता)। आजकल अलर्जी (allergy) नाम से जो लक्षण समूह मिलता है उसका समावेश रक्तविकारों में ही किया जाता है।

चरक ने रक्तविकार है कि नहीं इसे जांचने के लिए एक श्लोक दिया है* जिसके अनुसार जो साध्य विकार शीतोपचार, उष्णोपचार, स्निग्धोपचार, रूक्षोपचार आदि उपचारों से ठीक न हों वे रक्तजविकार होते हैं।

चिकित्सा—समस्त रक्तविकारों की चिकित्सा में रक्तपित्तहरक्रिया, विरेचन (जुलाब), उपवास तथा रक्तमोक्षण करना होता है, इनसे रक्त शुद्ध होता और रक्तविकार दूर होते हैं।

---

*शीतोष्णास्निग्धरूक्षाद्यैरूपक्रान्ताश्च ये गदाः।
सम्यक् साध्या न सिध्यन्ति रक्तजास्तान् विभावयेत्॥

—च. सं. सू. स्था-अ. २४

रक्तशुद्धि के लिए जुलाब प्रधान दवा है; क्योंकि जब आंतों में मल-संचय हो जाता है तब आहारतत्व को चूसनेवाली छोटी-छोटी नाड़ियां उसी खराब रक्त को चूस कर रक्त के भाग में मिला देती हैं। फलस्वरूप अनेक प्रकार के रक्तविकार उत्पन्न हो जाते हैं। गाजवां ६ ग्राम, मुनक्का १० दाने, गुलाब फूल ६ ग्राम, मुलैठी ६ ग्राम, सौंफ की जड़ ६ ग्राम, अफ्तीमून ३ ग्राम, वेद अंजीर की जड़ की छाल ९ ग्राम, मकोय खुश्क ४ ग्राम--इन्हें आधा सेर पानी में रात को भिगो दें। सुबह आधा पानी जला और छान कर २३.२ ग्राम गुलकन्द के साथ खाएँ। यह बढ़िया मुञ्जिस है। पहले मुञ्जिस लेकर मल फुला देना चाहिए। फिर कब्जियत अधिकार में लिखित औषध-सेवन करके पेट को एकदम साफ कर देना चाहिए। सात दिन मुंजिस और सात या तीन दिन जुलाब लेने से प्राय:सभी तरह के रक्तविकार शान्त हो जाते हैं। सौंफ, गाजवां, गुलाब के फूल और मुलेठी--सब मिलाकर २९ ग्राम लें और आधा सेर पानी में डालकर काढ़ा करें। जब २३३ ग्राम शेष रह जाय तब २३.२ ग्राम मिश्री मिलाकर सुबह के समय पीएँ। यह भी मुंजिस है। खिचड़ी खाएँ। फिर रक्त शुद्धिकारक दवा का सेवन करें तो रोग एकदम निर्मूल हो जायगा।

(१) हरड़, बहेड़ा, आमला, उसवा, नीम की छाल, कुटकी, मँजीठ, गोरखमुण्डी, चोपचीनी और गिलोय—ये दस दवाइयां २३३ ग्राम और अनन्तमूल ताजा २ कि. ग्रा. १८.६६ किलो जल में १२ घंटे भिगोकर ५बोतल अर्क निकाल लें और ५८.३२ ग्राम अर्क सुबह-शाम सेवन करें। यह रक्त शुद्धि के लिए रामबाण है। यह खून की वृद्धि करता एवं आतशक और अशुद्ध पारे के दोष को समूल नष्ट करता है। इसके बराबर सेवन से कोढ़ तक अच्छा हो सकता है। खूब परीक्षित है।

इस अर्क की प्रत्येक बोतल में ६ ग्राम पोटास आयोडाइड और २८ मि. लि. एक्सट्रेक्ड जमैका सार्सापारिला मिलाने से बहुत उत्तम सालसा हो जायगा। इसकी खुराक २९ ग्राम की होनी चाहिए। इनके सेवन से खून खूब बढ़ता है और दुबला-पतला मनुष्य मोटा ताजा हो जाता है।

(२) **पंचतिक्त घृत गुग्गुलु**--नीम की अन्तर छाल, गिलोय, अडूसा पंचांग.

पटोलपत्र, कंटकारी की जड़, ५८३.६४ ग्राम लेकर जौकुट करके ३० किलो जल में काढ़ा करें, अष्टमांश ३.७३ किलो जल शेष रहने पर छानकर उसमें २९१,३२ ग्राम शुद्ध गुग्गुलु और ९३३ ग्राम घृत तथा पाठा वायविडंग, देवदारु, गजपीपल, सज्जीखार, यवाक्षार, सोंठ, हरिद्रा, सोंफ, चव्य, कूठ, मालमांगनीय (तेजोबल), काली मिर्च, इन्द्रजो, जीरा, चित्रक छाल, कुटकी, शुद्धभिलावा, बच, पीपलामूल, मंजीठ, अतीस, हरड़े, बहेड़ा, आंवला, अजवाइन, ये सब २३.२ ग्राम लेकर इन्हें चूर्ण रूप कर जल के साथ कल्क बना कर उपरोक्त घृत तथा काढे में डालकर पका लें, केवल घृत शेष हरने पर उसे छान कर मोबियान में रख लें।

मात्रा और अनुपान—६ ग्राम से ११.६६ ग्राम तक दूध के साथ। यह रक्त शुद्धि की बहुत अच्छी दवा है। एग्जीमा (विचर्चिका) रोग जो वर्षों तक मनुष्य को भयानक कष्ट देता है। इस घृत के सेवन से पूर्ण लाभ हो जाता है। मैंने अनुभव करके देखा कि अनेक दवा लगाने तथा खाने पर भी जो एग्जीमा ठीक नहीं हुआ वह इससे निश्चित रूप से और पूर्ण रूप से अच्छा हुआ है।

(३) **रसमाणिक्य**—वंशपत्री (तबकिया हरताल) को कुम्हडे के रस और दही के पानी में सात-सात दिन घोटे। फिर ऊपर-नीचे अभ्रक का पत्र देकर बेर के पत्तों के कल्क से सन्धिरोध करके सुखाकर अंगार पर तपाएँ। लाल-सुर्ख रंग होते ही तैयार हुआ समझें। इसे २४३ मि. ग्रा. की मात्रा में घी और शहद के साथ चाटें। इससे भयानक रक्तविकार शान्त होता है। शास्त्र के लेखानुसार गलित कुष्ट भी इसके सेवन से अच्छा हो जाता है। यह वातरक्त की परीक्षित दवा है।

मरिचादि तैल—कड़वा तैल ३.७३ किलो, गोमूत्र १५ किलो, मरिच, तबकिया हरताल, मैनसिल, नागरमोथा, आक का दूध, कनेर की जड़ निशोथ, गोबर का रस, इन्द्रायण-मूल, कूठ, दारुहल्दी, हल्दी, देवदारु, लालचन्दन—इन १४ दवाओं के प्रत्येक ९२.८ ग्राम एवं तेलिया-मीठा विष ११६.६४ ग्राम इन दवाओं का कल्क बना लें और तैल पाक-विधि से तेल तैयार करें। इसका नाम मरिचादि तैल है। यह खाज, खुजली, कोढ़ आदि रक्तविकार में लाभ करता है।

(५) तुवरक तैल लेटिननाम--हिडनोकार्पस वाइटियाना Hydnocarpus wieghtiana भारत वर्ष के पश्चिमी समुद्र के किनारे जंगल में चालमूगरे के वृक्ष होते हैं। बरसात के आरम्भ में इसके फल पकते हैं, उस समय इनको लाकर उनके अन्दर का मगज निकालकर सुखा लें और कोल्हू में पेरकर तेल निकाल लें अथवा चूर्ण कर जल में पकावें। जब तैल ऊपर आ जाय तब उसे ऊपर-ऊपर से युक्तिपूर्वक निकालकर दूसरी कड़ाही में पकावें। पानी जल जाने पर छान लें।

सेवन-विधि—सवेरे-शाम यह तैल ५ बूंद से आरम्भ कर प्रति चौथे दिन ५ बूंद की मात्रा बढ़ाकर ६० बूंद तक गाय के ताजे मक्खन या मलाई में मिलाकर दें। रोगी जितनी मात्रा सहन कर सके, उतनी बढ़ाते जाएँ। जब मात्रा बर्दाश्त नहीं होती, तब जी मिचलाने लगता है और उल्टी हो जाती है। जब ऐसा लगे तब तैल की मात्रा घटा दें। अधिक से अधिक रोगी जितनी मात्रा में सहन कर सके उतनी ही बढ़ायें। इसको छः महीना या जब तक रोग आराम न हो, देते रहें। यह तैल खाने और लगाने दोनों काम में आता है। इसकी मालिश से चमड़े पर जलन मालूम हो, तो इसको मक्खन या नीम के तेल में मिलाकर मालिश करनी चाहिये।

पथ्यापथ्य--यदि रोगी केवल दूध, मोसम्बी, मीठा नीबू, अनार, सेव, केला, मीठा अंगूर आदि मीठे फल खाकर इसका प्रयोग करे, तो विशेष और शीघ्र लाभ होता है। यदि इस पथ्य पर न रह सके तो पुराना चावल का भात, जौ, गेहूँ की रोटी, थोड़ा घी लगाकर दूध के साथ खाने को दें। खट्टे, नमक वाले तथा कड़वे पदार्थ नहीं खाने चाहिए।

गुण--सब प्रकार के रक्तविकार, कुष्ठ, महाकुष्ठ, दाद, खाज, खुजली, व्रण, वातरक्त, कण्ठमाला आदि रोगों में खाने और लगाने से खूब लाभ होता है। इस तैल में कपड़े को भिगोकर व्रण पर रखने से व्रण शीघ्र भर जाता है। रक्तशोधन के लिए इसका प्रयोग अति उत्तम है। केवल दो भाग यह तैल, एक भाग बाकुची तैल, एक भाग चन्दन का तैल मिलाकर लगाने से खाज, खुजली, एक्जिमा और सफेद कुष्ठ आदि चर्म रोग में अच्छा फायदा होता है।

(६) **गन्धक रसायन**--गाय के दूध से तीन बार शुद्ध किये हुए गन्धक

(आमलासार) को पीसकर उसमें चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर समान भाग मिलाकर), गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, भृङ्गराज इन सबके स्वरस या क्वाथ में पृथक्-पृथक् आठ बार भावना दें फिर सुखाकर चूर्ण कर लें जितना यह चूर्ण हो उतना ही मिश्री का चूर्ण इसमें मिला कर रख लें। वमन और विरेचन से देह शुद्धि करके सुबह-शाम डेढ़ ग्राम की मात्रा में ठंडे जल के साथ इसे सेवन करने से धातुक्षय, प्रमेह, अग्निमान्द्य, शूल, कोष्ठ-गतरोग, अठारह प्रकार के कुष्ठ रोग में बड़ा अच्छा लाभ होता है। इसके सेवन काल में नमकीन और खट्टे पदार्थ, शाक, दालें इनको नहीं खाना चाहिये तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। रक्तशुद्धि के लिये यह प्रसिद्ध एवं सुपरीक्षित योग है।

—आयु० प्र०

वक्तव्य—आयु० प्र० में इसकी मात्रा १ कर्ष अर्थात् ११.६६ ग्राम की लिखी है किन्तु वर्तमान समय के अल्पबल वाले मनुष्यों के लिये सुबह-शाम डेढ़ ग्राम की मात्रा में सेवन करना ही पर्याप्त है।

(७) **सारिवादि हिम**—अनन्तमूल, उशवा, चोपचीनी, मजीठ, गिलोय, धमासा, लालचन्दन, गुलवनपशा, खस, गोरखमुण्डी, शाहतरा, कमल के फूल, गुलाब के फूल, गूमा, पद्माख, शंखाहुली प्रत्येक समभाग ले, सबको मिला मोटा-मोटा चूर्ण करके रख लें। इसमें से ११.६६ ग्राम चूर्ण को रात में ७० ग्राम गरम जल में मिट्टी के या काँच के पात्र में भिगो ढककर रख दें। सवेरे हाथ से मसलकर कपड़े से छानकर रोगी को पिलायें। फिर उसी हिम के छाने हुए फोक में ५८.३२ ग्राम गरम जल डालकर रख दें। शाम को हाथ से मसलकर कपड़े से छानकर पिलायें। दूसरे दिन फिर नया चूर्ण लेकर इसी प्रकार बनाकर सुबह-शाम पिलायें। रोग शान्त होने तक प्रयोग करना चाहिये।

सब प्रकार के रक्तविकार, कण्डू, पामा, हाथ-पाँव की जलन, अम्लपित्त, जीर्णज्वर, पित्त और रक्त दृष्टि प्रधान रोगों में इसका प्रयोग बहुत लाभदायक है। रसरक्तादि विकृत धातुओं और पित्त का शोधन कर यह शरीर को नीरोग बना देता है। यह सुपरीक्षित योग है।

(८) **सारिवाद्यासव**--श्यामलता, नागरमोथा, लोध, वट की छाल, पीपल की छाल, कचूर, अनन्तमूल, पद्माख, नेत्रवाला, पाठा, आँवला, गिलोय, खस, सफेद चन्दन, अजवायन, कुटकी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, कूठ, स्वर्णपत्री (सनाय), बड़ी हरड़—इन २३ दवाओं में प्रत्येक का चूर्ण २३३ ग्राम, जल ३० किलो, गुड़ १७॥ किलो (३ तुला), धाय के फूल ५८३·६४ ग्राम, मुनक्का ३·२७ किलो—इन सब चीजों को मिट्टी के बड़े बर्तन में बन्द करके एक महीना रखें और इसे बाद में छानकर बोतल में भर लें। इसका नाम 'सारिवाद्यासव' है। मात्रा--२९ से ५८.३२ ग्राम तक है। इसके सेवन से सब तरह के रक्तविकार (खून की खराबी), पारे का दोष, आतशक (गर्मी) का विष आदि नष्ट होते हैं। यह रक्तशुद्धि और रक्तवृद्धि करता है। --भै० र०

पथ्यापथ्य--खुजली की तरह पालन करना चाहिए।

सूजाक

विचारपूर्वक देखा जाय तो रोगमात्र मनुष्य के आहार आचारादि दोषों से उत्पन्न होते हैं; परन्तु सूजाक और आतशक रोग तो मनुष्य खुद खरीदता है। यदि मनुष्य अपने मन को वश में रख सके तो इन रोगों से होने वाले कष्टों से बच सकता है। सूजाक वाली स्त्री के साथ सम्भोग करने से पुरुष को तथा सूजाक वाले पुरुष के साथ सम्भोग करने से स्त्री को यह रोग उत्पन्न हो जाता है। कड़ी धूप में घूमने या तेल, अचार आदि अत्युष्ण पदार्थ के अधिक खाने से पेशाब में जलन पैदा हो जाती है और सूजाक के लक्षण देखे जाते हैं; परन्तु यह जलन आप-ही-आप शान्त हो जाती है। बहुत-से धूर्त्त रोगी इसी तरह के कारण बतलाकर चिकित्सक को भ्रम में डालने की चेष्टा करते हैं, परन्तु उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि मामूली कारणों से उत्पन्न हुए सूजाक और आतशक बिना दवा के भी अच्छे हो जाते हैं, किन्तु सूजाक का जहर शरीर में घुसने के २-३ दिन बाद ही रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। शुरू-शुरू में मूत्रनली का मुंह सुरसुराता और खुजलाता है। पेशाब लाल और गर्म होता है। पेशाब में थोड़ी जलन और कुछ मवाद भी आने लगती है। इसके बाद सूजाक की असली

अवस्था उत्पन्न होती है, और पेशाब करते समय भयानक यन्त्रणा होने लगती है। सफेद, पीला या हरा मवाद भी बहुत आने लगता है। रात को सोते समय जननेन्द्रिय उत्तेजित हो जाती है, जिसके कारण रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है। जननेन्द्रिय के मुण्ड में सूजन, अण्डकोषों और बस्ति ग्रन्थि में प्रदाह आरम्भ हो जाता है। ७ से १४ दिन के भीतर रोग के सब लक्षण घटकर सूजाक पुराना आकार धारण कर लेता है। पुराने सूजाक में पेशाब की जलन बहुत कम हो जाती या बिल्कुल नहीं होती है। सिर्फ पीला या सफेद पीप कम तादाद में निकलता रहता है। कभी कभी मूत्रनली के संकोच के कारण पेशाब पतली धार से या रुक-रुककर होता है। मवाद के कारण मार्ग रुक जाने से बाज समय पेशाब एकदम बन्द हो जाता है।

मूत्रमार्ग की कफ की पतली झिल्ली में प्रदाह होकर घाव हो जाता है जिससे मवाद आता रहता है। सूजाक के प्रदाह से बाघी (बद) भी हो जाती है। प्राय: देखा जाता है कि सुजाक या आतशक जब भयानक न होकर मामूली रूप से प्रकट होता है तब बाघी होती है। रोग का बचा हुआ जहर वात के रूप में प्रकट हो जाता है। सूजाक या आतशक होने के बाद गठिया-वात का होना बहुत सम्भव है। लोगों का विचार है कि सूजाक या आतशक में ठण्डी चीजों के व्यवहार से गठिया वात हो जाती है, परन्तु असल में ऐसी बात नहीं है। गठियावात सूजाक या आतशक के जहर से ही उत्पन्न होती है। सूजाक और आतशक भयानक बीमारी है। एक-दो महीने के भीतर इलाज करने से तो यह ठीक हो जाता है; किन्तु ज्यादा पुराना हो जाने पर इसके कीड़े बहुत भीतर चले जाते हैं तब किसी तरह की चिकित्सा से लाभ नहीं होता। फलस्वरूप रोगी का जीवन नष्ट हो जाता है।

चिकित्सा—सूजाक के रोगी का मामूली जुलाब देकर पेट साफ कर देना चाहिए। सूजाक की पहली या दूसरी अवस्था में पेशाब का जुलाब देना चाहिए। मूत्रस्तम्भ में लिखा नुस्खा नं० ६ बहुत फायदेमन्द है। कच्चे दूध में समभाग जल मिलाकर लस्सी बनाकर भर पेट पीएँ, इससे पेशाब का जुलाब होगा। दही की लस्सी में जवाखार मिलाकर पीने से भी बहुत पेशाब उतरता है।

ककड़ी के बीज ३ ग्राम और कलमी शोरा १॥ ग्राम फाँक कर ऊपर से लस्सी पीना मूत्ररेचक है। कबाबचीनी का चूर्ण १॥ ग्राम ३-४ बार ताजा जल या लस्सी के साथ पीने से खूब पेशाब उतरता है। मूत्राघात और मूत्रस्तम्भ के नुस्खे भी लाभदायक हैं।

(१) ताजा गुरुच (गिलोय) ११.६६ ग्राम को २३३ ग्राम पानी में रात को भिगो दें। सुबह मल-छान कर ५८.३२ ग्राम शहद मिलाकर पीएँ। उससे पेशाब की जलन और मवाद निश्चय बन्द हो जायगा। १ गोली चन्द्रप्रभा वटी खाकर ऊपर से यह पानी पीया जाय तो शर्तिया आराम हो जाता है।

(२) गन्धविरोजा का तैल, कबाबचीनी का तैल और असली चन्दन का तैल—तीनों तैल समभाग मिलाकर १० से २० बूंद तक चीनी या मिश्री के शर्बत के साथ सेवन करें। इससे सूजाक में शर्तिया लाभ होता है। खाली चन्दन का तेल भी पुराने सूजाक में अच्छा फायदा करता है।

(३) राल (धूना) का चूर्ण १॥ ग्राम तक ४६७ ग्राम मट्ठा या जल के साथ सेवन करने से सूजाक में अच्छा लाभ करता है।

(४) सत्यानासी (चोक) की जड़ की छाल ६ ग्राम से ११.६६ ग्राम तक पीसकर जल के साथ लेने से सूजाक में लाभ होता है तथा दस्त भी साफ होता है।

(५) वंशलोचन, माजूफल, गन्धाविरोजा का सत्त और सफेद कत्था को समभाग लेकर चन्दन के तेल के साथ एक-एक ग्राम की गोलियाँ बना लें। इसको मिश्री के शर्बत या जल के साथ सेवन करने से सूजाक में लाभ होता है।

(६) शिलाजीत, कबाबचीनी, रेवन्दचीनी, जवाखार, पकाया हुआ सोरा, कतीरे का गोंद, गेरू, फूली हुई फिटकरी, वंशलोचन, राल, चन्दन का बुरादा, गिलोय का सत्त और विरोजे का सत्त—ये १४ दवाएँ समभाग लेकर चूर्ण बना लें और ६ ग्राम की मात्रा में दूध या जल के साथ लें। यह सूजाक में रामबाण की तरह लाभ पहुँचाता है। यह योग धातुपुष्टि के लिए भी लाभदायक है।

(७) सेमल की जड़ (मूसली) का स्वरस या केले के खम्भों का स्वरस ११.६६ से २३.२ ग्राम तक पीने से सूजाक में अच्छा फायदा होता है।

(८) सूजाक में सोते समय जननेन्द्रिय उत्तेजित होकर बहुत कष्ट देती है। इसके लिये जननेन्द्रिय के मार्ग में जरा-सा कपूर या अफीम रख देने से उत्तेजना नहीं होती है।

(९) सूजाक में भीतर घाव हो जाता है, इसलिये पिचकारी द्वारा मूत्र-मार्ग से उस घाव को प्रतिदिन दोनों समय या कम-से-कम एक बार तो जरूर धोना चाहिए। गुनगुने पानी में जरा-सा पोटास परमेगनेट मिलाकर या त्रिफला के काढ़े से धोना उत्तम है।

(१०) **चन्दनासव**--सफेद चन्दन, सुगन्धवाला, नागरमोथा, गम्भारीछाल, नीलोफर, प्रियंगु, पद्माख, लोध-छाल, मजीठ, लाल चन्दन, पाठा, चिरायता, वट की छाल, पीपल की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, मुलेठी, रास्ना, परवल का पत्ता, कचनार की छाल, आम की छाल, मोचरस प्रत्येक दवा ५८.३२ ग्राम; धाय के फूल ९३३ ग्राम, मुनक्का १.१६ किलो—इन सबको लेकर ३० किलो जल में चीनी ५.८३ किलो, गुड़ ३ किलो मिला कर काष्ठादि दवाओं को डालकर मृत्तिका पात्र में १ मास पर्यन्त बन्द कर रखें। बाद में छान कर इसे प्रयोग में लावें। इसकी १४ ग्राम से २९ ग्राम तक की मात्रा में बराबर जल मिला कर भोजन के बाद या आवश्यकतानुसार सेवन करें। यह बीसों प्रकार के प्रमेह मूत्रकृच्छ्र सूजाक (गनोरिया) आदि को नष्ट कर बल और कान्ति को बढ़ाता तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है। यह पुराने सूजाक और प्रमेह की उत्तम दवा है। --भै० र०

(११) **चन्द्रनादि वटी** –सि. यो. पेज ९७ पर देखें।

पथ्यापथ्य--गुड़, तेल, लाल मिर्च, अचार, मसाला आदि न खाना चाहिए। इसमें नर्म बिस्तरे पर सोना, स्त्री-सम्भोग, घूमना, कसरत करना तथा साइकिल या घोड़े की सवारी एकदम मना है। यदि साथ में ज्वर हो, तो दूध-साबूदाना लेना चाहिए। हलका और पुष्टिकारक भोजन करना चाहिए। रोटी, भात, दाल, साग, फल, दूध आदि पथ्य हैं। शराब या ब्राण्डी ५६ मि. लि. पीने पर भी सूजाक न उभरे तो समझना चाहिए कि रोग जड़ से आराम हो गया।

सूजाक से बचने का उपाय--सूजाक के रोगी के साथ विषय-भोग न करना ही इससे बचना है। लेकिन पुराना सूजाक ऐसी हालत में आ जाता है कि उसकी पहचान मुश्किल से होती है, इसलिये विषय-भोग के बाद तत्काल पेशाब से मूत्रनली को धो डालना चाहिए । जननेन्द्रिय के चमडे को खींचकर वन्द करके पेशाब करें ताकि थैली की तरह पेशाब जमा हो जाय, फिर एक मिनट बाद छोड़ दें । इस तरह ३-४ बार करें । पेशाब में तेजाब होता है, उससे सूजाक के कोमल कीटाणु तत्काल मर जाते हैं । विषय-भोग के कुछ समय बाद वे सूजाक के कीड़े भीतर जाकर अपना स्थान बना लेते हैं, फिर तो वे बिना तेज दवा के मरते ही नहीं । इसलिये विषय-भोग के बाद तत्काल यह क्रिया कर लेनी चाहिए, ताकि सूजाक होने का भय न रहे।

उपदंश (आतशक)

सूजाक की तरह आतशक भी मनुष्य के पापों का ही फल है । आतशक या सूजाक होने से मनुष्य-जीवन का आनन्द ही चला जाता है । यह रोग जहाँ एक बार लगा कि जन्म भर इसका जहर बना रहता है । आतशक या सूजाक का फल बेटे- पोते तक को भोगना पड़ता है । किसी कुष्ठाश्रम के रोगियों की जाँच कीजिये, तो मालूम होगा कि कोढ़ अधिकतर आतशक के कारण ही पैदा होता है। यदि मनुष्य क्षणिक सुख के लोभ को रोक सके, तो इस महाव्याधि से सुरक्षित रह सकता है ।

आतशकवाली स्त्री के साथ सम्भोग करने से पुरुष को और आतशक वाले पुरुष के साथ सम्भोग करने से स्त्री को यह रोग लग जाता है । कई ऐसे वज्र मूर्ख पुरुष भी देखे गये हैं, जो आतशक या सूजाक होने पर बिना रोग वाली स्त्री के साथ इस खयाल से सम्भोग करते हैं कि रोग आराम हो जायगा । परन्तु फल बिल्कुल उल्टा होता है । विषय-भोग करने से गर्मी और सूजाक के घाव फटकर जो भयानक यन्त्रणा देते हैं, उसे भुक्तभोगी ही जान सकता है । आतशक या सूजाक के रोगी का कर्त्तव्य है कि रोग आराम होने के बाद भी दो-चार महीने तक स्त्री-सम्भोग न करें, क्योंकि विषय-भोग के कारण कच्चे घावों का फटना बहुत सम्भव है।

आतशक का विष शरीर में घुसने के बाद दस दिन के भीतर ही रोग के लक्षण हो जाते हैं। पहले मसूर जैसा दाना प्रकट होता है; फिर यह दाना तीन-चार बड़े फलों का आकार धारण करके फैल जाता है। इसके बाद इसमें मवाद उत्पन्न होकर जख्म गलने लगता है। जख्म के चारों ओर का किनारा कठिन और ऊँचा तथा मध्य भाग धीरे-धीरे गहरा होता जाय तो इसको कठिन आतशक कहते हैं। इसके विपरीत मामूली घाव हो, तो साधारण आतशक कहलाता है। आतशक के कुछ दिन बाद ही बद (बाघी) उत्पन्न हो जाती है। कठिन उपदंश के बाद की बाधी कुछ विशेष कष्ट नहीं देती, परन्तु साधारण आतशक के बाद उत्पन्न होनेवाली बाघी बहुत कष्ट देती है। आतशक का जहर शरीर में फैलने से रक्त दूषित हो जाता है। सारे शरीर में खुजली और ताम्बे के रंग की छोटी-छोटी फुंसियां उत्पन्न हो जाती हैं। शरीर की सन्धि-सन्धि (जोड़-जोड़) में दर्द और सूजन हो जाती है, जिसको सन्धिवात या गठियावात कहते हैं। हाथ, पैर और आँखों में जलन, गले या नाक में घाव, सिर के बालों का उड़ना, ज्वर, राजयक्ष्मा आदि अनेक उपद्रव होते हैं।

चिकित्सा——वैद्यक-शास्त्र के अनुसार पारा इस रोग की महौषध है। वर्तमान समय में पारा के विषय में बहुत-से लोगों में भ्रम फैला हुआ है और जिसे डाक्टरों ने स्वार्थवश फैलाया है। परन्तु किसी सज्जन डाक्टर से पूछा जाय, तो वह तुरन्त बतलायेगा कि पारा इस रोग की बढ़िया दवा है। इंजेक्शनों के इस जमाने में भी आतशक के रोगी को खाने की दवा में सभी डाक्टर पारा देते हैं। हाँ अशुद्ध पारा बहुत खराबी करता है, कोढ़ तक कर देता है, यह बात सत्य है। बहुत-से लोग स्वार्थवश आतशक के खास चिकित्सक बन बैठत हैं। मैं खुद दो-चार आतशक के प्रसिद्ध चिकित्सक को जानता हूँ, जो लिखना भी नहीं जानते, परन्तु इस रोग से खासी आमदनी कर लेते हैं। यह सत्य है कि ये मूर्ख वैद्य अशुद्ध पारा ही रोगी को खिलाते हैं। दुर्भाग्यवश आतशक के अधिकाँश रोगी ऐसे ही वैद्यराजों की चिकित्सा में जाते भी हैं, क्योंकि लोगों में अभी तक इस रोग के प्रति काफी घृणा है। इसलिए लज्जावश चुपचाप इलाज करना अधिक पसन्द करते हैं। आतशक होना सचमुच लज्जा की बात है; परन्तु आतशक होने पर

लज्जा करना मूर्खता है अतः इसका इलाज योग्य चिकित्सक से ही कराना चाहिए। शुद्ध पारा के खिलाने से कुछ भी खराबी नहीं होती, बल्कि अमृत के समान लाभ होता है। शुद्ध पारा कुष्ठ रोग को भी नष्ट करने की शक्ति रखता है। इसलिए आतशक रोगी को बिना किसी संकोच के शुद्ध पारा का सेवन नीचे लिखी विधि से करना चाहिए। शुद्ध पारा का सेवन इस रोग में अत्यन्त लाभ पहुँचाता है।

आतशक के रोगी को पहले जुलाब देकर पेट साफ कर देना चाहिए। दवा-सेवन के बीच-बीच में भी जुलाब देना उचित है आतशक होते ही जननेन्द्रिय के मुण्ड का चर्म उलट देना चाहिए। प्रायः देखा गया है कि गर्मी के कारण जननेन्द्रिय-मुण्ड फूल जाता है और इस हालत में चर्म उलटा नहीं जा सकता। फलतः घाव भीतर ही भीतर सड़कर गलने लगता है। यदि चर्म न उलटा गया हो और सूजन आ गई हो, तो त्रिफला के गुनगुने काढ़े में जननेन्द्रिय को डुबाकर रखना चाहिए। त्रिफला के गुनगुने काढ़े में जननेन्द्रिय को डुबाकर रखने से शोथ कम हो जाता है। शोथ कम होते ही मुण्ड की टोपी उलट देनी चाहिए। यदि इससे भी ठीक न हो तो अग्रभाग का चर्म काट देना चाहिए। आतशक के घावों को त्रिफला का काढ़ा या नीम के पत्ते के पानी से प्रतिदिन दो बार धो देना उचित है। गर्म पानी में जरा-सा पोटास ऑफ परमेगनेट मिलाकर धोना भी अच्छा है। आतशक के घाव में लगाने वाला मलहम ऐसा न हो कि उतारें तो न उतरे। सबसे उत्तम विधि यह है कि घाव को अच्छी तरह धोकर रसकपूर, घी या वेसलिन में मिलाकर लगा दें। इससे घाव अच्छे हो जाते हैं। इसमें नीचे लिखी दवाओं का सेवन परम लाभकारी है :—

(१) अमीर रस—२९१ ग्राम सेंधा नमक को खूब महीन पीसें। इसमें से १७५ ग्राम नमक लेकर एक तवा पर ४ इंच गोलाकार में डालें। उस नमक पर सच्चे गोटे (चाँदी) का तार ५·८३ ग्राम रखकर फिर उस पर रसकपूर ११·६६ ग्राम, रूमी सिंगरफ ११·६६ ग्राम, दाल चिकना ११·६६ ग्राम—इन तीनों को छोटे-छोटे टुकड़े करके डाल दें। फिर उसके ऊपर गोटे का तार ५·८३ ग्राम डाल-

कर चीनी मिट्टी के बड़े प्याले से ढँक दें और पूर्व शेष ११६·६४ ग्राम सेंधा नमक में कतीरा-गोंद २९ ग्राम मिलाकर पानी से पीस कर संधिरोध कर दें। इस तवे को चूल्हे पर रखकर तीन पहर अग्नि लगाएँ। प्याले के ऊपरवाले भाग को भीगे हुए कपड़े रखकर ठंडा रखें। शीतल होने पर प्याले को उलट कर दवा को ग्रहण कर लें। इसमें पारे के कुछ कण होते हैं, उनसे भय न करें। यह दवा १२१·५ या २४३ मि. ग्रा. मुनक्का में भरकर रोगी को निगलने को दें। इसे दाँत से न चबाएँ। खाने को गेहूं की रोटी (बिना नमक) और दूध-चीनी दें या फिर भात और दूध-चीनी दें। अन्य सब चीजों से सख्त परहेज रक्खें। इससे आतशक ७ या ९ रोज में शर्तिया अच्छा हो जाता है। साथ ही आतशक के कारण होनेवाली गठिया-वात शर्तिया आराम हो जाती है। आतशक के कारण सारे शरीर में फोड़े होकर यदि बहने लग गये हों, तो इससे शीघ्र आराम होगा। दवा खाने से मुंह आ जाय तो कीकर (बबूल) की छाल के काढ़े से कुल्ला करें या घावों पर पपरिया कत्था डालें, आराम हो जायगा। आतशक की यह बहुत बार की परीक्षित दवा है। यह बहुत जल्द फायदा करता है। अमीर रस को बनाते समय ११·६६ ग्राम संखिया भी डाल दिया जाय तो दवा अधिक लाभ करनेवाली हो जाती है। हम अमीर रस में संखिया डालते हैं।

——सि० भै० म० मा०

(२) तीन ग्राम रुमी सिंगरफ का ६ भाग करें और एक भाग में तम्बाखू का जरदा मिलाकर हुक्का (गुड़गुड़ी) की तरह पीएँ। इस प्रकार सुबह और शाम करके ३ दिन में सबको पी डालें।

पथ्य--बिना नमक गेहूँ की रोटी या दलिया अथवा भूने हुए चने के सिवाय और सब चीजें निषेध हैं। गुड़, तैल, लालमिर्च, खट्टा, मिठाई आदि ६ महीने तक न खानी चाहिए। इससे भयानक से भयानक आतशक भी शर्तिया अच्छा हो जाता है। दवा खाने के बाद शुद्ध गन्धक या रक्त शुद्धिकारक अर्क का सेवन करना चाहिए।

(३) सिंगरफ ११·६६ ग्राम, रसकपूर ६ ग्राम, तूतिया २३·२ ग्राम और मुर्दाशंख २३.२ ग्राम—इन चार दवाओं को महीन पीसकर ४०८ ग्राम मोम गलाकर

उसमें मिला दें। फिर उसमें कपड़े की सात बत्तियाँ डालकर मोमबत्ती के आकार में बना लें। रोगी को बेंतवाली कुर्सी पर नंगा बैठाकर कुर्सी के नीचे अंगारों पर उक्त बत्ती रखकर शरीर को मोटे कपड़े से ढक दें, सिर्फ गर्दन भर खुली रहने दें। जननेन्द्रिय को धुंआ लगना चाहिए। अन्दाज एक घण्टे में यह बत्ती धुआँ देकर खत्म हो जायगी। इससे बहुत पसीना बहेगा। यह चमत्कारी दवा है। भयानक उपदंश भी इस धुआँ से आराम हो जाता है। भोजन के लिए ताजा दूध और भात देना चाहिए।

(४) रसकपूर ५·८३ ग्राम बहुत महीन चूर्ण करके ५८·३२ ग्राम घी या ५६ मि. लि. वेसलिन में मिला दें। यह आतशक के घाव की शर्तिया मलहम है। रसकपूर की जगह केलोमल (Calomel) भी डाल सकते हैं। विषय-भोग के बाद इस मलहम को जननेन्द्रिय पर अच्छी तरह लगा दिया जाय, तो आतशक होने का भय नहीं रहता है। आतशक के कीटाणु बड़े सख्त होते हैं, सहज में मरते नहीं। इसलिए मलहम अच्छी तरह लगा लेना उचित है।

पथ्यापथ्य—साथ में ज्वर होने से रोगी को दूध आदि का पथ्य देना चाहिए। जब तक घाव अच्छा न हो जाय, तब तक मछली और मीठा खाना मना है। रोगावस्था में स्त्री-संभोग की इच्छा न करनी चाहिए, क्योंकि इससे जननेन्द्रिय के उत्तेजित होकर पुनः घाव होने का भय रहता है।

अम्लपित्त

यह बिलकुल मन्दाग्नि का ही भेद है। यह पित्त की विदग्धता से पैदा होता है। जब भोजन का परिपाक अच्छी तरह नहीं होता, तब तक यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोग में भोजन का अपरिपाक, आलस्य, भोजन के दो-एक घण्टा बाद अम्ल (खट्टी) कै, छाती और गले में जलन, कब्जियत, पेट में दर्द अरुचि आदि लक्षण प्रकट होते हैं। भोजन के बाद छाती और गले में जलन तथा खट्टी डकारों के साथ खट्टे पानी से मुंह भर जाना और अम्ल वमन होना इस रोग के खास लक्षण हैं। बिहार और बंगाल आदि प्रान्तों में यह रोग बहुत होता है। मन्दाग्नि के जो कारण बतलाये गये हैं, उन्हीं कारणों से अम्लपित्त भी पैदा होता है। मन्दाग्नि और अम्लपित्त की चिकित्सा में भेद होने के कारण ही ये दो जगह लिखे गये हैं।

चिकित्सा—मन्दाग्नि की तरह ही इस रोग की भी चिकित्सा करनी चाहिए। नीचे लिखी दवाएँ इस रोग में विशेष लाभकारी हैं। संग्रहणी रोग में लिखा हुआ नम्बर १ नुस्खा तथा नम्बर ८ (स्वर्ण-पर्पटी) का सेवन अत्यन्त लाभकारी है। इसके साथ-साथ नीचे लिखी दवाएँ भी परीक्षित हैं :—

(१) अविपत्तिकर चूर्ण—सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आमला, मोथा, विड्नमक, वायविडंग, छोटी इलायची और तेजपत्ता—इन ११ दवाओं का प्रत्येक ११·६६ ग्राम, लौंग चूर्ण १२८·३० ग्राम, त्रिवृतमूल (निशोथ) चूर्ण ५१३·४ ग्राम और चीनी ७७० ग्राम—इन सबों का चूर्ण कर लें। भोजन के आदि और मध्य में ३-३ और ६-६ ग्राम इसका सेवन करें। इससे अम्लपित्त में विशेष लाभ होता है। अग्नि की वृद्धि होती और दस्त साफ होता है।

—भै० र०

(२) बृहत् पिप्पलीखण्ड—पीपल का चूर्ण ४६७ ग्राम, घी ९३३ ग्राम, चीनी १·८७ किलो, शतावर का रस ९३३ ग्राम, आँवले का रस १·८७ किलो और दूध ३·७३ किलो एकत्रित औंटाकर गाढ़ा करें। फिर इसमें दालचीनी, तेजपत्ता, छोटी इलायची, हरड़, काला जीरा और धनिया, नागरमोथा, वंश-लोचन आँवला—ये ९ दवाएँ प्रत्येक २३·३ ग्राम, जीरा, कूठ, सोंठ और नागकेशर—ये चार दवाएँ प्रत्येक ११·६६ ग्राम, जायफल और कालीमिर्च प्रत्येक २७९·४ ग्राम—इन सबका चूर्ण करके मिला दें। ठण्डा होने पर इसमें २७९·४ ग्राम शहद भी मिला दें। ५·८३ ग्राम गर्म दूध के साथ सेवन करने से अम्लपित्त में बहुत ही अच्छा फायदा होता है। वमन, जलन, अग्निमान्द्य, कास-श्वास, अरुचि आदि की यह परीक्षित दवा है। —भै० र०

(३) धात्री लौह—आमले का चूर्ण ३७३ ग्राम, लौह भस्म १६३ ग्राम और मुलेठी ९३·३२ ग्राम—इन सबको गिलोय रस या काढ़े की सात भावना देकर तीन-तीन ग्राम की गोलियाँ बना लें। एक गोली को सुबह जल में भिगो दें और भोजन के समय उसका तीन भाग करके भोजन के आदि, मध्य और अन्त में लें। आँवले का रस ११·६६ ग्राम और शहद ११·६६ ग्राम खाते समय और मिला लेना चाहिए। यह अम्लपित्त रोग की परीक्षित दवा है।—भै०र०

(४) लीलाविलास रस--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अभ्रक भस्म, ताम्र भस्म लौह भस्म--ये पाँचों दवा समभाग लेकर ताजे आँवले और बहेड़े के रस में ३ दिन तक इन्हें घोंटकर एक भावना भृङ्गराज रस की देकर २४३-३६४ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। दूध, चीनी, आमला या कुम्हड़े के रस के अनुपात से अम्लपित्त के रोगी को खिलाएँ। छाती की जलन, खट्टा वमन, पेट-दर्द आदि अम्ल-पित्त के लक्षण में बहुत लाभ करता है। यह अम्लपित्त रोग की उत्तम दवा है।

(५) सूतशेखर रस--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, सोहागे का लावा, शुद्ध रौप्य भस्म, सुवर्ण भस्म, ताम्रभस्म, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, धतूरे का शुद्ध बीज, दालचीनी, तेजपत्र, नागकेशर, इलायची, बेलगिरी, शंखभस्म, कचूर--इन १७ औषधियों का समभाग चूर्ण कर भाँगरे के रस में २१ दिन तक घोंटकर १२१·५० मि. ग्रा. की गोलियाँ बनावें। १ से ३ गोली तक दिन में २-३ बार दूध, मिश्री, घी, शहद, बेदाना का रस, अथवा रोगानुकूल अनुपान द्वारा देने से यह अम्लपित्त, वमन, शूल, सब प्रकार के गुल्म, खाँसी, संग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, पेट का फूलना, हिचकी, ज्वर आदि अनेक रोगों को आराम करता है। श्वास और क्षय में भी इसका प्रयोग लाभदायक है। खासकर पित्तविकार में तो यह सर्वोत्तम दवा है। महाराष्ट्र में इसका विशेष प्रचार है। --यो० र०

(६) मुनक्का, बड़ी हर्र का बक्कल, समान लेकर मिश्री समान भाग के साथ ११·६६ ग्राम लेने से लाभ होता है।

(७) द्राक्षावलेह--मुनक्का ९३३ ग्राम को जल से धोकर (बीज निकालकर) दूध के साथ शिलबट्टा से चटनी की तरह पीस लें। पश्चात् २३३ ग्राम गाय के घृत में मन्दाग्नि पर भूनें। बाद में १·८७ किलो चीनी की चाशनी (लच्छे की) बना कर उसमें मुनक्का को मिला दें। पश्चात् जायफल, जावित्री, छोटी इलायची, वंशलोचन, लौंग, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, कमलगट्टे की मींगी (जीभी निकाली हुयी), प्रत्येक द्रव्य १४·६६ ग्राम लेकर महीन चूर्ण करके मिलायें तथा केशर ३ ग्राम को गुलाब जल में या पानी में घोटकर मिला दें। इसे ११·६६-२३·५ ग्राम तक की मात्रा में सुबह-शाम गाय के दूध के साथ

सेवन करें। यह अवलेह अम्लपित्त, रक्तपित्त, दाह, पाण्डु, कामला, अरुचि तथा कोष्ठबद्धता में अच्छा लाभ करता है। —आ० नि० मा०

(८) **नारिकेल खण्ड पाक**—नारियल की गिरी ताजा ३७३ ग्राम को शिलबट्टा पर पीस कर ९३·३२ ग्राम गाय के घृत में भूने फिर १.५ किलो नारियल के पानी में ३७३ ग्राम चीनी मिलाकर चाशनी करके उसमें उपरोक्त नारियल की गिरी भूनी हुई मिलाकर कुछ देर मन्दाग्नि पर पकाकर उतारकर ठण्डा होने पर बरनी में रख लें। इसे ११·६६ से २३·२ ग्राम की मात्रा में सुबह-शाम गाय के दूध या जल के साथ सेवन करने से अम्लपित्त और परिणामशूल तथा सिरदर्द में उत्तम गुणकारी है। वृ० यो० त०

पथ्यापथ्य—इसमें ठीक मन्दाग्नि की तरह आहार-विहार करना चाहिए। अम्लपित्त में मट्ठा का सेवन लाभ नहीं पहुँचाता, क्योंकि मट्ठा के सेवन से खटाई पैदा होती हैं। इसमें दूध का सेवन अच्छा है। कच्चे नारियल (डाभ) का पानी पीना इस रोग में उत्तम लाभ पहुँचाता है। जब प्यास लगे तब कुएं का ताजा पानी पीना विशेष लाभकारक है। रोगी को कब्ज न रहना चाहिए। नीबू, आम, खट्टा दही आदि अम्ल वस्तु मात्र से परहेज रक्खें। नया अन्न न खाएँ। दाल बिल्कुल न खाएँ। पुराने चावल, गेहूँ की रोटी, दूध, हरी पत्ती वाले शाक एवं मीठे फल आदि खाना लाभदायक है। शीतपित्त–सि० ५४ हरिद्रा खण्ड, सि० ५४ / हल्दी ४६·४ ग्राम स्वर्णगैरिक ३ ग्राम मिला कर १ ग्राम मात्रा में देने से लाभ होता है।

नोट—चतुर्थशास्त्र चर्चा में अम्लपित्त पर बहुत विचार किया था इसे अम्लपित्त प्रकरण के नाम से पृथक छपाया गया है उसे देखें।

रसायन, वाजीकरण और पौरुष

(१) **संखिया के फूल**—११·६६ ग्राम सफेद संखिया को ३ दिन पुनर्नवा के रस में घोंटकर सुखा लें। इसे फिर डमरू-यंत्र में रखकर चार पहर नीचे अग्नि लगाएँ। ऊपर के पात्र को भींगा हुआ कपड़ा रखकर ठंडा रखें। स्वांग शीतल होने पर ऊपर के पात्र में लगे हुए संखिया के फूल को निकाल लें। १५.२ मि. ग्रा. मलाई के साथ खाएँ। ध्यान रहे मौसम जाड़े का होना

चाहिये। ऊपर से घी, मलाई, दूध आदि यथेष्ट परिमाण में खाने से नपुंसकता दूर होती है। इससे ताकत पैदा होती है। यह कम उम्रवालों के लिए योग्य नहीं है। यह ४५-५० वर्ष की अवस्था से ऊपर वालों के लिए अमृत के समान है।

(२) **बृहत् चन्द्रोदय मकरध्वज**—जायफल, लौंग, कपूर और कालीमिर्च—प्रत्येक ४६.४ ग्राम, कस्तूरी १ ग्राम और मकरध्वज ११.६६ ग्राम सबको पान के रस में घोंटकर ३६५ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना ले। मलाई, मक्खन या पान के रस के साथ सेवन करने से नपुंसकता दूर होती है तथा बलवीर्य की वृद्धि होती है। —भै० र०

(३) **बृहत् पूर्णचन्द्र रस**—शुद्ध पारा और गन्धक २३.२ ग्राम, लोह भस्म, अभ्रक भस्म ४६.४ ग्राम, चाँदी भस्म २३.२ ग्राम, बंगभस्म २३.२ ग्राम, सोना, तांबा और कांसा भस्म ११.६६ ग्राम जायफल, लवङ्ग, छोटी इलायची, भृङ्ग-राज, जीरा, कपूर, प्रियंगू और नागरमोथा—ये आठ दवाएँ प्रत्येक ११.६६ ग्राम। इन सब द्रव्यों को एकत्रित करके घीकुमारी का रस, त्रिफला का काढ़ा और एरण्डमूल के रस की एक-एक भावना देकर एरण्ड के पत्ते में लपेटकर धान-राशि में तीन दिन तक रखें। इसकी चने के बराबर गोलियाँ बनाकर पान के रस और मधु के साथ सेवन करें। इससे नपुंसकता, प्रमेह, शीघ्रपतन, बहुमूत्र अग्निमान्द्य आदि नष्ट होकर बल-वीर्य, कान्ति और शक्ति की वृद्धि होती है। ये गोलियाँ अत्यन्त लाभकारी है। बहुत बार की परीक्षित है।

(४) **महालक्ष्मी विलास रस**—वज्राभ्रकभस्म ४६.४ ग्राम, शुद्ध गन्धक २३.२ ग्राम, वंग भस्म ११.६६ ग्राम, शुद्ध पारा ६ ग्राम, शुद्ध हरताल ६ ग्राम, ताम्रभस्म ३ ग्राम, कपूर ६ ग्राम, जावित्री और जायफल प्रत्येक ६-६ ग्राम, विधारा के बीज और धतूर-बीज प्रत्येक ११.६६ ग्राम, स्वर्ण भस्म ४ ग्राम लेकर प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बनावें, फिर उसमें अन्य औषधें मिलाकर सब को अच्छी तरह घोटकर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना ले। पान का रस या अन्य उचित अनुपान के साथ इसका सेवन करने से शुक्रक्षय, प्रमेह, लिङ्गशैथिल्य, सन्निपात ज्वर आदि निश्चय आराम होते हैं। वीर्य-विकार के सम्पूर्ण रोग इससे नष्ट हो जाते हैं। मरते समय जब शरीर शीतल हो जाता है, तब इस दवा से उपकार होता है। —र० सा० सं०

(५) **मदनानन्द मोदक**——शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म——प्रत्येक ११.६६ ग्राम, अभ्रकभस्म ३५ ग्राम, कपूर, सेंधा नमक, जटामांसी, आँवला, छोटी इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल, जायफल, जावित्री, तेजपत्ता, लौंग, जीरा, स्याह जीरा, मुलेठी, वच, कूठ, हल्दी, देवदारु, हिज्जलबाज, सुहागा, नारंगी, सोंठ, नागकेशर, काकड़ासिंगी, तालीसपत्र, मुनक्का, चीतामूल-छाल, दन्तीमूल, बला (बारियारा), अतिबला (कंघी), दालचीनी, धनियाँ, शतावरी, आक की जड़, कौंच के बीज, गोखरू, विधारे के बीज, भांग के बीज——प्रत्येक ११.६६ ग्राम इन सब द्रव्यों को शतावरी के रस में भावना देकर सुखा लें। फिर सेमल-मूसली का चर्ण १५१.६४ ग्राम और धोई हुई भांग का चर्ण ३७३ ग्राम (घी में भूनकर डालें) एकत्रित करके बारीक दूध में पीसें। २.३४ किलो चीनी चाशनी कर आसन्न पाक होने पर ऊपरवाली सब चीजें मिला दें। पाक शेष होने पर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागकेशर, कपूर, सेंधा नमक, सोंठ, कालीमिर्च और पीपल——इन दवाओं का चर्ण ६-६ ग्राम मिला दें। ठंडा होने पर एक पाव घी और एक पाव शहद मिलाकर रख दें। इसकी ३ ग्राम से ६ ग्राम तक की मात्रा दूध के साथ सेवन करें इससे बलवीर्य की वृद्धि, रति-शक्ति की वृद्धि और स्तम्भन-शक्ति प्राप्त होती है। यह संग्रहणी और मन्दाग्नि की भी उत्तम दवा है। भांग का योग होने से सावधानी से प्रयोग करना चाहिए।

——भै० र०

(६) **मूसली पाक**——सफेद मूसली ९३३ ग्राम, दूध ७॥ किलो, घी ९३३ ग्राम, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, इलायची, दालचीनी, तेजपत्र, हाऊबेर, सौंफ, शतावर, जीरा, अजमोद, चित्रकमूल, गजपीपल, अजवायन, पीपरामूल, आँवला, कपूर, गोखरू, धनियाँ, असगन्ध, हरड़, नागरमोथा, समुद्रशोष, लवंग, जायफल, जावित्री, नागकेशर, तालमखाना, खरेटी-बीज, अतिबला, नागबला (गंगेरन), कौंच बीज, मुलेठी, सेमल-गोंद, सिंघाड़ा, कमलगट्टा, वंशलोचन, सुगन्धबाला, कंकोल, अकरकरा, कपूर——प्रत्येक ५८.३२ ग्राम, धुले हुए तिल आधा सेर, चन्द्रोदय २९ ग्राम लोहभस्म, अभ्रकभस्म ५८.३२ ग्राम लेकर पहले काष्ठौषधियों का महीन चूर्ण कर लें।

बनाने की विधि—पहले मूसली के चूर्ण को दूध में पकाकर गाढ़ा करें, बाद में घी डालकर भुन लें। पश्चात् सबसे दुगुनी सफेद चीनी की चाशनी बनाकर उसमें उपरोक्त सब सामान डालकर पाक बना लें। यह अत्यन्त पौष्टिक, बल-वीर्य-वर्द्धक, कामशक्ति को बढ़ानेवाला तथा नपुंसकता और नामर्दी नाशक है। इसके सेवन से धातुदौर्बल्य नष्ट होकर शरीर स्वस्थ, कान्तियुक्त एवं बलिष्ठ हो जाता है। यह स्त्री-पुरुष दोनों के सेवन करने लायक उत्तम पुष्टई है।

—शो० चि०

(७) श्रीगोपाल तैल—तिल तैल ३·७३ किलो को खूब औंटाकर संस्कार कर लें। फिर असगन्ध, चोरपुष्पी, पद्मकाष्ठ, कण्टकारी, बलामूल, (बरियारा), अगरु, मोथा, गंधतृण, शिलारस, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, हरड़, बहेड़ा, आमला, मूर्वामूल, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलेठी, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, पूति (खट्टासी), केशर, कस्तूरी, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागकेशर, छरीला, नखी, नागरमोथा, मृणाल, नीलोत्पल, खस, जटामांसी, मुरामांसी, देवदारु, बच, अनार के बीज, तुम्बरु, ऋद्धि, वृद्धि, दमनक (दोना) और छोटी इलायची, इन ५२ दवाओं का प्रत्येक २९ ग्राम लेकर कल्क करें। १५ किलो जल डालकर पाक करें। फिर क्रमश: शतावरी का रस, कुम्हड़े का रस, आँवले का रस प्रत्येक ३·७३ किलो असगन्ध, कटसरैया (पियाबाँसा) और बला (बलियारा) प्रत्येक ५·८३ किलो को १५ किलो जल में अलग-अलग काढ़ा करके ३·७३ किलो जल शेष रक्खें और पाक करें। तीनों का अलग-अलग काढ़ा करके पाक करना उत्तम होता है। बृहत् पंचमूल (बेल छाल, अरणी, सोनापाठा-छाल, गम्भारीछाल, पाटल-छाल), बड़ी कण्टकारी, मूर्वामूल, केवड़ा की जड़, पूतिका (नाटाकरंज) और पारिभद्र की छाल—इन १० दवाओं का प्रत्येक ५८३·३६ ग्राम लेकर १५ किलो जल से काढा करें। ३·७३ किलो जल शेष रहने पर छानकर तैल में डालकर पाक करें। जब सब पाक हो जाय तब छानकर रख लें। इसकी मालिश से नपुंसकता दूर होती है तथा वायु रोग, प्रमेह, शूल आदि आराम होते हैं।

जिस प्रकार खाने की दवा से बल-वीर्य बढ़ता है, ठीक उसी तरह इस तेल के मर्दन से बल-वीर्य की वृद्धि होती है।

(८) ४६७ ग्राम कनेर वृक्ष की छाल को ४·६७ किलो दूध में औटाएं। फिर छाल को फेंक दें और दूध का दही बनाकर घी बना लें। यह घी २४३ मि. ग्रा. खाया जाय और जननेन्द्रिय पर मालिश की जाय, तो नपुंसकता दूर होती है।

(९) **अश्वगन्धादि चूर्ण**––असगन्ध और विधारा समान भाग लेकर कूटकर रख लें। इसको ११·६६ ग्राम बराबर मिश्री मिलाकर गरम दूध से लेने से सब प्रकार की धातु की कमजोरी, नपुंसकता-नामर्दी, शीघ्र-पतन आदि नष्ट होकर शरीर स्वस्थ, बलवान् एवं कान्तियुक्त हो जाता है। इससे काम-शक्ति की खूब वृद्धि होती है। बिना नशीली चीजों के स्तम्भन-शक्ति पैदा करने के लिए इसका प्रयोग उत्तम है। विदार्यादि चूर्ण––१४७ पर सि. यो. सं. देखें —शा० ध०

वक्तव्य––इस विषय में और बहुत-से परीक्षित नुस्खे लिखे जाते, परन्तु इस प्रकार की दवाओं से सर्व साधारण का नुकसान ही अधिक होता है। क्योंकि कामवर्द्धक दवाइयाँ खाकर लोग विषय-भोग में अधिक प्रवृत्त हो जाते हैं; जिससे स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। वीर्यस्तम्भक दवाइयाँ जान-बूझकर नहीं लिखी गई है; क्योंकि रुकावट पैदा करनेवाली दवाइयाँ नशीली चीजों से तैयार होती है। अफीम, भांग आदि नशीली दवा के बिना कोई वीर्य-स्तम्भक दवा तैयार नहीं होती। इन नशीली दवाइयों के सेवन से जो असंख्य खराबियाँ होती हैं, उनके स्मरण मात्र से हृदय काँप जाता है। बहुत-से सुन्दर नवयुवकों का जीवन इन दवाइयों से नष्ट हो गया है। प्रत्येक नवयुवक को स्मरण रखना चाहिए कि पूर्ण आरोग्ययुक्त पुरुष ही स्त्री की इच्छा तृप्त कर सकता है। बनावटीपन से कार्य नहीं चलता। अधिक विषयभोगी पुरुष से स्त्री की कामवासना शान्त नहीं होती।

कर्ण रोग (कान के रोग)

कान की ठीक-ठीक सम्हाल न करने से, कान में धूल, रेत जमा होने से, कान का मल (गीड़) अधिक संग्रह से छोटे जन्तु के प्रवेश से कुरेदने से, फुन्सी होने से, नीचे लिखे रोग पैदा हो जाते हैं।

कान का प्रवाह--जिसमें कान के भीतर अत्यन्त वेदना, सूजन और लालवर्ण हो जाता है। साथ-साथ ज्वर भी हो जाता है।

कर्णशूल—जो ठंड लगने, चोट या चेचक के बाद होता है। इसमें कान के भीतर भयानक दर्द होता है।

कर्णनाद--इस में कान में सन-सन, फस-फस या सों-सों आदि नाना तरह की आवाजें होती हैं।

कान का बहना--चेचक या बुखार के बाद या गण्डमालाग्रस्त बच्चों को तथा अन्दर घाव होने से कान से मवाद आने लगती है। अधिक अवस्था के रोगी का कान बहने लगे तो बधिरता का पूर्ण लक्षण समझना चाहिए।

बहरापन--जिसमें सुनाई नहीं देता।

बाँस की पतली चरपट पर रुई लपेट कर कान को साफ करके आगे लिखी दवा डालें।

चिकित्सा--कर्ण प्रदाह में गोमूत्र को जरा गर्म करके डालना या बच को नीबू के रस और जल के साथ घिसकर डालना लाभकारी है। कर्ण शूल के लिए भी गोमूत्र गरम करके डालना फायदेमन्द है। कर्णशूल के लिए सरसों का तैल या सुदर्शन के पत्ते के रस से कान को पूर्ण करना हितकारक है। कर्ण-व्रण में चन्दन का तैल या बिरोजे का तैल डालना परम हितकारी है। कर्णनाद में दिमाग को पुष्ट करने की दवा करनी चाहिए। कान के बहने पर गर्म जल से पिचकारी द्वारा धोकर जरा-सा बोरिक एसिड कान में डाल देना चाहिए। नियमपूर्वक कान को साफ करते रहना चाहिए। नीम के पत्तों का रस समभाग शहद मिलाकर कान में डालने से कान का मवाद बन्द हो जाता है। बिरोजे का तैल डालने से कान का बहना बन्द हो जाता है। केले के पत्तों के रस में समुद्र-फेन मिलाकर कान में डालने से कान का बहना और कान का दर्द शान्त हो जाता है। अपामार्ग के खार के जल से और अपामार्ग के कल्क से सिद्ध किया हुआ तैल बहरापन, कर्णस्राव, कर्णनाद आदि को दूर करता है। अदरख के रस में शहद और तेल तथा जरा-सा सेंधा नमक मिलाकर कान में डालने से कर्ण-शूल, कर्णनाद और बहरापन में लाभ होता है।

(१) बिल्व तैल—तिल तैल ३.७३ किलो, गोमूत्र से पीसी हुई बेलगिरी ९३३ ग्राम (कल्क), बकरी का दूध १५ किलो। इस सब को तैल पाक-विधि से पका लें। इस तैल को कान में डालने से कान-दर्द, बहरापन आदि अच्छा होता है।

(२) जल कुम्भी कल्क २३३ ग्राम, इसी का स्वरस ३·७३ किलो, तिल तैल ९३३ ग्राम में डाल कर पकावें, जब तेल मात्र रहे तब कान में डालें, कान का दर्द, पकना, बहना ठीक होता है। —भै० र०

(३) दशमूल तैल से कर्ण रोग मात्र में लाभ होता है।

(४) क्षार तैल—मूलीक्षार, यवक्षार, सज्जीखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विड् नमक, समुद्र नमक, हींग, सहजना की छाल, सोंठ, देवदारु, बच, कूठ, सौंफ, रसौत, पीपलामूल, नागरमोथा—ये प्रत्येक द्रव्य ११·६६ ग्राम लेकर कल्क बनावे, सरसों का मूर्च्छित तैल ७४६·४ ग्राम, केले की जड़ का स्वरस, बिजौरा नीबू का रस, मध युक्त—ये प्रत्येक ३।। किलो डालकर पकावें तेल मात्र शेष रहने पर छान कर बोतल में भर लें, कान को साफ करके डालने से कान का बहना, कर्णनाद, कर्णशूल, बधिरता आदि में लाभ होता है।

मुख रोग

मुख रोग होने का मुख्य कारण खानपान के बाद मुंह को अच्छी तरह साफ न करना है। पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुसरण करने वाले भारतीय भोजन या नास्ता करने के बाद मुंह पोंछ लेते हैं अनेक बार कुल्ली करके दांत तथा मसूड़ों के बीच में लगा भोजन का अंश नहीं निकालते, चाय पीने के बाद कुल्ली करना गंवार पन ही समझा जाता है। खटाई और चीनी से दाँत की बीमारी बहुत होती है। प्राचीन समय में पेशाब करके भी कुल्ली करते थे यह रिवाज बहुत लाभदायक है। वर्तमान युग में नर्म से नर्म भोजन (जैसे पाव रोटी आदि) करने की प्रवृत्ति से दाँतों को व्यायाम नहीं होता। चना चबेना आदि कड़ी वस्तु खाने वाले के दाँत मजबूत होते हैं। दातून के चबाने से भी दन्त व्यायाम होता है। टूथपेस्ट लगाकर ब्रुश से दांत और मसूढ़ों में लगा भोजन का अंश को निकालना अच्छा है; दांतों को उज्वल बनाना मात्र पेस्ट का अर्थ

नहीं है। मुंह साफ न करने से तथा पेट की बीमारी के कारण दांत और मसूढ़ों के बीच में मवाद पड़कर पायरिया नामक रोग हो जाता है। पायरिया से भी दाँत तो गिर ही जाते हैं और कई रोग पैदा हो जाते है; इसके लिये दन्त चिकित्सक दांत और मसूढों के मध्य जो मवाद होती है उसको साफ कराके प्रतिदिन बबूल का दातून करना या आगे लिखा कंठ पीयूष को भोजन के बाद लगाना, दूध दही छाछ के न मिलने से कैल्शियम की कमी से दन्तक्षय हो जाता है। उसके लिये दूध दही लेना ही सर्वोत्तम दवा है––नहीं तो शंख-शुक्ति-प्रवाल भस्म का सेवन करना चाहिये। दांतों के ऊपर की पालिश (एनामिल) उतर जाने से ठण्डा जल के स्पर्श से वह पीड़ा होती है। इसके लिये बैद्यनाथ लाल मंजन लगाकर ५-१० मिनिट मुँह में रक्खें; जब मुंह लार से भर जाय तब कुल्ली करें। इससे दांतों का शीत स्पर्श रोग ठीक हो जाता है। दाँत हिलने पर आजकल उनको उखाड़ कर निकाल देते हैं; न हिलने वालो को भी निकाल देते हैं। कृत्रिम उज्ज्वल दाँत लगाने से शोभा बढ़ती है––ऐसी धारणा ठीक नहीं है; भोजन का स्वाद चला जाता है। भूसा खाने जैसा स्वाद भोजन का होने से हाजमा पर बुरा असर होता हैं। इसलिये जहाँ तक हो दाँत दाढ़ निकालने न चाहिए। उनको स्वस्थ रखने के लिये भोजन के बाद मंजन करना, ५-७ बार कुल्ली करना आवश्यक है। दाँत दर्द में अमृत धारा या दालचीनी का तेल लगाने से तथा सेकने से आराम आता है। कुठ, दारुहल्दी, लोध्र, मोथा, मंजीठ, पाठा, कुटकी, तेजबल और हल्दी का चूर्ण लगाने से दांत दर्द तथा रक्त स्राव में लाभ होता है। काठ कोयले का बहुत महीन चूर्ण का मंजन करने से दाँत निरोग रहते हैं। सोना गेरू में जरा सा कपूर, लौंग का चूर्ण तथा जरा सा तम्बाखू मिलाकर मंजन करना भी दांतों को स्वस्थ रखता है। त्रिफला त्रिलोन, त्रिकूटा, मांजूफल, मंजीठ और तूतिया का मंजन बहुत ही लाभकारी है। तूतिया भूनकर डाले; दांतों का हिलना बन्द हो जाता है। मुखरोगों में मुंह में फाल के––छाले (मुख पाक) में फूली हुई फिटकरी को गर्म जल में मिलाकर कुल्ले करें। प्रायः पेट की बीमारी से मुख पाक होता है। पेट की बीमारी की चिकित्सा से लाभ होता है। रस माणिक्य १२१.५१ मि. ग्रा. मधु के साथ लेने से बहुत लाभ होता है। कण्ठ पीयूष के लगाने से भी शीघ्र लाभ होता है

चमेली की पत्ती, अनार की पत्ती, बबूल की छाल; बेर की जड़, इनको जौ कुट करके पानी में औंटाकर छान ले उसमें फिटकरी और सुहागा मिलाकर कुल्ला करे तो मूँह का छाला, मुँह पाक, टांसिल के पकने में लाभ होता है।

कंठपीयूष—माजूफल, जायफल, पीपर छोटी, सुहागा, फुलाहुवा, सेन्धा नमक—प्रत्येक द्रव्य ११·६६ ग्राम लेकर महीन चूर्ण करें; २३३ ग्राम जल में औंटावें, ५८·३२ ग्राम शष रहने पर छानकर फिर पकावें-गाढ़ा होने पर शहद ५८·३२ मिलाकर शीशी में भर दें। यह मुख रोगों में लाभ करता है, विशेष करके टांसिल को विशेष लाभदायक है।

मिट्टी के घड़े में २ भाग अरहर को डालकर एक भाग भिलावा डालकर ऊपर से २ भाग अरहर डालकर मुंह पर मिट्टी का सिकोरा रखकर ७ कपड़ मिट्टी करके सुखा लें। चूल्हे पर रखकर नीचे अग्नि दें। भिलावा जलकर भस्म हो जाय तब उसका महीन चूर्ण करके मंजन करने से दांत स्वच्छ तथा निरोग रहते है। (सि. यो. सं.)

मुंह आने या सम्पूर्ण मुंह में छाले होने पर पोटास ऑफ परमेगनेट से कुल्ली करना अत्यन्त लाभकारी है। मुंह आने पर कब्ज हो तो मामूली जुलाब देकर पेट साफ कर देना चाहिए। घाई पत्थर (संगजराहत) और गेरू का चूर्ण लगाने से मूखपाक अच्छा हो जाता है। बबूल की छाल के काढे से कुल्ला करना भी लाभदायक है।

(१) इरिमेदादि तैल—अरिमेद (दुर्गन्धित खैर) की छाल ५·८३ किलो लेकर कूट कर १५ किलो पानी में डालकर पकावें, ३·७३ किलो जल शेष रहने पर छान लें। बाद में १·८७ किलो तिल तैल का संस्कार कर उसमें उपरोक्त क्वाथ और नीचे लिखा कल्क डालकर पकावें। कल्क द्रव्य—मंजीठ, लोध, मुलेठी, इरिमेद (बिटखदिर) की छाल, खैर की छाल कायफल, लाक्षा, बट-छाल, नागरमोथा, छोटी इलायची, कपूर, अगर, पद्मकाष्ठ, लवंग, कंकोल, जायफल पतंगकाष्ठ, गेरू, दालचीनी, नागकेशर, धायफूल,—इनका चूर्ण ११·६६ ग्राम लेकर पानी में पीस कर तैल में डाल दें। तैल तैयार होने पर छान लें। इस तेल

के व्यवहार से मुंह और मसूड़ों का पकना और उसमें मवाद आना, दाँतों का सड़ना, मुंह की दुर्गन्ध, दाँतों में कीड़े पड़ना, जीभ, तालु और होठ के रोग आराम होते हैं। यह मुखरोग की अत्युत्तम दवा है। --भै० र०

नासा रोग

अत्यधिक होने के कारण सर्दी जुकाम तो पहले लिखा गया है। नासारोग में दुष्टप्रतिश्याय या पीनस महानगर वासियों में बहुत होता है। इस (Sinuses) में नाक झरता रहता है। सर्दी जुकाम के लक्षण होते हैं। विशेष करके सिरदर्द बहुत होता है। नाक के भीतर शोथ और क्षत हो जाता। रोग पुराना होने पर कृमि भी हो जाते हैं।

चिकित्सा

(१) देवदारु, गुलर, अर्जुन और कुरैया (कुटज) की छाल का काढा बनाकर नाक को धोना तथा इनका ही कल्क तथा क्वाथ का घी बनाकर लगाना चाहिए। खाना भी चाहिये।

(२) **महालक्ष्मीविलासवटी** (भै० र० शिरोरोग) लौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्ध बच्छनाग, नागर मोथा, हर्रे, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, शुद्ध धतूराबीज, शुद्ध भाँग, छोटा और बड़ा गोखरू, और पीपलामूल, इनका चूर्ण करके धतूरा के स्वरस में सात भावना दें। धतूरा स्वरस का बहुत महत्व है इसलिये शरद ऋतु में बनावे जब धतूरा बहुत मिलता है भावना देकर २४३ मि. ग्रा. की वटी बना लें। यह वटी बिगड़े हुए जुकाम, दुष्ट प्रतिश्याय या पीनस की बहुत अच्छी दवा है। Sinuses में बहुत लाभ होता है।

(१) **षड बिन्दु तैल**---एरण्ड की जड़, तगर, सोंफ, जीवन्ती, रास्ना, सेंधानमक, दालचीनी, वायविडंग, मुलेठी और सोंठ---इनका महीन चूर्ण २३३ ग्राम को बकरी का दूध में भिगोकर तथा पीसकर तिल तेल, बकरी का दूध, भाँगरे का रस प्रत्येक १.८७ किलो सबको तैल पाक विधि से पकाकर तथा छानकर बोतलों में भर दें। इसकी ६-६ बूंद गिनकर एक-एक नासा में डालें तो पुराना जुकाम, प्रतिश्याय, और पीनस में लाभ होता है। ---भै० र०

सिरदर्द

सिरदर्द अन्यान्य बीमारियों का लक्षण मात्र है। तब भी वैद्यकशास्त्र में इसके लिए ऐसी उत्तम दवाइयाँ लिखी गई हैं कि उनके सेवन करने से सिरदर्द तो आराम हो ही जाता है, साथ ही मूल रोग की चिकित्सा भी उन्हीं दवाइयों से हो जाती है। जुकाम, अधिक परिश्रम, मानसिक चिंता, रात्रि जागरण, रक्त-संचय आदि से जो सिरदर्द होता है वह अपने-आप चला जाता है। परन्तु जो लोग निरन्तर सिरदर्द के कारण कष्ट भोगते हैं, उनके लिए दवा का सेवन आवश्यक हो जाता है। निरन्तर सिरदर्द के विशेष कारण में अम्लपित्त देखा जाता है तथा आँख का काला मोतिया बिन्द भी देखा गया है।

चिकित्सा—सर्दी, जुकाम, परिश्रम आदि मामूली कारणों से उत्पन्न होने वाले सिरदर्द में गोदन्ती हरिताल भस्म १ ग्राम चीनी के साथ या ताजा घी के साथ लेने से बहुत शीघ्र लाभ होता है। बाजार में एस्प्रीन घटित दवाएं सिर-दर्द के लिये बिकती है इनसे सिरदर्द तो तत्काल शान्त हो जाता है लेकिन हृदय पर बुरा प्रभाव डालता है। इन दवाओं के बराबर खाने से दिल कमजोर हो जाता है। कैसा भी कठिन सिरदर्द क्यों न हो, एक बार तुरन्त छू-मन्तर हो जाता है। दालचीनी के जल के साथ पीसकर लेप करने से सिरदर्द आराम होता है। जुकाम के कारण होनेवाले सिरदर्द में दोनों पैरों को गरम पानी में रखने से या जरा-सा कायफल-चूर्ण अथवा यूकालिप्टस आॅयल के सूंघने से आराम होता है। गर्मी के कारण होनेवाले सिरदर्द में सिर में नारायण तैल की मालिश लाभकारी है या छुरे से सिर के बाल मुंडा कर सौ बार धोये हुए घी की मालिश करें। शारीरिक और मानसिक परिश्रम के कारण होनेवाले सिरदर्द में आराम करना चाहिये। निद्रा लेने से सब तरह के सिरदर्द आराम होते हैं। कब्जियत के कारण होनेवाले सिरदर्द में मामूली जुलाब लेना चाहिये।

(१) हरड़, बहेड़ा, आमला, चिरायता, हल्दी, नीम की छाल और गुरुच इन दवाइयों का काढ़ा करके गुड़ डालकर पीने से पुराना और कठिन सिरदर्द आराम होता हैं। यदि इस काढे के साथ योगराज गुग्गुलु का भी सेवन किया

जाय, तो बिना किसी सन्देह के सिरदर्द से छुटकारा मिल सकता है। यह पथ्यादिक्वाथ है। परीक्षित है।

(३) **शिरःशूलादिवज्र रस**—शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, प्रत्येक ११.६६ ग्राम, शुद्ध गुग्गुल ४६.४ ग्राम, त्रिफला चूर्ण २३.२ ग्राम, कूठ, मुलैठी, पीपल, सोंठ, गोखरू, बायविडंग, दशमूल—ये प्रत्येक ३-३ ग्राम एकत्रित कर दशमूल के काढ़े की भावना दें, घृत के साथ ४८६ मि. ग्रा. की गोली बना लें। बकरी के दूध या शहद के साथ सेवन करने से सब तरह के शिरो-रोग आराम होते हैं।

(४) अनन्तमूल, कमल, कूठ और मुलैठी—इन दवाओं को नीबू के रस में पीस कर तथा घी और तैल मिलाकर लेप करने से अर्द्ध कपाली का दर्द और सूर्य के साथ बढ़नेवाला दर्द आराम होता है।

(५) मुचकुन्द के फूल को पीसकर माथे पर लेप करने से सिरदर्द आराम होता है।

(६) गोदन्ती हरिताल भस्म ७२९ मि. ग्राम, प्रवाल भस्म २४३ मि. ग्रा. घी चीनी में मिलाकर प्रातः सायं खाने से सिरदर्द में लाभ होता है।

नेत्र-रोग (आँखों की बीमारियाँ)

आँख आना—आँखों में धूप, शीतल हवा, धुआँ, तेज प्रकाश लगने से और चेचक या सूजाक के बाद आँखें आ जाती हैं। जहाँ वर्षा कम होकर गर्मी या शीत अधिक होती है, वहाँ के निवासियों की आँख आश्विन या चैत्र मास में आ जाती हैं। आँखें आ जानें पर नेत्र का सफेद भाग लाल हो जाता है। आँखों में जल या कीच का निकलना, आंखों की पलकों का जुट जाना, शोथ, दर्द, बालू गिरने या कांटा चुभने जैसा दर्द, प्रकाश असह्य होना आदि लक्षण होते हैं।

आँख आने पर उसको सावधानीपूर्वक साफ रखें। जल में जरा-सा बोरिक एसिड मिलाकर दो बार धोएँ या त्रिफला के काढ़े से आँखों को साफ करें। नीम के पत्तों का ऊपरी भाग सिर पर इस तरह से बांधें जिससे आई हुई आँख ढक जाय। उन्हीं पत्तों के अन्दर से देखें। बीच-बीच में ठण्डे पानी से पत्तों को

तर करते रहें। इससे पीड़ा शान्त होगी और रोग उग्ररूप धारण न कर सकेगा। वर्तमान समय में आँख आने पर धूप से बचनेवाले हरे रंग के मामूली चश्मे लोग लगा लेते हैं; परन्तु उनकी जगह नीम के पत्तों का व्यवहार अत्यन्त लाभदायक है। बबूल के कच्चे पत्तों को पीसकर टिकिया बना लें। रात को सोते समय यह टिकिया बांध कर सो जाएँ। इससे आँखों में ठंडक पहुँचेगी। बढ़िया गुलाब-जल ५८.३२ ग्राम में फिटकरी का लावा तीन ग्राम मिलाकर गाढ़े कपड़ों से छान लें और तीन-बार इसी जल को आँखों में डालें। इससे आंखों का आना शीघ्र शान्त हो जायगा। स्त्री के दूध में रसांजन घिसकर लगाने से बहुत फायदा होता है। दारुहल्दी को १६ गुना पानी में औंटाकर जब अष्टमांस पानी रहे तब छान कर आँख में डालें यह आंख आने की सर्व श्रेष्ठ दवा है। इसी से रसांजन याने रसौत भी बनता है। सेंधा नमक, दारुहल्दी, हर्रे तथा रसांजन (रसौत) जल के साथ पीसकर आंख के चारों तरफ लेप करने से आँखों का दर्द और सूजन दूर हो जाती है। हल्का जुलाब देकर पेट साफ कर दें, शिर में ठंडा तेल लगाएँ और हालम ११.६६ ग्राम समभाग चीनी मिलाकर खिलाएँ। इससे आँखों का आना शीघ्र शान्त हो जाता है। आँखें आ जाने पर देहाती लोग गुलाबी रंग आँख में डालते हैं, इससे भी अच्छा फायदा होता है।

दृष्टि-शक्ति की कमी--अति सूक्ष्म या अति तेज पदार्थ को अधिक समय तक देखने, बिजली की रोशनी में अधिक काम करने, अति मात्रा में मादक पदार्थों का सेवन करने तथा अधिक निद्रा या रजोरोध से देखने में कमी आ जाती है। इसके लिये मकरध्वज आदि पौष्टिक दवा खाना, नारायण तैल आदि शीतल तेल शिर में लगाना तथा चन्द्रोदयावर्ति का लगाना लाभदायक है। माल कांगनी (ज्योतिष्मती) का पाताल यंत्र से तेल निकालकर १ से ५ बूंद मक्खन में मिलाकर चाटने से आंख की ज्योति अवश्य बढ़ती है। ताजा आंवला का रस, नीबू का रस भी नेत्र ज्योति को बढ़ाता है।

(१) **सप्तामृत लौह**--हरड़, बहेड़ा, आमला, मुलैठी, लोहभस्म—सब समान भाग लेकर जल से पीस कर सुखा कर रख लें। इसका १ ग्राम प्रमाण

विषम भाग घृत और मधु के साथ सेवन करने से नेत्र रोगों में अच्छा फायदा होता है। दृष्टि की कमी तथा शिरोरोगों में लाभ करता है। —भै० र०

(२) **चन्द्रोदयावर्ति**—हर्रे, बच, कूठ, पीपल, मिर्च, बहेड़े की गुठली का गूदा, शंखनाभि और मनःशिला—इन ८ दवाइयों को बकरी के दूध के साथ पीसकर छोटी-छोटी बत्तियां बना लें। इसे शहद के साथ घिस कर आँख में लगाएँ। इससे दृष्टि-शक्ति बढ़ेगी एवं फली हुई आँखों में मांस का बढ़ना और रोहे आदि आराम होंगे।

(३) **नेत्रामृत सुरमा**—२३३ ग्राम सुरमे को ३ दिन नीम के पत्तों के रस में घोटें। फिर २३३ ग्राम शंखनाभि को गर्म करके नीबू के रस में ७ बार डालें। फिर दोनों वस्तुओं को खूब महीन पीसें। अन्त में ५८.३२ ग्राम भीमसेनी कपूर और ११.६६ ग्राम फूल पिपरमिण्ट मिलाकर शीशियां भर लें। इसके नित्य व्यवहार से आँखों की रोशनी बनी रहेगी और नेत्र में रोग न होंगे। विकारयुक्त पानी बह कर आँखें ठण्डी हो जायँगी।

(४) **उत्तम आश्च्योतन**—गुलाब-जल २३३ ग्राम, केशर ६ ग्राम और भीमसेनी कपूर ६ ग्राम। इन तीनों को एकत्र, घोट व छान कर शीशी में भर लें। वह आंखों के लिए बहुत लाभकारी है। कलकत्ते में एक धनी सज्जन इस का मुफ्त वितरण करते हैं। इससे आँखों की सभी बीमारियां दूर होती हैं।

(५) **भीमसेनी कपूर**—कपूर ९३ ग्राम, इलायची के बीज २३.२ ग्राम, लाल चन्दन, समुद्र फेन, निर्मली के बीज, रसौत, नागरमोथा—प्रत्येक का चूर्ण ११.६६ ग्राम लेकर दूध में पीस कर गुंथे हुए आंटे के समान पिण्ड बना लें। फिर इसे एक पात्र में रख कर उसके ऊपर दूसरा पात्र रख कर कपड़मिट्टी से सन्धि बन्द कर दें। फिर किसी बन्द कमरे में चूल्हे पर रख कर नीचे से घी का चिराग जलाएँ और ऊपर से पानी में भिगोया हुआ कपड़ा रखें। कपड़ा गरम होते ही दूसरा बदलें; अर्थात् बराबर कटोरे को तर रखें ताकि कपूर उड़कर ऊपरवाले कटोरे में जाकर पुनः पिघलकर नीचे न गिरे। इस तरह एक प्रहर या तीन घण्टा आंच देने के बाद उतार कर ठण्डा होने पर खोल कर ऊपर कटोरे में लगा हुआ स्वच्छ कपूर निकाल लें। यही भीमसेनी कपूर है। कितने

लोगों के मत से कपूर वृक्ष से जो रस निकलता है. और उसे बिना पकाये जो कपूर बनता है, उसे भीमसेनी कपूर कहते हैं। प्रयोग में दोनों उत्तम हैं।

गुण—यह अत्यन्त शीतल, दाहघ्न, तृषा-निवारक, नेत्रों के लिए हितकारी और दुर्गन्ध-नाशक है। इसको गुलाब-जल में मिला कर आँखों में डालने से दाह, जलन, पानी का गिरना एवं आँखों के आने पर अच्छा फायदा होता है। भीमसेनी कपूर आँखों के लिये बहुत मुफीद है। भीमसेनी कपूर के योग से कई तरह के सुरमे बनते हैं, जो आँखों के लिये बहुत उत्तम हैं। नेत्रामृत एवं हिमालय सुरमा आदि के योगों में भीमसेनी कपूर डाला जाता है। इससे नेत्र रोग में अच्छा फायदा होता है।

फूली—आँख आने पर ठीक चिकित्सा न होने से आँख में फूली हो जाती है। शंख को शहद के साथ घिसकर लगाना इसकी उत्तम दवा है। केलोमल या योग्य चिकित्सक से कास्टिक लगाना भी उत्तम है।

मोतियाबिन्दु—इसके होने पर धीरे-धीरे अन्धापन हो जाता है। इसमें कोई दवा न डालें, पकने पर डॉक्टर स निकलवा दें। जो व्यक्ति जीवन पर्यन्त दृष्टि चाहता है वह प्रतिदिन ताजा नीबू १/२ जल के साथ ले, रात्रि में कम से कम पढ़े, सिर में सुगन्धित बाजारू तेल न लगावें।

बाल रोग (बच्चों की बीमारी)

बच्चे के जन्म के समय चतुर धाय का प्रबन्ध करना चाहिए। जो स्त्रियां शारीरिक परिश्रम यथेष्ट करती रहती हैं, उनको प्रसव काल में कुछ कष्ट नहीं होते, परन्तु शहरों में रहने वाली निकम्मी स्त्रियों—विशेषकर पर्दे के बुरे जाल में घिरी हुई स्त्रियों का प्रथम प्रसव मृत्यु से कम कष्टदायक नहीं होता। जिस स्थान को सूतिका-गृह बनाना हो वह स्वच्छ, हवादार एवं प्रकाशयुक्त होना चाहिए। अभी तक बहुत-से स्थानों में अँधियारे और बन्द कमरे में सूतिका-गृह बनाने का रिवाज है। यह रिवाज माता और बालक दोनों के लिए अनिष्टकारक है। बालक के पैदा होने पर चतुर धाय से नाल कटानी चाहिए। जिस चाकू या छूरी से नाल काटी जाय उसको स्पिरिट या उबले हुए पानी से जरूर साफ कर लेना चाहिए। अनेक बेवकूफ धाइयां मैले शस्त्र से नाल काट देती हैं,

जिससे नाभि पक कर विरूप हो जाती है और जच्चा तथा बच्चे को धनुर्वात हो जाता है। बच्चे को नाल काट कर और स्नान करा कर अजवायन और हर्रे घिस कर जल के साथ पिलाना चाहिए अथवा गर्म दूध में समभाग जल मिला कर जरा गुनगुना ही पिलाना चाहिए। इसके बाद बच्चे के स्वस्थ होने पर उसे माता के स्तन का दूध पिलाना चाहिए। बच्चे को पुष्ट होने के लिये नींद की बहुत आवश्यकता है। इसी से जन्म के बाद कुछ दिनों तक बच्चा बहुत सोता है। यह सोना उसके लिए परम हितकारी है। बच्चे को जन्म-दिन से २१ दिन तक कभी चित्त न सुलाना चाहिए। बांयीं करवट सुलाना बहुत अच्छा है। बच्चा जब सोये तब उसके पैरों को कपड़े से ढँक देना चाहिए। पांच-सात वर्ष की अवस्था तक बच्चे को अधिक सुलाने की चेष्टा रखनी चाहिए। जो बालक जितना अधिक सोयेगा वह उतना ही अधिक पुष्ट होगा। शीतकाल में सरसों का तैल मल कर धूप में सुलाना बहुत अच्छा है। बच्चे को कड़ी धूप और कड़ी सर्दी से बचाना चाहिए। बिल्कुल कमजोर बच्चे को जरा गुनगुने पानी में स्नान कराना चाहिए। कुछ सबल होते ही ठण्डे पानी से स्नान कराने की आदत डालनी चाहिए, ताकि सर्दी-खाँसी होने की उतनी आशंका न रहे। पहले सिर पर कुछ जल देकर फिर सम्पूर्ण शरीर पर पानी डालना बहुत अच्छा है। बन्द मकान में बच्चे को स्नान कराके साफ कपड़े पहना देना चाहिए। साबुन लगा कर या साधारण जल से ही बच्चे के पहनने के कपड़े रोज धो देना उचित है। बिछौना भी साफ रहना चाहिए। बालक को माता का दूध पिलाना सर्वोत्तम है। यदि किसी कारण-वश धाय का दूध पिलाया जाय, तो धाय तन्दुरुस्त होनी चाहिए। यदि माता और धाय के दूध से बच्चे की उदरपूर्ति न हो, तो बकरी या गाय का दूध पिलाना चाहिए। डेढ़-दो महीने का बच्चा गाय का दूध हजम कर सकता है। बकरी का दूध उतना पुष्टिकारक नहीं है, जितना कि गाय का। दूध में आधा पानी मिला कर तथा उचित मीठा मिलाकर पहले पहल बच्चे को पिलाना चाहिए। हजम होने पर बिना जल मिला हुआ दूध दिया जा सकता है। दूध को अधिक गर्म करने से भारी हो जाता है एवं उसके पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। इसलिए सिर्फ एक उफान आ जाने तक ही

औंटाना चाहिए। अधिक दूध एक बार न पिलाना चाहिए। सोते हुए बच्चे को जगा कर तुरन्त दूध न पिलाना चाहिए। बिना भूख के जबर्दस्ती दूध न पिलाना चाहिए। अच्छा हो कि बच्चे को दूध पिलाने का समय नियत कर दिया जाय। बिलकुल कम उमर के बालक को दो-तीन घण्टे बाद और साल भर के बालक को तीन-चार घण्टे के अन्तर से दूध पिलाना उचित है। माता या धाय को ठण्डा खाना, असमय खाना, अधिक खट्टा या मीठा खाना, क्रोध, शोक, भय, आदि से परहेज रखना चाहिए। माता या धाय की अनियमितता के कारण ही प्रायः बच्चों को बीमारियाँ होती हैं। बच्चे का लालन-पालन उचित ढंग से होने पर आठ नौ महीने में बालक हाथ-पैर के सहारे रेंगने लगता है और एक वर्ष की अवस्था में पैरों से चलने लग जाता है। यदि पन्द्रह महीने तक भी न चल सके, तो समझना चाहिए कि बालक रोगी है। उस हालत में उचित चिकित्सा करानी चाहिए। बच्चों के दांत प्रायः ६ से १० मास के अन्दर निकलने लग जाते हैं। उस समय बुखार, दस्त, कै, अनिद्रा और कब्जियत आदि उपद्रव हो जाते हैं। दाँत निकल आने पर ये उपद्रव स्वतः शान्त हो जाते हैं। सुहागे का लावा शहद में मिला कर मसूढ़ों पर घिसने से दाँत जल्दी निकल आते हैं। यदि मसूढ़ों की दृढ़ता के कारण दांत न निकल सकें, तो मसूढ़े थोड़ा चीर देते ही दाँत निकल आते हैं। दांत उगने दर गर्म भात में जरा-सा घी देकर बच्चों को खिलाना चाहिए। बालक को अति पुष्ट करने की लालसा से बार-बार अत्यधिक खिलाना महा हानिकारक है। बहुत-से माता-पिता बालकों को इतना दूध पिला देते हैं कि बच्चा कै कर देता है; परन्तु कै होने पर भी तुरन्त फिर पिला देते हैं। इस प्रकार जबर्दस्ती खिलाने से बच्चे का हाजमा खराब हो जाता है और पुष्ट होने की जगह वह दिन-दिन क्षीण होने लग जाता है। बच्चे को नीरोग और पुष्ट करने की सीधी सी विधि यह है कि बच्चे को समय पर विशुद्ध खाद्य दिया जाय, समय पर पाखाना फिराया जाय, साफ-सुथरा रक्खा जाय, खुली हवा में आनन्द पूर्वक उछल-कूद करने दिया जाय और साधारण आरोग्यदायक नियमों का पालन कराया जाय। खोमचे की चटपटी चीजें, बाजार की मिठाइयाँ, अचार, मसालेदार चीजें, तेल, खटाई आदि खाने की आदत बालकों में न

डालनी चाहिए। बाजार की मिठाई को जहर से कम न समझना चाहिए। जो मां बाप बच्चे को बाजार की मिठाई खिलाने की आदत डालते हैं, उनकी किन शब्दों में निन्दा की जाय, सो मुझे मालूम नहीं। बाजारू या घरेलू मिठाई अधिक खाने के कारण बच्चों का लीवर खराब हो जाता है। फिर वे जन्म भर रोगों के फन्दे में फँसे रहते हैं। इसलिए बुद्धिमान माता-पिता का पवित्र कर्त्तव्य है कि बालक को जन्म से ही पूर्ण नीरोग बनावे।

बच्चा अगर अधिक रोवे तो समझना चाहिए कि इसे कुछ बीमारी हो गई है। भोजन न मिलने के कारण या चींटी आदि के काटने से भी बच्चा रोने लग जाता है। बच्चा किस कारण से रोता है इसका ख्याल करना चाहिए। रोते समय बार-बार मुख में अँगुली डाले तो दांतों की तकलीफ, कान पर हाथ रखने से कान की बीमारी, घुटनों को उठा कर पेट पर रखने से पेट की बीमारी और खाँस-खाँस कर रोने से फेफड़ों की बीमारी समझनी चाहिए।

बालकों को निरोग रखने के लिए यह जरूरी है कि उन्हें कब्जियत न रहे, क्योंकि पहले कब्ज, फिर दस्त और बाद में अनेक रोगों का होना जरूरी है। माता का कर्तव्य है कि बालक को सुबह और शाम दोनों समय नियम से दस्त फिराने की आदत डालें। खाने में शीघ्र पचनेवाला और बलकारक भोजन दें। नींद और खेलने पर अच्छी तरह दृष्टि रखें। इस पर भी कब्जियत की शिकायत हो तो बड़ी हरड़ (जो साधारण बड़ी हरड़ से बहुत बड़ी होती है और जिसे लोग काबुली हरड़ भी कहते हैं) जरा–सा घिस कर पिला दें। बहुत-से लोग शुद्ध रेंडी का तेल ५-१० बूंद पिलाने का उपदेश देते हैं, परन्तु हरड़ उससे बहुत उत्तम फायदेमन्द है। इसमें जरा-सा काला नमक मिला दिया जाय, तो बहुत ही उत्तम पाचक हो जाता है। हरड़ के सेवन से बालकों के साधारण रोग शीघ्र ही आराम हो जाते हैं। बालक की अग्नि दुर्बल हो, जुकाम, कफ, खाँसी या सर्दी हो गई हो, तो हरड़ में जरा-सा सुहागे का लावा मिला देना चाहिए। इससे बालक बहुत जल्द आरोग्य हो जायगा।

यदि बालक का यकृत् खराब हो गया हो या पुष्ट न होता हो अथवा दूध फेंकता हो, तो जरा-सा चूने का पानी पिलाना अत्यन्त लाभदायक है। एक

बोतल साफ पानी में २९ ग्राम पत्थर का सूखा चूना डाल कर हिला कर रख दें। ६ घण्टे बाद चूना तल भाग में बैठ जायगा, और स्वच्छ पानी ऊपर रह जायगा। इसी को चूने का पानी या Lime water कहते हैं। बालकों के लिए यह अमृत समान गुणकारी है। दो-तीन बार दूध के साथ उसे ३ ग्राम तक अवस्था के अनुसार पिलाएँ। कुछ समय बाद बच्चे नीरोग और पुष्ट हो जायँगे।

सेंधा नमक, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, काकड़ासिंगी, पाठा और कदम्ब की छाल का चूर्ण शहद और घी के साथ चटाने से भी बालक पुष्ट हो जाता है।

बालक को जन्म से एक वर्ष के भीतर ही चेचक का टीका लगा देना चाहिए, जिससे चेचक होने का भय न रहे।

ठण्ड लग जाने से बालकों को प्रायः सर्दी, खाँसी हो जाया करती है; और कुछ समय बाद वह खुद ही अच्छी हो जाती है। अगर किसी कारणवश अच्छी न हो तो अजवायन, पीपल, सोंठ, जायफल और काला नमक अवस्था के अनुसार मात्रा में लेकर जल के साथ पीसें। फिर जरा-सा गर्म करके छानकर पिला दें। इससे बच्चे का बुखार एवं कफ, खाँसी शीघ्र आराम हो जायगी। यदि जरूरत समझें, तो जरा-सा सुहागे का लावा भी डाल दें। कब्ज हो तो जरा-सी हरड़ को घिस कर मिला दें। बंशलोचन ४८६ मि. ग्रा. चूर्ण करके उसमें मकरध्वज १२१·५० मि. ग्रा. मिला दें। इसकी ५ से १० खुराक बना कर शहद के साथ बच्चों को चटाएँ। इससे कफ, खांसी, सर्दी, जुकाम आदि शीघ्र अच्छे हो जाते हैं। सुहागा या फिटकरी को फुला कर शहद में चटाना भी उपकारी है। मात्रा अवस्था के अनुसार देनी चाहिए।

बच्चे को अक्सर पतले दस्त हो जाते हैं, इसके लिए अतीस १ ग्राम जल से घिस कर देना बहुत फायदेमन्द है। सोंठ और जायफल के पानी के साथ संजीवनी बटी देना परम लाभकारी है। कभी-कभी अधिक सर्दी से बच्चों को निमोनिया हो जाता है, जिसको स्त्रियाँ प्रायः डब्बा की बीमारी कहती हैं। इससे निमोनिया के लक्षण प्रकट होते हैं। इसका इलाज भी निमोनिया की तरह ही करना चाहिए। अभ्रक भस्म में समभाग सुहागे का लावा मिलाकर शहद के साथ चटाना अति लाभदायक है। उत्तम शराब (ह्विस्की या ब्रॉण्डी) भी जरा-सी

देना परम हितकारी होता है। इस रोग में असली गोरोचन १२१.५०मि.ग्रा. माता के दूध या पान के रस में देना भी बड़ा उपकारी है। माता का स्तन न चूस सके तो बालक को भयानक बीमारी हुई समझना चाहिए। बालकों का इलाज बड़े पुरुषों की तरह ही किया जाना चाहिए; परन्तु मात्रा का ध्यान रखना जरूरी है। विषैली दवा भूल कर भी न देनी चाहिए।

बालचातुर्भद्र चूर्ण--नागरमोथा, छोटी पीपल, अतीस और काकड़ा सींगी, प्रत्येक द्रव्य को समभाग लेकर कपड़छान चूर्ण बना शीशी में सुरक्षित रख लें।

—सि० यो० सं०

मात्रा और अनुपान--२४३ मि. ग्रा. से १ ग्रा. तक चूर्ण को शहद में मिलाकर दिन में तीन-चार बार दें।

गुण और उपयोग--इस चूर्ण के सेवन से बच्चों के ज्वर, अतिसार, खांसी, वमन (दूध डालना) आदि ठीक होते हैं।

वक्तव्य—इसमें एक भाग शु० सुहागा के चूर्ण को भी मिलाने से विशेष लाभदायक बन जाता है।

अतीस--कड़वा तथा नया लेना आवश्यक है।

सुधाषट्क योग—प्रवाल भस्म १ भाग, सीप की भस्म २ भाग, शंख भस्म ३ भाग, कौडी की भस्म ४ भाग, कछुए की पीठ की भस्म ५ भाग, गोदन्ती भस्म ६ भाग, सबको मिला नीबू के रस की ३ भावनायें दें, सुखा कर शीशी में भर लें।

मात्रा और अनुपान–२४३ मि. ग्रा. से १ ग्रा. दवा को दूध के साथ सबेरे शाम दें।

गुण--बालशोष (सूखारोग) और मृद्वस्थि रोग(Rickets)में इसके प्रयोग से बड़ा अच्छा लाभ होता है। शरीर में सुधांश(Calcium) की कमी से होने वाले रोगों में इस दवा का प्रयोग उत्तम गुणकारी है।

(१) **बालजीवनबटी**—गोरोचन ३ ग्राम, एलुवा (मुसब्बर) ६ ग्राम, उसारे रेवन्द, केशर, कठेरी-पुष्प का जीरा, यवक्षार, सत्यानाशी के बीज--प्रत्येक ११.६६ ग्राम लेकर महीन चूर्ण कर अदरख-रस में ६ घण्टे घोंट कर मूंग के बराबर छाया में सुखा गोली बना लें।

मात्रा--१ गोली आवश्यकतानुसार माता के दूध या शहद के साथ दें। यह बच्चों के पसली (डब्बा) रोग, कब्जियत, आफरा, श्वास, कास, पेशाब का रुकना आदि को दूर कर बच्चों को नीरोग बना देती है। --धन्वन्तरि

(२) **बाल घोर कासघ्न**--काली तम्बाकू के पत्ते साफ-साफ डंठल २३३ ग्राम लेकर २.५ मि. मि. के टुकड़े बना कर मिट्टी के बर्तन में रख कर जला दें। निर्धूम होने पर ऊपर से ढक्कन लगा दें। डंठल के कोयले ही रहना चाहिए, राख न होने पावे। बाद में २३३ ग्राम सेंधा नमक मिलाकर बारीक कपड़छान चूर्ण कर शीशी में भर कर मजबूत कार्क लगा दें। इसको १२१.६० से ३६४ मि. ग्रा. तक दिन में ३ बार देने से बालकों के श्वास, ज्वर, काली खाँसी, अतिसार, हरे रंग का दस्त होना आदि रोग बहुत जल्द आराम हो जाते हैं।

अनुपान--खांसी में पका पान का पत्ता १ नग और इलायची २ नग लेकर जल में पीस कर छान लें। थोड़ा गर्म कर उसमें दवा देकर २-३ बार पिलावें। श्वास एवं अतिसार में--इलायची की जगह अजवायन १२१.५०से२४३मि.ग्रा. देकर उपर्युक्त विधि से खिलाना चाहिए। बच्चों की कुकुरखांसी की यह अच्छी दवा है।

(३) **मुक्तादि बटी**--मोती २३.२ ग्राम, सोने का वरक ५.८ ग्राम, चाँदी का वरक ११.६६ग्राम, नागकेशर२३.२ग्राम, कमल के फूलों केअन्दर का केशर११.६६ ग्राम, जीरा-गुलाब (गुलाब के पुष्प का केशर) ११.६६ ग्राम, केशर ५.८ ग्राम, कपूर २.९ ग्राम, कहरबा ११.६६ ग्राम, जहरमोहरा खताई ११.६६ ग्राम, संगेयशब ११.६६ ग्राम, गोरोचन ११.६६ ग्राम, और गोदन्ती भस्म--सब का बराबर भाग लें। दोनों वरकों को छोड़ सबका कपड़छान चूर्ण करके पीछे १-१ करके उसमें वरक मिलावें। इसके बाद अच्छे गुलाब के अर्क में आठ दिन मर्दन कर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना, सुखा कर शीशी में भर लें।

मात्रा--आधी गोली से २ गोली तक, गाय के या माता के दूध में मिलाकर दें। बालकों का जीर्ण ज्वर, बालशोष (सूखा), पाण्डुरोग, दूध न पच कर दस्त या उल्टी होना, खांसी आदि रोगों में इसके सेवन से रोग दूर होकर बालक हृष्टपुष्ट हो जाता है। --सि० यो० सं०

(४) **जन्मघूंटी**--सौंफ, सौंफ की जड़, वायविडंग, अमलतास का गूदा, सनाय, छोटी हरड़, बड़ी हरड़, बच, अंजीर, अजवायन, गुलाब के फूल, ढाक के बीज, मुनक्का, उन्नाव, गुड़ और सुहागा--इन १६ दवाओं का बालक की अवस्था के अनुसार ३ से ६ ग्राम तक काढ़ा बना कर दें। इसमें जरा-सा काला नमक मिला दें। इसके सेवन से बुखार, क़फ, खांसी, अजीर्ण आदि समस्त बाल-रोग नष्ट होते हैं।

(५) **कुमारकल्याण रस**—रससिन्दूर, मुक्तापिष्टी, सोना भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म--इन ६ दवाइयों को समभाग लेकर घीकुमारी के रस में घोंट कर मूंग के बराबर गोली बना लें। बालक की अवस्था का विचार करके एक या आधी गोली की मात्रा दूध या चीनी के साथ सेवन कराएँ। इससे बुखार, कफ, वमन, दूध का न पीना, दस्त, अजीर्ण आदि नष्ट होते हैं। --भै० र०

(६) **रसपीपरी**--शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक की कज्जली कर लें। फिर सोंठ, मिर्च, पीपल, अतीस, काकड़ासिंगी, नागरमोथा, मोचरस, जायफल, जावित्री, सुहागे का लावा और छोटी पीपल--इन ११ दवाओं को पारा के समान भाग लेकर महीन चूर्ण करके मिला दें। पारे का चतुर्थांश कस्तूरी मिला-कर जल के संयोग से मूंग के बराबर की गोलियां बना लें या महीन पीस कर कपड़छान कर रख लें। इसका नाम 'रसपीपरी' है। बिहार प्रान्त में रसपीपरी बहुत प्रसिद्ध है। यह बाल-रोग में अत्यन्त लाभकारी है। उचित अनुपान के साथ सेवन करने से बालक के सर्दी-जुकाम, ज्वर, पतले दस्त, कफ-खांसी, कमजोरी आदि समस्त रोग आराम होते हैं। यह रसपीपरी का असली नुस्खा है।

(७) **शिवामोदक**—हरड़, भूईंआमला, मूर्वा, सौंफ, हलदी, दारुहल्दी, कौंच के बीज, खरेंटी के बीज, वेलगिरी, लवंग, शतावरी, मुरामांसी, सोया, जटा-मांसी, विदारीकन्द, सोंठ, अनन्तमूल, आंवला, श्यामलता, भारङ्गी, गजपीपल, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, मेथी, हालो, काला जीरा,

अजवायन, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, मुसली, असगन्ध, गोखरू--ये सब समान भाग, इन सबके बराबर मुनक्का और मुनक्का के बराबर मिश्री लें।

—भैं० र०

मुनक्का और मिश्री को छोड़ कर सब दवाओं का कपड़छान चूर्ण कर लें। फिर मुनक्का को थोड़े जल की सहायता से पीस लें और घी में सेंक लें। मिश्री की गाढी चाशनी बना कर सब चीज मिला दें और शीतल होने पर थोड़ा शहद डाल कर १ ग्राम की गोली बना लें अथवा सब चीजें खरल में पीस लें और शहद मिला कर १-१ ग्राम की गोलियाँ बना लें।

मात्रा—१-१ गोली दूध के साथ प्रातःकाल देनी चाहिए। इससे बालकों के सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं तथा बालक अत्यन्त पुष्ट और बलवान हो जाता है। अरुचि और मन्दाग्नि को भी यह दूर करता है।

(८) **अरविन्दासव**—कमल के फूल, खश, केशर, या गम्भारीफल, मजीठ, नीलोफर, बडी इलायची, बला (खरेंटी), जटामांसी, नागरमोथा, अनन्तमूल, हरड़, बहेडा, आंवला, बच, कपूर, निशोथ काली, नील पंचांग, परबल का पत्ता पित्त पापड़ा, अर्जुन की छाल, मुलेठी, महुआ क फूल, मुरामांसी--प्रत्येक सम-भाग ११६.६४ ग्राम,मुनक्का २.३३ किलो,धायफूल १,८७ किलो,जल ६३.५ किलो, चीनी ११.६६ किलो, शहद ५.८३ किलो--इन सब द्रव्यों को एकत्र कर मिट्टी के पात्र मे सन्धान करें। १ महीना बाद छान कर प्रयोग में लावें। यह बालकों के समस्त रोगों को नाश कर बल, पुष्टि, अग्नि तथा वायु को बढ़ाता है। यह ग्रह दोषनाशक भी है। बच्चों के सूखा रोग (Rickets) की सर्वोतम दवा है।

मात्रा—आवश्यकतानुसार ३ ग्राम से ११.६६ ग्राम तक बराबर पानी मिला कर देना चाहिए। --भैं० र०

चेचक (Small pov)

चेचक या शीतला भयानक छुआछूत का रोग है। रोगी को छूने से या उसके कपड़े आदि पहनने से चेचक एक से दूसरे को हो जाती है। चेचक की फुन्सियों के खुरण्ड हवा द्वारा इधर-उधर उड़कर रोग फैलाते हैं। इसलिये इस रोग से बचने का प्रबन्ध होना चाहिए।

चेचक जीवन में प्रायः एक ही बार निकलती है। बूढ़े और जवानों को यह कम होती है। बालकों को अधिक होती है। ठण्डे देश के निवासी गोरों तथा आदिवासियों को चेचक सबसे ज्यादा तकलीफ देती है। चेचक होने पर गोरे तथा आदिवासी बहुत कम बचते हैं। यह रोग अधिकतर बसन्त ऋतु याने फरवरी-मार्च में फैलता है।

लक्षण--रोगी को कम्प लग कर बड़े जोर का बुखार होता है। बुखार के साथ उल्टी, उबकाई, सिरदर्द बेचैनी आदि लक्षण वर्तमान रहते हैं। तीसरे या चौथे दिन शरीर पर लाल-लाल निशान दिखलाई देते हैं। ये निशान सबसे पहले माथा, गर्दन, छाती आदि में दीखते हैं। बाद में समूचे शरीर में निकल आते हैं। भयानक चेचक होने से नाक, आँख. जीभ आदि जगहों में भी फुन्सियाँ निकल आती हैं। ये फुन्सियां ४८ घण्टे के भीतर पहले द्रव पदार्थ से भर कर उभरे हुए छालों की तरह हो जाती हैं। फिर ४८ घण्टे के भीतर पीव पैदा हो जाती है। यह भयानक कष्ट का समय होता है। जब रोग आराम होने लगता है, तो प्रायः ११ वें दिन फुन्सियाँ सूख कर खुरण्ड पैदा होने लगते हैं और रोग के सब लक्षण कम हो जाते तथा रोगी ३-४ दिन के भीतर ही बिल्कुल ठीक हो जाता है। लेकिन जब रोग बढ़ाव पर होता है तो बुखार बढ़ जाता है रोगी प्रलाप करने लगता है, शरीर काँपता है और अन्त में रोगी प्राण त्याग देता है। चेचक के कारण अक्सर खाँसी, निमोनिया आँख में फूली, अन्धापन आदि उपद्रव पैदा हो जाते हैं। चेचक आराम होने पर मनुष्य को कुरूप कर देती है। चेचक के दाग जिन्दगी भर बने रहते हैं। इस प्रकार चेचक अपना प्रमाण जीवन भर के लिये छोड़ जाती है।

चिकित्सा--सभी प्रान्त के रहने वाले हिन्दू चेचक को रोग न मान कर शीतला नामक देवी का प्रकोप मानते हैं। इसलिए चेचक की दवा न करके झाड़-फूंक ही अधिकतर कराते हैं। लेकिन चेचक छूत से लगनेवाला रोग है। इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं है। चिकित्साशास्त्र के सिद्धान्तानुसार यह रोग अपने-आप अच्छा होनेवाला है। चेचक में दवा देने की जरूरत बहुत कम होती है। रोगी को विश्वास के लिए मामूली दवा देनी चाहिए। जिस दिन

चेचक के दाने निकलें उस दिन रोगी को ५-७ दाने मुनक्का के बीज निकाल कर खिला देने चाहिए या दूध में जरा-सी केशर मिला कर पिला देनी चाहिए, जिससे चेचक का जहर खून से निकल कर फुन्सियों में आ जाय। घर के द्वार या खिड़कियों पर जिधर से धूप आती हो उधर लाल रंग का कपड़ा लटका देना चाहिए। प्यास की अधिकता हो तो ज्वरोक्त 'षडंग पानी' पीने को देना चाहिए। निमोनिया, खाँसी आदि उपद्रव के होने पर उनकी चिकित्सा सावधानी से करनी चाहिए। जरूरत होने पर चेचक में दवा देने से कोई नुकसान नहीं होता। आंखों की सफाई और रक्षा का पूरा ध्यान देना चाहिए। नीम के पत्ते चारपाई पर बिछाना तथा नीम की टहनी से मक्खी हटाना चाहिए।

(१) **ब्राह्मी बटी**--अभ्रक भस्म, संगेयशब का भस्म या पिष्टी, अफीम का भस्म या पिष्टी, माणिक्य का भस्म या पिष्टी, चन्द्रोदय, प्रवाल का भस्म या पिष्टी, कहरवा की पिष्टी, सोने का भस्म या वरक, मोती का भस्म या पिष्टी, प्रत्येक ६-६ ग्राम, जायफल, लौंग, सोंठ, जावित्री, स्याहजीरा, छोटी पीपल, दालचीनी, अनीसून, असगन्ध, अकरकरा, धनिया, बंशलोचन, छोटी इलायची के बीज, शंखाहुली, श्वेत चन्दन, सौंफ, तेजपात, नागकेशर, रूमीमस्तगी, पीपलामूल, चित्रक के मूल छाल और कुलिजन प्रत्येक ४-४ ग्राम, कस्तूरी, अम्बर ब्राह्मी, निशोथ, अगर और केशर प्रत्येक १६.५० ग्राम लें। प्रथम केशर, कस्तूरी और अम्बर को खूब महीन पीस, उसमें अन्य भस्में और पिष्टियां मिला, सोने के वरक १-१ करके मिलावें। पीछे अन्य द्रव्यों का कपड़छान चूर्ण मिला १ दिन ब्राह्मी के स्वरस में मर्दन कर २४३ मि. ग्रा. की गोलियां बना छाया में सुखाकर शीशी में भर लें।

मात्रा--१-२ गोली; दिन में २-३ बार आवश्यकतानुसार दें।

--सि० यो० सं०

अनुपान और उपयोग--सन्निपात ज्वर में प्रलाप हो तो तगरादि क्वाथ के अनुपान से, अपतन्त्रक और आक्षेपक में मांस्यादि क्वाथ के अनुपान से, सतत ज्वर में शहद मिलाकर, वात रोग में दशमूल-क्वाथ के अनुपान से, हृदय की दुर्बलता में खमीरा गावजबान के साथ मिला करके, और भ्रम (सिर में चक्कर

आने) में द्राक्षादि चूर्ण के साथ इसका प्रयोग करें। दिल और दिमाग की कमजोरी और उनसे होनेवाले लक्षणों में इससे अच्छा लाभ होता है।

चेचक से बचने के उपाय—चेचक से बचने का एक मात्र निश्चित उपाय टीका लेना है। बच्चे को जन्म के १ महीनें बाद ही टीका अवश्य लगवा देनी चाहिए। बच्चे को टीका लगवा देने पर चेचक बिल्कुल नहीं होती या होती भी है, तो बहुत मामूली। टीका का प्रभाव तीन वर्ष तक रहता है। अतः तीन वर्ष के बाद पुनः टीका लगाना जरूरी है। बसन्त ऋतु के आरम्भ में प्रायः चेचक फैलती है, इसलिए उस समय घर के सब लोगों को टीका ले लेना चाहिए।

घर में चेचक होने पर सब लोगों को खूब सावधान रहना चाहिए। रोगी के छूने पर साबुन लगाकर हाथ धोना विधेय है। रोगी के कमरे में किसी बच्चे को घुसने न देना चाहिए।

घर में बड़े लोगों को भी बिना आवश्यकता के रोगी के पास न जाना चाहिए। रोगी के बिस्तरे व कपड़े किसी को व्यवहार में न लाना चाहिए। घर-भर में दो बार धूप देना उचित है। हर तरह सफाई का ध्यान रखने से रोग फैलने नहीं पाता। बिना सावधानी के घर में एक बच्चे को यह रोग हो जाने से सब बच्चों में फैलते हुए देखा गया है। रोगी बालक को चेचक के खुरंट भी नहीं नोंचने देने चाहिए।

स्त्री-रोग प्रदर-प्रसूति आर्त्तव-कष्ट

बालिका को १३ से १८ वर्ष के भीतर मासिक धर्म होने लगता है। इस अवस्था में माहवारी न हो तो काले तिलों को कूट कर काढ़ा बनावें उसमें गुड़ डालकर पीवे, या काला तिल, लिसोड़ा और कलौंजी का काढ़ा गुड़ डालकर पीवे तो मासिक धर्म होने लगता है। कभी-कभी युवावस्था में भी माहवारी बन्द हो जाती है। उसमें ऊपर वाली दवा दें। योग रत्नाकरकार ने प्रथम श्लोक में ही लिखा है—मासिक न होता हो तो प्रतिदिन मछली खाना चाहिये। कांजी, तिल, उड़द, माठा तथा दही का सेवन करना चाहिये। शरीर में रक्तालपता होने से मासिक धर्म नहीं होता। उस में ऊपर लिखे भोजन

के अलावा नवायस लौह या नवायसमण्डूर प्रतिदिन ६ ग्राम देने से लाभ होता है। शारीरिक परिश्रम कम करनेवाली स्त्रियों को माहवारी में दर्द होता है इस कष्टार्तव में ११.६६ ग्राम अशोक की छाल ११६.६४ या २३३ ग्राम दूध में समभाग पानी मिलाकर औंटावें, जब दूध मात्र रह जाय तो छानकर पीवें। इससे मासिक धर्म सम्बन्धी सभी शिकायतें ठीक हो जाती हैं।

जल्दी-जल्दी या अधिक सन्तान होने से स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर होता है। इसलिये २ या ३ सन्तान के बाद ब्रह्मचर्य से रहना सर्व श्रेष्ठ है यदि वर्तमान कामुक वातावरण में ब्रह्मचर्य से रहना संभव न हो तो परिवार नियोजन केन्द्र में जाकर यथार्थ परामर्श से गृहस्थी चलानी चाहिये। गर्भ निवारण के लिये आयुवद में बहुत दवाएँ हैं। उनमें सरल योग यह है कि संभोग से पूर्व सेंधानमक का टुकड़ा सरसों तेल से भिगोकर जनन मार्ग में रख लें तो शुक्राणु नष्ट हो जाते हैं। कोई विकृति नहीं होती। वर्तमान समय में जन संख्या की वृद्धि से राष्ट्र की उन्नति में भयानक बाधाएँ उपस्थित हैं। सन्तान दुर्बल, रोगी और निस्तेज होने का प्रधान कारण पुष्टि कर भोजन का अभाव है। सब तरह से सन्तति निग्रह अत्यावश्यक हो गया है।

किसी को उचित उमर में भी सन्तान न हो तो असगंध का क्षीरपाक पीने से सन्तान हो जाती हैं। लक्ष्मणा वनस्पति के मूल के सेवन से भी संतान होती है। पुत्र न होकर कन्या ही कन्या हो तो फलघृत का सेवन करना बहुत अच्छा है। स्त्री पुरुष दोनों को लेना चाहिये।

गर्भावस्था में वमन होने की बीमारी बहुत कष्ट देती है। वमन रोगों में लिखी दवा से लाभ न हो तो सुदर्शन चूर्ण या कुटज छाल ११.६६ ग्राम को चाय की तरह फांट बनाकर एक-एक चम्मच लें। ये दोनों दवाएँ बहुत कड़वी हैं—खाने में बहुत खराब लगने पर भी गर्भावस्था का वमन बन्द कर देती है। मीठी दवाओं में द्राक्षारिष्ट का ११.६६ ग्राम की मात्रा में भोजनोपरान्त सेवन रामबाण दवा है। गर्भावस्था में कभी-कभी रक्त गिरने लगता है उसमें पूर्ण विश्राम के साथ रक्त पित्त या रक्त प्रदर की दवा से लाभ हो जाता है। बार-बार गर्भपात होता हो तो रक्त परीक्षण कराना चाहिए। रक्त में उपदंश के कीटाणु पाये जाँय तो उपदंश की चिकित्सा से तथा रक्त शोधक दवा से लाभ हो जाता है प्रसव के

लिये जो बन्द मकान चुना जाता है वह माता और सन्तान के लिये हानिप्रद है; प्रसवगृह हवादार तो हो लेकिन अस्पताल जैसा न हो। प्राचीन आयुर्वेद में लिखा प्रसवगृह हो, स्वच्छ हो, प्रसूता पर सीधा हवा का झोका न लगे। उसमें अग्नि जलाकर धुंआँ करते हैं यह भी अच्छा नहीं है। प्रथम प्रसव में नगरवासी महिला को प्रसव के समय बहुत कष्ट होता हैं। पीपलामूल, दालचीनी और सिनकोना-सम भाग ३६४ मि.ग्रा. चूर्ण की पुड़िया ३-३ घंटा से देने से शीघ्र प्रसव हो जाता है; सिनकोना से ही कुनाइन बनता है इसलिए सिनकोना न मिले तो कुनाइन भी डाल सकते हैं। मूढ गर्भ हो तो अस्पताल ले जाना उचित है। घर में ही प्रसव हो तो होशियार दाई से प्रसव करावें। नाल काटने के शस्त्र को गर्म पानी में बहुत उबालकर स्वच्छ हाथ की सहायता से नाल काटें। जरा-सी भी गन्दगी माता का प्राण ले लेती है। प्रसव के बाद माता को पूर्ण विश्राम करना चाहिये २४ घंटा तो लेटे ही रहना चाहिए। प्रसवोत्तर आँवल (अपरा) गिरने के बाद अर्गट (ERGOT) १·२२ से २·४३ ग्राम तक फाँट बनाकर देने से रक्तस्राव नहीं होता, गर्भाशय पूर्व स्थिति में आ जाता है। अर्गट गेहूं, मकई, ज्वार आदि अन्न में होने वाला एक प्रकार का रोग है। १२·५ से २५ मि. मि. लम्बा, ललाई लिये भूरे रंग का कुछ वक्र, साधारण त्रिकोण, विशेष दुर्गंधयुक्त, कडुआ, अप्रिय स्वाद वाला होता है। अंग्रेजी दवा बेचने वालों के यहाँ मिलता है। (द्रव्य गुण विज्ञान, यादवजी) खाने के लिए केवल दूध दें, दूध न मिले तो हल्का भोजन दें। साथ में दशमूल का काढा अवश्य पिलावें जिससे प्रसूत रोग होने का डर नहीं होता। कुछ समय बाद सुंठी पाक या सोंठ का मोदक अजवाइन या गोन्द का मोदक दें। इससे माता को पूर्ण स्वास्थ्य लाभ होता है। प्रसव अवस्था में अनियम होने से प्रसूत रोग हो जाता है जिसमें मन्द ज्वर, हाथ पैर की जलन, खाँसी, रक्ताल्पता, दस्त, मूर्छा, आदि होते हैं, इसके लिये स्वर्णबसन्तमालती १२१·५० मि. ग्रा. सितोपलादि चूर्ण ३ ग्राम को मधु के साथ दें तथा दशमूलारिष्ट या दशमूल का काढ़ा दें, प्रताप लंकेश्वर भी इसकी उत्तम दवा है स्त्रियों का प्रधान रोग प्रदर है। योनि मार्ग से लाल या सफेद पानी जैसा पदार्थ बराबर गिरता रहता है, इससे

योनी सदा ही गीली बनी रहती है, प्रदर रोग से युवा स्त्री का भी स्वास्थ्य और सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। रक्तप्रदर की दवाएँ आगे लिखी जाती हैं; श्वेत-प्रदर में प्रमेह की दवाओं से लाभ होता है। चन्द्रप्रभा वटी का सेवन गिलोय या हल्दी के स्वरस से दिया जाय तो शीघ्र लाभ होता है; प्रदर रोग अत्यधिक उग्र हो तो वट, पीपल, गूलर पाकर की अन्तःछाल से उत्तरवस्ति देकर जात्यादि तैल की पिचु (रुई का फोहा) रखने से लाभ होता है। सख्त परदा प्रथा तथा अस्वच्छता के कारण स्त्रियों को ये रोग पैदा होते हैं।

मासिक धर्म का ठीक नियमानुसार न होना ही स्त्रियों का प्रधान रोग है। मासिक धर्म प्रायः १३ वर्ष की अवस्था से आरम्भ होकर ५० वर्ष की अवस्था तक ठीक प्रति महीने ३ से ५ दिन तक होता है। स्त्री गर्भवती होने से यह बन्द हो जाता है। कितनी ही स्त्रियों को बालक पैदा होने पर फिर सिर्फ गर्भ-धारण के लिए ही मासिक धर्म होता है। मासिक धर्म का रुकना या बड़े कष्ट के साथ होना, दो-तीन महीने से होना या १५-२० दिन में ही होना, अधिक रक्त गिरना या कम रक्त गिरना आदि उपद्रव होने से स्त्रियों का स्वास्थ्य गिर जाता है और अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मासिक धर्म नियमित रूप से न होना खुद ही एक बहुत बड़ी बीमारी है। फिर श्वेत या रक्त प्रदर का होना निश्चित है। किसी को प्रदर-रोग होने के बाद मासिक धर्म में गड़बड़ी हो जाती है और किसी को मासिक धर्म की अनियमितता के बाद प्रदर-रोग हो जाता है।

स्त्री के लिए प्रदर की बीमारी बहुत खराब बीमारी है; क्योंकि वह जल्द अच्छी नहीं होती। प्रदर-रोग में स्त्री की योनि से रात-दिन सफेद लाल रङ्ग का लस्सेदार जल गिरता रहता है। योनि सदा आर्द्र रहती है। प्रदर होने पर स्वास्थ्य और सौन्दर्य बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता और शरीर में खून कम हो जाता है एवं अजीर्ण, कब्जियत, सिर-दर्द, ज्वर आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रायः शहर में रहने वाली और अमीर घर की स्त्रियों को स्त्री-रोग बहुत होते हैं। आलस्य में दिन भर निकम्मे बैठना होता है, इससे अनेक रोग शीघ्र

उत्पन्न हो जाते हैं। पर्दे के भीतर स्त्रियों को बन्द रखने की प्रथा तो इतनी निन्दनीय है कि वह लिखी नहीं जा सकती। सख्त पर्दे के रिवाजवाले कुटुम्बों में जब रोगी-स्त्री को देखने का अवसर का आता है, तब उस दयनीय दशा को देखकर रोमांच हो जाता है। बाहर भ्रमण का शरीर पर कैसा उत्तम प्रभाव पड़ता है इसका उदाहरण कलकत्ते में नियमित गंगा स्नान करने वाली स्त्रियों से दिया जा सकता है। जो नित्य प्रातःकाल गङ्गा स्नान करती हैं, उनका एक-दो मील का भ्रमण अनायास ही हो जाता है। ऐसी स्त्रियाँ अवस्था में अधिक होने पर भी निरोग और बलवती होती हैं। इसलिए शुद्ध हवा में भ्रमण, कपड़े धोना, खाना बनाना, चर्खा कातना, घर साफ रखना आदि काम प्रत्येक बुद्धिमती स्त्री को करना चाहिए। पर्दे की प्रथा के विरुद्ध कार्य करना प्रत्येक भारतवासी का बड़ा ही पुनीत कर्म होगा। इससे लाखों बहिनों का जीवन नरक से स्वर्ग तुल्य हो जायगा।

चिकित्सा—मासिक धर्म के समय अधिक खून गिरने पर रक्त प्रदर की तरह या खूनी बवासीर की तरह चिकित्सा करनी चाहिए। अड़ूसे का स्वरस या कुड़े की छाल का काढ़ा पिलाने से खून गिरना बन्द हो जाता है। अशोक छाल २३.२ ग्राम, ४६७ ग्राम दूध और ४६७ ग्राम जल में डाल कर औंटाएं। जब दूध मात्र बाकी रह जाय, तब उचित मात्रा में पिलाएँ। इससे रक्त-प्रदर में शांति होगी। शरीर में रक्त कम होने पर गर्भाशय का मुंह बन्द होने पर अथवा स्त्री का शरीर अधिक मोटा होने से मासिक धर्म बिल्कुल बन्द हो जाता है। शरीर दुर्बल होने पर शारीरिक रक्तवृद्धि की दवा और पुष्टिकारक भोजन देना विधेय है। गर्भाशय का मुख बन्द होने पर शस्त्र चिकित्सा का विधान हैं। शरीर अति स्थूल होने पर परिश्रम, उपवास आदि करना तथा त्रिफला का सेवन करना लाभकारी है। बाँस के पत्ते ११६·६४ ग्राम और सोआ (सौंफ का भेद) ११६·६४ ग्राम को २·८ किलो पानी में औंटाएँ। ७०० ग्राम पानी शेष रहने पर छानकर ११६·६४ ग्राम पुराना गुड़ मिला दें। ऋतु के समय २९ ग्राम करके ४ बार पिलावें। इससे रुका हुआ मासिक धर्म जारी हो जाता है। अधिक न पिलावें, नहीं तो ज्यादा खून गिरने लगेगा। त्रिकुटा (सोंठ, मिर्च, पीपर)

३ ग्राम और भारङ्गी ३ ग्राम—इनका काढ़ा पुराना गुड़ मिलाकर पिलाने से भी मासिक धर्म फिर होने लगता है। श्वेत या रक्त-प्रदर में दवा सेवन के साथ जननेन्द्रिय को धोने का प्रबन्ध जरूर होना चाहिए। दवा सेवन के साथ-साथ योनि को दो बार या एक बार प्रतिदिन धोने से निश्चय फायदा होता है। त्रिफला का काढ़ा या डिटोल, वट, पीपल, गूलर, पाकर, इनकी अन्त: छाल का काढ़ा बनाकर डूस (पिचकारी) की सहायता से धोना बहुत लाभकारी है।

(१) **दार्व्यादि काढ़ा**--दारुहल्दी, रसौत, अडूसे की जड़ की छाल, मोथा, चिरायता, बेलगिरी और भिलावा (यदि भिलावा रोगी को सहन न हो तो लाल चन्दन) कमल--इन आठ दवाओं का काढ़ा शहद मिलाकर पीने से श्वेत और रक्त प्रदर रोग नष्ट होता है।

(२) **पुष्यानुग चूर्ण**--पाठा २३·२ ग्राम, जामुन की गुटली की गिरी, आम की गुठली की गिरी, पाषाण भेद, रसौत, अम्बष्ठा, मोचरस, मजीठ, कुटज की छाल, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, लोध, गेरु, कायफल, मिर्च, सोंठ, मुनक्का, लाल चन्दन, श्योनाक-छाल, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धाय-फूल, मुलेठी, अर्जुन की छाल--इन २६ दवाइयों को समभाग लेकर चूर्ण करें। १॥ से ३ ग्राम तक की मात्रा में शहद के साथ चाट कर ऊपर से चावल का धोवन पिएँ। यह प्रदर रोग, योनिशूल, खून के दस्त और बवासीर की उत्तम परीक्षित दवा है। इन योगों में अम्बष्ठा नाम की दवा सुलभ नहीं हैं। अतः उसके अभाव में लक्ष्मण या श्वेत कंटकारी मूल या पाठा लेना चाहिए। --च० सं०

(३) लाल कमल की जड़, लाल कपास की जड़, कनेर की जड़, लाल अड़हुल की जड़, मौलसरी की जड़, गन्धमार्जार, जीरा और लाल चन्दन इन सबको चावल के पानी के संयोग से पीसकर ५·८३ ग्राम लेने से रक्तमूत्र, योनिशूल, कटिशूल और कुक्षिशूल आराम होते हैं।

(४) **रज:प्रवर्तिनी बटी**--शुद्ध हींग, सोहागे का लावा, हीरा कसीस, एलुवा, (मुसब्बर)—इनको समभाग लेकर घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के रस में घोंटकर ३६४·५० मि.ग्रा. के प्रमाण की गोलियाँ बनालें। इसके सेवन से मासिक

धर्म की रुकावट, कष्ट से रज का गिरना, मासिक होने के समय कमर, पेड़ू, जंघा आदि में दर्द प्रभृत्ति रोग निर्मूल हो जाते हैं। मासिक धर्म होने के एक सप्ताह पूर्व इस दवा का उलट कम्बल के क्वाथ के साथ प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है। —भैं० र०

वेलादिबटी १४१ सि० यो० सं० देखें।

रजोदोषहरी बटी १४१ सि० यो० सं० देखें।

(५) **अशोक घृत**—१·८७ किलो ताजा गो-घृत को खूब औटाएँ। फिर १·८७ किलो अशोक की छाल का ७·४७ किलो जल में काढ़ा कर १·८७ किलो जल शेष रखें। इसी प्रकार जीरा १·८७ कि. और जल ७·४७ किलो का शेष काढ़ा १·८७ कि. अरवा चावल का धोवन, १·८७ कि., बकरी का दूध, १·८७ कि. केशराज (केसुरिया—जलभगरा का रस) १·८७ कि. तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मुद्गपणी, माषपर्णी, जीवन्ती, चिरोंजी, फालसा, रसौत, मुलेठी, अशोक की जड़, मुनक्का, शतावरी और चौलाई जड़—इन १८ दवाइयों में प्रत्येक ४६·४ ग्राम लेकर कल्क करें। फिर सब को एकत्र मिलाकर पकाएँ। पाक शेष होने पर ९३३ ग्राम चीनी मिला लें। ६ ग्राम से ११·६६ ग्राम तक सेवन करने से प्रदर रोग निश्चय आराम होता है और साथ ही प्रदर रोग जनित विविध उपद्रव भी दूर होते हैं। परीक्षित है। —भैं० र०

(६) **अशोकारिष्ट**—अशोक की छाल ५·८३ किलो (एक तुला) का ६० किलो जल में काढ़ा कर १५ किलो शेष रखें। गुड़ ११·६ किलो, धाय का फूल ९·३३ ग्राम, जीरा स्याह, मोथा, सोंठ, दारुहल्दी, नीलोत्पल, हरड़, बहेड़ा, आमला, आम की गुठली, जीरा, अडूसे की जड़ की छाल और सफेद चन्दन—ये १२ दवाइयाँ ५८·३२ ग्राम सबको एक भाण्ड में डाल कर एक महीना रखें। फिर छान कर बोतल में भर लें। २९ ग्राम भोजन के बाद सेवन करें। इससे रक्त प्रदर निश्चय आराम होता है। —भैं० र०

(७) **प्रदरारि लौह**—कुरैया (कुड़े की छाल) ११·६ किलो को ६० किलो पानी में औटाएँ, ७·५ किलो शेष रहने पर छान लें। उस पानी को फिर जलाएँ। जब गाढ़ा हो जाय, तब मजीठ, मोचरस, पाठा, बेलगिरी, मोथा, धाय के फूल,

अतीस, अभ्रक और लौह भस्म--ये ९ दवाइयाँ प्रत्येक ९३ ग्राम डालकर ३-३ ग्राम की गोलियाँ बना लें- गोली खाकर ऊपर से कुश मूल को जल में पीस कर पी लें। इससे प्रदर और कुक्षिशूल कटिशूल निश्चय आराम होंगे। --भै० र०

(८) **प्रदरान्तक रस**—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, वङ्गभस्म, रौप्य, (चांदी) भस्म, खर्पर भस्म, (अभाव में यशद भस्म) एवं कपर्दक भस्म--प्रत्येक ६-७ ग्राम, लोह भस्म ३५ ग्राम--इनको सबको लेकर घृतकुमारी के रस में १ दिन घोट कर २४३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। यह सब प्रकार के प्रदर रोग की उत्तम दवा है।

मात्रा--१-१ गोली दिन में दो बार चावल के धोवन के साथ अथवा रोगानुसार अन्य अनुपान के साथ लें। --भै० र०

(९) **सोमनाथ रस**--लौह भस्म २३·२ ग्राम, शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, छोटी इलायची, तेजपत्ता, हल्दी, दारुहल्दी, जामुन की गुठली, खस, गोखरू, वायविडंग, जीरा, पाठा, आँवला, अनार का छिलका, सुहागा, सफेद चन्दन, गुग्गुलु, लोध्र शाल की छाल, अर्जुन छाल, रसौत--प्रत्येक ११·६६ ग्राम इन सबका महीन चूर्ण करके बकरी के दूध से ४८६ मि. की गोलियाँ बना लें।

ये गोलियाँ सोम रोग, सब तरह के प्रदर, योनिशूल, बहुमूत्र आदि में लाभदायक है। यह सोमनाथ रस हमारा अनुभव किया हुआ है। प्रदर और बहुमूत्र में यह अच्छा लाभ करता है। --भै० र०

नोट--रक्त प्रदर में सुबह-शाम प्रदरारि लौह और भोजन के बाद अशोकारिष्ट लेना लाभदायक है या समभाग राल और लाख का चूर्ण १॥ ग्राम सुबह-शाम जल के साथ लेना उपकारी है। श्वेत प्रदर में सुबह-शाम चन्द्रप्रभा वटी और भोजन के बाद अशोकारिष्ट लेना बहुत फायदेमन्द है। माजूफल और बड़ी इलायची का चूर्ण १० ग्राम चावल के धोवन से सुबह-शाम लेना भी लाभकारी है। रोगी को कब्जियत न रहनी चाहिए।

सूतिका रोग

बच्चा होने के बाद कई स्त्रियों को सूतिका रोग हो जाता है। इसमें हाथ पैरों में जलन, आँखों में जलन, ज्वरभाव, मन्दाग्नि, दुर्बलता आदि लक्षण प्रकट

होते हैं। इसके लिये २४३ मि.ग्रा. बसन्तमालती दशमूल के काढ़े के साथ सेवन कराएँ, निश्चय फायदा होगा। नीचे लिखी सौभाग्यबटी भी लाभदायक है।

(१) **प्रतापलंकेश्वर रस**--शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, शुद्ध विष प्रत्येक ११·६६ ग्राम, काली मिर्च ३५ ग्राम, अभ्रक भस्म ११·६६ ग्राम, लौह भस्म ४६·४ ग्राम, शंख भस्म ९३ ग्राम, जंगली उपलों (कंडे) की भस्म १८६·६ ग्राम--सब को महीन पीस कर जल से २४३-३६४ मि. ग्रा. प्रमाण की बटी बना लें या चूर्ण ही रखें। दिन में २-३ बार अदरख का रस और शहद या तुलसी-रस और शहद के साथ देने से यह प्रसूता के सब प्रकार के ज्वर, उन्माद, खाँसी, सिर-दर्द, वमन, आफरा, धनुर्वात, शूल, अतिसार आदि उपद्रवों को अतिशीघ्र नाश करता है। गर्भाशय में रुके हुए दोष इसके सेवन से दूर होते हैं। प्रसूता की यह सर्वोत्तम दवा है। --यो० र०

(२) **बिहारी सौभाग्यबटी**--शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध सिंगिया विष, लौंग, त्रिकुटा, कूठ, नागरमोथा, भुनी हुई हींग, बड़ी इलायची, जायफल, कायफल, त्रिफला, जीरा, काला जीरा, सज्जीखार, जवा-खार, सेंधा नमक, काला नमक, सांभर नमक, समुद्र और सचर नमक--इन २७ दवाओं का समभाग लेकर पहले पारा और गन्धक की कज्जली करके फिर शेष २५ दवाओं का चूर्ण मिला कर निर्गुण्डी, गूमा, अपामार्ग, अदरख और पान के रस की एक-एक भावना देकर चने के बराबर गोलियाँ बना लें। ये गोलियाँ स्त्री-रोग में लाभदायक हैं; विशेष कर के प्रसूत-रोग में दशमूल काढ़े के साथ सेवन करने से अत्यन्त लाभ पहुँचाती हैं। सौभाग्यबटी का यह शास्त्रोक्त नुस्खा नहीं है। शास्त्रोक्त सौभाग्यबटी सन्निपात में दी जाती है। यह बिहार प्रान्त में प्रचलित सौभाग्य बटी का नुस्खा है।

(३) **दशमूलारिष्ट**--शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, बेल गनियार, सोनापाठा, गम्भारी पाडर--इनका मूल प्रत्येक २११·३२ ग्राम, चित्रकमूल, पुष्करमूल, प्रत्येक १·४६ किलो, लोध्र, गिलोय १·१७ किलो, आँवला ९३३ ग्राम, जवासा ७०० ग्राम, खदिरसार, विजयसार, हरड़--प्रत्येक ४६७ ग्राम, कुठ, मंजीठ, देवदारु, वायविडंग, मुलेठी, भारंगी, कैथ का गूदा, बहेड़ा, पुनर्नवा, (साँठी), चव्य, जटामांसी, प्रियंगू-फूल, सारिवा (अनन्तमूल),

काला जीरा, निशोथ, रेणुका रास्ना, पीपल, सुपारी, कचूर, हल्दी, सोआ या सौंफ, पद्मकाष्ठ, नागकेशर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, काकड़ासिंगी, जीवक, ऋषभक (अभाव में विदारीकन्द), मेदा, महामेदा, (अभाव में शतावर), काकोली क्षीर काकोली (अभाव में असगन्ध), ऋद्धि, वृद्धि (अभाव में बाराही कन्द)--प्रत्येक ११६·९४ ग्राम लेकर जौकुटकर अठगुने जल में पकावें। चौथाई जल शेष रहने पर छान लें। इसके बाद ३·७३ किलो मुनक्का को चौगुने जल में पकाकर तीन चौथाई भाग शेष रहने पर छान लें। उपर्युक्त दोनों क्वाथ को एकत्र कर उसमें शहद १·८७ किलो, गुड़ २३·३३ कि., धाय-फूल १·७५ किलो, ककोल, सुगन्धवाला, सफेद चन्दन, जायफल, लवंग, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, पीपल– प्रत्येक ११६·६४ ग्राम कस्तूरी* ५ ग्राम (३·७५ ग्राम)-- इन सब द्रव्यों को क्वाथ में मिलाकर मिट्टी या सिमेण्ट के बने हुए अच्छे पात्र में यथाविधि संधान करें। एक महिना बाद छानकर प्रयोग में लावें। यह प्रसूत, संग्रहणी, अरुचि, कास, श्वास,क्षय, वात-रोग, मन्दाग्नि आदि की उत्तम दवा है। स्त्रियों के बच्चा पैदा होने के बाद इस अरिष्ट को सेवन करने से प्रसव-जन्य उपद्रव नष्ट होकर तेज, बल और वीर्य की वृद्धि होती है। यह कृश मनुष्यों को भी पुष्ट और बलवान बनाता है। --भै० र०

(४) **सुपारी पाक**--सुपारी ४६७ ग्राम, घृत ४६७ ग्राम, मिश्री या चीनी २·९२ किलो, दूध ५·६ किलो, आमला, शतावर ४६७ ग्राम, नागकेशर, नागरमोथा, सफेद चन्दन, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, आँवला, चिरौंजी, कुटज-छाल, लज्जालु, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, सफेद जीरा, स्याह जीरा, सिंघाड़ा, बंशलोचन, जावित्री, जायफल, लौंग, धनियाँ, बड़ी इलायची के दाने-- प्रत्येक का महीन चूर्ण १४·६६ ग्राम लें।

बनाने की विधि--सुपारी को बारीक कपड़छान चूर्ण करके अथवा दूध में पीस कर बाद में दूध में डाल कर पकावे। जब खोआ के सदृश गाढ़ा हो जाय तब घी में भून लें। बाद में अन्य द्रव्यों का चूर्ण मिला लें। चीनी की चाशनी

*कस्तूरी दवा छानने के बाद कपड़े की पोटली में बांध कर या रेक्टीफाईड स्प्रीट मिला कर डालनी चाहिए।

बना कर उसमें उपर्युक्त द्रव्य मिला कर पाक बना लें। इसको नित्य प्रति २३·२ ग्राम से ४६·४ ग्राम तक अवस्थानुसार सेवन करने से प्रमेह, जीर्ण ज्वर, अम्लपित्त, खून का गिरना, मन्दाग्नि, प्रदर आदि रोग समूल नष्ट होते हैं। यह अग्नि, बल, वीर्य तथा कांतिवर्द्धक है। यह स्त्रियों के लिए बहुत उत्तम पुष्टई है। इसके सेवन से प्रदर आदि रोग नष्ट होकर गर्भ की प्राप्ति होती है। दुबली-पतली स्त्रियाँ इसके सेवन से हृष्ट-पुष्ट हो जाती हैं।

फल घृत

मंजीठ, मुलैठी, कूठ, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, चोपचीनी, अजवाइन, हल्दी, दारु-हल्दी, घी में सेका हुआ हींग, कुटकी, निलोफर, श्वेत कमल, लालचन्दन, सफेद चन्दन, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुनक्का, असगन्ध, खरेटी, काकोली, क्षीर काकोली, लाख, प्रत्येक ११·६६ ग्राम लें, काकोली, क्षीर काकोली दो बार कहने से २३·२ ग्राम लें, कूटछानकर चूर्ण बना जल के साथ पीसकर कल्क बनाकर गाय का घी १·१७ किलो में डालकर तथा शतावरी का स्वरस तथा गाय का दूध ५·७२ किलो डालकर पकावें। जब घी मात्र शेष रहे तब छानकर बोतल में भर के रख दें। मात्रा ५·८३ से ११·६६ ग्राम तक मिश्री मिलाकर दें। ऊपर से गाय का दूध पिलावें।

गुण—जिस स्त्री का बार-बार गर्भ गिरता हो, अल्पायु संतान होती हो, सन्तान न होती हो, लड़की ही लड़की होती हो, रजो दोष हो, आदि में लाभ होता है।

नोट—इसमें लक्ष्मणा मूल डालने से विशेष लाभ होता है। जीवित-वत्सा गौ का घी और दूध लेना चाहिये, लकड़ी के स्थान में जंगली उपलों से घृत पाक करना चाहिये।

पथ्यापथ्य—स्वास्थ्यकर नियमों का पालन और पर्दे की प्रथा का उन्मूलन परम हितकारी है।

"मधुमेह पर औषधि प्रयोग"

इतिहास--मधुमेह का ज्ञान भारतीयों को ईस्वीय सन् से कई सौ वर्ष पूर्व हो चुका था। देश में उस समय दो संप्रदाय थे। चिकित्सा कर्म में आत्रेय का संप्रदाय और शल्य कर्म में धन्वन्तरि का संप्रदाय प्रसिद्ध था। प्राप्त साहित्य बतलाता है कि आत्रेय संप्रदाय में आत्रेय के बाद अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पराशर, काश्यप, चरक, वाग्भट ने अपने ग्रंथों में इसका विवरण दिया है। जिनमें हारीत, भेल चरक संहिता उपलब्ध है और विस्तार पूर्वक विवरण दिया गया है।

धान्वन्तर संप्रदाय में सुश्रुत, भोज, नागार्जुन, विदेह आदि ने इस पर विशेष विवरण दिये हैं।

इन चिकित्सकों का अध्ययन इस विषय में गंभीर था। उन्हें मूत्र में शर्करा आती है इतना ही ज्ञान न था अपितु बहुमूत्र, तीव्राग्नि, पिपासा, कण्डू, अंगमर्द संधि वेदना, मूर्च्छा, सन्यास के लक्षण अध्ययन किये थे। यही नहीं, वंशपरंपरागत भी यह होता है इसका पूर्ण अध्ययन किया था। प्रमेह की उचित चिकित्सा न होने पर प्रमेह मधुमेह में बदल जाता है यह भी जानते थे।

प्रमेह के लक्षणों में "प्रभूताविलमूत्रता" प्रथम लक्षण दिया गया है। यह प्रभूत मूत्रता बढ़ जाती है, बहुमूत्रता में परिणत होती है और तृष्णा की वृद्धि, मूत्र का अधिक त्यागना, शर्करा मिश्रित मूत्र त्यागना प्रधान लक्षण माने जाते थे।

यह काल ईस्वीय सन् से कई हजार वर्ष का है। चरक व सुश्रुत का काल ईस्वीय सन् २००० से ५०० पूर्व का है। जबकि ये ग्रंथ प्रसिद्ध हो चुके थे।

साध्यासाध्यता—तीन प्रकार के मेहों का विवरण मिलता है जिनमें शर्करा मिलती है। इक्षुमेह, शर्करामेह, मधुमेह। प्रथम दो सुखसाध्य हैं परन्तु तृतीय मधुमेह कृच्छ्रसाध्य व असाध्य माना गया है।

उपद्रव--पिड़िका सप्त प्रकार की, दुष्टव्रण (Gangrene) (Carbuncle) मूर्छा, संन्यास यह इसके उपद्रव बतलाये गये हैं।

आधुनिक जगत--आधुनिक चिकित्सकों को कब ज्ञात हुआ कहना कठिन है। इजिप्त के ग्रंथ पैपिरस एवर्स में बहुमूत्रता का उल्लेख है। हो सकता है इन्होंने समझा हो, परन्तु एरिटियस आफ कैपोडोसिया (Aretaeus of cappadocia) (Cevea A. D. 150) जो १५० ईस्वीय में हुआ था जो गैलेन का समकालीन था। कुछ लिखता है मूत्र में शर्करा आती है। भारतीय चिकित्सकों ने सबसे पहले पता लगाया था। उनका कथन था मूत्र में मधु जैसी वस्तु निकलती है अतः रूढ़ नाम मधुमेह (Honey urine) जिसमें तृष्णा, बँधित श्वास (Foul breath), अत्यग्नि प्रधान लक्षण थे।

निदान--निदान करने में भी भारतीय चिकित्सक इसे जानते थे कि अच्छा गुरु भोजन, आलस्य आदि हेतु हैं।

आधुनिक चिकित्सक १८ वीं शताब्दी में इसे जानने लगे थे। १९ वीं शताब्दी में समझ पाये व अध्ययन किये, बीसवीं शताब्दी में पाचन की दृष्टि से होता है जान सके।

भारतीय चिकित्सक केवल एक हेतु मात्र ही नहीं जानते थे। वह १८४९ में बरनर्ड (Claude Bernard) मींकोवस्कीवान मेरिंग (Minkowski-van Merring) ने कुछ समझा, १९०९ में मैककैलम (Mc.Callum) ने व १९१२ में किर्कब्रिज ने अग्न्याशय के ऊपर प्रयोग कर समझा कि इसके सेलों की हानि से यह व्याधि होती है।

आस्ट्रेलिया १९४८ में प्रो० मेरेविन ग्रिथिफ (Mervyn Grithif) ने ग्लूटोथियोन (Glute thione) का इंजेक्शन करके जो (Alloxame) आज कहा जाता है, प्राणियों में मधुमेह पैदा किया और एक विचार बनाया। भविष्य में अभी इसका और ज्ञान होना है।

परिभाषा--

वंशगत विवरण

इसमें सुखी, धनी व बुद्धि के कार्य करने वालों की संख्या मिलती है। ईसाई (Jews) यह अमेरिका, यूरोप, चाइना, जापान में और अफ्रीका में अधिक मिलता है। भारत में भी इसकी संख्या अब अधिक बढ़ने लगी है। बगाल,

बिहार में अधिक चावल खाने वालों में पाया जाता है। वकील, बैरिस्टर, अध्यापक, आफिस के बाबू लोग जो मानसिक कार्य करते हैं इसकी संख्या अधिक है।

आक्रामक आयु और मधुमेह

Age of onset					total
बालक (१५ वर्ष तक)	पुरुष	·३५%	स्त्री.	·३०%	= ·६५%
नवयुवक (young adolescant 16-25 years)	,,	२.२०%	,,	१.२०%	= ३·४०%
तरुण (२६-३५ वर्ष)	,,	९·४०%	,,	३·३०%	= १२·७%
मध्य आयु (३६.५० वर्ष)	,,	३७·६०%	,,	९·६५%	= ४७·२५%
वार्धक्य (५१-ऊपर)	,,	२६.२०%	,,	९·८०%	= ३६·००%

मध्य आयु के अधिक प्रभाव में आते हैं। years = 36 to 5o years of age.

९८५३ रोगियों के Fosline में विचार कर देखा तो पुरुष ५१ वर्ष स्त्री ५५ वर्ष में अधिक प्रभावित होती है।

अधिकतर धनी घरों, वकीलों, बैरिस्टरों आराम से जीवन बिताने वालों में अधिक मिलता है।

प्रतिशत मधुमेह संख्या व्यावसायिक रूप में।

Percentage incidence of diabetes classified according to profession or occupation.

व्यापारी वर्ग	२४.३%
गणक वर्ग (Accountant)	१३.००%
जमींदार (Landlord)	१२.१%
वकील (Lawyer)	११.८%
लेखक (Clerk)	६.७%
चिकित्सक	५.७%

इन्जीनियर	५.६%
ऊँचे आफीसर	५.१%
अध्यापक	४.३%
मजदूर (Worker)	४.००
विद्यार्थी	२.७%
पुलिस-मिलिटरी	२.००%
अन्य	१.७%

मृत्यु—

जोसलिन की १९३४ की गणना के आधार पर मृत्यु की संख्या बढ़ने लगी है।

(27 th, 1934 united state)

भारत में कलकत्ता में १९२९ की वनस्पति १९३५ में पाँचगुनी थी, आज ९ गुनी हो गई है और धीरे धीरे बढ़ती जा रही है।

व्याधि की स्थिति के अनुसार चिकित्सा का निर्धारण

मधुमेह के २०० रोगियों के निदान करने में अधोलिखित ३ प्रधान अवस्थाएँ पाई गई हैं।

(१) कुछ रोगी इस प्रकार के होते हैं जिनकी स्थिति प्रारंभिक लक्षण मात्र होते हैं। उन्हें ज्ञान भी नहीं होता। मूत्र परीक्षा करने पर शर्करा का ज्ञान होता है। इनमें प्रधान लक्षण—

(१) मूत्र में शर्करा की प्राप्ति १-२%

(२) मूत्रराशि वृद्धि

(३) मूत्र का आविलत्व (गँदला मूत्र)

(४) दौर्बल्य।

(५) अल्प तृषा।

(२) दूसरे प्रकार के रोगी में सब लक्षण मिलते हैं।

(१) तृष्णा

(२) मूत्राधिक्य
(३) मूत्र में शर्करा १-२-३-४ प्रतिशत
(४) दौर्बल्य
(५) कण्डू
(६) सर्वांगमर्द-संधि-वेदना
(७) भोजनाकांक्षा-तीव्र

(३) जिनकी मूत्र मात्रा अधिक व शर्कराधिक्य होता है।
(१) शर्करा ४ से ८ प्रतिशत या अधिक
(२) तृषा-(३) क्षुधा-मासदौर्बल्य
(४) कांति हीनता, दृष्टि की कमी, संधि वेदना, जानु, स्कन्ध या कटि में।

ये रोगी नित्य इन्स्यूलिन का इन्जेक्शन लेते थे। तब उनका कार्य चलता था, छोडते ही स्थिति खराब होती थी मूर्छा भी हो जाती थी।

२०० में से ४१ रोगी तृतीय श्रेणी के थे।
७९ ,, द्वितीय ,, ,,
८० ,, प्राथमिक श्रेणी के थे।
२००

चिकित्सा क्रम का निर्णय

इन रोगियों में से अधिकांश धनीमानी सद्‌गृहस्थ आफीसर व व्यापारी वर्ग के थे। आतुरालय में इनकी रहने की स्थिति नहीं थी। अत: इनमें से ४१ में से तृतीय श्रेणी के २१ व्यक्ति चुने गये जो आतुरालय में रह सकें और पूर्ण चिकित्सा क्रम का प्रयोग हो सके।

द्वितीय श्रेणी से १९ व्यक्ति चुने गये।

प्रथम श्रेणी के रखने की आवश्यकता प्रतीत न हुई।

आयुर्वेदिक दवा के प्रति आकर्षण--

यह रोगी नं० ३-२ के डाक्टरों की दवा कराकर थक चुके थे अतः चिकित्सार्थ आने में देर न लगी।

जो इन्स्यूलिन रोज लेते थे और डरते थे कि न लेने पर कष्ट बढ़ेगा, अतः हास्पिटल में रहने को तैयार हुए।

सावधानी--चिकित्सा होने से पहले इनके मूत्र की परीक्षा आवश्यक थी और की जाती थी, रक्त शर्करा की भी परीक्षा कुछ निश्चित रोगियों में की जाती थी।

अतः औषधि निर्णय इसके क्रमानुसार

१. प्रथम विभाग में एकौषधि प्रयोग
२. द्वितीय विभाग में एकौषधि प्रयोग
३. विशेष प्रकार के औषधि प्रयोग

प्रथम श्रेणी में औषधार्थ

१. जम्बू बीज
२. पलाश क्वाथ
३. मामज्जक प्रयोग
४. सदाबहार रस प्रयोग
५. सप्तरंगी प्रयोग
६. कारवेल्लक स्वरस
७. बिल्वपत्र
८. गुड़मार
९. शिलाजतु

द्वितीय श्रेणी में--

१. पलाश क्वाथ-विशेष प्रकार से निर्मित
२. सप्तरंगी क्वाथ-चूर्ण
३. मामज्जक घन

तृतीय श्रेणी में—

१. मामज्जक घन बटी
२. सप्तरंगी क्वाथ-चूर्ण
३. सालसारादिगण भावित शिलाजतु
४. बसन्त कुसुमाकर-गुड़मार अनुपान

प्रथम वर्ग में—

१. जम्बू बीज चूर्ण ३-६ ग्राम
२. गुड़मार ३ ग्राम

३. पलाश क्वाथ व अर्क ३५ से ५८·३२ ग्राम।

४. कारवेल्लक स्वरस २३·२-५८·३२ ग्राम का प्रयोग प्रारभिक रूप में डॉ० भट्ट, डॉ वसाने सीनियर फिजीशियन ने रिसर्च किये। इन औषधियों से प्रारंभिक स्थिति में लाभ होता गया। कारवेल्लक स्वरस इसमें उत्तम पाया गया। गुड़मार से सामान्य लाभ। जम्बू बीज से अल्प लाभ।

द्वितीय तृतीय श्रेणी की औषधियों का प्रयोग द्रव्य गुण विभाग द्वारा किया गया। पूरे प्रायोगिक क्रम अपनाये गये। इसमें--

१. मामज्जक घन बटी ४८६ मि. ग्रा की एक वटी

मात्रा	१%	शर्करा	में	१-२ बटी
	२%	,,	,,	२ बटी
	३%	,,	,,	३ बटी
	४%	,,	,,	४ बटी

मात्रायें--यह मात्रायें तीन बार दी जाती थीं, प्रातः जल से मध्याह्न व सायं भोजन लेने के १० मिनट पहले।

ऐसी तीन मात्रायें दी जाती थीं।

इससे प्रथम सप्ताह में मूत्र शर्करा कम हो जाती थी।

दूसरे-तीसरे सप्ताह में बिल्कुल कम।

चौथे सप्ताह में मात्रा कम कर दी जाती थी। शर्करा परीक्षा में नहीं मिलती थी। कुछ रोगियों में ६ सप्ताह भी लग जाते थे।

प्रकृतितः परीक्षा--मामज्जक घन बटी मूत्र-शोधक, स्राव व शर्करा नाशक है। यह इन्स्यूलिन की तरह शर्करा की मात्रा कम करती है और रक्त शर्करा भी कम करती है।

उपद्रव--पित्त प्रकृति वालों में पतले मलत्याग होने लगते थे। कभी-कभी १०-१२ वक्त विरेचन हो जाता था।

विषाक्तता--अधिक मात्रा में जाते ही मुंह का स्वाद तिक्त-उल्टी आना, जी मिचलाना हो जाता था तब इसकी मात्रा कम की जा सकती थी।

सप्तरंगी

इसके चूर्ण व क्वाथ का प्रयोग उत्तम पाया गया। यकृत् की विकृति से उत्पन्न मधुमेह में यकृत् वृद्धि में लाभ करती रही है। यह सप्तरंगी के क्षुप के पीले रंग के मूल के चूर्ण का प्रयोग करते हैं। नयी ताजी औषधि अधिक लाभप्रद होती है। इसकी जड़ के चूर्ण व क्वाथ का प्रयोग होता है।

मात्रा—चूर्ण २-६ ग्राम तक

क्वाथ-३५–५८·३२ ग्राम

ऐसी ३ मात्रायें प्रातः, मध्यान्ह व सायंकाल प्रयुक्त होती हैं। इसके घन का लाभ नहीं पाया गया। अतः ताजे चूर्ण व क्वाथ का प्रयोग किया गया। अच्छा लाभप्रद रहा।

यह मूत्र शर्करा व रक्त शर्करा दोनों पर प्रभाव करती है। १९ रोगियों पर प्रयोग किया गया।

पलाश अर्क—इसके निर्माण की विधि विशेष प्रकार की है। पलाश मूल त्वक् हरा लेकर छोटे-छोटे टुकड़े करके इसका अर्क निकाला जाता है। ऐसे निकले अर्क में पलाश बीज छिलका रहित कूट कर डाल कर २४ घंटे भिगो देते हैं, फिर अर्क निकाल लेते हैं। ऐसे परिस्रुत अर्क को पुनः बीज डालकर २४ घंटे रखकर परिस्रुत करते हैं। ऐसे तीन बार स्रावित द्रव को एकत्र कर लेते हैं।

मात्रा—११-६६–२३·२ ग्राम पीने व लगाने में प्रयोग।

आभ्यन्तर प्रयोग—इसके एक सप्ताह लेने के बाद इन्स्यूलिन की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। मूत्र शर्करा कम हो जाती है। रक्त शर्करा कम होने लगती है और प्राकृत मात्रा में आ जाती है।

बाह्य प्रयोग—कारबंकल, विद्रधि या प्रमेह पिड़िका पर लगाने से व्रण सूख जाता है, आपरेशन की नौबत नहीं आती।

इस प्रयोग से १५ रोगी प्रयोग में आये। सब में लाभ हुआ–तीन रोगी ऐसे थे जो कि तीन बार कारबंकल का आपरेशन करा चुके थे और इन्स्यूलिन भी लेते थे, परन्तु लाभ न हुआ था। इससे इन्स्यूलिन लेना बन्द हो गया था और

धीरे-धीरे प्राकृत स्थिति में आये। व्रण पर लगाने से व्रण सूख गये।

शिलाजतु––सुश्रुत ने मधुमेह में शिलाजतु का कल्प लिखा है और एक सहस्र पल (१ पल=४ तोला) तक प्रयोग करने की सम्मति दी है। हमने इस शिलाजीत को सालसारादि गण की भावना देकर अनुपान सालसारादि क्वाथ रखा–लाभ अच्छा रहा।

जो लोग रोज इन्स्यूलिन दो-दो बार कई युनिट लेते थे वे सब इससे प्रभावित हुए। न लेने पर जिन्हें श्वासवृद्धि, घबराहट और मूर्छा होती थी उन्हें इसके लेने से प्रथम सप्ताह में ही इन्स्यूलिन स्वयं छोड़ना पड़ा–कोई उपद्रव न हुआ। ९ रोगियों पर प्रयोग किया गया। यह सब तृतीय श्रेणी वाले थे।

वसन्त कुसुमाकर––वसन्त कुसुमाकर की २४३-३६४·५० मि. ग्रा. मात्रा देकर गुड़मार के क्वाथ की अनुपान दी गई। केवल ७ रोगियों पर प्रयोग किया गया। यह प्रत्येक ५-६-७ वर्ष से इन्स्यूलिन लेते थे, न लेने पर मूर्छा हो जाती थी, अत: इन पर प्रयोग किया गया, लाभ हुआ, इन्स्युलिन लेना बंद हुआ, और धीरे-धीरे स्वाभाविक स्थिति में आये। किन्तु इन्हें चिरकाल तक दवा लेना जारी रखना पड़ा।

मधुमेह

परिभाषा––मधुमेह प्रमेह का जीर्ण रूप है। इसमें मूत्र में शक्कर आने लगती है। रक्त में भी शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है।

लक्षण–अधिक प्यास लगना, भूख लगना, बार-बार पेशाब को जाना, परीक्षा करने पर मूत्र में शर्करा निकलना, मूत्र में चींटी लगना। अधिक मात्रा में शर्करा बढ़ने पर दौर्बल्य-घबराहट-रक्तसंचार की वृद्धि-तीव्रता में बेहोशी होना यह लक्षण होते हैं।

मूत्र में शकरा––

१-३ प्रतिशत शर्करा मूत्र में जाने पर नीचे लिखी दवा में से कोई एक देना।

(१) **चन्द्रप्रभावटी**––मात्रा २-४ बटी या १ ग्राम की मात्रा देने पर सामान्य शर्करा की मात्रा कम हो जाती है, मूत्र साफ होने लगता

है। दुर्बलता नष्ट होती है। शर्करा आना बन्द हो जाता है।
अवधि २-४ सप्ताह।

(२) **मामज्जक घनबटी**--४८६ मि. ग्रा. की गोलियाँ १-२ बटी की मात्रा भोजन के १० मिनट पहले जल के साथ देना चाहिए।

(३) **सप्तरंगी चूर्ण**--२-४ ग्राम की १ मात्रा या ३ मात्रा जल के साथ या दूध के साथ। औषधि सेवन से पूर्व शर्करा मूत्र में कितनी आती है जाँच करके तभी देना चाहिए।

(४) **शिलाजतु वटी**—मात्रा २-६ बटी अथवा ४८६-७२९ मि. ग्रा. लगातार ३ मात्रा जल से।

यह चारों औषधियाँ प्रारम्भ में लाभ करती हैं जब मूत्र में शर्करा एक से या तीन प्लस तक हो। बाद में अधिक मात्रा होने पर लाभ नहीं होता।

मधुमेह

द्वितीयावस्था--जिसमें शर्करा २-४ प्रतिशत मूत्र में आती हो या अधिक, रक्त-परीक्षा में भी शर्करा की वृद्धि मिले तो निम्न दवा देनी चाहिए।

(१) **मामज्जकवटी**—२ वटी की मात्रा ३ बार, दो बार भोजन से पहिले, एक बार बीच में।

अनुपान--जल या दूध से।

(२) **सालसारादि भावित शिलाजतु**--मात्रा १ ग्राम की ३ मात्रा—प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल।

अनुपान--जल से निगलना या दूध से।

नोट—(१) ये औषधियाँ तभी दी जानी चाहिए जब परीक्षा से सिद्ध हो जाय कि मूत्र में शर्करा ऊपर कहे हुए मात्रा में है। अन्यथा कम मात्रा होने पर कई कुलक्षण हो जाते हैं। नं. १ के लेने पर पित्त प्रकृत्ति वालों को ३-४ मल त्याग हो जाते हैं। जी मिचलाता है, उबकाई आती है। शर्करा रक्त में कम होने पर अधिक थकावट मालूम होती है। और दुर्बलता मालूम होती है। अतः परीक्षा करके देनी चाहिए।

(२) अथवा जो रोगी रोज इन्स्यूलिन का इन्जेक्शन लेता हो उसे देना चाहिए। २० से ४० युनिट तक जो इन्स्यूलिन लेता है उसमें शर्करा की मात्रा अधिक होती ही है।

अवधि--४-६ सप्ताह। प्रथम सप्ताह में ही शर्करा कम होती है, धीरे-धीरे मात्रा घटकर नार्मल हो जाती है। रोगी की प्यास कम हो जाती है। भूख कम हो जाती है। बार-बार मूत्र आना बन्द हो जाता है शरीर में स्फूर्ति आती है। पिडिका वगैरह हो तो ठीक हो जाते हैं। कारबंकल नहीं हो पाता। प्रथम सप्ताह में ही इंजेक्शन लेना छूट जाता है।

नोट--(१) फायदा न होने पर दोनों औषधियाँ ४ घंटे के अन्तर से देना लाभप्रद होता है और लाभ हो जाता है।

(२) मूत्र परीक्षा १-१ सप्ताह पर कराते रहना चाहिए।

पथ्यापथ्य—शर्करा बढ़ाने वाले पदार्थ आहार में नहीं लेना चाहिए। यथा चावल, आलू, केला, शर्करा या आनूप देश के मांस या मीठे फल आदि।

पथ्य--यव, गेहूँ या बाजरे की रोटी व हरी सब्जी। कोद्रव (कोदो) धान्य का सेवन। जौ या जौ की बनी हुई वस्तु का सेवन।

मधुमेह

तृतीयावस्था--

पलाश अर्क--११·६६–२३·२ ग्राम तक दिन में तीन बार देने पर शीघ्र ही रक्तशर्करा-मूत्रशर्करा कम कर देता है।

काल--१-४ सप्ताह तक २% तक शर्करा वालों को।

३–६ सप्ताह तक ५% तक शर्करा वालों को लाभ करता है।

नोट--जो नित्य २० से ६० यूनिट तक इन्सूलिन लेते हैं उनको भी २ सप्ताह के सेवन के बाद इंजेक्शन लेना बन्द हो जाता है।

(२) शर्करा की मात्रा मूत्र में अधिक आती हो तो पलाश-घन सत्व ४८६ मि. ग्रा. की मात्रा में ऊपर के अर्क के साथ भोजन से १० मिनट पहले या बाद में देने से उत्तम लाभ होता है।

(३) पलास घनसत्व २४३ मि. ग्रा.
मामज्जक घनवटी २४३ मि. ग्रा.
गुडूची घन २४३ मि. ग्रा.
} की १ वटी बनावें।

यह दिन में ३ बार देने पर शर्करा की मात्रा कम हो जाती है।

काल — १-४ सप्ताह

नोट—अंग वेदना, संधि वेदना-कण्डू-तृष्णा को कम करता है।

यह मधुमेह चिकित्सा पं० विश्वनाथजी द्विवेदी आचार्य की 'वैद्य सहचर' नामक पुस्तक से आज्ञा लेकर प्रकाशित किया गया।

द्रव्य शोधन

संखिया का शोधन

संखिया को सरौते से चने जितने छोटे टुकड़े कर, कपड़े में बाँध, मिट्टी की हाँडी में दोला-यन्त्र से गाय के दूध में मन्द आँच पर तीन घण्टा पकावें। पीछे कपड़े से निकाल, गरम जल से धो कर सुखा लें।

हरताल का शोधन

अच्छी पत्री (वरकी) हरताल ला, उसके चने जितने छोटे टुकड़े कर, कपड़े में बाँध कर, मिट्टी की हाँडी में पेठ के स्वरस में दोला यन्त्र से मन्द आँच पर छः घण्टे पकावें, फिर मिट्टी या काँच के बर्तन में नीबू के रस में भिगो कर रख दें। प्रति दिन नीबू का रस बदलते रहें। इस तरह सात दिन नीबू के रस में रखने के बाद, जल से धो कर सुखा लें।

मैनसिल का शोधन

अच्छी मैनसिल ला उनके चने जितने छोटे टुकड़े कर, उसको एक मिट्टी की हांडी में भांगरे का स्वरस भर कर उसमें दोला-यन्त्र से पकावें। बाद में धोकर, पत्थर के खरल में ३ भावना अदरख के रस की और ३ भावना लाल अगस्त्य के फूलों के स्वरस की दें। इसके बाद इसे सुखा कर रख लें।

टंकण (सुहागा) का शोधन

सुहागे का चूर्ण कर उसको मिट्टी के तवे पर फैला कर तवे को अग्नि पर रखें। जब सब सुहागा फूल कर लावा (खील) जैसा हो जाय, तब ठण्डा होने पर, पीस, कपड़छान कर शीशी में भर लें।

फिटकरी का शोधन

फिटकरी का शोधन सुहागे के शोधन जैसा ही करें।

बच्छनाग का शोधन

जो बच्छनाग तोड़ने पर भीतर से ठोस और चिकना हो, उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर एक मिट्टी या कांच के पात्र में डाल, ऊपर से सब डूब जाय इतना गो-मूत्र डालकर, २४ घण्टे तक पात्र को ढँक कर रख छोड़ें। दूसरे दिन पहला गो-मूत्र निकालकर नया गो-मूत्र भरें। इस प्रकार ३ बार करें। पीछे उसे जल से धो, एक कपड़े में बांध कर गाय के दूध में दोला-यन्त्र से तीन घण्टे मन्द आंच पर पकावें। फिर कपड़े से निकाल, जल से धो, सुखा कर रख छोड़ें। सूखने के बाद यथावश्यक वजन करके काम में लावें।

अफीम का शोधन

अफीम को चौगुने जल में धोकर, कपड़े से छान लें। पीछे मन्द आंच पर गरम कर गाढ़ा कर लें। बाद में उसको अदरक-रस की सात भावनाएँ देकर सुखा कर काम में लावें।

धतूरे के बीज का शोधन

अच्छे पके हुए धतूरे के बीजों को कपड़े में बांधकर, दोला-यन्त्र से गाय के दूध में ३ घण्टे मन्द आंच पर पकावें। बाद में गरम जल से धो कर सुखा लें। कनेर, कलिहारी, चिरमिटी (गुंजा) और विधारा-बीज आदि को धतूरे बीज की तरह ही शुद्ध करना चाहिए।

भाँग का शोधन

भांग को कपड़े में बांध कर जब तक जल में हरा रंग आता रहे तब तक जल से धोवें। फिर कपड़े से निचोड़कर छाया में सुखा लें।

कुचले का शोधन

अच्छे पुष्ट (भरे हुए) कुचले ला कर उसको मिट्टी या कांच के पात्र में गो-मूत्र में भिगो दें। दूसरे दिन वह गोमूत्र निकाल कर नया गो-मूत्र भर दें। इस प्रकार सात दिन गोमूत्र में भिगोएँ। आठवें दिन चाकू से कुचले के ऊपर

के छिलके तथा दो दल के अन्दर की जीभ निकाल दें। पीछे कपड़े में बांधकर गाय के दूध में दोला-यन्त्र में पका, कपड़े से निकाल, गरम जल से धो लें। कुचले को योगों में डालना हो, तो उसी समय सरोते से छोटे-छोटे टुकड़े कर पीस डालें, सूखने के बाद बड़े परिश्रम से चूर्ण होता है।

भिलावे का शोधन

अच्छे पके और पुष्ट भिलावे को १ दिन गो-मूत्र में तथा ३ दिन गाय के दूध में भिगो कर रखें। प्रति दिन जल से खूब धो कर दूसरे दूध में भिगोएँ। पीछे कपड़छान किये हुए ईंट के चूर्ण से खूब मसलकर जल से धोकर सुखा लें। इस प्रकार शुद्ध किये हुए भिलावे को खाने के प्रयोग में लाएँ।

जमालगोटे का शोधन

पहले जमालगोटे को भैंस के गोबर में मिला कर ६-७ दिन तक रख दें। गोबर में थोड़ा जल मिला देना चाहिए। फिर गोबर में से निकाल कर इन्हें गरम जल से धो डालें और उनके ऊपर के छिलके उतार कर चाकू की सहायता से चीर कर उनके अन्दर की पत्तियां निकाल लें। फिर एक पहर तक दूध में पकाएँ। फिर नीबू के रस में घोंट कर एक कोरे घड़े पर जिसमें जल वगैरह न डाला गया हो, लेप कर धूप में सुखा लें। इस तरह तब तक नीबू के रस में घोंट-घोंट कर घड़ों पर लेप करके सुखाएँ जब तक कि घड़े का भाग चिकना न हो जाय। प्रत्येक बार घड़ा नया होना चाहिए। चिकनाहट न रहने पर जमालगोटा शुद्ध हो जाता है। अब इसको योगों में व्यवहार करने से दस्त तो लायेगा, पर पेट में मरोड़ और जी मिचलना आदि उपद्रव न करेगा।

गूगल

गिलोय अथवा त्रिफला के क्वाथ में या दूध में गूगल को डाल दें और मन्द २ आग पर पकाएँ। जब गूगल गल जाय तब धीरे-धीरे ऊपर का द्रव भाग छान लें, नीचे का कूड़ा-कर्कट छोड़ देना चाहिए। फिर उसको पका कर खूब गाढ़ा कर लें। पकाते समय थोड़ा घी डाल देना चाहिए, जिससे गूगल जलने नहीं पावें।

खर्पर का शोधन

खपरिये का सूक्ष्म चूर्ण कर मिट्टी या कांच के पात्र में डाल कर ऊपर से

पात्र को गो-मूत्र से भर दें। प्रति दिन गो-मूत्र बदलते रहें। इस प्रकार सात बार गो-मूत्र में भिगोने के बाद उसको जल से धो-सुखा कर रख लें।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के फार्मेसी विभाग में जो खपरिया बिकता है वह ठीक है। उसे काम में लाना चाहिए। खर्पर के स्थान में जस्ते का भस्म भी व्यवहार करना अच्छा है।

हिंगुल का शोधन

हिंगुल का चूर्ण कर उसको एक पहर गाय के दूध में मर्दन करें। पीछे नीबू के रस की सात भावना दे, सुखा कर शीशी में भर लें।

शिलाजीत का शोधन

शिलाजीत को गो-दुग्ध, त्रिफला और जलभंगरे के क्वाथ में लौह के पात्र में एक-एक दिन घोट कर धूप में सुखा लेना चाहिए। इस तरह से शिलाजीत शुद्ध हो जाता है। यदि पत्थरों से उतारा हुआ शिलाजीत हो, तो पहले निखालिस पानी में औंटाएँ, फिर पानी को नितार कर दुबारा आग पर चढ़ावें और गाढ़ा कर लें। इसके बाद उपर्युक्त विधि से शुद्ध करें।

गुण—शिलाजीत तिक्त, कड़वा तथा सूजन, उदर रोग, अर्श और मूत्राशय के सम्पूर्ण रोगों को गच्छा करता है। यह अपूर्व ताकतवर है। "सुश्रुत संहिता, में लिखा है कि दुनिया में ऐसा कोई रोग नहीं जो शिलाजीत के सेवन से दूर न हो।

पारद शोधन

पारद का सोलहवां भाग हल्दी के चूर्ण और घृतकुमारी (ग्वार पाठा) रस से एक दिन घोटकर तिर्यक पातन कर एक दिन निम्बु रस से घोंट लेने से अच्छी तरह शुद्ध हो जाता है। धूर्त व्यापारियों द्वारा लोभवश पारा में मिलायी गयी रांगा, शीशा, जस्ता आदि सस्ती धातुएँ इस विधि से शुद्ध करने पर तिर्यक पातन में नीचे के भाग में हीं पड़ी रह जाती हैं और विशुद्ध पारा उड़कर यन्त्र की नलिका द्वारा अन्य पात्र में जाकर इकट्ठा हो जाता है।

गन्धक शोधन

एक मिट्टी के चौड़े मुंह के पात्र में गन्धक से चौगुना दूध डालकर उसके मुंह पर महीन कपड़ा बांध दें। पश्चात् एक लोहे की छोटी कड़ाही में कुछ घी

और गन्धक डालकर आग पर रखकर पिघलायें। पिघल जाने पर इसे कपड़ा बंधे दूध के पात्र में डाल दें। कुछ देर बाद दूध में से गन्धक को निकाल गरम जल से धोकर, सुखा-पीसकर रख लें।

दवाओं के निर्माण के विषय में आवश्यक जानकारी

स्वरस—ताजी हरी वनस्पति को जल से धोकर छोटे-छोटे टुकड़े कर खरल या इमामदस्ता में कूटकर अथवा सिलवट्टे से पीसकर साफ कपड़े में रखकर निचोड़ने से स्वरस निकाल लिया जाता है, इसे रस भी कहते हैं। तुलसी, अदरख, ब्राह्मी, भृङ्गराज, कटेरी आदि स्वरस बहुल वनस्पतियों का स्वरस इसी प्रकार निकाला जा सकता है।

पुटपाक--कम स्वरस वाली वनस्पतियाँ जैसे कुड़ाछाल, गूलरछाल, नीम-छाल आदि वनस्पतियों की ताजी अन्तर्छाल को जल से धोकर कूटकर गोला बनाकर उस पर बड़, जामुन अथवा कमल के पत्ते को लपेटकर सूत से बाँधकर दो अंगुल मोटा गीली चिकनी मिट्टी का लेप कर मामूली सुखा इसे आग के अंगारों में लाल हो जाने तक पकायें पश्चात् मिट्टी व पत्ते को हटाकर औषधि के गोले निकाल कपड़े में रखकर निचोड कर जो स्वरस प्राप्त किया जाता है उसे पुटपाक स्वरस कहते हैं।

कषाय (क्वाथ)—औषधि द्रव्य को जौकुट करके सोलह गुने पानी में डालकर मिट्टी के पात्र अथवा कलईदार बर्तन में बिना ढक्कन लगाये मन्दाग्नि पर पकायें—चतुर्थांश (चौथाई) जल शेष रहने पर छानकर मामूली गरम को ही पिलायें। यूनानी मतानुसार उस क्वाथ के बचे हुए फोक (औषध द्रव्य) को पुनः आठ गुने जल में १२ घण्टे भिगोकर मन्दाग्नि पर पका कर छानकर पिलाने का भी विधान है।

फाण्ट--औषधि द्रव्य को चूर्ण कर चोगुने गरम जल में डालकर ढक्कन से ढककर १५-२० मिनट करीब रखा रहने दें—बाद में हाथ से मसलकर कपड़े में छानकर प्रयोग में लें।

हिमकषाय--औषधि द्रव्य को चूर्ण कर छै गुने जल में मिट्टी के या कांच

के पात्र में भिगोकर ढककर रात्रि भर रखा रहने दें। प्रातःकाल हाथ से मसलकर कपड़े से छानकर पियें। इसे हिमकषाय अथवा शीतकषाय कहते हैं।

कल्क--गीले ताजे द्रव्यों को जल से धोकर छोटे-छोटे टुकड़े कर सिलबट्टे पर चटनी की तरह पीस लें। अथवा सूखे द्रव्यों को चूर्ण कर जल के साथ पीस कर कल्क बना लें।

मात्रा--स्वरस, क्वाथ, फाण्ट और हिम इनकी मात्रा २३·४ से ४६·४ ग्राम तक है कल्क की मात्रा ५·८३ से ११·६६ ग्राम तक है।

प्रक्षेप--इनमें मिश्री, मधु, भुना हुआ जीरा, गुग्गुलु, क्षार, लवण, शिलाजीत, त्रिकटु इनको मिलाना अभीष्ट हो तो एक ग्राम से ३ ग्राम तक की मात्रा में मिलायें। हींग भुना हुआ मिलाना हो तो १२१·५० से ३६३·५० मि. ग्रा. तक को पीसकर मिलायें। घी अथवा तेल मिलाना हो तो क्वाथ आदि से चतुर्थांश मात्रा में मिलायें।

चूर्ण--अत्यन्त सूखे द्रव्यों को अच्छी तरह इमामदस्ता में कूटकर वस्त्र से छानकर अथवा महीन जाली की चलनी से छानकर साफ पात्र में भरकर रख लें। इसे क्षोद या रजः भी कहते हैं। चूर्णों में चिरायता, चोपचीनी, सालम मिश्री, विधारा आदि कठिन द्रव्यों को अलग से कुटवाकर उनके अनुपात के हिसाब से मिलाना चाहिये।

गुटिका (वटी)--औषधियों के कपड़छन चूर्ण को मधु, गुड़, चीनी आदि की कड़ी (गाढ़ी) चासनी में मिलाकर या शुद्ध गुग्गुलु व शुद्ध शिलाजीत मिलाकर औषधियों के स्वरस या क्वाथ के साथ खरल में या सिलबट्टे पर अच्छी तरह घुटाई करके हाथ से उचित परिमाण (साइज) की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखाकर साफ पात्र में भरकर ढक्कन लगाकर रख लें। प्रायः काष्ठ औषधि द्रव्यों की व गुग्गुलु योगों की गोलियाँ ४८६ मि.ग्रा. परिमाण की, धातु-भस्मों युक्त औषधियों की २४३ मि. ग्रा. परिमाण की, शुद्ध पारद-गन्धक, शुद्ध वत्सनाभ, शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध कुचला आदि मिश्रित औषधियों की १२१·५० मि. ग्रा. परिमाण की, शुद्ध मल्ल, शुद्ध हरिताल, शुद्ध मेनसिल, शुद्ध धतूरा बीज आदि उग्र द्रव्यों के मिश्रित योगों वाली औषधियों की ६१ मि. ग्रा. परिमाण की गोलियां बनानी

चाहिए। शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को औषधियों में मिलाना हो तो पहले इन दोनों को पत्थर के खरल में डालकर घोंटकर कज्जल जैसी महीन और चमक रहित कज्जली बनाकर अन्य औषधियों के महीन चूर्ण में हाथों से अच्छी तरह मिलाकर मसलें। शुद्ध वत्सनाभ या शुद्ध कुचला अथवा शुद्ध जमालगोटा को मिलाना हो तो इन्हें खूब महीन पीसकर आठ गुने गरम जल में भिगोकर पतला (द्रव) बना औषधियों के महीन चूर्ण में थोड़ा २ चम्मच से डालते हुए हाथों से अच्छी तरह मसलकर मिलायें ताकि सारे औषधि चूर्ण में अच्छी तरह समान रूप से मिल जाये। गोली (वटी) को चबाकर खाना चाहिये साबित खाने पर वह बिना हजम हुए मल के साथ जैसी की तैसी निकल जाती है इससे कुछ भी लाभ नहीं होता है।

अवलेह, पाक, मोदक——क्वाथ (काढ़ा), स्वरस, फाण्ट आदि को छानकर फिर कढ़ाही या भगोना आदि पात्र में डालकर अग्नि पर पका कर गाढ़ा किया जाता है उसे रस-क्रिया, अवलेह और घन कहते हैं। जो अँगुली से चाटने योग्य हो वह अवलेह होता है और जो गाढ़ा हो उसे पाक कहते हैं। पाक को ही हाथ से लड्डू बना लेने पर मोदक कहते हैं। अवलेहों में जहाँ द्रव्यों का परिमाण न लिखा हो वहाँ प्रक्षेप चूर्ण की मात्रा से चीनी चार गुनी, गुड़ दुगुना और द्रव पदार्थ जल या क्वाथ आदि चार गुने डाले जाते हैं। प्रायः अवलेहों में चासनी चार तार की बनानी चाहिये व पाक तथा मोदक के लिये लच्छा की चासनी बनाने से उत्तम व टिकाऊ बनते हैं।

तैल पाक——प्रायः औषध सिद्ध तैल तिल से बनाये जाते हैं। यथोक्त परिमाण में तिल तैल को साफ कढ़ाही में डालकर उसमें धुआँ उठने तक गरम करके ठण्डा कर लें। पश्चात् उसमें तैल से सोलहवाँ भाग मंजीठ और मंजीठ से चौथाई भाग हल्दी, लोंध, नागरमोथा, नालुका (तज), आंवला, बहेड़ा, हरड़, केवड़ामूल, बड़ की जटा, सुगन्धवाला (खस) ये प्रत्येक द्रव्य लेकर चूर्ण करके जल से चटनी जैसा पीस करके तैल में मिलाकर चौगुना जल डालकर मन्दाग्नि से पकायें। जल का भाग जल जाने पर तैल मूर्छित हो जाता है। अब इस तैल में योगानुसार यथोक्त औषधियों का कल्क व क्वाथ, स्वरस, कांजी, दही, दूध,

गोमूत्र आदि के साथ पका करके तैल पाक सिद्ध हो जाने पर कुछ गरम रहते हुए ही कपड़े से छान कर साफ पात्र में भरकर ढक्कन लगाकर रख लें। पीने के काम में आने वाले तैलों का पाक मध्यम किया जाता है एवं मालिस के काम में आने वाले तैलों का पाक खर करना चाहिए। तैलों में कस्तूरी व कपूर मिलाना हो तो तैल को छानने के बाद कस्तूरी व कपूर रैक्टीफाइड स्प्रीट या मृतसंजीवनीसुरा के साथ अच्छी तरह घोंटकर पूरे तैल में अच्छी तरह मिला देना चाहिये। घृत, तैल आदि का पाक एक दिन में ही सिद्ध नहीं करना चाहिये। मन्द-मन्द अग्नि पर पका कर पाँच-सात दिन में सिद्ध करना चाहिये। इससे वे विशेष गुणकारी होते हैं। तैल के कल्क को तर्जनी व मध्यमा अँगुलियों पर रखकर अँगूठे से मलने पर उसकी बत्ती सी बंधने लगे व तैल में कल्क व क्वाथ आदि द्रव्यों की गन्ध आने लगे व वर्ण (रंग) भी तदनुसार हो जाये व पाकान्त में फेन आने लगे तब तैल का पाक सिद्ध हो गया ऐसा समझना चाहिये।

घृत पाक—औषध सिद्ध घृतों का पाक करने में सबसे पहले एक सेर घृत को साफ कढ़ाही में मन्दाग्नि पर गरम करके फेन रहित होने पर उसमें हरड़, बहेड़ा, आंवला, हल्दी, नागरमोथा इन सबको ११·६६ ग्राम लेकर बिजौरा नीबू के रस के साथ पीस कर कल्क बनाकर घृत में मिलाकर एवं ९३३ ग्राम जल मिलाकर मन्दाग्नि से पकायें। जल का भाग जल जाने पर घृत मूर्छित अर्थात् आम-दोष रहित और वीर्यवान् हो जाता ह। इसके पश्चात् जो घृत बनाना हो उसके योगानुसार औषधियों का कल्क एवं क्वाथ जल, स्वरस, दूध, आदि जिन द्रव पदार्थों से पाक करना अभीष्ट हो उनको मिलाकर मन्दाग्नि से तैल पाक विधि से पकायें। पाक सिद्ध होने पर गरम-गरम को ही कपड़े से छानकर साफ बर्तन में भरकर ढक्कन लगाकर रख दें। घृत का परिपाक और पाक सिद्ध होने की परीक्षा आदि सभी बातें तैल पाक विधि के सदृश ही हैं। सिर्फ फर्क इतना है कि तैल पाक सिद्ध होने के समय फेन (झाग) उठते हैं। जबकि घृत में पाक सिद्ध होने के समय फेन (झाग) उठना बन्द होते हैं। घृत प्रायः पीने के काम में ही उपयोग किये जाते हैं। अतः घृत का पाक मृदु अथवा मध्यम ही करना चाहिये।

आसव-अरिष्ट सन्धान कल्पना––औषधियों के स्वरस क्वाथ या जल आदि द्रव पदार्थों में गुड़, चीनी या मधु आदि मीठे द्रव्यों को घोलकर धायफूल, बबूल छाल, बेरी की छाल, महुए के पुष्प आदि आसवन करने के द्रव्यों एवं औषधियों के प्रक्षेप को मिलाकर किसी साफ मटके, इमर्तबान या काठ के पात्र (ढाल) में भरकर एक महीने या पन्द्रह दिन तक (शास्त्रोक्त मर्यादा के अनुसार) संधान कर रखने पर उसमें मद्यसार (अल्कोहल) की मात्रा उत्पन्न हो जाती है। जो कि औषधियों को चिरकाल तक सुरक्षित रखती है एवं औषधि के गुणों को भी बढ़ाती है। औषधि मद्य के व्यवायी विकासी आदि गुणों से संयुक्त होकर रोगी के शरीर में शीघ्र ही प्रभाव करती है। आचार्यों ने इस प्रक्रिया को आसव-अरिष्ट नाम से कहा है। आसव और अरिष्ट इन दोनों की संधान प्रक्रिया प्राय: एक समान ही है। सिर्फ फर्क इतना ही है कि आसव औषधियों एवं जल को बिना पकाये हुए बन जाते हैं और अरिष्ट औषधियों के क्वाथ से बनाये जाते हैं। किन्तु शास्त्रकारों ने सर्वत्र इस नियम का पालन नहीं किया है जैसे द्राक्षासव, लोध्रासव आदि अनेक आसव अरिष्ट विधि से बनाने का उल्लेख है और कनकारिष्ट बबूलारिष्ट, सारिवाद्यारिष्ट, त्रिफलारिष्ट आदि अनेक अरिष्टोंको आसव विधि से बनाने का विधान है। आसव-अरिष्टों का चिकित्सा में बहुत उपयोग होता है, क्योंकि उनके सेवन से रोगी को बड़ी सुविधा रहती है जब कि पंचविधि कषाय कल्पना के स्वरस, क्वाथ, फाण्ट और हिम तथा कल्क आदि को नित्य ताजा बनाकर सेवन करने में प्राय: रोगी कष्ट व असुविधा अनुभव करते हैं। इस विषय में अधिक जानकारी के लिये वैद्यनाथ प्रकाशन के आयुर्वेद सार संग्रह ग्रन्थ के आसव अरिष्ट प्रकरण के प्रारम्भ में दी हुई जानकारी का अवलोकन करें।

शर्बत––औषधि प्रयोग में काम आने वाले प्राय: शर्बत वनस्पतियों के स्वरस, क्वाथ, हिम, अर्क और फलों के रस आदि द्रव पदार्थों में चीनी या मिश्री मिलाकर मन्दाग्नि पर दो तार की चासनी बनाकर तैयार होते हैं। जहाँ द्रव पदार्थ का परिमाण एवं चीनी का परिमाण न लिखा हो वहाँ ४६७ ग्राम द्रव पदार्थ में ९३३ ग्राम चीनी डालकर शर्बत बनाना चाहिये। शर्बत न अधिक पतले

और न अधिक गाढ़े बनाने चाहिये। पतले शर्बत जल्दी खराब हो जाते हैं और गाढ़े शर्बत बोतलों में जम जाते हैं। आजकल शर्बतों की चासनी के गाढ़ेपन (घनता) को मापने का स्पैसिफिक ग्रैविटी हाइड्रोमीटर एक हजार से पन्द्रह सौ रेंज का आता है। किसी लम्बे ग्लास या बर्तन में शर्बत को भरकर उसमें इस हाइड्रोमीटर को खड़ा डालने से जितनी डिग्री तक यह शर्बत में डूब जाये उतनी डिग्री गाढ़ी चासनी समझनी चाहिये। शर्बत की गर्म चासनी १२०० से १२५० डिग्री तक होनी चाहिये और शर्बत ठण्डा होने पर १२५० से १३०० डिग्री तक होनी चाहिये। इससे कम होने पर पतली और ज्यादा डिग्री की होने पर गाढ़ी चासनी समझनी चाहिये। शर्बत बनाते समय ९·३३ किलो चीनी में १० ग्राम के हिसाब से निम्ब का सत्व मिलाने से शर्बत जम नहीं पाता और स्वाद में भी अच्छा बनता है।

अर्क—जो औषधियाँ सुगन्ध वाली होती हैं जैसे सौंफ, अजवायन, चन्दन सफेद, इलायची आदि इनका क्वाथ करने से इनकी गन्ध और तैलीय अंश उड़ जाते हैं, जो कि इनके मुख्य कार्यकारी तत्व होते हैं। अतः इनका हमेशा क्वाथ की बजाय अर्क बनाकर ही प्रयोग करना चाहिये। अर्क में इनकी गन्ध व तैलीय अंश पूर्ण रूप से मौजूद रहते हैं। अतः वे पूर्ण प्रभावकारी होते हैं। अर्क बनाने के लिये १·८७ किलो औषधि द्रव्यों को कठिन हो तो जौकुट करके एवं सौंफ, अजवायन, मकोय, गोरखमुण्डी आदि मुलायम द्रव्य हों तो साबुत ही सायंकाल अर्क निकालने के भवके की डेग में आठ गुने अर्थात् १५ किलो जल में भिगोकर ढककर रखें। प्रातःकाल भवके का ऊपरी भाग उस पर फिट करके कपड़मिट्टी से सन्धिरोध करके भट्टी पर चढ़ाकर मन्दाग्नि देकर इसमें १६ बोतल अर्क खींच लें। खींचते समय भवके के ऊपरी भाग में बने आलवाल (जल भरने का स्थान) में पानी भर देना चाहिये। इस पानी में भाप उठने लगे तभी इस पानी को नाली का कार्क खोलकर बाहर निकाल देना चाहिये और कार्क लगाकर फिर ठण्डा पानी भर देना चाहिये ऐसा आवश्यकतानुसार बार-बार करते रहें। अर्क नाली से जिस पात्र में अर्क निकलकर गिरता रहता है उस पात्र के भी चारों तरफ ठण्डा जल भरा रहे तो अर्क बहुत अच्छा बनता

है। अर्क बिलकुल ठण्डा हो जाने पर चार तह के साफ कपड़े से या फिल्टर बैग से साफ पात्र में छानकर साफ करके सुखायी हुई बोतलों में भरकर अच्छी तरह कसकर मजबूत कार्क लगा देना चाहिये या पी० पी० केप्स लगाकर सीलिंग करके रख लें। अर्कों के भरने की बोतलों में कच्चे पानी की बूंदें रहने से व कार्क ढीले लगाने पर उनमें वायु प्रवेश करके अर्कों में जाले पड़कर खराब हो जाते हैं। अतः इस विषय में पूरी सावधानी रखने की आवश्यकता है। १ लीटर अर्क में ३ मि० लि० सल्फ्युरिक एसिड मिलाकर बोतलों में भरने से जाला नहीं पड़ता है।

क्षार-निर्माण विधि––जिस किसी भी वनस्पति का क्षार बनाना हो उसके पंचाग को सुखाकर साफ जगह में जलाकर राख करलें, ठण्डी हो जाने पर राख को समेटकर तौलकर मिट्टी के घड़े या कलईदार बर्तन में रखकर राख के वजन से छः गुना जल डालकर हाथ से मिलाकर पात्र को ढककर रख दें, एक-दो दिन में जब राख बर्तन के पैंदे में बैठकर पानी एकदम स्वच्छ हो जाये तब धीरे से पानी को नितार कर चार तह के कपड़े से दो-तीन बार छानकर मिट्टी की नाँद या कलईदार बर्तन में रखकर अग्नि पर पकायें। पकते-पकते जब रबडी जैसा गाढ़ा हो जाय तब उतारकर धूप में रखकर सुखाकर काँच या चीनी मिट्टी के जार में रखलें।

घनसत्व बनाने की विधि—जिस चीज का घनसत्व बनाना हो वह ताजी मिल सके तो ताजी ही लेकर जल से धोकर छोटे-छोटे टुकड़े करके लकड़ी के ऊखल में या इमामदस्ता में जौकुट करके साफ बर्तन में अठगुने जल में अग्नि पर पकायें। चतुर्थांश जल शेष रहने पर कपड़े से छानकर क्वाथ शेष जल को साफ बर्तन में डालकर मन्द-मन्द अग्नि पर पकायें। पकते-पकते मधु जैसा गाढ़ा हो जाय तब उतार लें। ठण्डा हो जाने पर घी चुपड़े हुए साफ पात्र में रखलें। सूखे द्रव्यों का घनसत्व बनाना हो तो उनको कूटकर सोलह गुने जल में सायंकाल भिगोकर प्रातः क्वाथ करके अष्टमांश क्वाथ जल शेष रखकर कपड़े से छानकर घनसत्व बनाना चाहिये। छोटे वनस्पति क्षुपों के पंचांग का, बड़े वृक्षों की अन्तछाल का, खदिर और विजयसार के अन्तःकाष्ठ भाग का, उदुम्बर की पत्तियों का,

अदरख, हल्दी, कुटकी इनके मूल के गाँठ भाग का, गिलोय और मुलैठी लता के टुकड़ों का घनसत्व बनाना चाहिये।

शुष्क सत्व--इस प्रक्रिया में औषधि का बिना क्वाथ किये ही सत्व बनाये जाते हैं। इनमें गिलोय सत्व मुख्य है। उसी की निर्माण विधि यहाँ दी जा रही है। ताजा हरी गिलोय लाकर उसमें से अंगूठे जैसी मोटी एवं इससे अधिक मोटी भी जो हो उसे लेकर जल सें धोकर दो-दो इंच के टुकड़े कर लकड़ी के ऊखल में कूटकर साफ कलईदार बड़े पात्र में रखें। फिर इसमें अन्दाज से चौगुना पानी कुटी गिलोय को हाथों से मसल-मसल कर पानी में मिला दें। ताकि गिलोथ के रेशों में जमा हुआ सत्व पानी में अच्छी तरह धुल जाय। पश्चात् इस जल को कपड़े से अन्य साफ कलईदार पात्र में छानकर एक दिन-रात बिना हिलाये डुलाये पड़ा रहने दें, ताकि सत्व पात्र के पैंदे में इकट्ठा होकर तह रूप में जम जाये। पश्चात् दूसरे दिन धीरे-धीरे पात्र से जल को नितार कर निकाल दें और पात्र के पैंदे में जमे हुए गिलोयसत्व को धूप में सुखाकर रखलें। यह सत्व कुछ मटमैले रंग का होता है। इसी प्रकार अदरख और हल्दी की तांजा गाँठों से व कुडा की ताजी छाल आदि औषधियों से भी शुष्क सत्व बनाये जा सकते हैं।

तुलनात्मक मान

आयुर्वेद शास्त्र में मागधमान को श्रेष्ठ माना गया है परन्तु उसके बाँट उपलब्ध न होने के कारण प्रायः वैद्य अंग्रेजी राज्य में प्रचलित बाँटों का ही व्यवहार करते रहे हैं। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से हमारी राष्ट्रीय सरकार ने अंग्रेजी बाँटों का प्रचलन भी कानूनन बन्द कर दिया है और उनकी जगह पर मेट्रिक (दाशमिक) प्रणाली चालू की है। आजकल यही सर्वत्र राज्यानुमोदित एवं प्रचलित है अतः व्यवहार में सुविधा के लिये इसका तुलनात्मक विवरण नीचे दिया गया है--

घनपदार्थ का तुलनात्मक मान (दाशमिक)

१ रत्ती	=	१२१.५० मिलि ग्राम
२ रत्ती	=	२४३— ,, ,,

८ रत्ती	=	१ माशा	=	९७२ मि. ग्रा. (१ ग्राम लगभग)
२ माशा	=			(२ ग्राम लगभग)
६ माशा	=	१/२ तोला	=	५.८३ ग्राम (६ ग्राम लगभग)
१ तोला	=	१८० ग्रेन	=	११.६६ ग्राम
२ तोला	=			२३.२ ग्राम
२½ तोला	=			२९ ग्राम
५ तोला	=	१ छटांक	=	५८.३२ ग्राम
१० तोला	=	२ छटांक	=	११६.६४ ग्राम
४ छटांक	=	१ पाव	=	२३३ ग्राम
८ छटांक	=	२ पाव	=	१/२ सेर = ४६७ ग्राम
१२ छटांक	=	३ पाव	=	३/४ सेर = ७०० ग्राम
१ सेर	=			९३३ ग्राम
२ सेर	=			१.८७ कि. ग्रा.
४ सेर	=			३.७३ कि. ग्रा.
६ सेर	=			५.६ कि. ग्रा.
१० सेर	=			९.३३ कि. ग्रा.
४० सेर	=	१ मन	=	३७ कि. ग्रा.

तरल पदार्थ का तुलनात्मक मान (दाशमिक)

१ तरल ड्राम	=			३. ५ मि. लिटर
२ तरल ड्राम	=	१/४ औंस	=	७ मि. लि.
४ तरल ड्राम	=	१/२ औंस	=	१४ मि. लि.
८ तरल ड्राम	=	१ औंस	=	२८ मि. लि.

लंबाई नापने का तुलनात्मक मान (दाशमिक)

१ इंच	=	२·५ सेंटीमीटर	=	२५ मिलिमीटर

द्रव्यों की द्रव,, आर्द्र और शुष्कावस्था के अनुसार मान तौल ग्रहण निर्देश— मिलि लिटर तथा मिलि ग्राम से लेकर किलो ग्राम मान तक जहाँ उल्लेख हो वहां द्रव, आर्द्र तथा शुष्क इन तीनों प्रकार के पदार्थों को योग में लिखे अनुसार

वजन में ही लेना चाहिये अर्थात् द्रव और आर्द्र को द्विगुण नहीं लेना चाहिये। किन्हीं द्रव्यों का मान प्रस्थ में लिखा हो तो शुष्क पदार्थों को तो लिखे हुए वजन के अनुसार ही लें परन्तु द्रव और आर्द्र (गीले) पदार्थों को दुगुने वजन में लेना चाहिये। किसी योग में द्रव्यों का वजन तुला परिमाण में लेना लिखा हो तो वहां द्रव, आर्द्र और शुष्क इन तीनों प्रकार के द्रव्यों को एक जैसे परिमाण में ही लेना चाहिए। द्रव और आर्द्र को द्विगुण नहीं लेना चाहिए।

वासा (अडूसा), नीम, पटोलपत्र, केवड़ा, खरेंटी, कुष्माण्ड (कुमड़ा), शतावरी, पुनर्नवा, कुड़ा की छाल, असगन्ध, गन्धप्रसारणी, नागवला, पिया वांसा, गुग्गुलु, हींग, हरड़, इन्द्रायनमूल, सौंफ, बिदारीकन्द, अदरख, इन द्रव्यों को सदा ताजा (आर्द्र) ही प्रयोग में लेना चाहिये एवं योग में लिखे परिमाण में ही लें। इनका परिमाण द्विगुण नहीं लेना चाहिये। इसके अलावा सभी औषधियाँ सब कार्यों में नवीन तथा सूखी ही प्रयोग में लेनी चाहिये। यदि कोई औषधि सूखी न मिले और उसके स्थान में गीली (आर्द्र) प्रयोग में लेनी पड़े तो वजन में दुगुनी लेनी चाहिये परन्तु वायविडंग, पिप्पली (पीपल), गुड़, धनियां, मधु, घृत ये द्रव्य एक वर्ष या इससे अधिक पुराने ही प्रयोग में लेना चाहिये।

औषधि द्रव्यों के ग्रहण करने में उपयोगी बातें--

औषधियों के उत्पत्ति स्थान--विन्ध्याचल पर्वत आग्नेय गुणयुक्त है, अतः इस पर उत्पन्न होने वाली औषधियां आग्नेय गुण युक्त होती हैं। हिमालय पर्वत सौम्य (शीतल) गुण युक्त है, अतः इस पर उत्पन्न होने वाली औषधियां सौम्य होती हैं। इसके अलावा अन्य पर्वतों, वनों एवं उपवनों में उत्पन्न हुई औषधियों के विषयों में भी उनके उत्पत्ति स्थान के गुणानुसार आग्नेय, सौम्य और समशीतोष्ण गुण की कल्पना करते हुए उन्हें ग्रहण कर प्रयोग करना चाहिये।

वर्जित स्थान--जिस भूमि में वल्मीक (सांप आदि के बिल) हों, जो भूमि खराब हो अर्थात् जिसमें मल-मूत्र विसर्जन एवं कूड़ा-कर्कट फेंकते हों, आनूप अर्थात् जलार्द्र भूमि, श्मशान भूमि, ऊसर भूमि, मार्ग की भूमि, जीवजन्तु, कीड़े-मकोड़ों से युक्त भूमि, अग्नि से दग्ध भूमि, बरफ से आच्छादित भूमि इन स्थानों में उत्पन्न हुई औषधियों को नहीं ग्रहण करना चाहिये।

औषधियों के ग्राह्य भाग--जिन औषधियों की मूल (जड़ें) मोटी हों और अन्दर काष्ठ भाग हो तो उनकी जड़ के छिलके लेने चाहिये। जिनकी जड़ें पतली हों उनको पूरी (समग्र) लें। बड़ आदि बड़े वृक्षों की छाल और बीजक तथा खदिर का काष्ठ सार (भीतर की लकड़ी) तथा तालिश आदि के पत्र एवं त्रिफला आदि के फल लेना चाहिये। चित्रक की जड़, सूरन, विदारीकन्द आदि का कन्द, नीम और अडूसे की पत्ती, घातकी के फूल, कण्टकारी का सम्पूर्ण भाग, क्षीर (दूध) वाले वृक्षों की छाल लेनी चाहिये। सर्जरस (साल) आदि का गोंद लेवें। अखरोट आदि की मज्जा (गिरी), स्नुही आदि का क्षीर लेवें, नीम के पत्ते न मिलने पर नीम की छाल लेवें। बेल का कच्चा फल और अमलतास का पका फल लेवें। जहां औषधि के किसी भाग का उल्लेख न हो वहां उसकी जड़ लेवें। किसी योग में औषधियों का वजन नहीं लिखा हो वहाँ सब औषधियों को समान भाग में लेवें। जहाँ एक औषधि बनाने में किसी धातु विशेष के बने पात्र का उल्लेख न हो वहां मिट्टी का बर्तन लेवें। जहां औषधि प्रयोग में किसी समय का उल्लेख न हो वहां प्रातःकाल लेना चाहिये। जहां किसी द्रव विशेष का उल्लेख न हो वहां पानी लेवें। किसी तैल विशेष का उल्लेख न होने पर तिल का तैल लेवें। किसी औषध योग में अथवा अनुपानादि में सिर्फ घृत, दूध, मूत्र, गोबर शब्द ही लिखा हो तो वहां ये चीजें गाय से उत्पन्न हुई लेवें। रक्त, रोम और नख आदि प्राणिज द्रव्यों को युवा प्राणियों के ही ग्रहण करें। दूध, मूत्र एवं मल को ग्रहण करना हो तो प्राणी के आहार-पचन हो जाने के बाद का ही लेवें। किसी योग में एक ही औषधि का नाम दो बार लिखा हो तो उसे दुगुने परिमाण में लेवें। चूर्ण, घृत, तैल, आसवारिष्ट, अवलेह के योगों में चन्दन शब्द से सफेद चन्दन लेवें एवं लेपों में चन्दन शब्द से लाल चन्दन को लेवें। जहाँ सिर्फ लवण शब्द ही लिखा हो वहां सैन्धव लवण लेवें। शरीर के अन्दर प्रयोग अर्थात् खाने-पीने के योगों में जहां अजमोद लिखा हो वहां अजवायन लेवें तथा जहां शरीर के बाहरी भाग में प्रयोग के योगों में अजवायन लिखी हो वहां अजमोद लेना चाहिये।

योग (नुस्खे) की कोई दवा यदि न मिल सके तो उसके स्थान पर उसके समान गुण वाली दूसरी दवा डालकर भी काम चला लें। किन्तु यह बात गौण

दवाओं के विषय में है, मुख्य दवा तो वही डालनी चाहिए। यदि किसी योग (नुस्खे) में कोई दवा रोगी के अनुकूल न पड़े तो उसकी बजाय दूसरी अनुकूल दवा बदलकर प्रयोग करना चाहिये।

औषधि संग्रह करने का समय—समस्त रोगों में प्रयोग के लिये शरदृऋतु में रसादि से युक्त औषधियों को संग्रह करें तथा वमन और विरेचन में काम आने वाली औषधियों को वसन्त ऋतु में संग्रह करें।

औषधियों का गुणहीन होने का समय--वनौषधियां जिस रूप में संग्रह की गयी हों उसी रूप में बने रहने पर भी वे एक वर्ष में गुणहीन हो जाती हैं। किन्तु यह बात पुराने समय की है। आजकल सीमेन्ट, कंक्रीट के बने गोदामों में बोरों के अन्दर प्लास्टिक की बड़ी थैलियों में बनस्पतियों को भरकर उनके मुंह को सीलिंग कर रखने से उनमें बाहरी हवा का प्रवेश नहीं हो पाता फलत: वे अधिक समय तक सुरक्षित एवं गुणकारी बनी रहती हैं। औषधियों के चूर्ण दो महीने बाद, गुटिका और अवलेह एक वर्ष बाद, घृत और तैल के योग सोलह महीने बाद गुणहीन हो जाते हैं। किन्तु यह बात भी तब की है जब औषधियों के रखने, पैक करने के अच्छे साधन सुलभ नहीं थे। आजकल कांच व प्लास्टिक आदि के रखने व एयर टाइट पेकिंग व पिलफर प्रूफ सीलिंग के उत्तम साधनों का उपयोग होने से औषधियां पर्याप्त समय तक सुरक्षित एवं गुणयुक्त बनी रहती हैं। अत: औषधि का उपयोग करते समय देख लें कि वह अपने स्वाभाविक स्वरूप, वर्ण, एवं गन्ध तथा सार से युक्त हैं, वह उपयुक्त है अन्यथा गुणहीन हुई समझें। आसव-अरिष्ट, धातु, व उपधातु, भस्में, रस-रसायन अर्थात् पारद मिश्रित औषधि योग, कूपी-पक्व रसायन ये जितने पुराने होते हैं उतने ही अधिक गुणकारी होते हैं।

सांकेतिक परिभाषा

दीपन--जो द्रव्य जठराग्नि को प्रदीप्त करे किन्तु आम का पाचन नहीं करे उसे दीपन कहते हैं, जैसे-सौंफ।

पाचन--जो द्रव्य आम का पाचन करे किन्तु जठराग्नि का दीपन नहीं करे उसे पाचन कहते हैं, जैसे--नागकेशर।

अनुलोमन--जो द्रव्य अपक्व मल को पकाकर अधोमार्ग द्वारा देह से बाहर निकाले उसे अनुलोमन कहते हैं। जैसे--हरड़।

विरेचन--जो द्रव्य पक्व अथवा अपक्व मल को पतला बनाकर गुदा द्वारा बाहर निकाल दे उसे विरेचन कहते हैं। यथा--त्रिफला, दन्ती, इन्द्रायनमूल।

वामक--जो द्रव्य कच्चे ही पित्त, कफ एवं अन्नादि को बलपूर्वक मुख से बाहर फेंक दे उसे वामक कहते हैं। जैसे--मैनफल।

ग्राही--जो द्रव्य दीपन एवं पाचन हैं एवं अपने गुणों के कारण शरीर में रहने वाले जलीयांश को सुखा देते हैं उसे ग्राही कहते हैं। यथा--सोंठ, जीरा, गज पीपल आदि।

स्तम्भन--जो द्रव्य रूक्ष, शीतल, कषाय और पाक में लघुगुण होने से वातवर्द्धक तथा स्तम्भन गुण वाले हों उसे स्तम्भन कहते हैं। यथा--इन्द्रजो, श्योनाक।

रसायन-- जो द्रव्य वृद्धावस्था और व्याधियों के आक्रमण से शरीर की रक्षा करे उसे रसायन कहते हैं। यथा--गिलोय गुग्गुलु, आंवला, हरड़ आदि।

वाजीकरण--जिन द्रव्यों के सेवन से पुरुष की काम शक्ति की वृद्धि हो उन्हें वाजीकरण कहते हैं। यथा--नागबला, कौंच के बीज, असगन्ध आदि।

विष--जो द्रव्य व्यवायी, विकासी, कफनाशक, मदकारक, आग्नेय-गुण-विशिष्ट, प्राणनाशक और योगवाही हो उसे विष कहते हैं यथा--वच्छनाग, संखिया, अफीम आदि।

योगवाही--जो द्रव्य पच्यमान अवस्था में सांसर्गिक द्रव्य के गुण को ग्रहण कर तदनुसार कार्य करें उसे योगवाही कहते हैं। यथा--शहद, घी, जल, तेल, पारद, लोह आदि।

शीतल--जो द्रव्य स्तम्भन, ठण्डा तथा सुखप्रद हो और प्यास, मूर्छा, दाह तथा स्वेद का शमन करे उसे शीतल कहते हैं।

उष्ण--शीतल गुण के विपरीत अर्थात् प्यास, दाह, मूर्च्छा को उत्पन्न करने वाला एवं स्वेदजनक हो उसे उष्ण कहते हैं।

स्निग्ध--जो द्रव्य स्नेह(चिकनाई)और कोमलता उत्पन्न करे तथा बल वर्ण की वृद्धि करे, उसे स्निग्ध कहते हैं।

त्रिकटु—सोंठ, पीपल और काली मिर्च समान भाग मिली हुई को त्रिकटु कहते हैं।

त्रिफला—हरड़, बहेड़ा, आंवला को समभाग मिलाने पर उसे त्रिफला कहते हैं।

चातुर्जात--तेजपत्ता, दालचीनी, इलायची, नागकेशर समभाग में मिलाने पर चातुर्जात कहते हैं।

पंचलवण—सैन्धवनमक, काला नमक, विड्नमक, संचरनमक, साम्भर नमक को पंचलवण कहते हैं।

कज्जली--पारद और गन्धक को एक साथ मिलाकर खरल में घोंटकर आँख में लगाने के काजल जैसा महीन काले रंग का चमक रहित जो द्रव्य बनता है उसे कज्जली कहते हैं।

पिष्टी—किसी भी द्रव्य को चूर्ण करके खरल में डालकर गुलावजल या चन्दनादि अर्क के साथ घोंटकर अत्यन्त सूक्ष्म हो जाने पर सुखाकर रख लें। इसे पिष्टी कहते हैं।

भावना—किसी औषधि में किसी वनस्पति या क्वाथ की भावना देनी हो तो स्वरस या क्वाथ इतना मिलाया जाय जिससे कि उस औषधि का चूर्ण अच्छी तरह गीला हो जाय। अधिक संख्या में भावना देनी हो तो एक भावना में मिलाया हुआ स्वरस सूख जाने पर दूसरी भावना दें। एवं आगे भी इसी प्रकार से दें।

औषधियों के रोगानुसार अनुपान

दवा जिस चीज के साथ खायी जाती है उसे अनुपान कहते हैं। जो रोग हो उसको नष्ट करने वाले अनुपान के साथ सेवन करने से औषधि की शक्ति बढ़ जाती है। जहाँ किसी औषधि का अनुपान न लिखा हो वहां निम्नलिखित रोगानुसार अनुपान के साथ सेवन किया जा सकता है--

सामान्य ज्वर में--अदरख का रस, तुसली के पत्तों का रस, शहद, तुलसी के पत्तों का फाण्ट, गरम जल आदि।

वात ज्वर में--शहद, गिलोय का रस, दशमूल क्वाथ, चिरायता का हिम कषाय, लौंग का पानी आदि।

पित्त ज्वर में--पटोलपत्र का रस, पित्त पापड़ा का स्वरस या क्वाथ, ह्रीबेरादिक्वाथ, मुस्तादि क्वाथ।

कफ ज्वर में--पान का रस, अदरख का रस, तुलसी के पत्तों का रस, शहद।

सन्निपात ज्वर में--अदरख का रस, तुलसी पत्र रस, सहिंजने की छाल का रस या काढ़ा, एरण्डमूल क्वाथ, दशमूल क्वाथ, तगरादि क्वाथ, शहद।

विषम ज्वर में—पिप्पली चूर्ण और मधु, हारसिंगार के पत्तों का रस, बिल्वपत्र रस, गरम जल।

जीर्ण ज्वर में--मधु, पिप्पली चूर्ण, सितोपलादि चूर्ण, भुने जीरे का चूर्ण और गुड़, गिलोय सत्व, महासुदर्शन चूर्ण का फाण्ट, महासुदर्शन अर्क, धारोष्ण दूध, गरम करके ठण्डा किया हुआ दूध, मक्खन और मिश्री आदि।

अतिसार और संग्रहणी में--छाछ, तण्डुलोदक (चावल का धोवन), कुड़े की छाल का काढा, धान्य पंचक क्वाथ, बेलगिरी का क्वाथ, भुने जीरे का चूर्ण।

प्रवाहिका (पेचिस) व रक्तातिसार में--छाछ, वत्सकादि क्वाथ, कुड़े की छाल का क्वाथ, बेल का मुरब्बा, ईसबगोल बीज का हिम कषाय या लुआब, सौंफ का चूर्ण या सौंफ का अर्क, कुटजावलेह।

खूनी बवासीर में--नागकेसर असली का चूर्ण, काले तिल का कल्क मक्खन और मिश्री मिलाकर, आंवले का मुरब्बा, आयापान का रस, गेंदा (गुल हजारा) के पत्तों का रस।

रक्त पित्त में--अडूसे के पत्तों का रस, दूब का रस, अनार के पत्तों का रस, गुड़हल के पत्तों का रस, आंवले का रस, कुष्माण्ड रस, धनियां का हिम, आंवला मुरब्बा, गुलकन्द।

अग्निमान्द्य में--अदरख का रस, निम्बुरस, खट्टे अनार का रस,अजवायन का अर्क, शहद ।

अजीर्ण और पेट दर्द में—गरम पानी, कांजी, भूनी हींग का चूर्ण और सेंधा नमक मिली छाछ, जामुन का सिरका, पोदीना की पत्ती का रस या अर्क-पोदीना की दस बूंद मिला जल, महाशंखद्राव की सात बूंद मिला जल, अजवायन अर्क ।

विसूचिका में--प्याज का रस, अदरख का रस, लाल मिर्च का पानी, पोदीना की पत्ती का रस, अर्क पोदीना या अर्क कपूर दस बूंद मिला जल।

भस्मक--(बहुत अधिक भूख लगना) में--पके केले का गूदा ५८·३२ ग्राम, घी, अपामार्ग के बीजों की खीर, भैंस का दूध ।

कृमिरोग--(पेट के कीड़े) **में**--वायविडंग का चूर्ण, पलाशपापड़ा चूर्ण, निर्गुण्डी रस, अनार की जड़ का क्वाथ, अनन्नास के पत्तों का रस ।

पाण्डु व कामला में--त्रिफला चूर्ण, कुटकी चूर्ण, मधु, मिश्री, आंवलारस, गन्ने का रस, मौसम्मी का रस, गोमूत्र, त्रिफला क्वाथ, वेदाना, अनार का रस, आंवला मुरब्बा।

क्षय (यक्ष्मा) में--मक्खन, मिश्री, शहद, अडूसे के पत्ते का रस, छोटी कटेरी का रस, तुलसी के पत्तों का रस, पान का रस, गिलोयसत्व, चौंसठ प्रहरी पीपल, सितोपलादि चूर्ण, मुलैठी घन सत्व, शर्बत उन्नाव, शर्बत गुलवनफसा, च्यवनप्राश ।

कफ वाली खांसी व दमा में--अदरख का रस, पान का रस, छोटी कटेरी का रस, शहद, छोटी पीपल का चूर्ण, काकड़ासींगी चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण ।

सूखी खांसी--अडूसे के पत्तों का रस, शहद, मिश्री, मलाई, कण्टकार्यवलेह, वासावलेह, अपामार्गक्षार, मुलैठी घनसत्व ।

कुकर कास (काली खांसी) में--केले का गूदा, मलाई, खोवा, लहशुन कल्क, घी, मिश्री, वासावलेह आदि ।

हिचकी रोग में--मोर पंख की भस्म, पिप्पली चूर्ण, बेर की गुठलियों की मिगी, छोटी इलायची बीज चूर्ण, शहद ।

दमा व श्वास में——अदरख रस, पके पान का रस, तुलसी का रस, शहद, अड़ूसे का रस, कटेरी का रस, भारंगीमूल क्वाथ, कूठ चूर्ण, काकड़ासिंगी चूर्ण, तालिसादि चूर्ण, भार्गी गुड़, अगस्त्य हरीतक्यवलेह, च्यवनप्राश, द्राक्षारिष्ट, मृतसंजीवनीसुरा।

अरुचि में——अदरख रस, बिजौरा निम्बू रस, खट्टे अनार का रस, दाड़िमाष्टक चूर्ण, यवानीखाण्डव चूर्ण।

स्वर भेद में——मुलैठी व दाखों का काढ़ा, तुलसी के पत्ते व काली मिर्च का काढ़ा मिश्री मिलाकर, कुलिजन का काढ़ा, कुलिजन व मिश्री का चूर्ण।

वमन में——पीपल वृक्ष के छिलकों के अंगारों का बुझा हुआ पानी, बड़ी इलायची का चूर्ण या काढ़ा।

भ्रम (चक्कर आने में)——ब्राह्मी का रस, शंखपुष्पी रस, आंवले का मुरब्बा, गुलकन्द, बेदाना, अनार का रस, ब्राह्मी शर्बत, चन्द्रावलेह।

दाह (जलन) में——दाड़िमावलेह, आंवले का मुरब्बा, गुलकन्द, अनार शर्बत, मौसम्मी रस, बेदाना, अनार का रस, दूध की लस्सी, निम्बू की सिकंजी, धनियाँ का हिम, सफेद चन्दन घिसकर मिलाया हुआ जल, खस डाला हुआ मिट्टी के घड़े का ठण्डा पानी।

अपस्मार व उन्माद में——ब्राह्मी रस, शंखपुष्पीरस, ब्राह्मी अर्क, मांस्यादि क्वाथ, महाचेतस घृत, चन्द्रावलेह, पुराना घी।

वात रोगों में——रास्नासप्तक क्वाथ, महारास्नादि क्वाथ, दशमूल क्वाथ, एरन्ड तैल, घी।

मूत्रकृच्छ्र या मूत्राघात में——गोक्षुरादि क्वाथ, बरुणछाल का काढ़ा, पंच-तृणमूल क्वाथ।

प्रमेह——हल्दी स्वरस, त्रिफला क्वाथ, सारिवादि हिम, शहद।

बहुमूत्र में——पका केला, जामुन की छाल का काढ़ा, पुराना शहद, दूध, घी।

मधुमेह में——बेलपत्र का रस, जामुन की छाल का काढ़ा, जामुन की मिंगी का चूर्ण।

शोथ में--पुनर्नवा रस, पुनर्नवाष्टक क्वाथ, गोमूत्र, सूखी मूली का काढ़ा, मकोय का रस या अर्क मकोय।

गुल्म-उदर-तिल्ली.यकृत् आदि में—गोमूत्र, त्रिफला क्वाथ, पुनर्नवादि क्वाथ, विडंगासव, कुमारी आसव, लोहासव।

गलगण्ड, ग्रन्थि, अर्बुद, विद्रधि आदि में—त्रिफला क्वाथ, कांचनार की छाल का काढ़ा, विडंगासव।

उष्णवात (सुजाक) में--गिलोय का रस, हल्दी का रस, सेमल की छाल का क्वाथ, दारुहल्दी क्वाथ, चन्दनादि अर्क, दूध की लस्सी।

उपदंश (आतशक) में--चोपचीनी का काढ़ा, दूध, घी, मिश्री, अर्कउस्वा, जल।

विसर्प व कुष्ठ में--नीम की अन्तर्छाल का काढ़ा, महामंजिष्ठादि क्वाथ, महामंजिष्ठादि अर्क, गिलोय का रस, खदिरकाष्ठसार का काढ़ा, पंचतिक्तघृत, वाकुची चूर्ण, खदिरारिष्ट।

शीत पित्त में--नीम के पत्तों का रस, हल्दी का चूर्ण, मिश्री, घी, सारिवाद्यरिष्ट।

अम्लपित्त में--बेदाना अनार का रस, कुम्हड़े का रस, आंवले का रस, आंवला मुरब्बा, डाभ (कच्चा नारियल) का पानी, दाड़िमावलेह, मौसम्मी का रस।

नेत्र रोग में--त्रिफला क्वाथ, महात्रिफलाघृत, घी, मिश्री, गुड़।

सिर दर्द में--पथ्यादि क्वाथ, गुड़, घी, मिश्री, गरम दूध।

रक्त प्रदर में--लाल चौलाई का रस, अशोक छाल का काढ़ा, अशोक घनसत्व, दारुहल्दी का काढ़ा, अडूसा पत्र रस, चावलों का धोवन, अशोकारिष्ट, अशोकघृत, गाय या बकरी का धारोष्ण दूध।

श्वेत प्रदर में--त्रिफला क्वाथ, पका केला, राल चूर्ण, सफेद जीरे का चूर्ण या काढ़ा, सारिवाद्यरिष्ट।

हृद्रोग में--अर्जुन की छाल का रस या काढ़ा, अर्जुन की छाल के साथ पका हुआ दूध, अर्जुनघृत, अर्जुनारिष्ट, खमीरा गाजवान।

नोट—रोग और रोगी की स्थिति पर विचार करते हुए अनुपान का निश्चय करना चाहिए। क्वाथ और फाण्ट तथा हिम की मात्रा २९ ग्राम से ५८.३२ ग्रा. तक। वनस्पतियों के रस (स्वरस) की ११.६६ ग्रा. से २३.२ ग्रा. तक। घी, मक्खन, मधु (शहद), मलाई, अवलेह, जितने में औषधि की मात्रा (खुराक) अच्छी तरह मिलाकर चाटी जा सके। कांजी, तक्र, दूध आदि ५८.३२ ग्राम से ११६.६४ ग्रा. तक और आसव अरिष्ट २३.२ ग्रा. से ४६.४ ग्रा. तक अनुपान में लेना चाहिये। औषधि चूर्ण अनुपान में हो तो १ से ३ ग्राम तक लेकर शहद में मिलाकर चाटना चाहिए अथवा दवा खाकर आवश्यकतानुसार जल पी लेना चाहिये।

परिशिष्ट

गोदन्तीमिश्रण

(पृष्ठ २३५ पर)

गोदन्तीभस्म ८ भाग, जहरमोहरापिष्टी २ भाग, रसादिवटी २ भाग, ये तीनों द्रव्य एक साथ खरल में मर्दन कर रख लें। इसे १ माशे की मात्रा में ठण्डे जल, लाजमण्ड या ज्वरनाशक क्वाथ के साथ देते हैं।

यह मिश्रण ज्वर के वेग काल में उसे कम करने के लिए दिया जाता है। इससे सन्ताप (टैम्परेचर) घट जाता है। आजकल ज्वर का जोर घटाने के लिए जहाँ पैरासीटामोल डाक्टर लोग प्रयोग में लाते हैं, वहाँ यह मिश्रण भी अच्छा काम करता है। ज्वर की तेजी में दाह, तृषा, वमन, शिरःशूल आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें भी यह मिश्रण दूर करता है। विषमज्वर में भी इसे वेगकाल में दे सकते हैं।

इस मिश्रण में गोदन्ती की भस्म गोदन्ती के सूक्ष्म टुकड़ों को घृत कुमारी स्वरस के साथ मिला दो शरावों के सम्पुट में रख फूंकने और बाद में सफेद भस्म हो जाने पर उसे खरल में घोंट चन्दनादि अर्क (चन्दनसफेदा), गुलाब के फूल, केवड़ा, बेदमुश्क और कमल के फूल समभाग में ८ गुना जल डाल भपके में आधा खींचा हुआ अर्क की १ भावना दे रख लें।

जहरमोहरा का पत्थर बाजार में मिलता है। इसे पहले कूट कपड़छान कर लेते हैं, फिर खरल में डाल पूर्वोक्त चन्दनादि अर्क या गुलाबजल में मर्दन कर छाया में सुखा रख लेते हैं।

रसादिवटी का वर्णन आगे पृष्ठ २३९ पर दिया गया है।

मलेरियासंहार (फार्मेसी)

(पृष्ठ २४५ पर)

कल्पनाथ (कालमेघ) सत्त्व १, सप्तपर्णत्वकसत्त्व १, कुटकीसत्त्व १, कुचलात्वक्सत्त्व १, शुद्ध करंज वीज चूर्ण ४ तथा रक्तस्फटिका ४ भाग ले एक साथ जल के साथ घोंट ३६३ मि. ग्रा. की गोलियाँ बना लें। ये ६ गोली ज्वर का वेग आरम्भ होने के पहले २-२ की मात्रा में २-३ वार में ताजे पानी या दूध के साथ देते हैं। कभी-कभी तो एक ही गोली मलेरिया का जाड़ा रोक देती है। यह दवा यकृत् को सहायता देकर रक्तकणों को नष्ट होने से बचाती है। पुराने मलेरिया के साथ यकृत् शूल होने पर भी लाभ करती है। गोवर्धन क्षेत्र में बाढ़ आ जाने पर बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की ओर से इसका खूब वितरण किया गया था और लाभ भी सन्तोषजनक हुआ था।

मलेरियासंहार कुनैन की तरह मलेरिया नाशक महौषधि है। इससे ज्वर नष्ट हो जाता है। साथ ही कुनैन जैसे उपद्रव कानों से सुनाई न देना, आंखों से न दीखना, वाल झड़ जाना आदि नहीं होते। आधी गोली दूध के साथ देने से ज्वर (मोतीझरा और ज्वरातीसार को छोड़) के बाद की निर्बलता दूर करती है। मलेरिया के मौसम में यदि एक गोली प्रतिदिन इसका सेवन किया जाय तो मलेरिया होने का भय नहीं रहता। यह रिसर्च के द्वारा आविष्कृत योग है। अगर रेचक औषध देकर इसे दिया जाय तो पहले दिन ही ज्वर रुक जाता है। इसके सेवन काल में पथ्य में दूध, साबूदाना तथा यवयूष (बार्लीवाटर) दे सकते हैं।

(पृष्ठ २४६ पर)

सुदर्शनमिश्रण

सुदर्शन चूर्ण ११७ ग्राम, शुद्ध सज्जी खार या सोडाबाईकार्ब २३·२ ग्राम, कुचला चूर्ण ११·६६ ग्राम, लाल फिटकरी का फूला १७·४६ ग्राम सबको पीस कर रख लें। इसकी ३ ग्राम की मात्रा जल के साथ दी जाती है। मलेरिया ज्वर या शीतपूर्वी ज्वर में यह अच्छा कार्य करता है।

(पृष्ठ २७२ पर नीचे लगाओ)

(१२) सिद्धयोगसंग्रह का **बिल्वादिचूर्ण** न केवल अतीसार में ही लाभकारी सिद्ध हुआ है अपितु प्रवाहिका और ग्रहणीरोग की भी उत्तम दवा है। इसका योग इस प्रकार है:—कच्चे बेलफल की गिरी १, मोचरस १, जल में धो सुखाई भांग १, धाय के फूल १, धनियाँ २ तथा सौंफ ४ भाग ले लें। पहले बेलगिरी और मोचरस के सरौंतें से छोटे-छोटे टुकड़े कर लें फिर सब दवाइओं को एक छोटी कड़ाही में डाल मन्द-मन्द तब तक सेंकते रहें जब तक सोंफ की भीनी सुगन्ध न आने लग जाय फिर उतार लें। ठण्डा होने पर कूट कपड़छान कर बोतल में रख लें। इसे १ से ३ ग्राम मात्रा में ठंडे जल से या अनार के रस से अथवा छाछ के साथ दें। इसे दिन-रात में ३-३, ४-४ घन्टे के अन्तर से ४-५ बार तक दे सकते हैं। यह चूर्ण दीपन, पाचन और दस्त बाँधने वाला है। अतिसार में अकेले-अकेले या रसपर्पटी के साथ आरम्भ से लेकर किसी भी अवस्था में इसे दे सकते हैं। प्रवाहिका या आँव खून के दस्तों में इस चूर्ण में घी या एरण्डतेल चुपड़, सेकी हुयी छोटी काली हरड़ का चूर्ण बराबर मात्रा में मिला, अर्क सोंफ या ईसबगोल के लुआब के साथ दे सकते हैं। प्रवाहिका के लक्षण जैसे-जैसे कम होने लगें छोटी हरड़ के चूर्ण की मात्रा घटाते जाना चाहिए। ग्रहणी रोग में यह चूर्ण पर्पटी के योगों के साथ मिला कर दे सकते हैं। स्वर्णपर्पटी, पंचामृत पर्पटी या रसपर्पटी किसी के भी साथ इसे दे सकते हैं।

(पृष्ठ २८५ पर)

(२) **अर्शोघ्नीवटी**—प्रथम योग से मिलता जुलता अर्शोघ्नी वटी का नुस्खा है। यह सूखे (वातार्श) और खूनी (रक्तार्श) दोनों प्रकार के बवासीर में अच्छा काम करता है। योग इस प्रकार है—नीम की निबौली की मींगी १ बकायन के फल की मींगी १, दमउलअखबेन या खूनखराबा १, कहरबा समई (तृणकान्तमणि) की अर्क, गुलाब या चन्दनादि अर्क में तैयार की गर्म पिष्टी १, शुद्ध रसौल ३ भाग लें। पहले निबौली और बकायन के फलों की मींगी को खूब महीन पीस लें फिर शेष द्रव्य मिला जल में घोंट ३६३ मिग्रा. की गोलियाँ बना लें। मात्रा २-२ गोली दिन में ३-४ बार ठण्डे पानी के साथ दें।

(३) **नागकेशरयोग**–असली नागकेशर और खूनखराबा (दमउलअखवेन) बराबर-बराबर लें। दोनों का कपड़छन चूर्ण कर लें और उसे २ माशे की मात्रा में ३-४ बार दूबस्वरस, मोसम्बी या मीठे अनार के रस के साथ या हरे धनिये की पत्ती के साथ देने से अथवा उदुम्बरसार १॥-३ ग्राम को ५८·३० ग्राम ठण्डे जल में घोलकर इसके साथ देने से बवासीर का खून गिरना बन्द हो जाता है।

नागकेशर गट्टिफेरि वर्ग का वृक्ष है इसे मेसुआ फेरिया कहते है (देखो आचार्य यादवजी कृत द्रव्यगुणविज्ञान–बैद्यनाथ प्रकाशन) इस ग्रन्थ के अनुसार नागकेशर का वृक्ष बड़ा सुन्दर होता है। यह कुमाऊँ, नेपाल और दक्षिण कोंकण में पाये जाते हैं। इसे नागचम्पा भी कहते हैं। इसके पुष्प में ५ पंखुडियाँ होती हैं, नरकेशर का पीले रंग का गुच्छा होता है उसे नागकेशर कहते हैं। यही असली नागकेशर है। बाजार में जो बीज-बीज से आते हैं वह नागकेशर नहीं है।

नागकेशर १॥ ग्राम, धुले काले तिल ११·६६ ग्राम, ताजे घी या मक्खन के साथ खाने से भी खून गिरना बन्द हो जाता है।

(पृष्ठ २९४ पर)

(१३) **शतपत्र्यादि चूर्ण**––नागरमोथा, जीरा सफेद, सफेद चन्दन, छोटी इलायची, सौंफ, कत्था, सेलरवड़ी, शीतलचीनी, गिलोय का सत्व, खस, वंशलोचन, खसखस, ईसबगोल की भूसी, गोखरू, दालचीनी, तेजपान, नागकेसर, अनन्तमूल, कमलगट्टे की मींगी, कमल और तीखुर (अरारोट) प्रत्येक १-१ भाग, गुलाब के सूखे फूल २० भाग तथा मिश्री ४० भाग लेकर कूट कपड़छान कर रखें। मात्रा १॥ से ३ ग्राम जल के साथ १-२ बार देने से विदग्धाजीर्ण, अम्लपित्त, और पेट की खराबी से होने वाला मुखपाक (स्टोमेटाइटिस) दूर हो जाता है।

(१४) **जम्बीरार्द्रकद्रव**––जम्बीरी या कागजी नीबू का रस, घीकुँवार का गूदा, मूली का रस, अदरक का गर्म करके निकाला गया रस, प्याज का रस ४-४ भाग कालानमक और अजवाइन का चूर्ण १-१ भाग नोंसादर चौथाई भाग, भुनी हींग आठवां भाग एक चीनी मिट्टी के पात्र में भर कर मुख बन्द कर ७ दिन धूप में रखें और हिलाते रहें फिर बोतलों में भर कर रख लें। मात्रा ५·८ से ११·६६ ग्राम तक भोजन के बाद दोनों समय देने से खाया हुआ भोजन शीघ्र पच

जाता है। पेट में गैस नहीं बनती तथा भूख समय पर लगती है। यकृत् पित्त का निर्माण खूब करता है, जिससे दस्त साफ आता है। उदरशूल, अम्लपित्त, बदहजमी और उदरगत वात और आनाह को भी शान्त करता है। आमाशयव्रण में इसे न दें।

(पृष्ठ ३०६ पर)

(९) **मुस्तादि योग**—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, नागरमोथा, पलाश बीज सेके हुए, बायबिडंग छिलका रहित, अनार की जड़ या पेड़ की छाल, करंज की सेकी हुई मींगी, इन्द्रजौ सेका हुआ, कबीला, किरमानी, अजवाइन २-२ भाग, अजवाइन का सत्व और भुनी हींग १-१ भाग। पहले पारद गन्धक की कज्जली बना लें फिर उसमें अन्य दवाओं का कपडछन चूर्ण डालें, फिर अजवाइनसत और हींग डाल अनन्नास के पत्तों के रस में १ दिन मर्दन कर ४८६ मिली ग्राम की गोलियाँ बना लें। छाया में सुखाकर प्रयोग में लावें। मात्रा १ से २ गोली खिलाकर नागरमोथा, मूसाकर्णी, पलाश के बीज, बायबिडंग, अनार के वृक्ष की छाल अजवाइन, दोना का पत्ती, किरमानी अजवाइन, सुपारी, देवदारु, सहैजना के बीज, हरड़, बहेड़ा, आँवला, खैर की लकड़ी का बुरादा, नीम की अन्तरछाल और, इन्द्रजौ बराबर-बराबर लें और सबको जौकुट करके रखें। इसमें से ११·६६ ग्राम लेकर १९७ ग्राम पानी में पकावें ४६ ग्राम शेष रहने पर इस क्वाथ को गोलियों के ऊपर अनुपान के रूप में पिलावें। इस प्रकार प्रयोग से पेट के सभी तरह के कृमि और कृमिजन्य उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इसका प्रयोग १ से ३ सप्ताह तक करना चाहिए।

(पृष्ठ ३०६ पर)

पाण्डु—कामला

अधिक परिश्रम, अम्लता की वृद्धि, अधिक नमक सेवन, मद्यपान, मिट्टी खाना, तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन, दिन में सोना आदि कारणों से रक्तदूषित हो जाता है और उनके कारण त्वचा का वर्ण पाण्डु हो जाता है इसलिये इसे पाण्डुरोग कहा जाता है। जब रक्त में लोहे की कमी हो जाती है तो उसकी प्राणवायु कारक शक्ति घट जाती है तथा रक्त के लाल कण फीके-फीके और

छोटे हो जाते हैं। मलेरिया के कारण लालकणों की कमी हो जाने से भी पाण्डुता आ जाती है। कभी-कभी जब रंजक पित्त की कमी हो जाती है अथवा रंजकपित्त का आमाशय के आश्रित भाग या यकृत् का रक्त के लालकण बनाने वाला भाग क्षीण हो जाता है तब भी पाण्डुरोग बनता है, पर इसमें लालकण बड़े और अपरिपक्व होते हैं, देखने में गहरे लाल होने पर भी उनकी प्राणवायु धारकशक्ति अधिक नहीं होती। पाण्डुरोगी जल्दी थक जाता है, उसकी कर्मशक्ति घटती चली जाती है, उसके मुख पर और नेत्रों के आसपास शोथ हो जाता है, शरीर ढीला-ढीला रहता है। आलस्य और मन्दाग्नि हो जाती है, उसका मलमूत्र पीला सा होता है। उसके चक्कर कम्प (वाहिक) दाहतृष्णाज्वर (पैत्तिक) शोथ तन्हा आलस्य गौरव (श्लैष्मिक) हृल्लास छर्दि क्लम (सन्निपातिक) बल वर्णाग्निनाश के लक्षण मिट्टी के खाने से होने वाले (मृज्जपाण्डु) होते हैं। मृज्ज पाण्डु के कोष्ठ में गण्डूपद कृमि पड़ जाते हैं।

(पृष्ठ ३१० पर)

रोहीतकलौह--जीर्ण विषमज्वरजन्य पाण्डुरोग होने पर जब यकृत् और प्लीहा बढ़ गये हों, शोथ हो, रक्त के लालकणों में हीमोग्लोबिन की मात्रा घट गयी हो तो रोहीतकलौह का प्रयोग बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। योग इस प्रकार है--हरड़, बहेडा, आमला, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, चित्रकमूल की छाल, नागरमोथा और वायबिडंग १-१ भाग, रोहीतक वृक्ष की अन्तरछाल ८ भाग, लोहभस्म या मण्डूर भस्म ८ भाग खरल में डाल रोहीतक की अन्तर्छाल के स्वरस की ७ भावनाएँ दें, छाया में सुखा पीस कर रखें। मात्रा ३६४ से ७२८ मि. ग्रा. दूध या छाछ के साथ दें। अनुपान में फलत्रिकादिक्वाथ देना भी बहुत उपयोगी सिद्ध होता है, विशेष कर कामला में। इस क्वाथ में त्रिफला, गिलोय, कुटकी, नीम की अन्तर्छाल, चिरायता और वासा समभाग ११·६६ ग्राम, कूट १८६ ग्राम पानी में डाल औटावें, ४६·४ ग्राम शेष रहने पर छान शहद डाल पिला दें।

(६) **चन्द्रकलारस**—शु. पारद १, शु. गन्धक २, ताम्रभस्म १, अभ्रक-भस्म १, मोती की पिष्टी २, कुटकी, गुडूचीसत्व, पित्तपापड़ा, खस, पिप्पली, चन्दन सफेद, अनन्तमूल १-१ भाग लें। पहले पारद गन्धक की कज्जली करें फिर जब भस्में और पिष्टी डाल मर्दन करें फिर काष्ठादिक द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण डाल कर, मोथा, अनार, दूब, केवड़ा, कमल, सहदेवी, शतावरी, पित्तपापड़े के स्वरसों की १-१ दिन भावना देकर के पके अंगूर के रस की ७ भावनाएँ दें फिर ११·६६ ग्राम कपूर मिला चने बराबर की गोलियां बना लें। यह चन्द्रकला रस है। इसे १-२ गोली ठण्डे पानी के साथ पेठे के स्वरस के साथ अथवा उशीरासव या अशोकारिष्ट के अनुपान से देने से अन्तर्दाह या शरीर के बाह्य भागों की जलन भ्रम (वर्टिगो), मूर्च्छा, रक्तकास (हेमोप्टाइएिस), रक्तवमन (हेमेटेमेसिस), जीर्णज्वर, असृग्दर (मेनोरेजिया) तथा सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र (डिसयूरिया) बिना किसी संशय के नष्ट हो जाते हैं। पेशाव के मार्ग से लेकर शरीर के किसी भी भाग का दाह यह दूर करने में बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

(७) **दूर्वादिघृत**—दूब, अनार के फूल, मजीठ, कमलकेशर, गूलर का फल, खस, मोथा, चन्दन, पद्मकाष्ठ, अड़ूसे के फूल, केशर, गेरू, नागकेशर प्रत्येक ११·६६ ग्राम जल में पीस लें इसमें गाय या बकरी का घी ४ गुना मिला दें और कड़ाही में डाल बकरी का दूध, पेठे के स्वरस, तण्डुलोदक आयापान (अस्रहए) के पत्तों का रस घी के बराबर-बराबर प्रत्येक को डाल कर मन्द अग्नि पर पका लें। जब घृत सिद्ध हो जाय तो उतार कर ठण्डा कर शीशी में भर लें।

इस घृत को ५·८ से ११·६६ ग्राम की मात्रा में उतनी ही मिश्री मिला कर चटावें। मुख से रक्त आने पर इसे पिलावें। नाक से रक्त आने पर इसका नस्य दें, कानों से खून निकले तो कानों में डालें और अगर आँखों से रक्तस्राव हो तो आँखों में इसकी बूंदें टपकावें। गुद, मेढ़ या योनि से रक्त आने पर इसे बस्ति द्वारा या अनुवासन बस्तिद्वारा देना चाहिए।

(पृष्ठ ३१५ पर)

रसोनक्षीरयोग—एक अच्छा इकपुतिया लहसुन ले उसका छिलका निकाल दें फिर बायबिड़ंग के दाने २०० लेकर दरदरा कूट लें फिर दोनों को २३५ ग्राम गाय के दूध और उतने ही जल में मन्द अग्नि पर पकावें। पानी जल जाने पर नीचें उतार छान लें और चीनी और छोटी इलायची डाल कर यक्ष्मा के रोगी को पिलावें, प्रतिदिन १ कली लहसुन और २० दाने विडंग बढ़ाते जायें यह क्रम १५ कली लहसुन और ५०० दाने वायबिडंग तक बढ़ाया जा सकता है।

(पृष्ठ ३१९ पर)

(३) **वासापातक**—अड़ूसे की जड़ की छाल २५० ग्राम २ लिटर पानी में उबाल अष्टमांश शेष रहने पर छान लें। या अड़ूसे के २ किलो ताजे पत्तों का पुटपाक विधि से स्वरस मिला लें। इस क्वाथ या स्वरस में २ किलो चीनी डाल पकावें शहद जैसा गाढ़ा होने पर उतार ठण्डा होने पर बोतल में भरें। यह सभी प्रकार की कास में काम करता है। रक्तपित्त, राजयक्ष्मा तथा रक्तप्रदर में उपयोगी है।

(पृष्ठ ३२२ पर)

(११) **शर्बत जूफा**—यह वात और पित्तप्रधान खाँसियों की उत्तम दवा है। इसके सेवन से कफ ढ़ीला होकर खाँसने के साथ तुरन्त निकल जाता है। योग यादवजी का है जो इस प्रकार है:— जूफा १०, मुनक्का ३०, उन्नाव २०, लिसौड़े २०, अंजीर २०, बेख सोसन ३०, मुलहठी २०, सोंफ का जड़ १०, करफस की जड़ १०, हंसराज १०, बीदाना ५, अनीसन ५, सोंफ ५, जौ छिले हुए ५, अलसी ५, जटामाँसी ५, गावजवां ५ और खतमी के बीज ५८.३ ग्रा. लें जौकुट कर ३ गुने पानी में उबालें रात में भिगो दें सबेरे मन्द अग्नि पर पकावें फिर उस छने हुए क्वाथ में ६ किलो चीनी डाल शहद जैसी चासनी कर लें ठण्डा होने पर बोतलों में भर लें।

(पृष्ठ ३३९ पर)

रक्तदाब या ब्लडप्रैशर

आधुनिक चिकित्सापद्धति के विद्वानों ने शरीरक्रियाविज्ञान में बहुत उन्नति की हुई है। उन्होंने रक्त के संगठन पर व्यापक विचार किया है तथा रक्त जिन वाहिकाओं में होकर बहता है, उनको प्राचीरों पर क्या क्या प्रभाव पड़ता है उसका काफी अध्ययन किया है। उन्हीं प्रभावों में रक्त द्वारा अपनी वाहिकाओं की प्राचीर पर डाला गया दवाव या दाब या प्रैशर भी है जिसे ब्लडप्रैशर कहा जाता है। हृदय के प्रकुंचन काल में यह दाब रक्तनिलय में सबसे अधिक पाया जाता है जो हृदय के अनुशिथिलन काल में बड़ी सिराओं में सबमें कम हो जाता है। यह रक्तदाब चिकित्सा की दृष्टि से धमनियों का नापा जाता है। इसकी नाप २ प्रकार की होती है। एक जब हृदय संकुचित होकर अपना रक्त वामनिलय से धमनियों में भेजता है। इसे प्रकुंचनकाल कहते हैं तथा इस समय के रक्तदाब को सिस्टोलिक ब्लड प्रैशर या प्रकुंचनदाब या प्रकुंचनकालीय दाब कहते हैं। दूसरी नाप उस समय ली जाती है जब हृदय में रक्त का भराव होने लगता है। इस समय के रक्तदाब को डायस्टोलिक ब्लडप्रैशर या अनुशिथिलन रक्तदाब कहते हैं।

धमनियों का रक्तदाब जिस यन्त्र से नापा जाता है उसे रक्तदाबमापक यन्त्र या ब्लडप्रैशर इन्स्ट्रूमेंट कहा जाता है। यह २ प्रकार का होता है--एक जिसमें पारद भरा होता है तथा दूसरा घड़ी के डायल जैसा स्प्रिग के सहारे चलता है। पारदवाला रक्तदाव यन्त्र काँच की नली वाला होने से उसे लेने ले जाने में टूटने का भय रहता है जब कि स्प्रिगवाले यन्त्र को ले जाना आसान रहता है।

रक्तदाबमापक यन्त्र चाहे पारदवाला (स्फिग्मोमेनोमीटर) हो या स्प्रिग वाला दोनों से रक्तदाब की नाप की विधि एकसी होती है। यन्त्र में एक रवर की लम्बी थैली होती है जिस पर एक कपड़ा चढ़ा होता है उसे रोगी या स्वस्थ व्यक्ति के बाहु में कन्धों के नीचे इस प्रकार लपेटते है कि उस ओर की कुहनी का भाग खुला रहे। रवर की इस थैली को कपड़ों के ऊपर या नंगी

बाहु पर लपेटते हैं। मोटे कपड़े उतरवा कर ही उसे लपेटना चाहिए। इस रबर थैली में से रबर की २ नलियाँ निकली रहती है जिन में एक का सम्बन्ध पारद की नली के साथ या स्प्रिंग वाले भाग के साथ रहता है और दूसरी नली का सम्बन्ध रबर के एक बल्ब के साथ होता है जिसमें एक वाल्व लगा होता है। रबर थैली को बाँह पर लपेटने के बाद इस बल्ब के वाल्व को खोल देते हैं और बल्ब को एक हाथ से दबाते हैं। दबाने से बल्ब में होकर हवा रबर की लपेटी हुई थैली में जाकर बाँह पर दबाव डालने लगती है। दूसरा हाथ नाड़ी पर उसी हाथ के ऊपर रहता है जिसकी बाँह को लपेटा गया हो। अंगुलियों से नाड़ी का स्पन्दन बराबर ज्ञात होता रहता है। बल्ब को दबा-दबा कर धीरे धीरे हवा भरी जाती है। हवा के भरते रहने पर पारद नली में चढ़ने लगता है अथवा अगर स्प्रिंग वाला यन्त्र इस्तेमाल किया जा रहा है तो डायल की सुई घूमने लगती है। जब दूसरे हाथ के नीचे नाड़ी का स्पन्दन बन्द हो जाय तब तक हवा भरते हैं। इस समय पारद नली में कहाँ तक पहुँचा है या डायल की सुई कहाँ तक घूमी है उसे पढ़ लेते हैं। यह प्रकुंचन दाब या सिस्टोलिक ब्लडप्रैशर है। इसे पढ़ते ही बल्ब का कपाट या बल्ब खोल कर हवा निकाल देते हैं। नाड़ी स्पन्दन अंगुली द्वारा पुनः अनुभव किया जा सकता है। यह इतना ही नाप नहीं है। यह तो कच्ची नाप मानी जाती है। पक्की नाप स्टैथोस्कोप द्वारा करनी पड़ती है। स्टैथोस्कोप छाती या हृदय की आवाजें सुनने के लिए प्रयुक्त एक ऐसा उपकरण है जिसे हर चिकित्सक जानता है। उसे दोनों कानों में लगा कर निचले भाग को कुहनी के दूसरी और सामने कफोणिखात में जहाँ धमनी का स्पन्दन हो रहा हो उस पर रखते हैं और बल्ब से हवा भर कर बाहु का पीडन करते हैं। पीडन के साथ-साथ धमनी का शब्द कानों में पहुँचता रहता है। जब यह शब्द बन्द हो तभी पारद के स्तम्भ की ऊपरी सतह के या डायल की सुई द्वारा निदेशित अंक पढ़ लेते हैं। यह सिस्टोलिक ब्लडप्रैशर की पक्की नाप हुई। अब धीरे-धीरे वाल्व खोल हवा निकालते हैं। हवा ज्यों-ज्यों कम होती जाती है नाड़ीस्पन्दन का शब्द कान में आकर फिर कम होने लगता है यहाँ तक कि बन्द हो जाता है। जैसे ही आवाज कानों में आनी बन्द हो जावे पारद के कालम को या डायल पर सुई को पढ़ लेते हैं। यह डायस्टोलिक

ब्लडप्रैशर या अनुशिथिलन रक्तदाब की पक्की नाप है। अनुशिथिलन रक्तदाब बिना स्टैथोस्कोप के नापा ही नहीं जा सकता है।

यह रक्तदाब स्वस्थावस्था में कितना होना चाहिए इस पर कर्म पुस्तकों में कुछ न कुछ लिखा मिलता है। यह रक्तदाब हर व्यक्ति का अलग अलग होता है। हर ऋतु या काल में हर आयु में बदल सकता है। शरीर पर गर्मी या सर्दी का प्रभाव भी इस पर पड़ता है। मानसिक उत्तेजना और खानपान का प्रभाव भी इस पर पड़ता है। इसलिए वैद्य का कर्तव्य है कि वह अनुमान से ही रक्तदाब का ज्ञान न करे अपितु उसे रक्तदाबमापकयन्त्र को लगा कर ही रक्तदाब का ज्ञान प्राप्त करने में आलस्य न करना चाहिए। कुछ लोग नाड़ी देख कर ही रक्तदाब बताने लगते हैं वह प्रायः गलत निकलता है इसलिए बराबर रक्तदाब को यन्त्र द्वारा नाप कर ही वैद्य को अपना मत स्थिर करना चाहिए। इस युग में बिना रक्तदाबमापक यन्त्र तापमापक और शब्दपरीक्षण यन्त्र के जो निदान में अपरिमित सहायता करते हैं वैद्यक व्यवसाय चलाना कठिन ही समझना चाहिए।

सामान्य रक्तदाब तालिका

	प्रकुंचन दाब			प्रकुंचन दाब	
आयु	लड़का	लड़की	आयु	लड़का	लड़की
५	लगभग ८०	लगभग ८५	११	लगभग ९६	लगभग १००
६	,, ८५	,, ८६	१२	,, ९८	,, १०२
७	,, ८९	,, ८९	१३	,, १०२	,, १०३
८	,, ९२	,, ९२	१४	,, १०६	,, १०४
९	,, ९५	,, ९३	१५	,, ११०	,, १०६
१०	९५ से कुछ ऊपर	,, ९६	१६	,, ११२	,, १०७
			१७	,, ११२	,, १०३
			१८	,, ११३	,, १०१
			१९	,, ११७	,, १०५

आयु	प्रकुंचन दाब (मिमी पारद में)			अनुशिथिलन दाब (मिमी पारद में)		
	न्यूनतम–औसत–अधिकतम			न्यूनतम–औसत–अधिकतम		
१५–१९=	१०५	११७	१२९	७३	७७	८१
२०–२४=	१०८	१२०	१३२	७५	७९	८३
२५–२९=	१०९	१२१	१३३	७६	८०	८४
३०–३४=	११०	१२२	१३४	७७	८१	८५
३५–३९=	११०	१२३	१३५	७८	८२	८६
४०–४४=	११२	१२५	१३७	७९	८३	८७
४५–४९=	११५	१२७	१३९	८०	८४	८८
५०–५४=	११६	१२९	१४२	८१	८५	८९
५५–५९=	११८	१३१	१४४	८२	८६	९०
६०–६४=	१२१	१३४	१४७	८३	८७	९१

——टैबर की सायक्लोमीडिक मेडिकल डिक्शनरी से साभार

रोगी	आसन	बाहु में (मिमी पारद)	पैर में (मिमी पारद)	अन्तर (मिमी पारद)
पहला रोगी	लेटकर	१४०	१३८	२
	खड़े होकर	१३६	२०४	६८
	लेटे पैर ऊपर	१२२	७६	४६
	उलटे खड़े सिर नीचे	१४८	७०	७८
दूसरा रोगी	लेटकर	१२६	१२६	—
	खड़े होकर	१४०	२०४	६४
	लेटे पैर ऊपर	१३२	७८	५४
	उलटे खड़े सिर नीचे	११६	४२	७४

रक्तदाब के सम्बन्ध में ये तथ्य भी ध्यान में रखने चाहिए। —

१. रक्तदाब हाथ और पैर की धमनियों में एक ही काल में एक ही व्यक्ति में कुछ न कुछ फर्क से आता है। एक ही व्यक्ति को लिटाने बैठाने

और खड़ा करने पर भी अन्तर पड़ सकता है। टेक्स्ट बुक आफ फ़िजियालोजी एण्ड बायोकैमिस्ट्री की एक पुस्तक में ये अन्तर इस प्रकार दिखाये गये हैं:–

इसलिये कल्पना या अनुमान के आधार पर रक्तदाब का निर्णय नहीं करना चाहिये।

२. अगर किसी व्यक्ति का प्रकुंचनदाब १५० मिमी पारद से बराबर ऊपर ही रहे तो उसके खतरनाक समझना चाहिए।

३. अगर किसी व्यक्ति का अनुशिथिलन दाब १०० मिमी पारद से बराबर ऊपर रहे तो उसे खतरनाक समझना चाहिए।

४. किसी व्यक्ति के प्रकुंचन दाब अंकों में से अनुशिथिलन दाब के अंक घटा दें तो जो संख्या आवेगी वह उसका नाड़ी दाब (पल्स प्रैशर) कहलाता है। यदि किसी का प्रकुंचन दाब १३० मिमी पारद है और अनुशिथिलन दाब ९५ मिमी पारद है तो उसका नाड़ी दाब १३०–९५ = ३५ होगा।

किसी भी व्यक्ति का नाड़ीदाब ५० अंक से ऊपर होना या ३० अंक से नीचे होना रोग का द्योतक और खतरनाक होता है।

५ अनुशिथिलन दाब से प्रकुंचनदाब प्राय: ४० अंक ऊपर होना ही चाहिए।

६. रक्तदाब सदा आयु, लिंग, निवासस्थान के धरातल की ऊँचाई, पेशलता, हर्ष-उत्साह, शोक-विषाद, चिन्ता-मनोदैन्य के अनुसार बढ़ता घटता रहता है।

७. सामान्यत: २० वर्ष की आयु के युवक का प्रकुंचन रक्तदाब १२० तक हो सकता है। उसके बाद हर एक वर्ष आयु की वृद्धि पर $\frac{१}{२}$ मिमी की वृद्धि के हिसाब से यह बढ़ता है। इस प्रकार ५० वर्ष की आयु में $१२० + \frac{३०}{२} = १३५$ मिमी पारद होगा।

८. अनुशिथिलन दाब की सामान्य नाप ६० से ९० मिमी पारद मानी जाती है।

रक्तदाब के विकार

रक्तदाब के २ प्रकार मिलते हैं एक रक्तदाब का अधिक होना जिसे हाईब्लडप्रैशर या हाइपरटेंशन कहा जाता है और दूसरा रक्तदाब का कम होना जिसे लोब्लडप्रैशर या हाइपोटेंशन कह सकते हैं। दोनों ही परिस्थितियाँ मनुष्य के स्वास्थ्य की दृष्टि से कष्टदायक हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय और अखिल भारतीय राष्ट्रिय कांग्रेस के जन्मदाता प्रातःस्मरणीय महामना मदनमोहन मालवीय जी का ब्लडप्रैशर ८५ वर्ष की आयु तक भी सामान्य ही रहा था। एक बार एक डाक्टर ने उनसे इसका रहस्य पूछा तो मालवीयजी ने बतलाया कि वे सदा त्रिफला का सेवन किया करते हैं। त्रिफला रसायन हैं-- 'यज्जरा-व्याधिनाशनं तद्रसायनम्' इस परिभाषा के अनुसार मुझे जरा या बुढ़ापे का कष्ट नहीं व्यापा जिसमें रक्तदाब की वृद्धि भी एक है। उस डाक्टर ने कहा कि धमनीकाठिन्य (आर्टीरियो स्क्लैरोसिस) दूसरा रोग है। उससे भी महाराज आप पीड़ित नहीं हैं। त्रिफला की ऐसी ही महिमा है। आमले का ताजा रस और भांगरे का स्वरस दोनों ही रक्तदाब को बढ़ने नहीं देते क्योंकि दोनों ही रसायन द्रव्य हैं। आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी ने दिल्ली में इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा द्वारा बुलाये गये रक्तदाब विषयक सेमिनार में इस ऐतिहासिक तथ्य का उद्घाटन किया था कि अष्टाँग आयुर्वेद के २ अंग रसायन और बाजीकरण अन्य बातों के अलावा रक्तदाब को कम रखने और बढाने के ही अंग हैं। जो बुढ्ढा होता जाता है उसका रक्तदाब बढ़ता जाता है। उसे रसायनद्रव्यों का और तदनुकूल आचार रसायन का सेवन करना चाहिए। जो अपनी पुंस्त्व वृद्धि करना चाहता है उसका रक्तदाब समावस्था में लाने के लिए हाइपोटेंशन को नौर्मोटेंशन में बदलने के लिए बाजीकरणतन्त्रोक्त योगों का सेवन और तदनुकूल व्यायामादि करने चाहिए।

नमक और मद्य तथा उग्रवीर्यों के सेवन से रक्तदाब बढ़ता है। इसीलिए डाक्टर लोग हाईब्लडप्रैशर से पीडित रोगी का सोडियमक्लोराइड (नमक) बन्द कर उसे पोटाशियम क्लोराइड खिलाते हैं या ऐसी दवाएँ देते हैं जो सोडियम आयन को मूत्र में शीघ्र निष्क्रमित कर दे। जिन लोगों का रक्तदाब कम रहता

है उन्हें नमकीन चटपटे पदार्थ अच्छी मात्रा में देने चाहिए। श्री त्रिवेदी का यह भी कथन है कि हमारे देश का अधिकांश उष्ण कटिबन्ध में आता है। यहां गर्मी बहुत पड़ती है। गर्मी से पसीना बहुत निकलता है। पसीने में नमक का अंश होता है इसलिए नमक की कमी होना या रक्तदाब कम पाया जाना अक्सर मिलता है। हाथरस में एक वर्ग के लोगों में ११० से अधिक प्रकुंची तथा ६० से अधिक अनुशिथिलीदाब मिलता ही नहीं है। इस रक्तदाब की कमी को दूर करने के लिए ही इस देश में चाट, पड़ाके, भेल, जलजीरा नमकीन चूरन चटनी लेने की प्रथा जितनी अधिक देखी जाती है उतनी दूसरे शीतकटिबन्धीय देशों में है ही नहीं।

खानपान और आचार विचार की शुद्धता पर जो जोर दिया जाता है वह रक्तदाब को नॉर्मल रखने में बहुत सहायक होता है। हमारी सारी धार्मिक व्यवस्थाएँ भी इसी आधार पर हैं। प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में उष्णवीर्य और शीतवीर्य पदार्थों की गणना के पीछे भी यही उद्देश्य है। रक्तदाबवृद्धि के लिए या उत्साह और क्रियाशक्ति वर्द्धन हेतु मृतसंजीवनीसुरा, मदिरा, कांजिक, सौवीरक, तुषोदक, वारूणी आदि का उल्लेख और सैनिकों एवं शीतक्षेत्रों में माँस मदिरा, का प्रचार भी मनुष्य की धमनियों में रक्तदाब ठीक मर्यादा में बनाए रखने में महत्त्व का योगदान करते हैं। छेने की मिठाई, रसगुल्ला, खीरमोहन, चमचम आदि कम रक्तदाब को बढा कर मानसिक क्षोभ दूर करते हुए शरीर को स्वस्थ रखने में अच्छा योगदान करते हैं। भारतीय जीवनपरम्परा में क्षोभ, ईर्ष्या, डाह, द्वेष आदि मनोद्वेगों को नियन्त्रित कर रक्तदाब को हाई होने से रोकने के लिए भी मन्दिर, देव पूजन, पूजापाठ की व्यवस्था पर जोर दिया गया है। श्रमिकवर्ग, कृषकवर्ग को शारीरिक परिश्रम काफी करना पड़ता है तथा मानसिक चिन्ता से बढ़ मनमौजी जीवन, गीतगायन, खेल कूद अधिक करने पढ़ते हैं इसलिए उन्हें उसकी उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती।

उच्च रक्तदाब और सर्पगन्धा का प्रयोग

रक्तदाब बढ़ जाने से मानव शरीर में निम्नलिखित लक्षण पाये जा सकते हैं:—

१. यदि रोग साधारण हो तो कोई भी लक्षण काफी दिन तक नहीं मिलेगा।

२. किसी-किसी को शिरःशूल, भ्रम या चक्कर, घबराहट (नर्वस हो जाना) तथा हृदय में धकधक बढ़ने के लक्षण सबके सब या कोई-कोई मिल सकते हैं। कभी-कभी यह जानकर कि उसे रक्तदाब बढ़ता है चिन्ता से भी ये लक्षण बन जाते हैं।

३. किसी-किसी महिला को रजोनिवृत्तिकाल में पता चलता है कि उसका रक्तदाब बढ़ा हुआ है।

४. प्रायः सिर में दर्द का बना रहना जो सामान्य शिरःशूलनाशक दवाओं से काबू में न आना सुदम उच्चरक्तदाब का मुख्य लक्षण है।

५. सिरदर्द के साथ सबेरे उठते ही मिचली आना या उलटी होना भी पाया जा सकता है।

६. कुछ गंभीर स्वरूप के उच्च रक्तदाब में हृदय में धड़कन का बढ़ना, चलने या परिश्रम करने में दम फूलना, आँखों से कम दीखना तथा और गंभीर होने पर मस्तिष्क वाहिनी में घनास्त्र बना कर पक्षवध या अंगघात होना भी पाया जाता है। इसी में आगे चलकर मतिभ्रम के लक्षण भी पैदा हो जाते हैं।

७. रोगी की नींद में गड़बड़ी सबसे पहला लक्षण है जो उच्च रक्तदाब के रोगियों में मिलता है। रोगी सोते-सोते जग जाता है फिर उसे घंटों नींद नहीं आती। अनिद्रा आगे चल कर बहुत सताती है।

८. किसी-किसी को रात के समय मूत्रत्याग करने को उठना पड़ता है। किसी-किसी में उच्च रक्तदाब के साथ-साथ मधुमेह भी मिल सकता है। उसकी जाँच भी सावधानी के साथ कर लेनी चाहिए।

९. दुर्दम या भारात्मक उच्चरक्तदाब को एसेंशियल हाइपरटेंशन या मैलिग्नेंट हाइपरटेंशन भी कहते हैं। समें उपर्युक्त सभी लक्षण अपनी तीव्रता के साथ पाये जाते हैं। सिरदर्द, सिर के पीछे के हिस्से में बहुत अधिक होता है। नींद नहीं आती, दम बहुत फूलता है, आँखों की रोशनी बहुत घट जाती हैं। पेशाब बार-बार और रात में कई बार होता है उसके कारण बार-बार

तीव्रतृषा लग जाती है। हृदय के दक्षिण भाग की क्रिया फेल होने लगती है। वृक्कों में विकार हो जाने से रक्तमेह (पेशाब में खून) आने लगता है। आगे चल कर पक्षाघात तथा अन्य मस्तिष्कजन्य विकृतियाँ देखी जाती हैं।

सामान्य या सूक्ष्म उच्च रक्तदाब आहार के नियमन और रसायन द्रव्यों से जहाँ सुधर जाता है वहां दुर्दम उच्च रक्तदाब बिना औषध ठीक नहीं किया जा सकता। उच्चरक्तदाब की सर्वप्रथम औषध आयुर्वेद ने ही विश्व को दी है। इसका नाम सर्पगन्धा है जिसे वैज्ञानिक भाषा में रौल्फिया सर्पेंटाइना कहा जाता है। अत्युत्च दुर्दम रक्तदाब में सिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण करना भी प्राचीन आयुर्वेदीय पद्धति ही है। सर्पगन्धा की मूल का सेवन ज्यों का त्यों कूट कपड़छन करके कराया जाता है। डाक्टरी चिकित्सा में इसके अल्कलायड रिसर्पिन का प्रयोग प्राय: होता है पर वे भी अब समग्र सर्पगन्धा के प्रयोग में विश्वास करते प्रतीत होते है। सर्पगन्धा बिना रक्तदाबमापक यन्त्र द्वारा रक्तदाब की जाँच नहीं करना चाहिए। सर्पगन्धा का चूर्ण प्रकुंचन और अनुशिथिलन दोनों प्रकार के दाबों को घटाता है तेज नाड़ी की गति को मन्द करता है रोगी को इसके प्रयोग से आराम और चैन मिलता है। फार्मेकोलोजी के विद्वानों का मत है कि सर्पगन्धा या रिजर्पिन का उपयोग सुदम या मध्यम उच्चरक्तदाब पर विशेष कर जो रक्तदाब न्यूरोजिनिक (वातिक) होता है उस पर विशेष होता है। दुर्दम या भारात्मक के लिए इसके साथ गैंग्लियौन अवरोधक द्रव्यों को मिला कर देना चाहिए।

सर्पगन्धामूल के ५० मिलीग्राम चूर्ण में २ मिलीग्राम सक्रिय अल्कलायड आ जाते हैं। इस चूर्ण की मात्रा रक्तदाब कम करने के लिए ३०३.८० से ६०७ मि. ग्रा. निद्रा लाने के लिए ६०७ मि. ग्रा. से १.८२ ग्रा. तथा उन्माद और प्रवल अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) हटाने के लिए १॥ से ३ ग्राम तक यादवजी ने लिखी हैं। सर्पगन्धाचूर्ण ३ ग्राम, ५ छोटी इलायची का चूर्ण, ५ काली मिर्च का चूर्ण एकत्र पीस कर ५८·३२ ग्राम गुलाब जल में मिला दें। इसे ३ घंटे रखा रहने दें फिर ६ ग्राम मिश्री डाल शीशी में रख दें। इसे उच्च रक्तदाब में ६ मात्राओं में थोड़ा-थोड़ा २४ घंटे में देने से सिर दर्द और बेचैनी मिट जाती है अनिद्रा और उन्माद में लाभ होता है। अन्य योग इस प्रकार हैं:——

१. सर्पगन्धाचूर्ण १ ग्राम
शंखपुष्पीचूर्ण १ ग्राम
जटामांसीचूर्ण १ ग्राम
× ६ मात्रा

१-१ मात्रा गुलाब जल के साथ ४-४ घण्टे पर दें।

२. **सर्पगन्धाघनवटी**——सर्पगन्धाचूर्ण ९·३३० किलो खुरासानी अजवायन की पत्ती या बीज १.८७ किलो। जटामांसी ९३३ ग्राम, भांग ९३३ ग्राम सबका जौकुट चूर्ण कर लें और आठ गुने पानी में पकावें। जब जल उबालते-उबालते अष्टमांश पानी शेष रहे तो उसे उतार कर छान लें। इस छने हुए पानी को स्टेनलैस स्टील या तामचीनी के बर्तन में डाल फिर औटावें और लकड़ी के खोंचे से चलाते रहें गाढ़ा होने पर नीचे उतार कर २३३ ग्राम पिप्पलीमूल चूर्ण डाल धूप में सुखा ३६४ मि. ग्रा. की गोलियां बना लें। मात्रा २ से ३ गोली रात में सोते समय जल या दूध से दें।

३. **चन्द्रावलेह**——शतावरी, विदारीकन्द, पेठा, शंखपुष्पी प्रत्येक का स्वरस ३ कि. ५२ ग्रा. चिनी ४ किलो ६७० ग्रा.डाल कर मन्द अग्नि पर पाक करें। जब अवलेह जैसा गाड़ा हो जाय तो उतार लें अब इसमें छोटी इलायची ७४६ ग्रा. दालचीनी, तेजपान, नागकेशर, मुनक्का, श्वेतचन्दन, कमल, अनन्तमूल, नागरमोथा, पद्माख, खस, आँवला, जटामांसी, और लवंग ४६·४ ग्राम तथा सर्पगन्धा १८७ ग्राम सबका कपड़छान किया हुआ चूर्ण डाल ७४६ ग्रा. शहद डाल चीनी मिट्टी के पात्र में भर कर रख दें। यह चन्द्रावलेह ५·८ ग्राम से ११·६६ ग्राम की मात्रा में दूध या चन्दनादि अर्क के साथ सेवन करावें। इसके सेवन से उच्च रक्तदाब के सब लक्षण शान्त हो जाते हैं तथा उन्माद, अनिद्रा, शिरोभ्रम तथा हाथ पैर के तलवों की जलन भी मिट जाती है। इसे गुलगावजवाँ केवड़ा या बेदमुश्क के अर्क के साथ भी दे सकते हैं।

योगेन्द्र रस——यह वातव्याधियों और हृदय के दौर्बल्य को दूर करता ही है उच्च रक्तदाब के लक्षणों को मिटाने में भी इसका कोई जवाब नहीं।

अल्परक्तदाब या हाइपोटेंशन

जिस प्रकार रक्तदाब की वृद्धि स्वास्थ्य के लिए हानिकर है वैसे ही रक्तदाब का ह्रास भी एक प्रकार का रोग ही है। जब किसी वयस्क व्यक्ति का प्रकुंचन दाब १०० मिमी पारद से कम हो जाता है तो उसे अल्परक्तदाब से पीड़ित माना जा सकता है। स्वतन्त्रता संग्राम के दो सेनानी महात्मा गांधी उच्च रक्तदाब से जहाँ पीड़ित रहे वहीं सरहदी गाँधी खान अब्दुलगफ्फार खाँ अल्प रक्तदाब से ग्रसित हैं। जब किन्ही कारण से मनुष्य के शरीर से तरल द्रव्य अधिक मात्रा में निकल जाते हैं जैसे रक्तस्राव होने पर या अतीसार होने पर तो रक्त की हृदय से निकासी घट जाती है और रक्तदाब कम हो जाता है। हैजा या दग्ध में भी निर्जलीभवन होकर अल्प दाब पाया जाता है। एडीसन के रोग में या वाहिकावागसीमूर्च्छा में दाब प्रायः कम पाया जाता है। रक्त के आयतन की कमी रक्तदाब को कम करने में महत्त्व की भूमिका का निर्वाह करती है।

रक्त की कमी हो जाने या शरीर के जलीयांश में कमी होने के कारण उत्पन्न अल्परक्तदाब में शरीर ठण्डा रहता है चिपचिपा स्वेद आता है। नाड़ी की गति तेज रहने पर भी वह काफी कमजोरी मालूम पड़ती है। कभी-कभी प्रकुंचीदाब तो नापा जा सकता है पर अनुशिथिलम दाव नापना कठिन हो जाता है। वासोवागल मूर्च्छा में नाड़ी अत्यन्त मन्द पड़ जाती है पसीना खूब आता है तथा जी अधिक मालिश करने लगता है। क्रियासंग या शॉक में रक्तदाब की कमी अवश्य देखी जाती है। यदि क्रियासंग में रक्त में सुधार न हुआ तो प्राणरक्षा कठिन हो जाती है। कभी सिर में चोट लगने और मूर्च्छा आने पर काफी समय तक रक्तदाब कम ही रहता है। वृक्कों की क्रिया में विकृति, रक्तगत यूरिया की वृद्धि तथा रक्तअम्लता हाइपरलोरीमिया पाया जा सकता है।

अल्परक्तदाव की चिकित्सा हेतुप्रत्यनीक अर्थात् कारणानुरूप की जाती है। यदि तरलों के कम होने से या रक्तस्राव के कारण अल्प रक्तदाब हो गया है तो तरलों की पूर्ति एवं रक्ताधान तक करना पड़ सकता है। रक्ताघात तब तक करते जाते हैं जब तक प्रकुँचनदाब १०० मिमी पारद तक न बढ़ जावे।

उसके वाद भी कुछ रक्त जार चढ़ाना पड़ सकता है ताकि रक्त का आयतन सुधार जा सके।

आयुर्वेद में रक्तदाबवर्धक अनेक उपाय हैं, जिनका कुछ विचार पहले किया जा चुका है। नीचे कुछ योग दियें जाते हैं:—

१. **सुवर्णसिन्दुरयोग**—शुद्ध गन्धक ४६·४ ग्राम शुद्ध हिंगुलोत्थ पारद ४६·४ ग्राम दोनों की खरल में डाल कज्जली बना लें। इसमें ११·६६ ग्राम सोने के वरक डाल बरगद की जटा के रस में ३ घंटे घृतकुमारी के गूदे में मर्दन कर सुखा काली बोतल में भर वालुकायन्त्र में कूपीपक्व विधि से स्वर्णसिन्दूर बना लें। बोतल के तल में पड़े स्वर्ण में अलग से घृतकुमारी स्वरस के साथ घोंट टिकिया बना कुक्कुट पुट में १० बार फूँक लें। इस प्रकार बनी स्वर्णभस्म और स्वर्णसिन्दूर को एकत्र पीस लें। इसमें जायफल, लोंग, कपूर ११·६६ ग्राम, कस्तूरी १ ग्राम केशर २ ग्राम और शुद्ध कुचला ३ ग्राम तथा अभ्रकभस्म ६ ग्राम डाल खरैंटी (बला) के रस में ३ दिन मर्दन कर १२१ मि. ग्राम की गोलियाँ बना छाया में सुखा शुद्ध शीशी में रख लें। मात्रा १ से २ गोली पान में रख कर प्रातः सायं लें। यह योग बलवर्धक, रक्तदाबवर्द्धक, वृष्य, वाजीकर और चैतन्य प्रदाता है।

२. **बृहन्मकरसुष्ठि**—अकरकरा १२, लोहभस्म १, मकरध्वज १, कुचला शुद्ध १-१ भाग, स्वर्णभस्म १/८ भाग सबको एकत्र मर्दन कर रखे और २४२ से ४८६ मिग्रा. की मात्रा में पान से रस और शहद मिला कर सेवन करे। यह योग स्नायुदौर्बल्य को दूर कर रक्तदाब को प्राकृत करता है तथा नपुंसकता को दूर कर देता है। यह श्री राजेश्वरदत्तशास्त्री द्वारा अनुभूत योग है।

द्विगुणबलिजारित रससिन्दूर १ भाग, जाबित्री २ भाग, अभ्रकभस्म ३ भाग पान के रस में मर्दन कर शीशी में रख लें। मात्रा १२१ से ३६३मिग्रा. तक मधु के अनुपान से दें तथा ऊपर से मृतसंजीवनी सुरा ५·८ से ११·६६ ग्राम तक जल मिला कर लेंने से या केवल दुग्ध अनुपान में लेने से रक्तवाहिनियों में अपूर्व शक्ति का संचार होकर रक्तदाब में सुधार हो जाता है।

(पृष्ठ ३३९ पर)

शटीपानक—शटी या कपूरकचरी का चूर्ण ११७ ग्राम लेकर ८ गुने जल में मन्द अग्नि पर पकावें। जब २३३ ग्राम शेष रह जाय तो उसे छान लें। छने हुए क्वाथ में १ किलो सिता या चीनी डाल कर शर्बत बना लें। इस शर्बत को वमन वाले रोगी को ३ ग्राम से ६ ग्राम तक २-२ घण्टे के अन्तर से देने से सब प्रकार की वमन दूर हो जाती है। लक्षणोपशम के लिए यह उत्तम योग है। वमन जिस कारण से हुई हो उसका फिर विधिवत् उपचार करना चाहिए।

(पृष्ठ ३५३ पर)

पंचामृत लौह गुग्गुलु—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, रजत भस्म, अभ्रक भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक ४६·४ ग्राम, लोह भस्म ९७ ग्राम तथा साफ किया हुआ गुग्गुलु ३२२·२८ग्राम लें। पहले पारद गन्धक की कज्जली बना लें फिर लोहे के इमामदस्ते में गूगुल डाल थोड़े कड़ुए तेल के छींटे देकर कूटें। जब वह मुलायम हो जाय तो कज्जली तथा भस्में डाल ६ घंटे अच्छी तरह मर्दन कर ४८६ मि.ग्रा. की गोलियां बना लें। मात्रा १ से २ गोली सवेरे शाम दूध से या चोबचीनी, असगन्ध, एरण्डमूल, इन्द्रायण की जड़, उशबा, सौंठ और कड़ुए सुरंजान प्रत्येक समभाग के जौकुट चूर्ण में से ११·६६ग्राम ले, १८७ग्राम जल में उबाल चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर इस क्वाथ के अनुपान से सेवन करने से गृध्रसी, अवबाहुक, स्नायुओं के रोग (कटिशूल, घुटने का दर्द आदि) तथा वात-व्याधियों में अच्छा लाभ करता है।

(पृष्ठ ३५८ पर)

(२२) खंजनिकारि रस—शुद्ध कुचला का कपड़छान किया हुआ चूर्ण, मल्लसिन्दूर और रौप्य भस्म बराबर-बराबर ले कर पहले मल्लसिन्दूर को खरल में डाल, बारीक पीसें फिर शेष दोनों द्रव्य डाल कर अर्जुनवृक्ष की छाल के स्वरस की, भावनाएं देकर मूंग बराबर गोली बना छाया में सुखाकर रखें। इसकी मात्रा १ से २ गोली गाय के दूध या दशमूल के क्वाथ के अनुपान के साथ देने से अर्दित (फेशियल पैरैलाइसिस), खञ्जवात (लैथिरिज्म) और पुराने पक्षाघात (क्रॉनिक हैमीप्लीजिया) में अच्छा लाभ करता है।

माजून कुचला--शु. कुचला १२, गुलगावजबां ८, छोटी इलायची ४, कचूर ४, शकाकुल ४, सफेद चन्दन ४, आंवला ४, हरड़ ४, अगर २, लौंग २, चिलगोजा की मींगी ६, नारियल की गिरी ६, भिलावे की गिरी ६, नागरमोथा २, शु. वत्सनाभ १, कालीमिर्च २, असगन्ध २, चोबचीनी ८, सुरंजान तलख ६, जायफल २, जावित्री २, अकरकरा ४ भाग सबका कपड़छन चूर्ण, अभ्रक भस्म २, लोह-भस्म २, शु. संखिया १/८ भाग खरल में अच्छी तरह मर्दन कर ३ गुने शहद में मिला, कांच की बरनी में रखें। इसे भोजन से ३ घंटे पूर्व ३-३ ग्राम की मात्रा में गरम दूध के साथ दें। यह माजून वातरोग विशेष करके पक्षाघात, कटिशूल, जीर्ण सन्धिवात और अर्दित में लाभ करती है। उत्तम दीपन, पाचन, रसायन, वाजीकर और रक्तदाब को सुधारने वाली बलकारक (टॉनिक) है।

(पृष्ठ ३१२ पर)

मञ्जिष्ठादि चूर्ण--पित्त प्रकृति वालों को तथा रक्त और पित्त के विकारों में दस्त साफ लाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। योग इस प्रकार है--मजीठ १, छोटी इलायची १, सोंफ २, पाषाणभेद १, कलमीसोरा २, गोखरू १, रेवन्दचीनी १, घी लगा कर भूनी हुई छोटी हरड़ २, बड़ी हरड़ गुठली रहित २, बहेड़ा गुठली रहित २, बीज रहित आंवला २, गुलाबपुष्प २, सनाय ४ भाग कूट कपड़छान चूर्ण बनावें। मात्रा ३ से ६ ग्राम सबेरे लें या रात में सोते समय ठण्डे या गरम पानी के साथ लें। इसके सेवन से १ या २ दस्त आराम से हो जाते हैं। यह चूर्ण न केवल दस्त ही साफ लाता है पेशाब भी खुल कर आता है। अर्श, रक्तातीसार में उपयोगी है। रक्त को शुद्ध करता है।

(पृष्ठ ३७१ पर)

याकूती--माणिक्य, पन्ना, मुक्ता, प्रवाल और कहरुवा इनमें से प्रत्येक की पिष्टी २३·२ ग्राम, चन्द्रोदय, सोने के पत्र, अम्बर, कस्तूरी, आबरेशम कतरा हुआ और केशर २३·२ ग्राम, बहमन सफेद, बहमन लाल, जायफल, लौंग, सफेद मिर्च प्रत्येक ११·६६ ग्राम, पहले खरल में चन्द्रोदय डाल कर घोटें फिर पिष्टियां, केशर, आबरेशम डाल दें फिर काष्ठादिक दवाओं का कपड़छान किया चूर्ण डाल उत्तम गुलाब जल में २६ दिन मर्दन कर आखिरी दिन अम्बर और कस्तूरी डाल

१२१·५० मि.ग्रा. की गोलियां बना छाया में सुखा शीशी में भर लें। यह स्वर्गीय वैद्य तिलकचन्द ताराचन्द से यादवजी को प्राप्त नुस्खे के आधार पर लिखा गया है। मात्रा १ गोली पोदीने के स्वरस के साथ। यह हृदय की दुर्बलता, सन्निपात-ज्वर की नाडीक्षीणता, शरीर का ठण्डा पड़ जाना, क्रियासंग, स्वेद अधिक आना, थोड़ा चलते ही दम फूल जाना, हृदय धकधक होना (हार्ट पाल्पीटेशन) आदि में अच्छा काम करता है।

(१२) **जवाहरमोहरा**—माणिक्यपिष्टी २, पन्नापिष्टी २, मुक्तापिष्टी २, प्रवालपिष्टी, संगेयशब पिष्टी ४, कहरुबा पिष्टी २, चांदी के बरक १, सोने के बरक १, दरियाई नारियल ४, आबरेशम कतरा हुआ २, मृगश्रृंग भस्म, ४, जदवर (निर्विषी) २, कस्तूरी १, अम्बर २ तोला ले लें। पिष्टियां सिसाक पत्थर के या न घिसने वाले पत्थर में बनावें। काष्ठौषधियों का चूर्ण कर लें। पहले पिष्टियां डालें फिर चूर्ण डाल एक एक बरक डाल घोंटते रहें जब सब बरक मिल जायं तब अच्छे गुलाब जल में १४ दिन मर्दन करें। १५ वें दिन कस्तूरी और अम्बर डाल गुलाब जल में घोटें और १२१·५० मि.ग्रा. की गोलियां बना छाया में सुखा लें। कुछ लोग गोलियाँ न बना कर चूर्ण रूप में ही इसे रखते हैं। इसे १२१·५० मि.ग्रा. की मात्रा में शहद या खमीरा गावजबां में मिला कर देते हैं ऊपर से अनुपान में दूध या अर्क केवड़ा, अर्क बेदमुश्क या अर्क गुलगावजबां मिलाते हैं। (१ तोला=११·६६ ग्राम)

यह जवाहरमोहरा यूनानी चिकित्सा पद्धति का सुप्रसिद्ध योग है। यह हृद्दौर्बल्य तथा मस्तिष्क दौर्बल्य दोनों को दूर करता है। जिन लोगों का दिल धड़कता हो, थोड़ा चलने से सांस फूल जाती हो (डिसप्नियाँ) दिल में घबराहट बढ़ती हो तो यह बहुत अच्छा काम करता है।

(पृष्ठ ३११ पर)

(१५) **अश्मरीहर कषाय**—यह अश्मरी (पथरी), शर्करा (रेती) और उससे होने वाले गुर्दे और पेट के दर्द में उपयोगी और यादवजी द्वारा लिखित सिद्ध प्रयोग है। योग इस प्रकार है—पाषाणभेद, सागौन के फल, पपीते की जड़, शतावरी, गोखरू, बरुना की छाल, कुश (डाग) के मूल, कांस के मूल,

धान (चावलों) की जड़ पुनर्नवामूल, गिलोय, चिरचिटा (अपामार्ग) की जड़, ककड़ी (या खीरा) के बीज १-१ भाग, जटामांसी, खुरासानी अजवायन के बीज या पत्ती २-२ भाग, सब एक साथ जौकुट कर लें। ११.६६ ग्राम यह १८७.६ ग्राम पानी में उबालें, ४६.४ ग्राम शेष रहने पर छान लें। इसमें ६०७.५० मि.ग्रा. से १.२ ग्राम क्षारपर्पटी या जवाखार मिला कर पीने को दें इसे हजरुलयहूद की भस्म के साथ दें। इसे दिन में ३-४ बार पिलावें।

आचार्य यादवजी का मत है कि यवमण्ड (२३.२ ग्राम जौ को ७४६ ग्राम पानी में उबाल, चौथाई शेष रख कर कपड़े से छान कर रखें), डाभ (कच्चे नारियल) का पानी, गन्ने का रस, लौकी-पेठा, ककड़ी का रस, मकोय की पत्ती, पुनर्नवा की पत्ती, कासनी की पत्ती आदि मूत्रल शाक अश्मरी में हितकर हैं। दालें, मांस, कंद, का शाक, स्नेहपक्व अन्न न दें। गरम पानी के टब में कमर तक अवगाहन कराना लाभदायक होता है। इससे गुर्दे का दर्द तथा मूत्रकृच्छ्र की वेदना घट जाती है।

(१६) मूलीक्षार, स्वर्जिकाक्षार और यवक्षार बराबर बराबर लेकर ६०७.५० मि. ग्रा. की मात्रा में पानी के साथ पिलाते ही वृक्कशूल बन्द हो जाता है यह आचार्य त्रिवेदी का मत है। इसे कुलथी के क्वाथ (२३.२ ग्राम कुलथी के बीज २३३ ग्राम पानी में उबाल ५८.३० ग्राम शेष रहने पर छान कर बनावें) में डाल कर भी दे सकते हैं।

(पृष्ठ ३८३ पर)

(८) **प्रमेहहर कषाय**—यह यादवजी का अनुभूत योग है इसे सभी प्रकार के प्रमेहों में अकेला या अन्य प्रमेहनाशक योगों के साथ अनुपान के रूप में दे सकते हैं। योग इस प्रकार है:—दारुहल्दी, हल्दी, गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आमला, देवदारु, नागरमोथा, खस, लोध, श्वेत चन्दन, कमल के फूल, पद्माख, गोखरू, पटोलपत्र सब बराबर बराबर लेकर जौकुट करके रख लें। इसमें से ११.६६ ग्राम द्रव्य ११६.६ ग्राम पानी में उबालें, ४६.४ ग्राम शेष रहने पर कपड़े से छान ५.८३ ग्राम शहद डाल दिन में २ बार प्रातः सायं पिलावें।

(पृष्ठ ३९१ पर)

(५) **पुनर्नवाष्टक क्वाथ**--पुनर्नवा की जड़, हरड़, नीम की अन्तर्छाल, दारुहल्दी, कुटकी, पटोलपंचांग, गिलोय और शुण्ठी बराबर बराबर लेकर जौकुट कूट कर रख लें। इसमें से ११·६६ ग्राम लेकर १८६·५६ ग्राम पानी में पकावें, ४६·४ ग्राम शेष रहने पर कपड़े से छान लें उसमें १२ या २३ ग्राम गोमूत्र मिला कर पिलावें। ऐसी २·३ मात्रा दिन में दें। यह क्वाथ यकृत् और प्लीहा की वृद्धि में, शोथ (सूजन) में, उदर रोग और सन्निवात में प्रयोग किया जाता है। सर्वांगशोथ या जनरल ऐनासार्का में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। आचार्य यादवजी अपने सुप्रसिद्ध सिद्धयोगसंग्रह (वैद्यनाथ प्रकाशन) में पुनर्नवा की जड़ और कुटकी को २-२ भाग लेने और रोहीतक वृक्ष की अन्तर्छाल शरपुंखा की जड़ तथा अफसन्तीत १-१ भाग और मिलाने के लिए लिखते हैं तथा इसका नाम पुनर्नवादि क्वाथ देते हैं। उनका कथन है कि इस क्वाथ को पुनर्नवादिमण्डूर या आरोग्यवर्धिनी के अनुपान के रूप में देना चाहिए। सन्धिवात और आमवात में वे इसमें चोपचीनी, विधारा, उशबा, सुरंजान तलख, अण्डी की जड़, सोनापाठा की छाल, इन्द्रायण की जड़, हरमल तथा रास्ना १-२ भाग और मिलाकर शृंगभस्म १-२ ग्राम के साथ देने के लिए निर्देशित करते हैं।

(पृष्ठ ४०१ पर)

(५) **बिरोजे का लाल मलहर**—गन्ध बिरोजा ४६७ ग्राम और हिंगुल ११·६६ ग्राम लें। पहले बिरोजे को कड़ाही में डाल मन्द आग पर गरम करें। बीच-बीच में इसमें से चाकू या चम्मच से १-२ बूंद पानी में डाल कर देखते रहें कि यह कब मलहर बनाने योग्य हो जाता है। जब वैसा हो जाय तो कपड़े से छान लें। अब इसमें बारीक पीसा हुआ हिंगुल थोड़ा थोड़ा डाल बार बार तब तक चलाते रहें जब तक वह ठण्डा न हो जाय। बिना चलाए हिंगुल भारी होने से नीचे बैठ जाता है। इसे भरकर रख लें। यह मलहर घाव को शुद्ध करने और भरने के काम आता है। प्लूरिसी में पसली में दर्द होने पर या अन्यत्र कहीं भी दर्द होने पर इसे लगाते हैं। लगाने की तरकीब यह है कि एक मोटे कपड़े या लिंट को बिछा लें फिर स्पैच्युला या चाकू को गरम करें उसकी सहायता

से मलहर कपड़े पर फैला दें फिर इसे थोड़ी आग दिखा कर सुहाता सुहाता दर्द के स्थान पर चिपका दें। चिपकाने के पूर्व बालों को उस्तरे से साफ करवा दें ताकि पट्टी हटाते समय कष्ट न हो।

(पृष्ठ ४११ पर)

(९) **मदयन्त्यादि योग**--छाया में सुखाये हुये मेंहदी (मदयन्ती) के बीज या पत्तियों का चूर्ण २ भाग, भांगरे के रस में शुद्ध गन्धक १ भाग– दोनों को ३ घंटे मर्दन कर शीशी में रख लें, मात्रा १ ग्राम दिन में २-३ बार जल या सारिवादिहिम (पीछे देखें) के अनुपान से दें, यह योग कण्डू, पामा, फोड़ा-फुंसी में उपयोगी है।

(१०) **वर्द्धमान वाकुची योग**--यह श्वेत कुष्ठ पर यादवजी का प्रयोग है। वाकुची के ५ दाना पहले दिन ल्यूकोडर्मा से पीडित रोगी को ठण्डे जल के साथ सबेरे निगलवा दें। फिर १-१ दाना प्रतिदिन बढ़ाते जावें जब तक संख्या २१ दानों की न हो जावे। फिर १-१ दाना करके घटाते जायँ और ५ दानों पर ले आवें। इस प्रकार इस वर्द्धमान वाकुची योग का प्रयोग रोग अच्छा होने तक कई बार करें। श्वित्र पर वाकुची और तुवरक तैल मिला कर चुपड़ें। इस प्रकार करने से श्वित्र या सफेद कोढ़ में बड़ा लाभ होता है।

(पृष्ठ ४२२ पर)

९–**द्राक्षादि मोदक**—धोकर बीज निकाला हुआ मुनक्का और गुठली निकाली हुई हरड़ दोनों बराबर बराबर लेकर दोनों को अलग अलग बारीक पीस लें। फिर इनको मिला, दुगुनी मिश्री डाल कूट ११·६६ ग्राम के मोदक बना लें। १ या २ मोदक रात्रि में सोते समय गुनगुने पानी के साथ दें। इसके सेवन से छाती और गले की जलन दूर होती है। अम्लपित्त में आराम मिलता है, रोगी आराम से सो जाता है। सबेरे दस्त साफ आता है।

(पृष्ठ ४२२ पर)

शीतपित्त या अलर्जी

आज कल प्रायः यह कहते हुए सुना जाता है कि अमुक व्यक्ति को अलर्जी हो गई है। जितना आधुनिक कृत्रिम दवाओं का प्रयोग बढ़ता जा रहा है

उतना ही अलर्जी का प्रकोप भी बढ़ता जाता है। शीतपित्त, उदर्द और कोठ के नाम से जो रोग आयुर्वेद शास्त्र में बतलाये गये हैं वे आजकल की अलर्जी के अन्दर ही आते हैं। अलर्जी या शीतपित्त शरीर की एक प्रतिक्रिया है जो उन पदार्थों के खाने या छूने से उत्पन्न होती है, जो रोगों की प्रकृति के अनुकूल नहीं होते। प्रकृति के अनुकूल होने को शास्त्र-सात्म्य और प्रतिकूल को असात्म्य कहा जाता है। कुछ लोगों को टैरिलीन के कपड़े पहनने से अलर्जी हो जाती है। इन लोगों को टैरिलीन का प्रयोग असात्म्य है। एक स्त्री को बाकला की फली काटते समय शीतपित्त का दौरा हो गया--शरीर पर लाल लाल पित्ती उछल आई, पित्ती की पिडकाओं में खुजली चलने लगी और शरीर आँखें चेहरा तमतमा गया। कुछ लोगों को स्ट्रैप्टोपेनिसिलीन का इंजेक्शन लगते ही उपर्युक्त लक्षण तो उत्पन्न हो ही जाते हैं श्वास का वेग बढ़ जाता है। नाड़ी क्षीण हो जाती है और क्रियासंग (शॉक) और घबड़ाहट होकर मृत्यु तक हो जाती है। पेनिसिलीन या प्रोकेन पेनिसिलीन इन लोगों के लिए असात्म्य होकर मारक भी हो सकती है। डाक्टर लोग इसके लिए कॉर्टिकोस्टराइड्स (डैकाड्रोन, बैटनेसोल, कॉर्टीजोन) ऐविल, साइनोपेन तथा एड्रिनलीन का प्रयोग कर जीवन रक्षा करने में सचेष्ट होते हैं। आयुर्वेद में शुरू से ही असात्म्य पदार्थ, विरुद्धाशन का निषेध किया गया है। जिन लोगों को शीतपित्त या अलर्जी का दौरा हो उन्हें तत्काल औषध प्रयोग करना चाहिए, यदि स्वयं व्यवस्था में समर्थ न हों तो समय न खोकर अच्छे चिकित्सक या अस्पताल में भेज देने में विलम्ब न करना चाहिए। आयुर्वेदीय औषधियाँ भी इसमें कम लाभ करती हों ऐसा नहीं है। जो अलर्जी के रोगी पर्याप्त काल तक डाक्टरी दवाओं से ठीक नहीं होते उनका रोग सदा सर्वदा को नीचे लिखे योग दूर कर स्थायी लाभ पहुँचाने में उपयोगी सिद्ध हुए हैं :—

१--मकरध्वज रस—इसे चन्द्रोदय रस भी कहते हैं। १८६·५६ ग्राम शुद्ध हिंगुलोत्थपारद में २३·२ ग्राम स्वर्ण के पत्र एक एक कर डाल नींबू का रस मिला खरल में घोटें जब ८ घण्टे बराबर मर्दन हो चुके तो उसे पानी से धो लें। इसमें ३७१ ग्राम शुद्ध गन्धक डालकर मर्दन कर कज्जली बनावें। दूसरे दिन

कपास के लाल फूलों के स्वरस में घोटें फिर घृत कुमारी के गूदे में १ दिन मर्दन कर सुखा लें। इसे, कपड़मिट्टी की हुई काली पक्की बोतल में भर बालुकायन्त्र में कूपीपक्व विधि से मध्य मन्द अग्नि लगावें। लोहे की सलाई से बोतल का मुख खोलते रहें जब गन्धक उड़ जाय तो खड़िया की डाट लगा दें। उसे गुड़ चूने से बिल्कुल बन्द कर दें। फिर १२ घण्टे तीव्र अग्नि देकर छोड़ दें। स्वांगशीतल होने पर बोतल की गर्दन पर जमे मकरध्वज को और बोतल के तल में रखे स्वर्ण को सावधानी से निकाल लें। जो लोग कूपीपक्व विधि के ज्ञाता नहीं उन्हें इसे न बनाना चाहिए अन्यथा पारद की भाप उनके मुख को सुजा दे सकती है तथा कब डाट बन्द करें इसका ज्ञान न होने से उन्हें कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा। अब १ भाग उपर्युक्त स्वर्ण का चूर्ण, ८ भाग मकरध्वज, ८ भाग कपूर, ८ भाग लौंग, ८ भाग केशर, ८ भाग जायफल और १ भाग कस्तूरी ले लें। पहले स्वर्ण और मकरध्वज को ३ दिन मर्दन करें फिर कस्तूरी डालें फिर अन्य द्रव्यों का कपड़ छान किया चूर्ण डाल १ दिन और मर्दन कर शीशी में पक्की डाट लगा रख दें। इस मकरध्वज रस को १२१·५१ से ३६४ मि. ग्रा. की मात्रा में शहद में चटा देने से अलर्जी तत्काल दूर हो जाती है। हृदय को बल मिलता है। क्रियासंग (शॉक) मिट जाता है और रक्त का परिभ्रमण पुनः अपने प्राकृत रूप में होने लगता है। यह उत्तम रसायन वाजीकर और बलवर्द्धक है इसका प्रयोग अनुपान भेद से अन्य अनेक रोगों में किया जा सकता है।

२—**हरिद्राखण्ड**—यह एक निर्दोष योग है जो शीतपित्त में गत कई शताब्दियों से आयुर्वेदज्ञ व्यवहार में लाते रहे हैं। ट्रॉपीकल इओसिनोफिलिया में हल्दी का प्रयोग लाभदायक सिद्ध होने से भी इस योग का महत्त्व बढ़ गया है। इसके मूल योग में यादवजी महाराज ने कुछ परिवर्तन किया है जो इस प्रकार है—हल्दी, निशोथ और गुठली रहित हरड़ ३७३ ग्राम, दारुहल्दी, नागरमोथा, अजवायन, अजमोद, चित्रक की जड़ की छाल, कुटकी, जीरा सफेद, छोटी पिप्पली, सोंठ, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, बायविडंग, गिलोय, अडूसा, कूठ कड़ुआ, त्रिफला, चव्य, धनियां, लौह भस्म, अभ्रक भस्म प्रत्येक ११·६६ ग्राम चीनी या मिश्री ३·७३ किलो। सबसे पहले तामचीनी या स्टेनलैस

स्टील के बर्तन में थोड़ा पानी और चीनी डाल कर चाशनी करें, चाशनी जब बूरा बनने योग्य (२ तार की) हो जाय तब उसे उतार लें और तुरन्त सब भस्में तथा उपर्युक्त औषधों का कपड़छान किया हुआ चूर्ण मिला दें तथा कतरी ढाल लें। मात्रा ३ से ६ ग्राम २-२ बार गरम जल के साथ दें। यह शीतपित्त और अलर्जी को दूर करने में अच्छा कार्य करता है।

३—**सर्वदोषान्तक योग**—हल्दी ४६·४ ग्राम, सोनागेरू ११·६६ ग्राम, शु. गन्धक। पहले हल्दी को भून कर चूर्ण कर लें फिर सब द्रव्यों को कूट कपड़छान कर मिला दें इसे पानी में घोंट ३६४ मि. ग्रा. की टिकिया बना प्रयोग करें। मात्रा २ से ४ टिकिया तक ३-३ घण्टे पर जल के साथ देनें से शीतपित्त, उदर्द, कोठ तथा सभी अलर्जिक विकार दूर हो जाते हैं। जिस अलर्जी में मुख से रक्त तक गिरता हो उसे भी सद्यः लाभ करता है।

इस रोग में ३-४ काली मिर्च चबवा कर घी पिला कर कम्बल उढ़ा कर सुला देते हैं और आग में अजवाइन डाल धूनी देते हैं। गुड और अजवायन भी खिलाते हैं।

(१०) **अश्वगन्धादि योग**—मिश्री, असगन्ध, तागौरी और विधारे का चूर्ण ८-८ भाग, बड़ी इलायची का चूर्ण तथा कुक्कुटाण्डकपाल चूर्ण २-२ भाग वंगभस्म १ भाग सबको एकत्र खरल करें और शीशी में भर कर रख लें। मात्रा २ से ६ ग्राम गाय के दूध से देने से सफेद प्रदर निश्चित रूप से ठीक होता है।

(११) **बोलादिवटी**—हीराबोल (मुरमकी) २, शुद्ध सुहागा १, कसीस १, घी में भुनी हुई हींग १, एलुआ (मुसब्बरजर्द) १ सबको जटामांसी के क्वाथ में पीस २४३ मि. ग्रा. की गोलियां बना लें। मात्रा २४३ मि. ग्रा. भोजन के आधे घण्टे बाद जल के साथ दें। इसके प्रयोग से स्त्रियों का रक्तप्रदर ठीक होकर मासिक-धर्म समय से ठीक मात्रा में होता है।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
विकास का इतिहास

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० जो एशिया का सबसे बड़ा आयुर्वेदीय प्रतिष्ठान माना जाता है, इसकी उन्नति और व्यापक लोकप्रियता का इतिहास इस उक्ति का प्रमाण है कि पवित्र उद्देश्य और लोकोपकारी लक्ष्य पर परिश्रम और पूर्ण निष्ठा से काम करने पर निश्चय ही सफलता मिलती है।

आज से ५२ साल पूर्व जिस बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन का आरम्भ एक साधारण औषधालय के रूप में बैद्यनाथ धाम, देवघर (बिहार) में बैद्यराज पं. रामनारायणजी शर्मा के द्वारा किया गया था, आज उसी के पाँच प्रमुख नगरों—कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर और नैनी (इलाहाबाद) में पांच बड़े-बड़े औषधि निर्माण-केन्द्र (कारखाने) हैं, और देश के कोने-कोने में फैली हुई ४६० से अधिक विशिष्ट एजेन्सियाँ (जिनमें केवल बैद्यनाथ दवाएँ ही मिलती हैं) ४० हजार से अधिक एजेन्सियाँ हैं। बैद्यनाथ दवाओं के व्यापार से जीविका चलाने व लाभ उठाने वाले तो इससे कई गुना हैं।

अनुभूत औषधियों के अतिरिक्त बड़ी संख्या में आयुर्वेद की समस्त श्रेष्ठ औषधियाँ तथा अनेक यूनानी दवाएँ बैद्यनाथ निर्माण-केन्द्रों में बनती हैं। कीमती रस-रसायनों के निर्माण में इस संस्था को विशेष गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। मूल-द्रव्यों की शुद्धता एवं गुणकारिता की परीक्षा के पश्चात् ही बैद्यनाथ दवाएँ बैद्यनाथ की साधन-सम्पन्न निर्माणशालाओं में सुयोग्य रसायन-शास्त्रियों और फार्मासिस्टों द्वारा तैयार की जाती है।

बैद्यनाथ के आयुर्वेदोन्नति के ठोस प्रयत्न

भवन का निश्चित और दृढ़ विश्वास है कि आयुर्वेद ही एक मात्र ऐसा जीवनविज्ञान है, जिसके नियमों पर चलकर मानव-जाति बिना दवाओं के स्वस्थ रह सकती है। इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये भवन के संस्थापक पं. रामनारायणजी वैद्य ने स्वयं अपने दीर्घकालीन अनुभवों के आधार पर 'आरोग्य प्रकाश' नाम का ग्रन्थ लिखा हैं, जिसकी डेढ़ लाख से अधिक प्रतियाँ बिक चुकी है तथा हिन्दी, मराठी व गुजराती भाषाओं में संस्करण निकल चुके हैं। इसमें आरोग्य साधन के आयुर्वेदीय आधार पर स्वास्थ्य प्रकरण लिखा गया है।

आयुर्वेद शास्त्रों के अनुसंधान का प्रयास पिछले २७ वर्षों से भवन अकेले कर रहा है। यह कार्य अखिल भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र चर्चा-परिषद के अन्तर्गत समस्त देश के वरिष्ठ और अधिकारी आयुर्वेद विद्वानों के द्वारा कराया जा रहा है। प्रथम परिषद में आयुर्वेद के सिद्धान्त त्रिदोष एवं पंचमहाभूत पर निर्णय हुए। दूसरी परिषद में द्रव्य, गुण, रस, वीर्य विपाक-प्रभृति पर महत्व-पूर्ण निर्णय दिए गए। तीसरी परिषद में आयुर्वेद की दृष्टि से शरीराङ्ग वाची (एनाटामी) शब्दों पर शास्त्रीय विचार-मंथन किया गया। दो परिषदों के आयोजन से समस्त प्राचीन आयुर्वेद-ग्रन्थों में प्रयुक्त शारीरिक अंगों के लिए शब्दों के निश्चित अर्थ एवं प्रयोग निर्धारित किए गए। ऐसे एक हजार से अधिक शब्दों की संदर्भ-सूची भवन ने प्रकाशित की है। एक विस्तृत शारीरिक शब्द-ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है, जो आयुर्वेद ग्रन्थ लेखन के लिए अत्यन्त

उपयोगी सिद्ध हुआ हैं।

शास्त्र-चर्चा परिषद के चौथे अधिवेशन में देश के प्रत्येक भाग के आयुर्वेद विद्वानों ने ११ दिनों तक महास्रोतस (मुख से गुदा तक) के रोगों पर बहुत विस्तार से विचार-विमर्श किया तथा महत्वपूर्ण निर्णय लिये गये। इन सबको वैद्य-बन्धुओं के उपयोगार्थ पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा रहा है। आयुर्वेद-शास्त्र की इन चार परिषदों के अन्तर्गत भवन ने लक्षावधि रुपया खर्च किया है।

औषध-निर्माण के लिए शुद्ध मूल-द्रव्य और पूर्ण गुणकारी वनस्पतियों का संग्रह तथा अन्वेषण करने के उद्देश्य से सुप्रसिद्ध वनौषध-वेत्ता स्व० श्री भागीरथजी स्वामी के निर्देशन में जो कार्य आरम्भ किया था, उसके अन्तर्गत पटना तथा झाँसी कार्यालय में लगी भैषज्य वाटिकाएँ निरन्तर प्रगति कर रही हैं। और इनमें कीमती वनस्पतियाँ पर्याप्त मात्रा में पैदा हो रही हैं। भवन के वनौषध-अन्वेषक पर्यटक-दल नियमित रूप से वनौषध-अनुसंधान में संलग्न हैं। अब तक उत्तराखण्ड, काश्मीर, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, चित्रकूट, विंध्याचल, नीलगिरि, आसाम के दुर्गम वन-प्रदेशों में हमारे अन्वेषक-दलों ने १७ बार सुनियोजित यात्राएँ की है, और चार सौ से अधिक वनौषधियों का अन्वेषण किया है।

आयुर्वेदीय-योगों (फार्मूला) पर अनुसंधान-कार्य करते रहने की परम्परा भी हम प्रारम्भ से ही अपनाएँ हुए हैं। इस हेतु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को प्रारम्भ से ही आर्थिक सहायता दी जा रही है। रतनगढ़ चुरू (राजस्थान) के धन्वन्तरि मन्दिर में दमा-श्वास के अनुसंधान के लिए अब तक लाखों रुपया दिया जा चुका है। आँव पेचिस अमेबिक प्रवाहिका (Amebic Dysentry) पर गत ८ वर्षों से श्री कृष्णजन्मस्थान मथुरा में पं. रामनारायण शर्मा आयुर्वेद भवन में हो रहे अनुसंधान कार्य पर भवन एक लाख से अधिक रुपया औषध-सहायता के रूप में दे चुका है।

औषध-निर्माण पर हमारे निर्माण-केन्द्रों में तो वर्ष भर अनुसंधान-कार्यक्रम

चलते ही हैं, विशेष अनुसंधानों के लिए भी भवन उत्साहपूर्वक आयोजन करता है। गत अनेक वर्षों से भवन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में आसवारिष्टों पर अनुसंधान कार्य करा रहा है। इसी प्रकार भवन के डायरेक्टर श्री बृजेन्द्रकुमार जी शर्मा द्वारा संचालित श्री शर्मा आयुर्वेद मंदिर, दतिया में गत कई वर्षों से पारद के संस्कारों का अनुसंधानकार्य चल रहा है, और इस पर अब तक डेढ़ लाख से अधिक रुपया खर्च हो चुका है।

आयुर्वेदीय औषधों से जनता-जनार्दन को लाभान्वित करने के लिए, झाँसी, नागपुर, पटना और काँसली (जयपुर) में गत ३१ वर्षों से चल रहे धर्मार्थ औषधालयों और स्वास्थ्य रक्षाकेन्द्रों से अब तक ५१ लाख ८० हजार रोगी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर चुके हैं। इसी प्रकार देश के अनेक धर्मार्थ औषधालयों को लाखों रुपये मूल्य की दवायें सहायता रूप में मुफ्त दी गई हैं। निर्धन छात्र भी आयुर्वेद-अध्ययन करके आयुर्वेद की सेवा कर सके, इस हेतु गत ३१ वर्षों से २५ हजार रुपया वार्षिक की छात्रवृत्तियाँ प्रति वर्ष दी जा रही हैं। देहली अखिल भारतीय महासम्मेलन विद्यापीठ को सन् १९६० से ५०० रुपया मासिक की सहायता नियमित रूप से पाँच वर्षों तक दी गई। गत दो वर्ष से पुनः यह सहायता प्रारम्भ कर दी गई है।

आयुर्वेद-शास्त्र के साहित्यिक-उत्थान के लिए देश के अधिकारी, विद्वानों द्वारा उत्कृष्ट ग्रन्थों को प्रकाशित करने की हमारी परम्परा भी बहुत पुरानी है। छोटी-बड़ी सामयिक और विशेष पुस्तकों एवं ग्रन्थों के अलावा हम अब ३१ श्रेष्ठ ग्रन्थ प्रकाशित कर चुके हैं। आयुर्वेद-प्रचार के उद्देश्य से ये बहुत कम कीमत पर बिकती है, और अब तक इनकी १० लाख से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

आयुर्वेद की महत्ता से देश के वरिष्ठ नेताओं और अधिकारियों को प्रभावित करने के लिए सन् १९५८ से दिल्ली के संसद-सदस्य क्षेत्र में १० वर्षों तक आयुर्वेदीय औषधालय चलता रहा, जिस पर २ लाख ४० हजार रुपया व्यय किया गया, और हमारे इस प्रयास से केन्द्रीय सरकार द्वारा आयुर्वेद औषधालयों को प्रोत्साहन स्वरूप १४ लाख प्रति वर्ष का बजट स्वीकृत किया जाता है।

श्री धन्वन्तरि-जयन्ती पर राष्ट्र-व्यापी स्वास्थ्य दिवस समारोह के आयोजन प्रतिवर्ष करके भवन वैद्य-हकीमों में संगठन एवं जनता में आयुर्वेद के प्रचार का प्रयास करता है। इस हेतु अब तक ७ लाख ५० हजार रुपया खर्च किया गया है। धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक और सामाजिक मेलों या समारोहों पर भवन की ओर से भव्य आयुर्वेदीय स्वास्थ्य प्रदर्शनियों के आयोजनों द्वारा जनता को केवल दवाओं पर आश्रित न होकर स्वाभाविक-स्वास्थ्य नियमों के प्रति प्रेरित किया जाता है। हमारी आय का अधिकांश इनके लिये खर्च किया जाता है। इस प्रकार श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि. केवल व्यवसायी न होकर आयुर्वेद, वैद्य समाज और भारतीय-संस्कृति के उत्थान में संलग्न संस्था है।

श्री रामनारायण शर्मा आयुर्वेद भवन प्रगति पथ पर :

मथुरा में सन् १९६४ में संस्थापित श्री रामनारायण शर्मा आयुर्वेद भवन की प्रगति निरंतर हो रही है। यहाँ प्रतिदिन ३०० रोगी नि:शुल्क औषधि एवं चिकित्सा सेवा प्राप्त करते हैं। दो आयुर्वेदाचार्य वैद्य, तीन उप वैद्य और एक उपवैद्या बहिरंग विभाग का कार्य देखते हैं। जटिल रोगियों की चिकित्सा स्वयं वैद्य पं० रामनारायण शर्मा करते हैं। उनका सहयोग हर बृहस्पतिवार को मध्यप्रदेश के भूतपूर्व डिप्टी डायरेक्टर आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी हाथरस निवासी करते हैं। रोगियों को ताजे काढ़े बनाकर दिये जाते हैं। अन्य औषधियों के अतिरिक्त बहुमूल्य औषधियाँ भी मुफ्त दी जाती है। इसके साथ ही १० शैय्याओं का एक अन्तरंग आतुरालय भी है जिसे शीघ्र २५ शैय्याओं का किया जा रहा है।

हमारे आयुर्वेदोन्नति पूरक अन्य कार्य तथा योजनायें

१) वैद्यनाथ प्रतिष्ठान की ओर से योग्य छात्रों को आयुर्वेदिक कालेजों में छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जाती हैं।

२) झाँसी में श्री लक्ष्मीबाई मेडिकल अस्पताल प्रांगण में दो-ढाई लाख रुपये लगाकर श्रीमती ग्यारसी देवी आतुराभिभावक निवासशाला का निर्माण कराया जा रहा है जहाँ प्रविष्ट रोगियों के अभिभावक रह सकेंगे।

३) ऐसे व्यक्ति भी पुरष्कृत किये जायेंगे जो किसी रोग या रोग लक्षण पर किसी गुप्त सद्यः फलप्रद औषध या उपचार को प्रकाशित करेंगे या महत्वपूर्ण हस्तलिखित किसी दुर्लभ ग्रंथ की सूचना देंगे।

४) जयपुर विश्व विद्यालय में ४०० रु. राशि जमा कर दिया गया है। प्रतिवर्ष आयुर्वेद के चिकित्सा पोस्ट ग्रॅजुएट अंतिम परीक्षा में सर्वोत्तम अंक प्राप्त करनेवाले छात्र को बैद्यनाथ स्वर्ण पदक प्राप्ति के लिये ऐसी धन राशि वाराणसी तथा जामनगर में भी जमा करायी जायेगी जिससे आयुर्वेद के श्रेष्ठ चिकित्सक बनें।

—----

बैद्यनाथ आयुर्वेदीय प्रकाशन

यह कारखाना केवल औषधि-निर्माता ही नहीं है, बल्कि शुद्ध अर्थ में यह एक आयुर्वेदीय संस्था है । इसका मुख्य उद्देश्य है भारतीय चिकित्सा-पद्धति—आयुर्वेद का प्रतिसंस्कार और उसके स्वाभाविक मानव-कल्याणकारी गुणों, उसकी विशेषताओं और चिकित्सा-प्रणाली की श्रेष्ठता की जानकारी जनता को कर देना । औषध और ग्रन्थ, दोनों इसके साधन हैं । इसलिये एक ओर जहाँ यह उत्तमोत्तम औषध-निर्माण द्वारा आयुर्वेद की विशेषता को प्रमाणित करने की चेष्टा करता है, वहीं दूसरी ओर इसके उत्तमोत्तम और प्रामाणिक ग्रन्थों के प्रकाशन का समुचित प्रबन्ध भी करता है । राजकीय शिक्षासंस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों ने इसके अनेक ग्रन्थों को अपने पाठ्यक्रम की पुस्तकों में प्रमुख स्थान दिया है । पुस्तकों के मूल्यनिर्धारण में सर्वसाधारण की क्रय-शक्ति का पूरा विचार रखकर इन्हें लागत मात्र कीमत पर बेचने का प्रबन्ध होता है । हमारे **आरोग्य-प्रकाश** को तो जनता ने इतना पसन्द किया है कि उसके १८ संस्करणों में डेढ़ लाख से अधिक प्रतियाँ छप कर हाथों-हाथ बिक चुकी हैं । इसी प्रकार अन्य ग्रन्थों के भी कई-कई संस्करण छप चुके हैं ।

अभिनवं शारीरम् (संस्कृत)–लेखक : **वैद्य पं. दामोदर शर्मा गौड़** ए. एम्. एस्. । शिक्षा में उच्चता तथा एकरूपता लानेवाला शारीरशास्त्र का अद्भूत ग्रन्थ है। अध्ययन तथा अध्यापन के लिये यह उपयुक्त पाठचपुस्तक हो सकता है । शारीरशास्त्र का युगानुरूप परिष्कृत संस्कार कहा जा सकता है ।

पृष्ठ संख्या ६००, चित्र संख्या ४००, रंगीन चित्र ११२, मूल्य ७५) रु.

अष्टांग-संग्रह (सूत्रस्थान) — (सर्वाङ्ग-सुन्दर-व्याख्या-सहित) **व्याख्याकार–वैद्य पं० लालचन्द्र शास्त्री** । श्रीमद्वाग्भट्टाचार्य विरचित 'अष्टांग-

संग्रह' आयुर्वेद के प्राचीन संहिताओं में सर्वोत्कृष्ट और प्रामाणिक ग्रंथ है। इसमें सूत्रस्थान बहुत महत्वपूर्ण है। सूत्रस्थान में कुल ४० अध्याय हैं। इन अध्यायों में जो विषय प्रतिपादित हुए हैं, वे कार्य-चिकित्सकों की जानकारी के लिये अत्यावश्यक एवं उपयोगी हैं। पृष्ठ संख्या ७७०; मूल्य १२) रु.

अम्लपित्त प्रकरण – बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा आयोजित अखिल भारतीय संभाषण परिषद् में अम्लपित्त निदान और चिकित्सा पर प्रकट किये गये अनुभव इसमें संकलित हैं। मूल्य २) रु.

आरोग्य-प्रकाश – (आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा पर सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ अठारहवाँ संस्करण) श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड के संस्थापक, वैद्यराज **पं० रामनारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री** ने बड़े परिश्रम से इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है। पूर्वार्द्ध के विषयों को पढ़कर और तदनुसार चलकर सदा बीमार रहनेवाला व्यक्ति भी बिना दवा के नीरोग (तन्दुरुस्त) हो जाता है। ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में शरीर मे पैदा होनेवाले सभी रोगों की उत्पत्ति, कारण, निदान, रोग के लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि इस तरह समझाकर लिखे गये हैं कि इसके द्वारा विद्वान् से लेकर साधारण पढ़े-लिखे, दोनों समान रूप से लाभ उठा सकते हैं। हिन्दी में ऐसी पुस्तक दूसरी नहीं है।

आरोग्य-प्रकाश (मराठी संस्करण)––श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के प्रबन्ध निर्देशक वैद्य रामनारायण शर्मा द्वारा लिखित ग्रन्थरत्न का यह मराठी संस्करण भी हिन्दी संस्करण की भाँति सचित्र है।

पृष्ठ संख्या ५०६; मूल्य ५) रु.

आरोग्य-प्रकाश–(गुजराती संस्करण––बैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा, वैद्यशास्त्री द्वारा लिखित। हिन्दी आरोग्य-प्रकाश का यह गुजराती भाषा में अनुवाद है।

पृष्ठ संख्या ६८७; मूल्य ६) रु.

आयुर्वेदीय क्रिया-शारीर–(सचित्र, रायल अठपेजी, विलायती पेपर) लेखक : **वैद्य रणजितराय देसाई, वाइस-प्रिन्सिपल, आयुर्वेद-महाविद्यालय, सूरत।** श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड द्वारा प्रकाशित "शारीर-क्रिया-विज्ञान" का देश में सर्वत्र ही समादर हुआ था और हिन्दुस्थान के प्रायः समग्र आयुर्वेदीय कालेजों के पाठ्य-क्रम में वह पुस्तक नियत हो गयी थी। उसी ग्रन्थ का यह संशोधित और परिवर्धित षष्ठम संस्करण है।

आयुर्वेद की इस पुनरुत्थान वेला में, वैद्य रणजितराय जो स्तुत्य और ऐतिहासिक महत्व का कार्य कर रहे हैं, उसे आज आयुर्वेद-जगत में कौन नहीं जानता ? आयुर्वेद के संशोधन को दृष्टि में रख कर उन्होंने जो अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, उन्हीं में से एक ग्रन्थ यह 'आयुर्वेदीय-क्रिया-शारीर' भी है।

प्रस्तुत संस्करण के पाठ्य-विषयों में तो पहले की अपेक्षा अनेक परिवर्तन किये ही गये हैं; इसमें अनेक एकरंगे चित्रों की संख्या, वृद्धि कर, विषय को अधिक सुबोध बनाया गया है एवं पुस्तक की उपयोगिता में और भी अधिक वृद्धि कर दी गयी है। पृष्ठ संख्या ८८८, मूल्य २१) रु.

आयुर्वेद सार-संग्रह (नवम संस्करण)-- राष्ट्रभाषा में ऐसी आयुर्वेदीय पुस्तकों की बहुत कमी थी, जिनमें रोग विचार के साथ-साथ चिकित्सा, औषध-निर्माण, अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का विवरण समझाकर सरल भाषा में दिया गया हो। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेदीय साहित्य की इसी कमी को दूर करने का सफल प्रयत्न किया गया है। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि. द्वारा बनायी जानेवाली सभी दवाओं की निर्माण-विधि तथा उनके गुण-धर्म और प्रयोग-विधि के साथ सभी वैद्योपयोगी बातों का सविस्तर वर्णन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। रस-रसायन, अर्क आदि बनाने के यन्त्रों के चित्र भी दिये गये हैं जिनके देखने से औषध-निर्माताओं को काफी सुविधा होगी।

पृष्ठ संख्या ७४०; मूल्य १६) रु.

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान (पूर्वार्द्ध—तृतीय संस्करण)—लेखक **आयुर्वेद-मार्त्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य, बम्बई।** इस ग्रन्थ में व्याधि विज्ञान के

साधनों का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया है। व्याधिओं के सम्बन्ध में सभी ज्ञातव्य बातों का इस ग्रन्थ में वर्णन है। अध्ययन कर लेने के बाद निदान-सम्बधी अनेक ज्ञातव्य सिद्धान्त हस्तामलकवत् प्रतिभात हो जाते हैं। आयुर्वेद-प्रेमी विद्वानों, वैद्यों और विद्यार्थियों सभी के लिये यह ग्रन्थ उपयोगी है।

पृष्ठ संख्या १२८; मूल्य रु. ३) ४०

आयुर्वेदीय व्याधि-विज्ञान (उत्तरार्ध द्वितीय संस्करण)--लेखक : आयुर्वेद-मार्त्तण्ड वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य। यह ग्रन्थ उपयुक्त ग्रन्थ का उत्तरार्ध है इसमें ज्वर, महास्त्रोतगत रोग, उरोगत रोग, रक्तपित्त रोग, पाण्डु रोग, शोथ व्रण, विसर्प, वृद्धि, भग्ननिदान, गलगण्ड, गण्डमाला, कुष्ठ आदि १५ अध्याय हैं।

पृष्ठ संख्या २८६; मूल्य १२) रु.

आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान--लेखक : सुप्रसिद्ध आयुर्वेद मनीषी, ह. श्री. कस्तुरे। यह ग्रन्थ पंचकर्म विषय पर प्रथम ही अनोखा वैशिष्ठ्यपूर्ण ग्रन्थ है। स्नातकोत्तर शिक्षण तथा अन्वेषण में लगे हुए छात्रों को पथ प्रदर्शक के रूप में यह उपयुक्त सामग्री होगी। जो वैद्य व्यवसाय में लगे हुए हैं उन्हें प्रत्यक्ष कर्मो की वैज्ञानिक पद्धति इस ग्रन्थ से मिलती है। पंचकर्म पद्धति को पुनरुज्जीवित करने की दिशा में यह ग्रन्थ अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायेगा।

पृष्ठ संख्या ६८८; मूल्य केवल रु. १५.००।

आयुर्वेदीय पदार्थ-विज्ञान (तृतीय संस्करण) --लेखक : वैद्य रणजितराय देसाई। आयुर्वेदीय पदार्थविज्ञान अन्य सभी आयुर्वेदीय विषयों का आधारभूत है। अतः इसका अध्यापन किस शैली से होना चाहिए, इस बात का विशद विवेचन करते हुए विषय को नया ही रूप देनेका सफल प्रयास किया गया है।

पृष्ठ संख्या २८८; मूल्य १२) रु.

आयुर्वेदीय हितोपदेश (द्वितीय संस्करण)-- लेखक : वैद्य रणजितराय देसाई। आयुर्वेद के रहस्य-बोधन के लिये संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। प्रायः

आयुर्वेदीय पाठचक्रम की प्रारम्भिक परीक्षाओं में संस्कृत भी एक अनिवार्य विषय रहता है, परंतु इसका अध्ययन-अध्यापन संस्कृत साहित्य के पाठ्य ग्रन्थ-हितोपदेश, पंचतन्त्र प्रभृति आयुर्वेदेतर विषयों के रूप में होता है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर आयुर्वेदीय अध्ययन-अध्यापन के कार्य में दक्ष वैद्य रणजितराय ने '**आयुर्वेदीय हितोपदेश**' नाम की इस पुस्तक का प्रणयन किया है। पृष्ठ संख्या २८८; रु. ४) २५।

उपचार पद्धति (अष्टम संस्करण)—सर्वसाधारण गृहस्थ के सैकड़ों रुपये प्रतिवर्ष बच सकते हैं, यदि उन्हें उपचार और पथ्य का साधारण ज्ञान हो जाय। इसी लक्ष्य को सम्मुख रख कर इस पुस्तक का प्रकाशन किया गया है। पृष्ठ संख्या १०८ मूल्य रु. १) २५।

औषधि विज्ञान शास्त्र -- लेखक : **विश्वनाथजी द्विवेदी**, विभागाध्यक्ष-आयुर्वेद संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी। प्रस्तुत पुस्तक में नवीन पद्धति के आधार पर औषधि शास्त्र के बारे में बहुत ही सरल ढंग से अत्यंत परिश्रम पूर्वक विषय स्पष्ट किया गया है। यह ग्रन्थ पांच भागों (अध्यायों) में विभक्त है और इन भागों में निघंटु, द्रव्य-गुण-शास्त्र, सैद्धान्तिक विवरण, सामान्य व विशिष्ट परिभाषा, कर्म विज्ञान, कार्मुक संज्ञायें आदि का विस्तृत एवं सुबोध ढंग से वर्णन किया गया है। द्रव्य, परिचय, स्वरूप, शरीर पर प्रभाव एवं चिकित्सा में उनका उपयोग आदि विषयों का खुलासा करने से वास्तव में लेखक ने औषधि विज्ञान शास्त्र को और भी सामने ला दिया है। पृष्ठ संख्या ८१८; मूल्य केवल १५) रु.

किशोर-रक्षा और ब्रह्मचर्य (चतुर्थ संस्करण)—किशोर बालकों और तरुणों को कुटेव-जन्य व्याधियों से बचाने का इस पुस्तक में सफल प्रयास किया गया है। पृष्ठ संख्या १०८; मूल्य रु. १) २५।

त्रिदोष-तत्व-विमर्श (तृतीय संस्करण)—लेखक : **आयुर्वेद-बृहस्पति वैद्य रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य**। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आधारभूत त्रिदोष

सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन विधिवत् किया गया है। विद्वान लेखन ने त्रिदोष तत्व के विभिन्न रूपों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है।

पृष्ठ संख्या २५२; मूल्य ४) रु.

द्रव्यगुण विज्ञानम् पूर्वार्धः– (पञ्चम संस्करण)––लेखक : आयुर्वेदमार्त्तण्ड वैद्यवाचस्पति वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य, बम्बई। आयुर्वेदीय ग्रन्थों में सूत्र-रूप में यत्र-तत्र बिखरे हुए द्रव्यगुण-विषय को आयुर्वेद-तत्त्ववेत्ता पूज्य आचार्यजी ने बड़े परिश्रम से द्रव्यों के रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव आदि विषयों पर पृथक्-पृथक् पाँच अध्यायों में बहुत उत्तमतापूर्वक संकलित कर सरल संस्कृत तथा हिन्दी-भाषा में विवेचन किया है, जो आयुर्वेद-विज्ञान की प्रगति के लिए बहुत उपयोगी है। स्नातकोत्तर शिक्षण के लिए भी यह ग्रन्थ अत्युपयोगी है।

पृष्ठ ३८८), मूल्य १५) रु.

निदान–चिकित्सा–हस्तामलक–प्रथम खण्ड (द्वितीय संस्करण) लेखक : वैद्य रणजितराय देसाई। विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिए यह पुस्तक परमोपयोगी है। द्वितीय खण्ड शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।

पृष्ठ संख्या ८१६; मूल्य १८) रु.

पदार्थ-विज्ञान–देशभर की आयुर्वेदीय संस्थाओं एवं परीक्षा समितियों के पाठ्यक्रम में स्वीकृत) लेखक : **आयुर्वेद-वृहस्पति पं० रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य, भू० पू० प्रिन्सिपल, अ० शि० आयुर्वेदिक कालेज, बेगूसराय।** इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में पदार्थ का तुलनात्मक विवेचन किया गया है और द्वितीय अध्याय में आनेवाले पदार्थों का सुन्दर विवेचन हुआ है। तृतीय अध्याय में आयुर्वेद के मूलभूत त्रिदोष-सिद्धान्त की जननी प्रकृति तथा उससे उद्भूत तत्वों की छान-बीन की गयी है। चतुर्थ अध्याय में आत्मतत्व का विवेचन किया गया है और यह दर्शाया गया है कि पूर्वजन्मकृत पापों का परिणाम भोगने के लिये किस प्रकार सगुण आत्मा भिन्न-भिन्न योनि में प्रवेश कर कर्मों का फल भोगा करती है।

पृष्ठ २६२ मूल्य १०) रु.

पारिषद्यं शब्दार्थ शारीरम्---सम्पादक-**आयुर्वेदाचार्य पं० दामोदर शर्मा, गौड़** । भूमिका लेखक : **आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी** । यह ग्रन्थ आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन के कार्य में लगे लोगों के लिये परम-उपयोगी है ।

पृष्ठ २१२ मूल्य रु. ५) ८५ ।

वनौषधि शतक---लेखक : **प्राणाचार्य पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा** । इस ग्रन्थ में ऐसी वनौषधियों का विशद परिचय रंगीन चित्रों के साथ प्रस्तुत किया है, जिनके शुद्ध और उचित उपयोग द्वारा हीं औषधि पूर्ण गुणकारी बन सकती है । अतएव, यह पुस्तक आयुर्वेद के विद्वानों, छात्रों, चिकित्सकों एवं आयुर्वेद से प्रेम रखनेवाले साधारण जनों के लिए परमोपयोगी है ।

पृष्ठ २०८ मूल्य रु. ६)५० ।

वैद्य-सहचर (पंचम संस्करण)---लेखक : **आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी** 'औषधि विज्ञान शास्त्र' के सफल तथा अधिकारी लेखक द्वारा लिखी गई यह पुस्तक आयुर्वेद क्षेत्र में इतनी शीघ्रता से प्रिय हुई कि इसका यह पांचवा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा । द्विवेदीजी ने इसे नवीनतम अनुभवों का समावेश कर, पुनः संस्कारित किया है । मधुमेह की आयुर्वेदीय सफल चिकित्सा तथा अन्वेषण का विवरण इसमें किया है ।

पृष्ठ संख्या ३४५, मूल्य रु. ५-२०

मानस-रोग-विज्ञान---इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखक : **स्वर्गीय डॉ. बालकृष्ण अमरजी पाठक** ने बनारस-हिन्दू-विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक कालेज के अध्यक्ष एवं प्रधानाध्यापक के रूप में काफी कीर्ति प्राप्त की थी और एक उच्च कोटि के विचारक और उद्भट मनीषी के रूप में आप सम्पूर्ण भारत में सुप्रसिद्ध हो गये थे ।

आज के युग में, जब कि काम-क्रोध आदि तथा मिरगी (अपस्मार), उन्माद, न्यूरेस्थिनिया, मानसिक अस्थिरता, पागलपन, हिस्टीरिया आदि मानसिक रोग मनुष्य जाति को बुरी तरह त्रस्त कर रहे हैं; यह पुस्तक एक नवीन

सन्देश देनेवाली है। अंग्रेजी भाषा के ज्ञाताओं का कहना है कि मानस-शास्त्र जैसा अंग्रेजी में है, वैसा अन्यत्र नहीं है किन्तु इस पुस्तक के अवलोकन से उनके भ्रम का निवारण होगा हमारा ऐसा विश्वास है।

इस ग्रन्थ की रूपरेखा पूज्यपाद यादवजी ने तैयार की थी और इस विषय पर आयुर्वेदीय साहित्य में खटकनेवाली जबरदस्त कमी को पूरा करने के लिये डॉ० पाठक जैसे अनुभवी विद्वान् वैद्य को यह ग्रन्थ लिखने के लिए उत्साहित किया था।

पृष्ठ २५१ मूल्य ७) रु.

मोटापन कम करने का उपाय--लेखक : श्री प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी। ग्रन्थ परम उपयोगी एवं मननीय है।

पृष्ठ १३८ मूल्य रु. २) ६०।

यूनानी चिकित्सा-सार (द्वितीय संस्करण) — लेखक : **हकीम डॉ. दलजीतसिंह**। इस पुस्तक में विद्वान् लेखक ने रोगों के निदान तथा चिकित्सा को सरल हिन्दी भाषा में लिखकर सर्वसाधारण जनता तथा साधारण पढ़े-लिखे वैद्यों तक के लिए सुलभ बना दिया है।

यह सुविदित है कि यूनानी दवा के नुस्खे बहुत सस्ते तथा आशुफलदायक साबित होते हैं। विद्वान् लेखक ने इस पुस्तक में ऐसे अनेक योगों का उल्लेख कर पुस्तक की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ा दी है।

पृष्ठ ५७६ मूल्य ९) रु.

यूनानी सिद्धयोग-संग्रह (तृतीय संस्करण)— यूनानी चिकित्सा-पद्धति का महत्त्व सभी जानते हैं। यह आयुर्वेद के बहुत समीप है। इसके नुस्खे, आयुर्वेदीय नुस्खों की भाँति ही लाभदायक और तुरन्त फायदा करनेवाले तथा सस्ते होते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उपर्युक्त लेखक द्वारा ही लिखवाकर प्रकाशित किया गया है।

पृष्ठ २२३ मूल्य ४) रु.

यौवन विज्ञान पर नया प्रकाश--लेखक : डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा, एम ए., एम., एस, आर. एम पी. भिषगरत्न) विद्वान् लेखक ने प्राचीन व आधुनिक लेखकों के पूर्वाग्रहों से हटकर स्वतन्त्र शैली द्वारा वैज्ञानिक एवं सरल ढंग से इस विषय को समझाने का पूर्ण प्रयास किया है । यह ग्रन्थ युवक एवं युवतियों के "यौवन विज्ञान" पर निश्चित ही "नया प्रकाश" डालनेवाला साबित होगा; साथ ही अभिभावकों के लिए भी मननीय होगा ।

पृष्ठ २०५ मूल्य ४)रु.

रस भस्म सेवन विधि (अष्टम संस्करण) -- (हिन्दी) भवन द्वारा निर्मित रस, भस्म, लोह, मण्डूर, बटी, पर्पटी एवं गुग्गुलु का सेवन करने की विधि इस छोटी सी किन्तु अतीव उपयोगी पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में समझाई गई है । सेवन विधि के अलावा औषधि का गुण-पथ्य आदि भी दिये गये हैं ।

पृष्ठ २१० मूल्य रु. १) २५ ।

रस भस्म सेवन विधि (तृतीय संस्करण) -- (मराठी) उक्त हिन्दी संस्करण का ही मराठी अनुवाद बहुत ही सरल मराठी भाषा में किया गया है ।

पृष्ठ १९० मूल्य रु. १) २५ ।

शाङर्गधर-संहिता (द्वितीय संस्करण) -- टीकाकार : आचार्य पं. राधाकृष्ण पराशर । शार्ङ्गधर-संहिता की अनेक टीकाओं के बावजूद इस टीका में पाठकों को आयुर्वेद का रहस्य नये ढंग से समझाकर लिखा गया है ।

पृष्ठ ६०२ मूल्य ८) रु,

सिद्धयोग-संग्रह — (षष्ठ संस्करण) आयुर्वेदोद्धारक वैद्यबाचस्पति **श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य** के करकमलों से लिखा हुआ यह ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ को पढ़ने से प्रत्येक वैद्य को लाभ होगा, इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है ।

पृष्ठ संख्या १७८ मूल्य ८) रु.

संक्रामक रोग-विज्ञान — (**द्वितीय संस्करण**) लेखक : **कविराज बालकराम शुक्ल, आयुर्वेद-शास्त्राचार्य**। आज जब कि देश में मलेरिया, कुष्ठ, यक्ष्मा, हैजा, प्लेग आदि जैसे भयंकर रोगों से हजारों-लाखों मनुष्य आक्रान्त हो रहे हैं, तो यह आवश्यक है कि संक्रामक रोगों से बचने का उपाय तथा रोगपरीक्षा, निदान-चिकित्सा आदि से भारतीय जनता को पूर्ण परिचित कर दिया जाय, जिससे प्रथम तो यह भयंकर रोग होने ही न पावे और यदि हो भी जाय, तो उसका उचित प्रतिकार किया जा सके।

प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं विषयों का सरल हिन्दी भाषा में वर्णन किया है।

पृष्ठ ८१० मूल्य १३) रु.

नेत्र-चिकित्सा (संस्कृत) लेखक डॉ. बाळकृष्ण शिवराम मुंजे।

पृष्ठ २३०, मूल्य ८) रु.

अंग्रेजी प्रकाशन

(१) Therapeutic Guide to Ayurvedic Medicines.

मूल्य १५) रु.

(२) Digestion and Metabolism in Ayurveda.

मूल्य १०) रु.

आगामी प्रकाशन

निदान-चिकित्सा-हस्तामलक (द्वितीय खण्ड)—

लेखक—वैद्य रणजितराय देसाई।
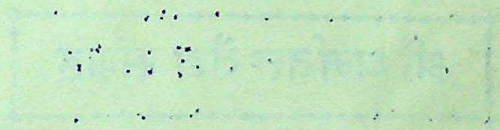
२,००,००० (दो लाख) से अधिक

यह दवाओं के नुस्खों की एक किताब मात्र नहीं है. बल्कि विशुद्ध भारतीय जीवन-दर्शन है जिसे आयुर्वेदशास्त्र के मर्मज्ञ और जीवन-जगत के अनुभवी वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा ने सर्वसाधारण के हितार्थ सीधी-सरल भाषा और सुबोध शैली में लिखा है। १९ संस्करणों में अबतक इसकी दो लाख से अधिक प्रतियां बिक चुकी हैं, जो इसकी उपयोगिता एवं लोकप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस ग्रंथ में आहार-विहार संयम-नियम और ऋतु-अनुकूल रहन-सहन के विवेचन के साथ-साथ निदान, चिकित्सा तथा पथ्यापथ्य आदि विषय खूब समझाकर लिखे गये हैं, जिससे आयुर्वेदशास्त्र के गूढ़ विषयों को साधारण-से-साधारण लोग भी खूब आसानी से समझ लेते हैं। सभी लोग इस ग्रंथ से लाभ उठा सकें इसलिए लगभग छह सौ पेज की सजिल्द पुस्तक का मूल्य भी बहुत कम यानी ६) मात्र रखा गया है।

आरोग्यप्रकाश
वैद्यराज पं. रामनारायण शर्मा
प्रकाशक श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

इस ग्रन्थ का मराठी व गुजराती अनुवाद भी मिलता है।

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन लिमिटेड

कलकत्ता - पटना - झांसी
नागपुर - नैनी (इलाहाबाद)